हिन्दी ग्रन्थ-रत्नाकरका १५ वाँ ग्रन्थ

उपवास-चिकित्सा

लेखक,
अनेक ग्रन्थोंके रचयिता और अनुवादकर्त्ता
श्रीयुत बाबू रामचन्द्र वर्मा

प्रकाशक,
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय

आषाढ़, १९८९ वि०

जून, १९३२ ई०

चौथा परिवर्द्धित संस्करण

मूल्य १=)] [सजिल्दका १॥=)

प्रकाशक
नाथूराम प्रेमी
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय
हीराबाग, गिरगाँव, बम्बई

मुद्रक
रघुनाथ दिपाजी देसाई
न्यू भारत प्रिंटिंग प्रेस
गिरगाँव, बम्बई-न ४

चिकित्सा विज्ञानकी पुस्तकें

संसारमें दिनपर दिन सैकड़ों नई नई दवाइयाँ ईजाद होती जाती हैं, डाक्टरों और वैद्योंकी संख्या बेतरह बढ़ती जाती है, फिर भी रोग कम नहीं होते, बल्कि रोगियोंकी संख्या भी बराबर बढ़ती जाती है। यह देखकर बहुतसे पाश्चात्य विद्वानोंको डाक्टरी और वैद्यकीय चिकित्साकी पद्धतिपर अश्रद्धा हो गई है और वे रोगोंको प्राकृतिक उपायोंसे बिना किसी प्रकारकी दवा दारूके आराम करनेके प्रयत्नमें लग गये हैं और इसके फलस्वरूप उन्होंने अनेक ग्रन्थ लिख डाले हैं। हिन्दीमें इस विषयके ग्रन्थोंका अभाव देखकर हमने उक्त ग्रन्थोंके आधारसे नीचे लिखी पुस्तकें लिखवाकर प्रकाशित की हैं। इन्हें पढ़िए और इनका घर घरमें प्रचार कीजिए—

१—**नवीन चिकित्सा विज्ञान या जलचिकित्सा**—डा० लुई कूनेकी पुस्तकका सम्पूर्ण अनुवाद। अनेक चित्रोंसे युक्त। इसमें पानीके स्नानोंसे सब प्रकारके रोगोंको आरम्भ करनेका विधि लिखी है। मू० लगभग ३)

२ **प्राकृतिक चिकित्सा**—इसमें कटि स्नान, मेहन-स्नान, सूर्यकी धूपका स्नान और बाष्प स्नान (बफारा) करना, कोयलोंकी आँचसे पसीना लेना, शुद्ध जलको अधिक परिमाणमें पीना, व्यायाम करना, शुद्ध वायुमें श्वासोच्छ्वास लेना, आदि क्रिया ओंसे सब प्रकारके रोगोंको दूर करनेकी विधि लिखी है और रोग क्यों होते हैं, इसको खूब विस्तारपूर्वक समझाया है। मूल्य छह आने।

३ **योग चिकित्सा**—इसमें योगकी सरल क्रियाओंसे रोगोंको आराम करने और सदा आरोग्य रहनेके उपाय बतलाये हैं। मूल्य दो आने।

४ **दुग्ध चिकित्सा**—केवल दूध पीनेसे और सब प्रकारका भोजन-पान बन्द कर देनेसे भी बड़े बड़े रोग आराम हो जाते हैं। मू० दो आने।

५ **मधु चिकित्सा**—शहदके सेवनसे सैकड़ों रोगोंका इलाज। मूल्य ≤)॥

६ **सुगम चिकित्सा**—मू० दो आने।

७ **सजीवनी विद्या**—विवाहित स्त्री पुरुषोंके लिए ब्रह्मचर्य शिक्षा। मूल्य ।।।)

८ **विद्यार्थियोंका सच्चा मित्र**—मूल्य ।।।≤)

संचालक—हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, पो० गिरगाव बम्बई

हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर

हिन्दीकी यह सबसे पहली और सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ माला है। अब तक इसमें उपन्यास, नाटक, काव्य, साहित्य, जीवनचरित, इतिहास, चिकित्सा, राजनीति, अध्यात्म आदि विविध विषयोंके एक सौसे अधिक उत्तमोत्तम ग्रन्थ निकल चुके हैं जिनकी सभी विद्वानोंने मुक्त-कण्ठसे प्रशंसा की है। स्थायी ग्राहकोंको सब ग्रन्थ पौनी कीमतमें दिये जाते हैं। एक कार्ड लिखकर बड़ा सूचीपत्र और नियमावली मँगा लीजिए।

संचालक-हिन्दी ग्रन्थ-रत्नाकर, कार्यालय,
हीराबाग, गिरगाँव, बम्बई

प्रकाशकका निवेदन

उपवास चिकित्साका यह चौथा संस्करण प्रकाशित हो रहा है। इसके पहलेका तीसरा संस्करण दिसम्बर सन् १९२२ में प्रकाशित हुआ था। बरनर मैकफेडनकी जिस मूल पुस्तक Fasting, Hydropathy & Exercise (उपवास, जल चिकित्सा और व्यायाम) के आधारसे यह पुस्तक लिखी गई थी, वह अब नहीं मिलती। सन् १९२३ में जब कि हमारी इस पुस्तकका तीसरा संस्करण प्रकाशित हुआ था मैक्फेडन साहबकी एक दूसरी पुस्तक प्रकाशित हुई थी जिसका नाम है Fasting for Health (स्वास्थ्यके लिए उपवास)। यह पूर्वोक्त पुस्तकको परिवर्तित, संशोधित और परिवर्द्धित करके लिखी गई है और एक तरहसे पहली पुस्तकका दूसरा जन्म है। इसमें सिर्फ दस अध्याय हैं—१ उपवास क्या है, २ उपवासका इतिहास, ३ उपवासका शरीरपर प्रभाव, ४ उपवास कब करना और कब नहीं, ५ उपवास कालके चिह्न, दुश्चिह्न और खतरे, ६ उपवास कितने लम्बे किये जायँ? छोटे और बड़े उपवास—अधूरे उपवास, ७ उपवास कैसे करें?, ८ किस तरह तोड़ें?, ९ उपवासके बाद शरीरको बनाना १० उपवास करनेवाले और तत्सम्बन्धी अनुभव। इस सूचीसे पाठक पहली और दूसरी पुस्तकके अन्तरको बहुत कुछ समझ जायँगे। लेखक महाशयने इसे पहली पुस्तक प्रकाशित होनेके बादके अपने और दूसरे उपवास चिकित्सकोंके सब अनुभवों और अन्वेषणोंको दृष्टिके आगे रखकर लिखा है और उन सब बातोंको या तो निकाल दिया है, या संक्षिप्त कर दिया है, जो प्राकृतिक चिकित्साकी उपादेयता और ओषधियोंकी निरर्थकता सिद्ध करनेके लिए लिखी गई थीं और अब युरोप अमेरिकाके पाठकोंके लिए पिष्टपेषण मात्र रह गई हैं। साथ ही व्यायाम, वायु-सेवन, खान-पान आदिके स्वास्थ्यसम्बन्धी साधारण प्रकरणोंको भी अलग कर दिया है।

हमने बहुत कुछ सोच विचार करनेके बाद पूर्व संस्करणके पाठोंको ज्योंका त्यों रहने दिया है, क्योंकि हमारे देशमें अब भी उन सब बातोंके प्रचारकी आवश्यकता है जिन्हें मैकफेडन साहबने अपनी दूसरी पुस्तकमें रखना आवश्यक नहीं समझा है, वहीं वे सब नई बातें जो पहली पुस्तकमें नहीं थीं सो उन्हें इस पुस्तकके अन्तमें परिशिष्ट रूपमें जोड दिया है। पाठकोंसे प्रार्थना है कि वे परिशिष्ट भागको भी पुस्तकका आवश्यक अंश समझकर पढ़ें और उससे पूरा पूरा लाभ उठावें। उसमें ऐसी अनेक बातें हैं जिन्हें जान लेनेसे उपवास करनेवाले बहुतसी कठिनाइयों और खतरोंसे बच सकेंगे।

परिशिष्ट भागको मेरे पुत्र चि० हेमचन्द्रने उपवास-चिकित्सा और 'फास्टिंग फॉर हेल्थ' (सन् १९२१ का संस्करण) को आद्यन्त पढ़कर लिखा है और इस बातका पूरा ध्यान रक्खा है कि उक्त नई पुस्तककी कोई ऐसी बात न रह जाय जिसका जानना उपवास करनेवालेके लिए उपयोगी है।

उपवास चिकित्साके लेखक बाबू रामचन्द्र वर्माने अपने 'वक्तव्य' में डाक्टर शायक बी० मादनका थोड़ासा परिचय दिया है। ये महाशय इस बीचमें अमेरिका हो आये हैं और वहाँसे मैकफेडन सा० के College of Physiculto therapy की डिग्री डी० पी० D P या Doctor of Physicultotherapy प्राप्त कर लाये हैं। अब आप अपने चिकित्सालयमें उपवास, मालिश, व्यायाम और पथ्य भोजनसे रोगोंकी चिकित्सा करते हैं।

प० लालचन्दजी नामक एक सज्जनको जो पुरट जि० जालौनके रहनेवाले हैं— हमने आपकी चिकित्सासे आराम होते देखा है। पण्डितजी अनेक दुस्साध्य और दुःखद रोगोंसे ग्रस्त थे और सब चिकित्साओंसे निराश होकर उपवास कर रहे थे। वे जिस दिन बम्बई आये, उस दिन उनका चवालीसवाँ उपवास था और ऐसी बुरी हालत थी कि कई धर्मशालावालोंने मृत्यु हो जानेके डरसे उन्हें ठहरने तक न दिया था। बड़ी मुश्किलसे हम लोगोंके कहने सुननेसे हीराबाग धर्मशालामें उन्हें स्थान मिला और तब वे डा० मादनसे मिल सके। डा० साहबने उन्हें आश्वासन दिया और चूँकि उपवास काफी लम्बा हो चुका था इस लिए उसे छुड़ाकर अपनी प्राकृतिक चिकित्सा शुरू कर दी। प्रारंभमें छाँछ दिया, जिसकी मात्रा बढ़ते बढ़ते प्रतिदिन छहसेर तक पहुँच गई। दो हफ्ते बाद दो उपवास कराके फिर दूध देना शुरू कर दिया और वह भी धीरे धीरे बढ़ाया गया। प्रति दिन पाँच छह सेर तक

घट भी पीया जाने लगा । इन दिनों एनीमा बराबर दिया जाता रहा । लगभग दो महीने तक वे यहाँ रह और जब घरको लौटे तब खूब हृष्ट पुष्ट और नीरोग थे ।

पूज्यवर पं० रामेश्वरानन्दजी वैद्य भी उपवास चिकित्साके विशेषज्ञ हैं । बम्बईके मांडवी मुहल्लेमें आपका दवाखाना है । आप न कवल अपने रोगियोंको ही उपवास करनेकी सलाह देते हैं, वरन् स्वय भी उपवास करते है । इस समय आपकी अवस्था ८० वर्षसे ऊपर है, फिर भी पाठक आश्चर्य करेंग कि गत दस वरसोंसे आप हर साल तीस चालीस उपवास किया करते हैं और इस तरह अबतक सब मिलाकर ३८९ उपवास कर चुके हैं । हमारी प्रार्थनापर आपने इस विषयमें अपन उपवासोंका थोडासा परिचय लिखकर दिया है, जो पुस्तकके अन्तमें प्रकाशित किया जाता है । ज्वर, टाइफाइड (मथज्वर), मदाग्नि, संग्रहिणी, लीवर और आमवात आदि रोगोंके लगभग पचास रोगियाका आप उपवास चिकित्सासे आराम कर चुके हैं ।

सन् १९२४ म निमोनिया, खाँसी, दमा और प्लुरसी आदि अनेक रोगोंसे ग्रस्त होनेपर मुझे भी आपने २५ उपवास कराये थ और उक्त अत्यन्त कष्टदायक रोगोंस मुक्त कर दिया था । लगभग उसी समय मेर पुत्र चि० हेमचन्दको टाइफाइड (मन्थ-ज्वर) हो गया था और उसे भी २६ उपवास कराये गये थे । इन दोनों प्रयोगोंका परिचय भी पुस्तकके अन्तमें दे दिया गया है ।

डा० मादन और वैद्यराजजीका यह थोडासा परिचय देकर हम पाठकोंको यह सम्मति नहीं दे रहे हैं कि वे उपवास चिकित्साके लिए बम्बई आनेका कष्ट उठावें । क्योंकि उपवास-चिकित्सा एक ऐसी चिकित्सा है कि इससे गरीब अमीर सभी एक सा फायदा उठा सकते हैं और चाहे जहाँ किसी भी अच्छे वैद्य या डाक्टरकी देख रेखमें यह की जा सकती है । सच पूछा जाय तो इसमें प्राण और धनका शोषण करनेवाले वैद्य और डाक्टरोंकी कोई अधीनता ही नहीं है । उनके बिना भी बुद्धिमान् लोग इसे अपने आप कर सकते है । फिर भी जिनमें आत्म-विश्वासकी कमी है और जो यथेष्ट धन खच कर सकते है उन लोगोंको चाहिए कि वे डा० मादन जैसे सुयोग्य चिकित्सकोंकी देख-रेखमें अपनी चिकित्सा करावें ।

१६-६-३२

निवेदक—

नाथूराम प्रेमी
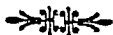
वक्तव्य

(पहली आवृत्तिसे)

प्रत्येक मनुष्यके लिए अपना स्वास्थ्य बनाय रखनेकी इच्छा और प्रयत्न करना केवल परम आवश्यक ही नहीं बल्कि बहुत ही स्वाभाविक भी है। पर इस इच्छाकी पूर्ति और प्रयत्नकी सफलता बहुत ही थोडे लोगोंके भाग्यमें होती है। दिन पर दिन रोगों और रोगियोंकी संख्या इतनी बढती जाती है कि पूर्ण रूपसे स्वस्थ मनुष्य ढूँढ निकालना बहुत ही कठिन हो गया है। यहाँतक कि बहुत पहले ही इस देशमें 'शरीरं व्याधिमन्दिरम्' का सिद्धान्त बनाया जा चुका है। पर वास्तवमें यह बात नहीं है। शरीर स्वय कभी व्याधि-मन्दिर नहीं होता, उसकी प्रवृत्ति सदा नीरोग होने या रहनेकी ओर होती है पर हम आहार विहार आदिके प्राकृतिक नियमोंका उल्लंघन करके स्वय उसे व्याधि-मन्दिर बना लेते हैं। प्राणिमात्रमें सर्वश्रेष्ठ गिने जानेवाले मनुष्यके लिए यह बात बहुत ही लज्जास्पद है।

इससे भी अधिक लज्जास्पद आजकलकी वह प्रचलित दूषित प्रथा है जिसकी सहायतासे व्याधिको शरीरसे बाहर निकाल देनेका प्रयत्न किया जाता है। जिस शरीरमें अपने आपको स्वय नीरोग कर लेनेकी सबसे बडी शक्ति विद्यमान हो, उसे तरह तरहके विषोंके प्रयोगसे नीरोग करनेका प्रयत्न करना कभी लाभदायक नहीं हो सकता। इस सम्बन्धमें सबसे अधिक आश्चर्य और दु खकी बात यह है कि समस्त प्रचलित चिकित्सा प्रणालियोंमें जो प्रणाली सबसे अधिक दूषित और हानि-कारक है, सारे ससारमें वही सबसे अधिक प्रचलित भी है। हमारा तात्पर्य एलो पैथीसे है जिसमें बहुत ही साधारण और सौम्य औषधियोंको बलपूर्वक तीव्र, उग्र

और भयंकर बनाया जाता है। यही कारण है कि उनकी मात्रामें थोडी सी वृद्धि हो जाने पर भी बहुत बडे अनर्थकी सम्भावना होती है। इस पुस्तकमें ओषधियोंके सम्बन्धमें बहुत बडे बडे डाक्टरोंकी जो निन्दात्मक सम्मतियाँ दी गई हैं, वे सब एलोपैथिक ओषधियोंपर ही हैं। ओषधि चिकित्साकी और भी जितनी प्रणालियाँ हैं वे भी थोडी बहुत दूषित और हानिकारक अवश्य हैं। इसका मुख्य कारण यही है कि ओषधिकी सहायतासे होनेवाली अस्थायी आरोग्यताकी अपेक्षा शरीरकी स्वसम्पादित आरोग्यता कहीं अधिक अच्छी होती है।

शरीरको आरोग्यता प्राप्त करनेका सबसे अच्छा अवसर उसी समय मिलता है जब कि उसकी सारी शक्तियोंको सब तरहके भारोंसे छुट्टी मिल जाय और यह छुट्टी लंघन या उपवासकी सहायतासे ही मिल सकती है। जिस भोजनका काम हमारे शरीरके अंग प्रत्यंगको पुष्ट करना है, वह हमारे अंग प्रत्यंगके रोगोंको भी अवश्य ही बढाता जायगा, क्योंकि ' वृद्धि और पुष्टि करना ' ही उसका स्वाभाविक धर्म्म है। भोजन करते रहनेके अतिरिक्त जहाँ ओषधियों आदिकी सहायतासे उसके कार्य्योंमें और भी विघ्न डाला जाता है वहाँका रक्षक ईश्वर ही है। आयुर्वेदमें ' लंघन परमौषधम् ' इसी लिए कहा गया है कि उससे शरीरको अपनी स्वाभाविक और आरोग्य स्थिति तक पहुँचनेमें बहुत अधिक सहायता मिलती है। प्रत्येक रोगसे उपवासकी सहायतासे जितनी जल्दी छुटकारा मिलता है उतनी जल्दी और किसी उपायसे नहीं मिल सकता। और इस पुस्तकमें इसी उपवासके गुण, प्रकार और विधान आदि बतलाये गये हैं।

इस पुस्तकमें जो बातें बतलाई गई हैं वे इसी लिए बहुत अधिक हृदयग्राही हैं कि वे प्राकृतिक, सहज और युक्ति युक्त हैं। हमारा विश्वास है कि जो विचारवान् पक्षपातरहित होकर इसमें बतलाई हुई बातोंपर ध्यान देगा वह बहुत ही सहजमें उनके गुणोंको स्वीकार करके उनका समर्थक और पक्षपाती बन जायगा, औषधोंके जालसे निकलकर प्रकृतिदेवीकी गोदमें स्वतंत्रतापूर्वक रहने लगेगा।

युरोप अमेरिका आदि देशोंमें बहुतसे उपवास-चिकित्सालय खुल गये हैं, जिनमें हजारों असाध्य रोगी भी आरोग्यता प्राप्त कर चुके हैं। उन्हींमेंसे एक चिकित्सालयके अध्यक्ष और संस्थापक बरनर मैकफेडन महाशय भी हैं। मैकफेडन साहबका केवल

चिकित्सालय ही नहीं है, बल्कि उपवास चिकित्साशास्त्र सिखलानेके लिए एक कालेज भी है। उस कालजके पहले भारतीय ग्रेजुएट श्रीयुत डाक्टर शावक पी० मादन हैं जिन्होंने सैण्टाक्रूज बम्बईमें एक 'उपवास-चिकित्सालय' खोल रखा है*। उन्होंने भी सुनते हैं, सैकड़ों पारसियों और मराठों आदिको केवल उपवास कराकर ही बड़े बड़े भयकर रोगोंसे मुक्त किया है, जिनके वर्णन समय समय पर वहाँके समाचार-पत्रोंमें छपते रहे हैं। प्रस्तुत पुस्तक डा० मैकफडनकी Fasting Hydropathy and Exercise नामक अँगरेजी पुस्तक तथा डा० मादनकी 'उपवास' नामक गुजराती पुस्तकसे सहायता लेकर लिखी गई है, एतदर्थ हम दोनों महानु भावोंके परम कृतज्ञ हैं। श्रीयुत नाथूरामजी प्रेमीके भी हम बहुत कृतज्ञ हैं जिन्होंने हमें ऐसी उपयोगी पुस्तक लिखनेका परामर्श दिया और उसे प्रकाशित किया है।

काशी, शिवरात्रि
विक्रम स० १९७२

—रामचन्द्र वर्म्मा

*अब आपका चिकित्सालय बाम्बे यूनीवर्सिटीके सामने आस्विन एण्ड लाइके मकानमें (तीसरे मंजिलपर) है, सैण्टाक्रूजमें नहीं। कालबादेवी रोडपर आपकी एक दूकान और पुस्तकालय (मादन्स हेल्थ डिपो एण्ड लायब्रेरी) भी है, जिसमें प्राकृतिक चिकित्सा विज्ञानका प्राय सभी अँगरेजी और गुजराती साहित्य तथा एनीमा आदि उपकरण मिलते हैं। —प्रकाशक

विषय-सूची

विषय | पृष्ठसंख्या

परिशिष्ट

उपवास-चिकित्सा

हमारे शरीरका संगठन

प्रत्येक मनुष्य, पशु और यहाँ तक कि जीवमात्रका शरीर इस प्रकार बना हुआ है कि यदि उसमें किसी प्रकारके बाहरी या ऊपरी पदार्थके कारण दोष उत्पन्न होने लगे, तो वह शरीर—यदि उसके साथ किसी तरहका बल प्रयोग न किया जाय और उसे स्वाभाविक स्थितिमें रहने दिया जाय तो—उस दोषको आप ही आप दूर कर लेगा। शरीर यथासाध्य किसी अनावश्यक और हानिकारक वस्तुको अपने अंदर नहीं रहने देगा। उसका संगठन ही ऐसा है कि वह सदा उसे बाहर निकालनेका प्रयत्न करता रहेगा। एक तो स्वयं हमारे शरीरमें ही हरदम बहुतसे अनिष्टकारी पदार्थ और तरह तरहके विष उत्पन्न होते रहते हैं; दूसरे हम लोगोंकी मूर्खता और कुपथ्य आदिके कारण उनकी संख्या और भी बढ़ जाती है। यदि शरीर अनिष्टकारी पदार्थोंको बाहर निकालनेका काम थोड़ी देरके लिए भी बंद कर दे, तो जीवन असंभव हो जाय। साँस, पसीने, मल, मूत्र, थूक और छींक

आदिके रूपमें शरीरके भिन्न भिन्न भागोंसे सदा हमारे शरीरसे तरह तरहके विकार निकलते रहते हैं। हमारा शरीर ये काम अपने कर्तव्य स्वरूप करता है। ऐसी दशामें हमारा भी यह कर्तव्य होना चाहिए कि हम यथासाध्य और जान-बूझकर शरीरके प्रति कोई ऐसा अन्याय न करें, उसके अंदर कोई ऐसा दुष्ट पदार्थ न जाने दें, जिसका प्रतिकार या प्रतिबंध उसकी शक्तिके बाहर हो। यदि हम अपने इस कर्तव्यका ध्यान न रखेंगे, शरीरके अंगोंपर उनकी शक्तिसे अधिक बोझ लादेंगे, तो परिणाम यह होगा कि हमारा शरीर हमें जवाब दे देगा, हम रोगी हो जायँगे और अंतमें मर भी जायँगे।

साधारण टाइप-राइटरोंमें एक घंटी लगी रहती है जो छापनेके समय एक लाइन खतम हो जानेपर आपसे आप बोल उठती है। उसका शब्द सुनते ही छापनेवाला सचेत हो जाता है और पेंच घुमाकर नई लाइन प्रारंभ करता है। इसी प्रकार और भी बहुतसे यंत्रोंमें ऐसे पुरजे लगे रहते हैं जो अपनी किसी नई आवश्यकताकी सूचना किसी विशिष्ट संकेतके द्वारा दे देते हैं। हमारे शरीरकी बनावट भी बिलकुल वैसे ही यंत्रोंके समान, बल्कि उनसे भी अधिक पूर्ण और अच्छी है। हमारा स्नायुसमूह आनेवाली किसी बाहरी विपत्तिको देखते ही एक विशेष रूपमें हमें भयसूचक संकेत करता है। यह हमें केवल बाहरी विपत्तियोंकी ही सूचना नहीं देता बल्कि हमारी भीतरी आवश्यकताओंका ज्ञान भी हमें करा देता है। ज्यों ही हमारे भोजन या श्वास आदिमें किसी प्रकारकी बाधा या त्रुटि होती है, अथवा हमारी रगों, पट्ठों आदिमें किसी प्रकारका दोष उत्पन्न होता है, त्यों ही वह एक विशेष प्रकारसे—जिसे हम उसकी भाषा भी कह सकते हैं—हमें उसकी सूचना दे देता है। केवल सूचना ही नहीं, वह उसके प्रतिकारके लिए आवश्यक साधन भी बतला देता है। तात्पर्य यह कि हमारे शरीरमें जितनी असाधारण और अस्वाभाविक घटनायें होती हैं, स्नायु-समूह अपनी ओरसे उन सबकी सूचना दे दिया करता है। बहुत अधिक सरदी या

गरमीका पता हमें तुरन्त ही अपनी त्वचासे लग जाता है। यदि हवामें मिरचोंका धुआँ, किसी प्रकारकी धाँस या धूल आदि सम्मिलित हो, तो हमें तुरत खाँसी आने लगती है। यही खाँसी वह सूचना है जो हमें फेफड़ोंके द्वारा मिलती है। छोटेसे छोटा तिनका या कीड़ा यदि हमारी आँखोंके सामने आ जाता है, तो हमारी पलकें आपसे आप, विना हमारी इच्छाके ही, बन्द हो जाती हैं। जहाँतक सम्भव होता है, हमारा शरीर भीतरी और बाहरी अनिष्टोंसे अपनी रक्षा आप ही कर लेता है। हमारा शरीर एक ऐसा मकान है जो अपनी कोठरियोंमें आप ही आप झाड़ू दे लेता है, अपने चूल्हे या अपनी अग्नियाँ आप ही जला लेता है, आवश्यकता पड़ने पर अपनी खिड़कियाँ और दरवाजे आप ही आप खोल और बंद कर लेता है और दुष्ट आक्रमणकारियोंको पहले तो स्वयं ही मार भगानेकी चेष्टा करता है और जब वह उसमें असमर्थ होता है तब उसकी सूचना अपने किरायेदारको दे देता है। उस सूचनाको समझना और आनेवाली विपत्तिसे शरीरकी रक्षा करना किरायेदारका काम है।

शरीरकी भीतरी क्रिया

शरीर रचना शास्त्रके ज्ञाताओं और बड़े बड़े डाक्टरोंका मत है कि मनुष्यके शरीरमें जन्मसे लेकर मृत्युतक हर दम एक प्रकारका विष बनता और इकट्ठा होता रहता है। साधारणत लोगोंको यह बात सुनकर हँसी आवेगी, पर हँसी आनेका कोई वास्तविक कारण नहीं है। बात यह है कि मनुष्यके सारे शरीरमें छोटे छोटे कोश हैं जिन्हें अँगरेजीमें सेल्स Cells कहते हैं। ये कोश शरीरकी आन्तरिक क्रियासे आप ही आप नष्ट होते रहते हैं और रक्त-संचालनकी सहायतासे उनके स्थानपर नये कोश भी बनते जाते हैं। इस प्रकार हरदम शरीरमें पुराने कोश नष्ट होते और नये कोश बनते रहते हैं। यह क्रिया जीवधारियोंके

अतिरिक्त वनस्पतियोंमें भी होती रहती है। अँगरेजीमें परिवर्तन की इस क्रियाको Metabolism कहते हैं। पुराने और नये कोशोंका जो अंश अवशिष्ट रह जाता है, वही एक प्रकारका विष है। यदि शीघ्र ही उसका नाश न हो तो उससे हमारे शरीरको बहुत हानि पहुँच सकती है। हमारे शरीरके अवयवोंका एक मुख्य कार्य यह भी है कि जहाँ तक शीघ्र हो सके उस दूषित अंशको हमारे शरीरसे बाहर निकाल दें। उस दूषित अंशके बाहर निकालनेका प्रधान मार्ग हमारे शरीरकी त्वचा है जिससे वह अंश पसीनेके रूपमें निकलता है। इसके अतिरिक्त हमारे जिगर, पेट, गुर्दे, तिल्ली और अँतड़ियाँ आदिसे भी सदा बहुतसा दूषित अंश निकलता रहता है जो हमारे खूनके साथ मिलकर उसका रंग काला कर देता है। यह दूषित अंश हमारे फेफड़ोंकी सहायतासे उस आक्सिजनद्वारा जलता या नष्ट होता रहता है, जो साँस लेनेमें हवाके साथ हमारे फेफड़ों तक पहुँचता है। यदि हम किसी प्रकार साँस न लें अथवा न ले सकें तो यह दूषित अंश या विकार हमारे खूनमें इकट्ठा हो जायगा। फल यह होगा कि पेटमें पचा हुआ भोजन शरीरके सब अंगोंमें न पहुँच सकेगा और यह विष तुल्य विकार सारे शरीरमें फैलकर हमें कमजोर करता करता अन्तमें मार डालेगा। पर हमारे फेफड़े उस विकारको भी शरीरमें इकट्ठा नहीं होने देते और उच्छ्वासके द्वारा बड़े परिमाणमें उसे बाहर निकालते रहते हैं। इसी प्रकार मल मूत्र और खखार आदिके रूपमें हमारे शरीरसे बहुतसे विकार बाहर निकलते रहते हैं। यदि इन विकारोंका निकलना बन्द हो जावे और वे शरीरके अंदर ही रह जायें तो तुरन्त ही हमारी मृत्यु होनेमें कोई सन्देह न रह जाय।

वैज्ञानिकोंका यह भी मत है कि जब हम अधिक परिश्रम करते हैं, तब हमारे शरीरके कोश या सेलस Cells अधिक परिणाममें नष्ट होते हैं; पर नये कोश अधिक परिणाममें उसी समय बनते हैं, जब कि हम सब प्रकारके शारीरिक श्रम छोड़कर आराम करते

है। अर्थात् शरीरकी आरोग्यताके लिए काम काज, परिश्रम और व्यायाम आदिकी जितनी आवश्यकता है, शरीरको सब प्रकारके परिश्रमोंसे छुट्टी देकर सुखी बनानेकी भी उतनी ही आवश्यकता है। यदि हम अपने शरीरको आराम न देंगे और उसे हरदम काममें लगाये रहेंगे, तो उसमें नवीन शक्ति, नवीन जीवनका सचार न होगा। फल यह होगा कि हम दिनपर दिन दुर्बल और रोगी होते जायँगे। जो लोग अपने शारीरिक बलके भरोसे नित्य परिश्रम ही करते रहते है और कभी आराम नहीं करते, वे बहुत शीघ्र अपने स्वास्थ्य और यहाँ तक कि प्राणोंसे भी हाथ धो बैठते हैं। शरीरको आराम देनेका सबसे अच्छा प्राकृतिक उपाय निद्रा है। मनुष्यके शरीरके कोश सोनेमें ही सबसे अधिक परिमाणमें बनते है। जाग्रत अवस्थामें परिश्रम करनेके कारण जो पुराने कोश नष्ट होकर विपका रूप धारण करते हैं, उनका शमन भी सोनेमें ही होता है। बहुत अधिक कसरत करनेवालों या दौड़नेवालोंको लीजिए। जो लोग दम साधकर बहुत अधिक कसरत करते या दौड़ते है उनके शरीर और छातीमें एक प्रकारका दर्द उत्पन्न हो जाता है। मेकेंजी नामक एक प्रसिद्ध डाक्टरने इस दर्दका कारण यह बतलाया है कि बहुत अधिक परिश्रम करने या दौड़ने आदिके कारण शरीरका इतना अधिक दूपित अश रक्तमें मिल जाता है कि फेफड़े उसे साँसके द्वारा बाहर निकालनेमें असमर्थ हो जाते है। उस दशामें मनुष्यके सिरमें चक्कर आने लगता है और उसकी आकृति देखनेमे जान पड़ता है कि उसे स्वच्छ हवाकी बहुत आवश्यकता है। अब जरा इस परिश्रम करनेवाले या दौड़नेवालेको थोड़ी देरतक आराम करने दीजिए। उसका हाँफना कुछ कम हो जायगा और उसका दर्द जाता रहेगा। इसका कारण यही है कि उसके दूपित अश बाहर निकालनेवाले अवयवोंको कुछ आराम मिला है और वे अपना कार्य अच्छी तरह करने लगे हैं। शरीरमें एकत्र हुए विपके बाहर निकलते ही उसका दर्द भी कम हो जाता है। इससे यह बात अच्छी तरह सिद्ध हो जाती है कि किसी

प्रकारका अधिक परिश्रम करनेके उपरान्त शरीरके भिन्न भिन्न अंशोंमें जो दोष या विकार उत्पन्न हो जाते हैं, उनके दूर करनेके लिए उन अवयवों या अंगोंको आराम देना चाहिए, कुछ समय तक उनसे कोई नया काम न लेना चाहिए। यह सिद्धान्त संसारके सभी कामों और सभी पदार्थोंमें समान रूपसे प्रयुक्त होता है। मनुष्य, पशु, पक्षी, नदियाँ, वनस्पतियाँ, और वृक्ष आदितक आराम चाहते और करते हैं। जिस चीजसे बहुत अधिक और निरंतर काम लिया जाता है, वह बहुत जल्दी नष्ट भ्रष्ट हो जाती है और जिसे बीच बीचमें अवकाश मिलता रहता है, वह अपनी पूरी आयुतक पहुँचती और अपना कार्य्य उत्तमतापूर्वक करती है।

नियमोंका उल्लंघन

मनुष्य है तो जीव-मात्रमें सबसे अधिक श्रेष्ठ, पर उसके काम और आचरण बहुधा पशुओंके कामों और आचरणोंसे भी गये बीते होते हैं। इस उन्नति और सभ्यताके जमानेमें तो उसके निन्दनीय आचरण और भी बढ़ते जाते हैं। हम लोग औरोंके साथ जो अन्याय करते हैं वह तो करते ही हैं; हमारा सबसे बड़ा अन्याय स्वयं अपने साथ—अपने शरीरके साथ—होता है। हमारा यह अन्याय इतना पुराना और बढ़ा चढ़ा है कि उसका बहुत अधिक अभ्यास हो जानेके कारण हम उसे अन्याय ही नहीं समझते। हम न तो अपने शरीर और बलको देखते हैं और न हमें उनकी रक्षा और वृद्धिका ध्यान रहता है। आप किसी बंदर या बकरीको मांस या अफीम खिलानेका प्रयत्न कीजिए, आपको कभी सफलता न होगी पर अपने आपको समझदार कहनेवाले बहुतसे ऐसे मनुष्य मिलेंगे जो इनसे भी निकृष्ट पदार्थोंको प्राप्त करनेमें अपनी ओरसे कोई कसर न छोड़ेंगे। जो मनुष्य विवेक-युक्त कहलाता है, वही कभी इस बातका विचार करनेकी आवश्यकता नहीं समझता कि वह स्वयं शाकाहारी जीवोंकी श्रेणीका है अथवा मांसा

हारी जीवोंकी श्रेणीका। उसे शराब, कबाब, मांस, मछली, अफीम जो चाहिए सो खिला दीजिए, वह बड़ी प्रसन्नतासे खा लेगा। यही नहीं बल्कि वह स्वयं उन सब पदार्थोंको पानेका प्रयत्न करेगा और सबसे बड़ी विलक्षणता यह है कि जितनी अधिक मात्रामें वह उन सब पदार्थोंको उदरस्थ कर सकेगा, उतनी अधिक मात्रा लेनेमें वह अपनी ओरसे कोई बात उठा न रक्खेगा। लोग कहते हैं कि पशुओंमें एक प्रकारका सहज या स्वाभाविक ज्ञान होता है जिसके कारण वे कोई हानिकारक पदार्थ ग्रहण नहीं करते। बहुत ठीक, पर क्या वह सहज और स्वाभाविक ज्ञान मनुष्योंमें नहीं है? है, और अवश्य है। पर मनुष्य जान बूझकर उस ज्ञानका गला घोंटता है और स्वयं बलपूर्वक उसके विरुद्ध आचरण करता है। छोटे छोटे बच्चोंको मांस देखकर स्वाभाविक घृणा होती है, पर माता पिता और घरके दूसरे लोग उन्हें तरह तरहसे बहका कर मांस खानेके लिए प्रवृत्त करते हैं। यह घृणा वह सहज ज्ञान नहीं तो और क्या है? बड़े बड़े शराबी भी शराब पीनेके समय बेतरह नाक सिकोड़ते और मुँह विचकाते हैं। क्यों? इसी लिए कि वे अपने सहज ज्ञानकी हत्या करते हैं, अपनी प्रकृतिके विरुद्ध आचरण करते हैं। सुरती खाने, भाँग, अफीम, गाँजा आदि पीनेके लिए लोगोंको क्यों महीनों थोड़ी थोड़ी मात्रा बढ़ाकर अभ्यास करना पड़ता है? इसी लिए कि ये सब पदार्थ स्वभावतः उनके खानेके योग्य नहीं होते। इन सबके व्यवहारके लिए मनुष्यको अपने स्वभाव और प्रकृतिमें परिवर्तन करना पड़ता है।

मनुष्यका यह अन्याय और अनौचित्य केवल यहीं तक नहीं रुक जाता, बल्कि आगे चलकर वह और भी विकरालरूप धारण करता है। एक तो वह खाद्य और अखाद्य सभी पदार्थ खाता ही है, दूसरे वह उन्हें आवश्यकता और शक्तिसे कहीं अधिक खा लेता है। आपको भूख तो बिलकुल नहीं है, पर आपके मित्र महाशयका बहुत आग्रह है कि भोजन तैयार है, आप कुछ न कुछ अवश्य खा लीजिए। आप अपनेको लाचार समझकर खाने बैठ जाते हैं। आप घरसे तो

भरपेट भोजन करके चलते हैं; पर रास्तेमें कोई बढ़ियासी चीज बिकती हुई देखकर मोल ले लेते हैं और उसके खानेका मौका ढूँढ़ने लगते हैं। किसी मित्रके यहाँ निमन्त्रणमें जाकर तो आपका यह विश्वास बहुत ही दृढ़ हो जाता है कि—'परान्न दुर्लभ लोके शरीराणि पुनः पुनः।' इन सब अवसरोंपर आप यह नहीं समझते कि हमारा पेट इतनी तरहकी और इतनी अधिक चीजें पचानेमें समर्थ होगा या नहीं। पेट अपनी चिन्ता आप ही कर लेगा, आपसे और उससे मतलब? पर नहीं, थोड़ी ही देर बाद मतलब पैदा हो जाता है। ज्यों ही आपने कुछ अधिक खाया, त्यों ही आपकी तबीयत भारी हो जाती है और आपको चलने फिरनेमें कठिनाई होती है। उस समय आप लेमनेडवालेकी दूकानकी शरण लेते हैं, दोस्तोंसे नामक सुलेमानी माँगते हैं और इसी प्रकारके अन्य उपचारोंकी चिन्तामें लगते हैं। जो लोग इतनी मोटी बातें नहीं समझ सकते, उन्हें यह बात समझाना और भी कठिन है कि ये ऊपरी उपचार उस समय तो मनुष्यकी शारीरिक वेदना कम कर देते हैं, पर स्वयं यह वेदना बीज रूपसे उनके शरीरमें बनी ही रहती है और आगे चलकर अनेक बड़े बड़े रोगरूपी वृक्ष उत्पन्न करती है।

यद्यपि पाश्चात्य सभ्य देशोंमें भी लोग २४ घंटोंके अन्दर पाँच पाँच बार भोजन करते हैं और उनके भोजनकी मात्रा भी कम नहीं होती है, तथापि अन्य देशोंकी अपेक्षा भारतमें अधिक परिमाणमें भोजन करनेवाले बहुतायतसे हैं। दस दस सेर दही और चिवड़ा खानेवाले मैथिलों और बारह बारह सेर लड्डू खानेवाले भट्टों और चौबोंको जाने दीजिए, पंजाबके साधारण जाट भी एक बारमें डेढ़ सेर आटेकी रोटियाँ खाते हैं; भोजपुरिये देहातियोंको बिना डेढ़ सेर सत्तूके सन्तोष नहीं होता, यहाँतक कि साधारण बंगाली भी बिना आध सेर चावलके भातके तृप्त नहीं होते। ये सब आर्य केवल इस लिए होते हैं कि ये लोग बाल्यावस्थासे ही अपने घरके बड़े बूढ़ोंको बहुत अधिक भोजन करते देखते हैं।

केवल देखना ही उनके लिए उतना अधिक हानिकारक नहीं होता, जितना उनकी माताओंका आग्रह हानिकारक होता है। गोदके बच्चेको स्त्रियाँ जबरदस्ती अधिक दूध पिलाती हैं। अधिक सयाने बच्चोंको मार मारकर बाँध बाँधकर अधिक भोजन कराया जाता है। बालकका पेट भरा रहता है, उसकी कुछ खानेकी इच्छा नहीं होती, पर माता उसे बिना कुछ खिलाये क्यों सोने दे! कभी कभी तो बालकको न खानेके कारण मार तक खानी पड़ती है! और जब मातायें एक छोटा मोटा युद्ध करके अपने बालकोंको कुछ खिलाने पिलानेमें विजय प्राप्त कर लेती हैं, तब उनके आनन्दकी सीमा नहीं रहती। वे मनमें समझती हैं कि हमने अपने बालकोंका बड़ा उपकार किया; और यही उपकार जब अपकाररूपमें प्रकट होता है, बालकको अपच या इसी प्रकारका कोई और रोग हो जाता है, तब लोग उनका सहज उपचार करने और उनको स्वाभाविक स्थितिमें छोड़ देनेके बदले उनके साथ एक नया उपकार आरम्भ कर देते हैं। औषधके रूपमें तरह तरहके विष उनके पेटमें उतारे जाते हैं और मानों 'विषस्य विषमौषधम्' के सिद्धान्तपर उन्हें अच्छा करनेका प्रयत्न किया जाता है।

अधिक भोजनसे हानियाँ

अधिक भोजनसे होनेवाली हानियाँ इतनी अधिक हैं कि उनका पूरा पूरा वर्णन करना प्राय असम्भव है। इस सिद्धान्तसे प्राय सभी बड़े बड़े डाक्टर सहमत हैं। अभी हालमें एक बड़े भारी डाक्टरने कहा था कि आजकल साधारणत लोग भोजनके बहाने जितने पदार्थोंका सत्यानाश करते हैं उनके तृतीयांशसे ही उनका काम बड़े आनन्दसे चल सकता है। यही नहीं बल्कि पदार्थोंके परिमाणमें जितनी न्यूनता होगी, तरह तरहके असख्य रोगोंमें भी उतनी ही कमी हो जायगी। जो लोग उक्त मतको बिलकुल लचर समझते हो, उन्हें उचित है कि वे स्वय दो तीन

सप्ताहोंतक अपना भोजन घटाकर उसका शुभ परिणाम देख लें बात यह है कि हम लोग अच्छी तरह जितना भोजन पचा सक हैं उससे कहीं अधिक उदरस्थ कर लेते हैं। जो अश पच जात है, उसको छोड़कर बाकीका बिना पचा और अध पचा अश ज आँतोंके द्वारा नीचे उतरने लगता है, तब उसमेंसे बहुतसे विट और दूषित अंश बाहर निकलते हैं और विषके रूपमें परिवर्ति होकर हमारे रक्तमें मिल जाते हैं। उस दूषित अंशके कारण हमा रक्त बिगड़ जाता है और उससे शरीरमें तरह तरहके रोग उत्प होते हैं। रक्त बिगड़नेके कारण शरीरमें रोगोंकी उत्पत्ति तो बा॰ में होती है; सबसे पहले विकारोंका जमघट आँतोंके नीचे पेड़ आदिमें ही होता है। वहाँ उनमें एक प्रकारका उबाल आरम्भ होता है, जिसके कारण मनुष्यको या तो संग्रहिणी हो जाती है या कब्जियत। अब कब्जियत कितने रोगोंकी खान है, इसके यहाँ विशेष बतलानेकी आवश्यकता नहीं है। पैखाने और पेशाबकी शिकायत उत्पन्न होती है; सिरमें दर्द आरम्भ होता है और अन्तमें बुखारतककी नौबत आ जाती है। यह बुखार और कुछ नहीं, उन्हीं विकृत पदार्थोंको हमारे शरीरसे बाहर निकलनेका प्रयत्न है। बुखार बिगड़कर जो भयंकररूप धारण करता है, उससे प्राय सभी लोग परिचित हैं। इस प्रकार अनावश्यक भोजनका बचा हुआ दूषित अश बाहर निकलनेके लिए हमारे सारे शरीरमें चक्कर लगाया करता है और जिस अवयवमें पहुँचता है उसमें एक न एक विकार उत्पन्न कर देता है। आमाशय, हृदय, फेफड़ा, मस्तिष्क, आदि सभी अवयव इस दूषित अशके शिकार बनते हैं और मनुष्यको गठिया, बवासीर, भगंदर, कोढ़, कण्ठमाला आर तरह तरहके बुखार अथवा इसी प्रकारके अन्य रोग आ घेरते हैं। यदि दूषित अश कम हुए तो पहले इन रोगोंके छमि मात्र ही उत्पन्न होते है, जिनको आगे चलकर बढ़ते कुछ देर नहीं लगती। इन्हीं सब कारणोंसे एक बड़े विद्वानने बहुत जोर देकर कहा है कि—" अकालमें अन्नके अभावके कारण उतने लोग नहीं मरते,

जितने सुकालमें अधिक अन्न खानेके कारण, तरह तरहके रोगोंसे मर जाते हैं !"

अधिक भोजन करनेके कारण होनेवाली जो हानियाँ ऊपर बतलाई गई हैं, वे तो ऐसी हैं जिन्हें बहुत से साधारण बुद्धिके लोग भी जानते हैं। बड़े बड़े डाक्टरोंके मतसे अधिक भोजनके कारण मनुष्यके शरीरपर बहुत बोझ पड़ता है और उस भोजन-के अनावश्यक अंशोंको शरीरसे बाहर निकालनेके लिए बड़ा परिश्रम करना और कष्ट उठाना पड़ता है। अधिक भोजनसे शरीरपर चार प्रकारके बुरे प्रभाव पड़ते हैं—

(१) अधिक भोजनसे रक्त अस्वच्छ और विषाक्त हो जाता है, जिससे बहुतसे रोगोंके उत्पन्न होनेकी सम्भावना हो जाती है।

(२) शरीरमें पहलेसे जो नया या पुराना रोग उपस्थित होता है, अधिक भोजन करनेसे उसका पोषण होता है और वह बढ़ जाता है।

(३) हमारे शरीरके ज्ञान तन्तुओं (Nervous system) पर अधिक भोजन करनेके कारण बहुत जोर पड़ता है और उसकी सारी शक्ति दूषित अंश या विषको बाहर निकालनेमें लग जाती है। इसका परिणाम यह होता है कि मनुष्यके शरीरका बल नहीं बढ़ता और उसका ओज क्षीण होने लगता है।

(४) बिना पचे हुए भोजनका दूषित अंश बचा रहता है, उस-मेंसे विष निकलकर पेट और भेजेमें फैलता है, जिससे मनुष्यकी आरोग्यताका बहुत जल्दी जल्दी नाश होने लगता है।

आवश्यकतासे अधिक भोजनके साथ जितने अनर्थ और अप-कार सम्मिलित हैं, उतने कदाचित् ही और किसी दूसरे काममें सम्मिलित होंगे। यह भ्रमपूर्ण विचार हमारे मनमें बहुत अच्छी तरह बैठ गया है कि हम जो कुछ खाते हैं वह सब हमारी बल वृद्धिमें सहायक होता है उसमेंका कोई अंश वृथा नहीं जाता। यही कारण है कि हम लोग बिना इस बातका विचार किये कि हमें इस समय भोजन करनेकी आवश्यकता है या नहीं, हमारा पेट उसे ग्रहण करने और पचानेके लिए तैयार है या नहीं; दिनमें कम

से कम तीन बार खूब डटकर भोजन कर लेते हैं। इसी भ्रमपूर्ण विचारके कारण लोगोंकी यहाँ तक मिथ्या धारणा हो गई है कि यदि हम एक बारका भोजन भी बीचमें छोड़ दें तो हमारा शरीर ही न चल सकेगा, हमारे सिरमें दर्द होने लगेगा, यहाँ तक कि हम चल फिर भी न सकेंगे। हम यदि दिनमें पाँच बार भोजन करनेकी आदत डालें तो कुछ दिनोंमें ही हर बार भोजनके निश्चित समयपर हमें एक प्रकारकी भूख लग आया करेगी, पर वह कदापि सच्ची भूख नहीं होती, वह बनावटी या कृत्रिम होती है हम लोग उसी बनावटी भूखके इतने गुलाम बन जाते हैं कि हममें उससे पीछा छुड़ानेका साहस ही नहीं रह जाता। आप एक बार भोजन न कीजिए; उससे आपको जो थोड़ा बहुत कष्ट होगा वह तो होगा ही, पर यदि यह बात आपके दोस्तोंको मालूम हो गई, तो उन्हें आपका चेहरा 'बिलकुल उदास सूखा हुआ और पीला' दिखाई पड़ने लगेगा! क्यों? इसी लिए कि वे स्वयं भूखके गुलाम होते हैं। आप अपनी इच्छासे न सही तो कमसे कम उन दोस्तोंकी खातिर ही थोड़ा बहुत भोजन अवश्य कर लेंगे। पर आगे चलकर उसका जो दुष्परिणाम होगा, उसका अनुमान सहजमें नहीं हो सकता।

इस गुलामीसे बचानेका केवल यही उपाय है कि आप अपने मनको दृढ़ करें। सबसे पहले आपको इस बातका दृढ़ विश्वास हो जाना चाहिए कि आप बनावटी भूखकी गुलामीमें पड़े हुए हैं और उसके फन्देसे बच निकलना आपका कर्तव्य है। जब आप यह बात अच्छी तरह समझ लेंगे और भविष्यमें कभी अनावश्यक भोजन न करनेका दृढ संकल्प कर लेंगे, तब आपको बनावटी भूखकी गुलामीसे छूटनेमें अधिक समय न लगेगा। ज्यों ज्यों आप इस बनावटी भूखकी गुलामीसे निकलनेका प्रयत्न करने लगेंगे त्यों त्यों आपको अधिक आनन्द और सुख होने लगेगा और आप अपने मित्रोंको भी अपना अनुगामी बनाने और कम भोजन करनेके लाभ समझानेका प्रयत्न करने लगेंगे।

आपने कुछ ऐसे लोग भी देखे होंगे जो प्राय इस बातकी शिकायत किया करते हैं कि हमें तरह तरहके बढ़िया भोजनमें भी कोई स्वाद या आनन्द नहीं आता, अथवा आजकल भोजनमें हमारी रुचि नहीं होती। ऐसे लोगोंकी बातोंका वास्तविक तात्पर्य यही होता है कि भोजनका वास्तविक आनन्द लेनेमें वे नितान्त असमर्थ हो गये हैं। जिस मनुष्यका स्वास्थ्य सब प्रकारसे अच्छा होता है वह जो कुछ खाता है सब रुचिसे खाता है। उसे अन्तिम कौर भी उतना ही स्वादिष्ट लगता है जितना कि पहला कौर। सब तरहसे नीरोग आदमीकी यही अच्छी पहचान है। तरह तरहकी मसालेदार चटनियाँ और आचारोंकी आवश्यकता उन्हीं लोगोंको पड़ती है जिनकी पाचनशक्ति किसी प्रकार नष्ट हो जाती है। अच्छी पाचनशक्तिवाले मनुष्यको वास्तविक भूखके समय बहुत ही साधारण भोजनका भी एक एक कौर अमृतके समान स्वादिष्ट और मीठा जान पड़ता है। और नहीं तो स्वादिष्टसे स्वादिष्ट पदार्थ भी एक प्रकारका बोझा जान पड़ता है और लोग उसे इस प्रकार खाते है, मानों वे बड़ी लाचारी या सकटमें पड़े हों। ऐसी अवस्थामें जबरदस्ती ठूँसकर भोजन करना ही अच्छा है या उसे छोड़ देना, यह बात विचारवान् पाठक स्वय समझ सकते है।

रोगमे भोजन

मनुष्यके शरीरमें जितने रोग हैं, उनमें बहुत अधिक सख्या ऐसे रोगोंकी है जिनका मूल कारण भोजनसम्बन्धी दोष ही होता है। पर विलक्षणता तो यह है कि उन रोगोंमें भी रोगीको पूर्ववत् भोजन देकर उसके रोगकी वृद्धि की जाती है—व्याधिका मूल कारण और बढ़ाया जाता है। रोगकी सहायता इसी सीमातक परिमित नहीं रहती बल्कि आगे चलकर और नये साधनोंसे भी होती है। रोगीको ओषधियोंके नामसे तरह

जिस समय मनुष्यके शरीरको वास्तवमें किसी प्रकारके भोजनकी आवश्यकता हो अथवा उसे कुछ विशेष तत्त्व दरकार हों उस समय उसे भोजन आदि अवश्य मिलना चाहिए। मनुष्यके शरीरको जिन तत्त्वोंकी आवश्यकता होती है यदि उसे वे तत्त्व न मिलकर दूसरे तत्त्व मिलें तो भी वह अवश्य मर जायगा; क्यों कि उसकी आवश्यकतायें दूसरे तत्त्वोंसे पूरी नहीं हो सकेंगी; आवश्यक तत्त्वोंसे भिन्न चाहे जितने पदार्थ मनुष्यको मिलें पर उसका काम उनसे न चलेगा और वह अवश्य मर जायगा। मनुष्यका भूखों मरना उसी समय कहा जा सकता है जब कि उसे वास्तविक भूख लगे और उसे भोजन न मिले। भूखों मरनेवालोंकी दूसरी सबसे अच्छी पहचान यह है कि, मनुष्योंका पिंजर मात्र बच जाता है। यदि कोई रोगी बिना ठठरीकी अवस्थातक पहुँचे ही बीचमें मर जाय तो उसकी मृत्युका कारण भोजनका अभाव नहीं, बल्कि रोगका बढ़ना आदि होगा।

रोग और चिकित्सा

यह तो हुई भोजनकी बात, अब चिकित्साको लीजिए। आजकलकी चिकित्साप्रणाली वास्तवमें कैसी है, इसका अनुमान केवल दिनपर दिन बढ़ते हुए रोगों और रोगियोंकी बढ़ती हुई संख्यासे ही किया जा सकता है और इस संख्यावृद्धिका मुख्य कारण ओषधियोंकी भरमार है। वैद्यराज अपने रोगीको दिनभरमें तीन तरहकी गोलियाँ खिला देते हैं, दो दो तीन तीन अवलेह चटा देते हैं, एकाध चूर्ण दाल-तरकारियोंमें मिलाकर खानेके लिए देते हैं और एक चूर्ण इस लिए दे देते हैं कि रोगी उसे दिनमें दस बीस दफे फाँक लिया करे। हकीम साहबके काढ़े पकानेके लिए तो घरमें एक जुदा चूल्हा ही आवश्यक होता है। गोलियाँ और तरह तरहकी चटनियाँ इससे अलग होंगी। डाक्टर

लोग तो दो दो घटे पर कडुए मिक्श्चरोंके मारे रोगीको और भी परेशान कर देते हैं। ये सब ओषधियाँ रोगीके शरीरमें जाकर कुछ समयके लिए रोगको शान्त तो कर देती है, पर उसका समूल नाश करनेमें नितान्त असमर्थ होती हैं। आज जो रोग आपको हुआ है वह दस पाँच दिनोंमें ओषधियों या अन्य कारणों-से दब तो अवश्य जायगा, पर साल छह महीनेमें एक नये रोगके साथ वह फिर उमड आवेगा। अब आपको एकके बदल दो रोगोंकी चिकित्सा करनी पड़ेगी। यदि कोठरीमें कूडा-करकट जमा हो जानेके कारण बहुतसे मच्छड और कीडे मकोडे पैदा हो जाय, तो हमें केवल उन मच्छडों और कीडोंको भगाकर ही सन्तुष्ट न होना जाना चाहिए, बल्कि उस कूडे-करकटसे कोठरीको साफ करना चाहिए। रोगोंकी दशा भी बहुत कुछ इसी प्रकारकी है। शरीरमें पहले तो बहुतसा दूपित पदार्थ एकत्र हो जाता है और फिर उससे तरह तरहके ऐसे तत्त्व उत्पन्न होते हैं जो अनेक प्रकारके रोगोंका रूप धारण कर लेते है। ओपधिया बडी कठिनाईसे इन तत्त्वोंका नाश करनेमें तो समर्थ हो जाती हैं, पर शरीरमें एकत्र हुए दूपित अशकी प्रकारान्तरसे वृद्धि ही करती हैं। सभी ओपधियोंमें लाभदायक अश बहुत कम और हानिकारक अश बहुत अधिक होता है। लाभकारक अश तो ज्यों त्यों रोगसे युद्ध करके उसका शमन करता है, पर हानिकारक अश शरीरमें रहकर और नये नये रोगोंकी वृद्धिमें सहायता देता है। यह बात नहीं है कि आज कलके अच्छे अच्छे चिकित्सक इस बातको न जानते हों। अब धीरे धीरे लोग रोगके वास्तविक कारण और हजारों तरहकी ओपधियोंकी निरर्थकता समझने लगे हैं।

अब सबसे पहला प्रश्न यह है कि वास्तवमें रोग क्या है? यदि आजकलके चिकित्सकोंसे यह प्रश्न किया जाय तो वे स्पष्टत यह बात स्वीकार कर लेंगे कि रोगोंके वास्तविक कारण आदिके विपयमें हम लोग नितान्त अनभिज्ञ हैं। उनका उत्तर पाकर हमें

यह मानना पड़ेगा कि रोगोंकी वास्तविकता अभीतक घोर अन्धकारमें है और फलत: उनके दूर करनेका कोई अच्छा साधन मिलना भी असम्भव है। यदि पाठकोंको हमारे इस कथनपर विश्वास न हो, तो वे किसी बहुत अच्छे डाक्टरसे उक्त प्रश्न कर सकते हैं। यदि आप कई अच्छे अच्छे डाक्टरोंसे यह प्रश्न करें तो आपपर हमारे कथनकी सत्यता और भी भली भाँति विदित हो जायगी। कोई डाक्टर अच्छी तरहसे इस विषयमें आपका समाधान नहीं कर सकता कि रोग क्यों और किस प्रकार उत्पन्न होते हैं, क्यों कुछ लोग सदा रोगी और कुछ नीरोग बने रहते हैं, क्यों एक रोगके बाद तुरत ही उससे बिलकुल ही भिन्न प्रकारका एक दूसरा रोग उत्पन्न हो जाता है, ओषधियाँ शरीरमें किस प्रकार और कैसा काम करती हैं और पौष्टिक ओषधियोंका हमारे शरीर सगठनपर क्या प्रभाव पड़ता है। इसमें जरा भी सन्देह नहीं है कि अच्छे अच्छे डाक्टर इन विषयोंमें स्वय ही कुछ नहीं जानते, वे आपके प्रश्नोंका उत्तर क्या देंगे ?

आजकल डाक्टरोंके निदानकी बड़ी तारीफ सुनी जाती है। पर क्या कोई डाक्टर किसी रोगको पहचानकर उसका समूल नाश भी कर सकता है ? केवल निदानसे ही काम नहीं चल सकता, चिकित्सकका मुख्य उद्देश्य यह होना चाहिए कि रोग रुके और उसका समूल नाश हो जाय; पर जब उसे रोगका मूल कारण ही न मालूम होगा तब वह उसे दूर किस प्रकार कर सकेगा ? न्यूयार्कके एक बहुत बड़े डाक्टरी कालेजके अध्यापक डा० आस्टिन फिल्ट एम० डी०, एल एल० डी० ने अपने एक ग्रन्थमें यह बात स्पष्ट रूपसे स्वीकार कर ली है कि रोग और आरोग्यताकी व्याख्या करना बहुत ही कठिन है। एक दूसरे दिग्गज डाक्टरका मत है कि चाहे लोग यह बात सुनकर भले ही हँस दें, पर मैं इतना अवश्य कहूँगा कि रोग और चिकित्सा आदिके सम्बन्धमें हम लोगोंका कोई निश्चित सिद्धान्त ही नहीं है और कमसे कम मेरा यह विश्वास

है कि हम लोगोंको इस बातका कुछ भी ज्ञान नहीं है कि शरीर-पर ओषधियोंका क्या और कैसा प्रभाव पड़ता है।

इसी प्रकार और भी अनेक बड़े बड़े डाक्टरोंके कथनोंसे यह बात प्रमाणित की जा सकती है कि आजकल्का चिकित्सक वर्ग रोगोंके वास्तविक स्वरूप और कारणों आदिसे एकदम अनभिज्ञ है। नये डाक्टर जो अभी हालमें कालेजसे निकले हों और जिन्हें किसी प्रकारका अनुभव न हो, भले ही इस बातका गर्व करें कि हम रोगोंके विषयमें सब बातें जानते और उन्हें तुरत दूर कर सकते हैं, पर कोई अनुभवी चिकित्सक ऐसी बात कभी न कहेगा। एक बड़े भारी प्रोफेसरका मत है कि ज्यों ज्यों डाक्टरका अनुभव बढ़ता जायगा, त्यों त्यों वह ओषधियोंकी निरर्थकता और प्रकृतिकी प्रधानता समझता जायगा। डाक्टर लोग जितने ही अधिक रोगों और रोगियोंको देखते है, ओषधियोंके गुणों परसे उनका विश्वास उतना ही हटता जाता है।

आजकलका चिकित्सा विज्ञान जब रोगकी वास्तविकता ही नहीं जानता, तब वह उसका इलाज क्या करेगा? जिन रोगोंके विषयमें हम स्वय कुछ नहीं जानते उन्हें हम दूर कैसे कर सकेंगे? ऐसी अवस्थामें यह मानना पड़ेगा कि आजकलकी चिकित्साप्रणाली बिलकुल अटकल पच्चू है और डाक्टर लोग अपने रोगियोंपर ओषधियोंकी केवल परीक्षा ही करते हैं। रोगों आदिके सम्बन्धमें आजकल जितने नये आविष्कार होते ह वे शुभ और उन्नतिके लक्षण माने जाते हैं, पर वे ही आविष्कार डाक्टरोंको और भी अधिक भ्रममें डाल्ते हैं—उन्हें ठीक मार्गसे और भी दूर ले जाते है।

समस्त ससारके सब प्रकारके चिकित्सक दो भागोंमें बाँटे जा सकते है। एक भागमें तो होमियो और एलोपैथी आदि प्रणालियों पर चिकित्सा करनेवाले डाक्टर, मिस्मेरिज्म या बिजलीकी सहा यतासे चिकित्सा करनेवाले चिकित्सक, यूनानी और मिस्रानी हकीम, वैद्य तथा सब प्रकारके दूसरे चिकित्सक आ जाते ह और

दूसरे भागमें हम उन चिकित्सकोंको रखते हैं जिनके सिद्धान्त उक्त सब प्रकारके चिकित्सकोंसे एक दम भिन्न हैं और जो केवल प्राकृतिक उपायोंसे ही रोगोंकी चिकित्सा करते हैं। रोगोंकी उत्पत्ति और चिकित्सा आदिके सम्बन्धमें इन दोनों श्रेणियोंके चिकित्सकोंके सिद्धान्त एक दूसरेसे बहुत ही भिन्न हैं। पहले वर्गके चिकित्सकोंका तो विश्वास है कि रोग हमारे बड़े भारी शत्रु हैं जो हमारे शरीरके भिन्न भिन्न अगोंपर अधिकार करके हमारी शक्तियोंसे युद्ध करते हैं; इन अदृश्य शत्रुओंके लिए हमारी ओषधियाँ, गोलियां और गोलोंका काम करती हैं। पर दूसरे वर्गका कहना है कि सब प्रकारके रोग और उनके लक्षण आदि हमारा स्वास्थ्य सुधारनेमें मित्रभावसे सहायक होते हैं। जब स्वास्थ्य बिगड़ जाता है तब हमारे अवयव उसकी सूचना देने और उसे सुधारनेके लिए उन लक्षणोंको उत्पन्न करते है, जिन्हें हम रोग कहते हैं।

हमारे शरीरका संगठन ही ऐसा है कि वह यथासाध्य उत्पन्न होनेवाले दोषोंको स्वय ही दूर करता रहता है। जब हमारे शरीरकी स्वाभाविक स्थितिमें किसी प्रकारकी अव्यवस्था होती है, तब उसकी सूचना हमें रोगके रूपमें मिलती है। अच्छे चिकित्सकका यही कर्तव्य है कि वह शरीरको उसकी स्वाभाविक स्थितिमें ले जावे। शरीरके स्वाभाविक स्थितिमें आते ही रोग आपसे आप नष्ट हो जायगा और रोगी चंगा हो जायगा। दोनों वर्गोंकी चिकित्साप्रणालियोंमें अंतर यह है कि एक वर्ग तो रोगोंके नाशके लिए परिश्रम करता है और दूसरा वर्ग रोगीको अच्छा करनेके लिए। एक ही रोगके दूर करनेके लिए कुछ विशिष्ट ओषधियाँ दी जाती हैं; इस बातका ध्यान नहीं रखा जाता कि रोगीपर उनका क्या प्रभाव पड़ेगा। पर प्राकृतिक चिकित्साका सिद्धान्त यह है कि रोगको छोड़कर उसके कारणका नाश किया जाय, जिसमें रोगी अच्छी तरह स्वस्थ हो जाय। ओषधियोंसे रोगोंको दबाने, उनका

मुकाबला करने और उन्हें मार भगानेका प्रयत्न किया जाता है। पर प्राकृतिक चिकित्साका सिद्धान्त है कि रोग हमारा स्वास्थ्य सुधारनेके कारण या प्रयत्न होते हैं। उन्हें दबाना या नष्ट करना न चाहिए बल्कि उनके मार्गमें सुविधा उत्पन्न करके स्वस्थ और नीरोग हो जाना चाहिए। यह उद्देश्य बिना किसी प्रकारकी ओषधियोंके ही बहुत अच्छी तरह सिद्ध किया जा सकता है।

एक बड़े डाक्टरका मत है कि यह समझना बड़ी भारी भूल है कि हमारा स्वास्थ्य सुधारनेवाले साधन हमारे शरीरके बाहर किसी डिबिया या बोतलमें बन्द हैं; वह साधन, वह शक्ति तो स्वय हमारे शरीरके अन्दर है। सब लोग नित्य देखते हैं कि जख्म आपसे आप भरते है, पर तो भी वे प्रकृतिके इस गुणको नहीं समझते *। मनुष्यको चाहे किसी प्रकारका रोग हो, उसे किसी प्रकारकी औषधिकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि उससे रोग अच्छा नहीं हो सकता। आवश्यकता केवल इसी बातकी है कि प्रकृति हमें जिस स्थितितक पहुँचाना चाहती हो, हम स्वय उस स्थितितक पहुँच जायँ। हमें चगा करनेका काम हमारी जीवन शक्ति स्वय कर लेगी।

गिरने पड़ने अथवा इसी प्रकारके और कारणोंसे जो चोटें आदि लगती हैं, उनको छोड़कर रोगोंके दो ही मुख्य कारण हो सकते हैं। एक तो यह कि कोई विषाक्त या गन्दा पदार्थ बाहरसे किसी प्रकार हमारे शरीरमें पहुँच जाय या दूसरे यह कि वह स्वय हमारे शरीरमें पड़े हुए दूषित या निरर्थक पदार्थोंके कारण उत्पन्न हो। दोनों दशाओंमें उनके कारण हमारे शरीरके कामोंमें रुकावट पड़ती है।

* पहले बड़े बड़े जख्मोंको चंगा करनेमें तरह तरहकी औषधियोंसे सहायता ली जाती थी, पर जब ओषधियाँ निरर्थक ही नहीं बल्कि हानिकारक सिद्ध हुईं, तब डाक्टरोंको लाचार होकर Dry dressing की शरण लेना पड़ी। आजकल अच्छे डाक्टर जख्मोंको केवल धोकर बाँध देते हैं और इस क्रियासे जख्म बहुत जल्दी भर जाते हैं।

रोग क्या है ? केवल उन रुकावटोंको दूर करने और उनके कारण होनेवाली हानिको पूरा करनेके साधन या प्रयत्न है। रो केवल शरीरके दोष दूर करने और उसे शुद्ध बनानेकी एक क्रि है। हमारी शारीरिक शक्ति स्वय उन रुकावटोंको दूर करने औ अपने कामोंमें सुविधा उत्पन्न करनेका प्रयत्न करती है। क्या प्रयत्नको जो सब प्रकारसे हमारे लिए हितकारी है, जो हमारे जीवनको बनाये रखनेके लिए होता है, जो हमें शरीरके भीतरी वायुओंसे बचाता है, तरह तरहके जहरीले तेजाबों, शराब मिली हुई औषधियों, जुलाबों और बफारों आदिसे रोकने या दबा आदिकी आवश्यकता है ?

जो बात मनुष्यजातिकी समझमें सैकड़ों पीढ़ियोंसे दृढतापूर्वक जमी हुई है, वह सहजमें या तुरन्त ही दूर नहीं की जा सकती। ऐसे अवसरोंपर लोगोंमें बहुत अधिक पक्षपात पाया जाता है। जिस प्रकार संगीत, काव्य या किसी और ललित-कलाका पूरा पूरा आनन्द सब लोग नहीं ले सकते, उसी प्रकार किसी विषय पर पक्षपात छोड़कर विचार करने और सत्यका पक्ष ग्रहण कर नेके लिए भी सब लोग तैयार नहीं हो सकते। बहुधा बातोंके सत्यताका विश्वास क्रमश ही होता है, एकदमसे नहीं हो सकता। साथ ही इस प्रकारके गूढ विषय केवल समझानेसे ही मनमें नहीं बैठ सकते, मनुष्यको उनके अनुकूल आचरण करते करते जब उसका अच्छी तरह अभ्यास पड़ जाता है, तभी वह उसकी उप योगिता समझ सकता है, अन्यथा नहीं। इस लिए विचारवान् पाठकोंको इस विषयपर पहले तो अच्छी तरह मान कर चाहिए और तदुपरान्त परीक्षा और अनुभ यदि पाठक पक्षपात छोड़कर इस स्थलपर ध विचार करेंगे, तो हमें आशा है कि उनकी उप उनकी समझमें आ जायगी।

चिकित्साके दोष

यह बात पहले ही बतलाई जा चुकी है कि अनेक कारणोंसे हमारे शरीरमें जो दोष उत्पन्न होते हैं, उन दोषोंको दूर करनेके लिए हमारी शारीरिक शक्तियाँ स्वयं प्रयत्न करने लगती हैं और उसी प्रयत्नके चिह्नोंको हम ' रोग ' कहते हैं। दोषोंको दूर करनेका प्रयत्न शरीरके भीतर आपसे आप होता रहता है। हमें ऊपर उसके लक्षण मात्र दिखाई देते हैं। एक विद्वान्का मत है कि रोग ही हमारा स्वास्थ्य बनाये रहता और हमारे प्राणोंकी रक्षा करता है। जो विष हमारे शरीरमें रहकर हमारा बहुत अधिक अनिष्ट कर सकते हैं, उन्हीं विषोंको बाहर निकालनेकी क्रियाका नाम रोग है। चार्ल्स नामक एक बड़े प्रसिद्ध डाक्टरने हैजेके सम्बन्धमें एक बड़ी पुस्तक लिखी है। उस पुस्तकमें उसने यह बात सप्रमाण सिद्ध की है कि रोगोंको सक्रामक समझकर उनकी सक्रामकता दूर करनेके लिए आजकल ओषधियों आदिके द्वारा जितने प्रयत्न किये जाते हैं वे ही प्रयत्न रोगोंको फैलाने और बहुत अधिक मनुष्योंके प्राण लेनेके कारण होते हैं। जिन दिनों सक्रामकता दूर करनेके लिए इतनी अधिक ओषधियोंका प्रचार नहीं हुआ था, उन दिनों स्वयं रोग ही बहुतसे मनुष्योंके प्राण बचा लेता था।

पुराने ढंगकी जितनी चिकित्सा प्रणालियाँ हैं, उनमेंसे बहुधा ऐसी ही हैं जिनमें रोगके ऊपरी चिह्नोंको ही रोग समझकर उन्हें नष्ट करनेके प्रयत्न होते हैं। इस प्रकार मानों उस क्रियामें बाधा डाली जाती है जो हमारे शरीरको शुद्ध करनेके लिए होती है। जब हम ओषधियों आदिसे उस क्रियाको रोकने या दबाने आदिका प्रयत्न करते हैं, तब उस क्रियामें बड़ी बाधा पड़ती है जो हमारे शरीरके भीतर हमें नीरोग करनेके लिए आप ही आप प्राकृतिक कारणोंसे होती है। चिकित्सा करके हम उससे जितना लाभ समझते हैं वास्तवमें हमारी उतनी ही हानि होती है। हमें दो एक

दिन बुखार आवे और किसी ओषधिकी एक या दो मात्रासे ही हमारा बुखार रुक जाय, तो हम यही समझते हैं कि उस ओषधिने हमारा बड़ा उपकार हुआ। पर वास्तवमें उससे होता हमारा अपकार ही है। हमारे शरीरका जो विष बाहर निकलना चाहता था वह उस ओषधिके कारण रुक गया। आगे चलकर शरीरमें वह जो अनर्थ न करे सो थोड़ा है। यदि वह ओषधि तुरत ही हमारा बुखार रोक न दे तो भी वह हमारा अपकार ही करेगी उससे हमारा शरीर बहुधा बिगड़ेगा ही, और हमें अच्छे होनेमें दो चार दिनके बदले महीनों लग जायँगे।

रोगके जिन ऊपरी चिह्नोंको हम रोग समझते हैं वास्तविक रोग, उन चिह्नोंका कारण मात्र होता है। यह बात स्वत सिद्ध है कि हमारी सभी शारीरिक क्रियायें हमारे शरीरके दोषोंको दूर करती हैं। ऐसी दशामें हमें उचित तो यह है कि हम यथासाध्य अपने शरीरको उस स्थितिमें ले जायँ जिसमें हमारी शारीरिक क्रियाओंको दोष दूर करनेमें पूरा पूरा सुभीता हो। वास्तवमें रोगकी उत्पत्ति उन्हीं विषोंसे होता है जो हमारे शरीरमें एकत्र हो जाते हैं। इन विषोंके एकत्र हो जानेकी सूचना हमें समय समयपर सिरदर्द, कब्जियत अथवा इसी प्रकारकी और शिकायतोंसे होती है। बहुधा लोग इस लिए नहीं मरते कि उन्हें रोग हो जाते हैं, बल्कि वे इस लिए मरते हैं कि उनके शारीरिक सगठनको इतना अवसर या सुभीता ही नहीं दिया जाता कि वह उन विषोंको निकाल बाहर करे। इस विषयमें बहुत बडे बड़े डाक्टर सहमत हैं कि आजकल रोगोंके वास्तविक कारणोंपर किसीका ध्यान जाता ही नहीं, सब लोग उनके ऊपरी चिह्नोंको नष्ट करनेमें लगे रहते हैं। मरण और रोग देखनेमें भले ही आकस्मिक जान पड़ें, पर वे वास्तवमें आकस्मिक नहीं होते। इन दोनोंके मूल कारणोंकी बहुत बड़ी शृंखला होती है और उस शृंखलाकी अंतिम कड़ी रोग या मृत्युके रूपमें प्रकट हो जाती है।

प्रश्न हो सकता है कि किसी रोगके वास्तवमें नष्ट होनेके लक्षण क्या हैं और उनके कारणोंका निर्णय किस प्रकार किया जा सकता है? यदि किसी मनुष्यको गठिया हो और उसे तरह तरहके तेल मले जायँ, तो रोगीके अंग खुल जाते हैं। उस दशामें यह क्यों न माना जाय कि रोगका वास्तविक कारण नष्ट हो गया? यदि रोगीको उसकी स्वाभाविक स्थितिमें छोड़ देने अथवा उसे खुली हवामें रखने, पथ्य कराने और स्वाभाविक चिकित्साके इसी प्रकारके दूसरे उपायोंसे वह नीरोग हो जाय, तो इसी बातका क्या प्रमाण है कि रोगके वास्तविक कारणका ही समूल नाश हो गया? जिस प्रकार आप कहते हैं कि ओषधियोंसे रोगके चिह्न मात्र दब जाते हैं, उसी प्रकार आपकी चिकित्साके विषयमें भी यह क्यों न कहा जाय कि उससे ऊपरी लक्षण मात्र दबे हैं और रोगका मूल कारण शरीरमें बना हुआ है।

थोड़ासा विचार करनेसे इस प्रश्नका उत्तर सहजमें ही निकल आता है। चाहे आप इस बातको स्वीकार न करें, पर इसमें सन्देह नहीं कि ओषधियाँ रोगके लक्षणोंके ही दूर करनेके अभि-प्रायसे दी जाती हैं। पर व्यायाम और पथ्य आदिका उन चिह्नों-पर कोई प्रत्यक्ष परिणाम नहीं होता। वे केवल हमारे शारीरिक संगठनके लिए उपकारक हैं। जब बिना उन लक्षणोंको दूर करनेके प्रयत्नके ही उनका नाश हो जाय, तो यह बात निर्विवाद रूपसे सिद्ध हो जायगी कि उन लक्षणोंका शरीरमें कोई मूल कारण ही नहीं रह गया। पर ओषधियोंके विषयमें यह बात नहीं कही जा सकती। जो रोग वास्तवमें शरीरको शुद्ध करनेकी क्रिया है उसे हम ओषधियोंसे कैसे चंगा कर सकते हैं? पर उसे स्वाभाविक दशामें छोड़कर और व्यायाम तथा पथ्य आदिसे उसके काममें सहायता देकर हम उस क्रियाको पूर्णता तक अवश्य पहुँचा सकते हैं। जुकाम या सरदी क्या है? छातीके ऊपरके भागमें एकत्र हुए विकार आदिको शरीरसे बाहर निकाल देनेकी क्रिया मात्र है। यदि यह विकार अपने स्वाभाविक मार्ग नाकसे न निकलता, तो

उसे किसी अस्वाभाविक मार्गका अवलम्बन करना पड़ता। फोड़े फुन्सियाँ आदि भी कुछ इसी प्रकारकी क्रियायें है, पर उनकी प्रणालियाँ कुछ भिन्न हैं। खाँसी हमारी प्रकृतिका यह प्रयत्न है जो किसी बाहरी अनावश्यक पदार्थको उस स्थानसे बाहर निकालनेके लिए होता है, जहाँ उस पदार्थको रहनेका कोई अधिकार नहीं है। दर्द भी इसी प्रकारकी क्रियाका चिह्न मात्र है, यह स्वयं कोई अलग रोग नहीं है। बुखारमें हमारे शरीरके विकार आदि जलाये जाते हैं, पसीनेवाली क्रियासे इसमें भेद केवल इतना ही है कि यह कुछ अधिक प्रखर रूपमें होती है। तात्पर्य यह कि नैसर्गिक चिकित्सासम्बन्धी विशेष बातोंको जाननेके पहले यह बात बहुत अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि जिसे हम रोग कहते हैं वह हमें नीरोग बनानेका प्रयत्न मात्र है।

स्वर्गीय सम्राट् सप्तम एडवर्डके चिकित्सक सर फ्रेडरिक ट्रेवे सने एक बार एक व्याख्यानमें कहा था कि आजकलके चिकित्सक चिकित्सा करनेमें बड़ी भूल करते हैं। अगर रोगीको ज्वर हो तो उसका ज्वर रोका जाता है, उसे यदि खाँसी हो तो उसकी खाँसी रोकी जाती है। इस प्रकार हम लोग उस रोगको नाश करनेका प्रयत्न करते हैं जो वास्तवमें हमारे लिए ईश्वरकी बहुत बड़ी देन है और जो सब प्रकारसे हमारा उपकार और रक्षण करती है। यदि संसारमें रोग न होते तो मानव-जाति अबसे बहुत पहले नष्ट हो चुकी होती। आपने अपने कथनके समर्थनमें कई ऐसे रोगोंका जिक्र किया था जिसे रोगी और डाक्टर बड़ा भारी शत्रु समझते हैं, पर वास्तवमें जिनसे मानव शरीरका बहुत कल्याण होता है।

रोगोंकी एकता

इन सब बातोंपर विचार करनेसे एक ही परिणाम निकलता है। जब हम यह बात मान लेते हैं कि शरीर अपने भीतरके विकृत और दूषित पदार्थोंको समय समयपर बाहर

निकालनेका प्रयत्न किया करता है, तब हमें यह भी मानना पड़ता है कि सैकड़ों हजारों तरहके रोगोंका मूल कारण केवल एक ही होता है और जिन्हें हम रोग मानते हैं वे इसके भेद या रूपान्तर मात्र हैं। जर्मनीके डाक्टर लुई कूनेने इस विषयपर एक बहुत बड़ी पुस्तक * लिखी है जिसमें यह बात भली भाँति सिद्ध की गई है कि रोगोंका वास्तविक और मूल कारण केवल एक ही है। इसके अतिरिक्त और भी बहुत बड़े बड़े डाक्टरोंने एकमत होकर यह बात स्वीकार की है। यदि उन लोगोंके मत और कथन आदि संग्रह किये जायँ तो एक स्वतंत्र पुस्तक बन सकती है। उन मतोंको उद्धृत न करके हम युक्ति द्वारा ही इस बातको सिद्ध करनेका प्रयत्न करेंगे।

हमारे शरीरका प्रत्येक अवयव एक दूसरेसे सम्बद्ध है। रक्तका संचालन उन सब अंगोंमें समान रूपसे होता है। इस प्रकार रक्त हमारे सारे शरीरको 'एक' बनाये रहता है। चाहे ऊपरसे देखनेमें यह बात न मालूम पड़े, पर वास्तवमें हमारा कोई अंग अकेला रोगी नहीं हो सकता। जब कोई एक अंग रोगी होगा तब उसका प्रभाव शेष सब अंगोंपर भी कुछ न कुछ अवश्य पड़ेगा। किसी एक अंगको रोगी और शेष सब अंगोंको नीरोग समझना बड़ी भारी भूल है। या तो वह रक्तके कारण और या शारीरिक संगठनके कारण शेष अंगोंको कुछ न कुछ दूषित अवश्य कर देगा। सर्वसाधारण केवल डाक्टरोंके जोर देने पर ही यह बात मानते हैं कि एक अंगके रोगी होनेके कारण शेष अंग रोगी नहीं हो जाते।

इसी प्रकार बिना शेष सब अंगोंकी क्रियाओंपर प्रभाव डाले हुए हम किसी एक अंगके काममें दखल नहीं दे सकते। हमारा सारा शारीरिक संगठन भिन्न भिन्न अवयवोंपर और हमारा प्रत्येक अवयव हमारे शारीरिक संगठनपर इस प्रकार अवलंबित

* 'नवीन चिकित्सा विज्ञान' या 'जल-चिकित्सा' नामसे यह पुस्तक हमारे यहाँसे हाल ही प्रकाशित हुई है। —प्रकाशक

है कि उनका पारस्परिक सम्बन्ध किसी प्रकार छुड़ाया ही नहीं जा सकता। इसी लिए बड़े बड़े डाक्टरोंका मत है कि कोई रोग एकांगी नहीं होता। जब मनुष्यके शरीरमें ऊपरी या बाहरी पदार्थोंके कारण कोई दोष उत्पन्न होता है, तब उस दोषको दूर करनेके लिए असाधारण बल लगाना पड़ता है। यदि हमारे शरीरमें वह आवश्यक शक्ति न हो अथवा आवश्यकतासे कम हो, तो वह दोष दूर न हो सकेगा और हमारे शरीरके लिए साधारण स्थितिमें रहना असम्भव हो जायगा। यह दशा जब कुछ अधिक समय तक बनी रहेगी, तब वह दोष कोई विशेष रूप धारण करके हमारे किसी अंगमें घर कर लेगा। चोट चपेट लगने, अंगोंके विकृत हो जाने अथवा बहुत तेज विष खाये जानेकी अवस्थाओंको छोड़कर शेष सब अवस्थाओंमें रोगोंके जो चिह्न दिखाई पड़ते हैं उनका मुख्य कारण यही होता है। इसी लिए एकांगी रोगोंको अच्छे अच्छे डाक्टर कोई स्वतन्त्र रोग नहीं मानते और उनका विश्वास है कि उन रोगोंकी अलग अलग चिकित्सा करनेकी अपेक्षा सारे शरीरकी दशा सुधारना कहीं अधिक उत्तम और लाभदायक है।

एकांगी रोगोंकी धारणा वास्तवमें अज्ञान और अदूरदर्शिता आदिके कारण ही हुई है। हमारा सारा शारीरिक सगठन एक ही सूत्रमें सम्बद्ध है और उसका इस प्रकार सम्बद्ध होना आवश्यक भी है। आजकल रोगोंको एकांगी समझकर जो चिकित्सा की जाती है, वह शरीरके रोगी अंगमेंसे या तो वास्तविक रोगके लक्षणोंको दूसरे अंगोंमें परिवर्त्तित कर देती है और या उन्हें वहीं और भीतरी अंगोंमें दबा देती है। चिकित्सकोंको इस बातका ध्यान ही नहीं होता, कि जिन्हें वे एकांगी रोग समझते हैं, वे वास्तवमें सारे शरीरके किसी दोषके लक्षण मात्र हैं। रोगोंको एकांगी समझकर उनकी चिकित्सा करना केवल निरर्थक ही नहीं बल्कि हानिकारक होता है। सबसे अच्छा और उचित उपाय उनके मूलकी ही चिकित्सा करना है। यहाँ कदाचित् यह बत-

लानेकी आवश्यकता नहीं कि शरीरकी सारी पीड़ाओंकी जड़ रक्तका दोष है और यह दोष उसी चिकित्सासे दूर हो सकता है जिसका प्रभाव हमारे समस्त शारीरिक संगठनपर पड़े, जो हमारे रक्त और शरीरको उसकी साधारण और वास्तविक स्थिति तक ला सके। जब शरीरकी इस प्रकारकी चिकित्सा हो जायगी, तब अवश्य ही हमारा प्रत्येक अंग स्वस्थ और नीरोग हो जायगा। अन्य सिद्धान्तोंकी अपेक्षा यह सिद्धान्त इतना युक्तिसंगत है कि प्रत्येक विचारशील पुरुष इसे तुरन्त ही स्वीकार कर लेगा और आगे चलकर जब वह इसके अनुसार आचरण करके अनुभव करेगा, तब उसपर इस प्रणालीकी उपयुक्तता और भी दृढतासे सिद्ध हो जायगी।

अँगरेजी आदि भाषाओंमें बहुतसा ऐसा साहित्य है जिससे यह सिद्ध किया जा सकता है कि ओषधियाँ निरर्थक ही नहीं बल्कि हानिकारक भी होती हैं, पर स्थानाभावके कारण हम उस विषयको यहाँ नहीं छेड़ते। न जाने ओषधियोंके कारण चंगे होनेकी नष्ट धारणा लोगोंमें कहाँसे और कैसे उत्पन्न हो गई। बहुत सम्भव है कि इसकी उत्पत्ति अज्ञानकालमें ही हुई हो। आजकल जितने अनिष्टकारक विश्वास फैले हुए हैं, इसका नंबर उन सबसे बढ़ा चढ़ा है। ओषधियोंपर इस प्रकारके मिथ्या विश्वासका कारण यह है कि लोगोंको प्रकृति और रोगके वास्तविक स्वरूपका ज्ञान नहीं है। एक बार जब हमारे विचार इस सम्बन्धमें बदल जायँगे, तब पुरानी प्रणालीकी भयङ्करता आपसे आप हमारी आँखोंके सामने नाचने लगेगी। जब हम एक बार रोगका वास्तविक स्वरूप समझ लेंगे, जब हमें यह मालूम हो जायगा कि वह स्वयं हमारे शरीरको नीरोग करनेकी एक क्रिया है, तब हमें ओषधियाँ आदि खाकर उसे दूर करनेकी आवश्यकता ही न रह जायगी। केवल एक इसी सिद्धान्तको अच्छी तरह समझ लेनेके बाद लोग सदाके लिए ओषधि चिकित्साका त्याग और तिरस्कार कर देंगे।

ओषधियोंका प्रभाव

साधारणतः सब लोग यही समझते हैं कि ओषधियोंसे रोग दूर हो जाते हैं। ओषधियाँ इसी उद्देश्यसे दी जाती हैं और इसी उद्देश्यसे खाई जाती हैं। रोगोंके सम्बन्धमें लोग यही समझते हैं कि ओषधियोंकी सहायतासे हम उन्हें दबा, निकाल या नष्ट कर सकते हैं। मनुष्यकी यह मिथ्या धारणा बहुत प्राचीन कालमें हुई थी और वही धारणा अब तक बराबर चली आती है। पर विज्ञान तथा आरोग्यता-शास्त्रके आजकलके नये सिद्धान्तोंने उस धारणासे होनेवाले दोष ढूँढ निकाले हैं। आजकलके तर्क और युक्ति वादके सामने ओषधियोंकी उपयोगिता नहीं ठहर सकती। इस स्थलपर हम यह दिखलानेका प्रयत्न करेंगे कि ओषधियाँ वास्तवमें क्या हैं, हमारे शरीरपर उनका क्या प्रभाव पड़ता है और बड़े बड़े डाक्टरोंकी उनके सम्बन्धमें क्या सम्मतियाँ हैं।

सबसे पहली बात तो यह है कि ओषधियाँ विष हैं। या तो वे स्वयं विष होती हैं और या हमारे शरीरके अन्दर पहुँच जानेके कारण ही विष हो जाती हैं। इस सम्बन्धमें इस बातका अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि भोजनके अतिरिक्त शेष जितने पदार्थ हमारे शरीरके अन्दर प्रवेश करते हैं, वे सब विष हैं। सुप्रसिद्ध डाक्टर ट्रालका मत है कि सब प्रकारकी ओषधियाँ चाहे वे खनिज हों, पशुजन्य हों, अथवा वनस्पतिजन्य हों विषके सिवा और कुछ नहीं हैं। जिस वस्तुसे हमारे शरीरका पोषण नहीं हो सकता, वह हमारे शरीरके लिए कभी लाभदायक नहीं हो सकती। एक विद्वान्‌का मत है कि संसारमें क्रमशः जीव, वनस्पति, खनिज पदार्थ और तत्त्व हैं। इनमेंसे प्रत्येकका धर्म्म है कि वह अपनेसे उच्चतरका पोषण करे। खनिज पदार्थोंसे ही वनस्पतिका पोषण हो सकता है, वनस्पतिसे खनिज पदार्थोंका कोई उपकार

नहीं हो सकता। इसी प्रकार वनस्पति ही जीवका पोषण कर सकती है, जीवोंसे वनस्पतिका पोषण नहीं हो सकता। वनस्पतिसे भिन्न जितने जड़ पदार्थ हैं, वे कभी शरीरमें जाकर उसका कोई उपकार नहीं कर सकते। इसी लिए खनिज अथवा अन्य जड़ पदार्थ हमारे शरीरमें पहुँचते ही उसके लिए विष हो जाते हैं। इस सिद्धान्तको आजकलके विज्ञानने बहुत अच्छी तरह मान लिया है और उसकी सत्यतामें किसी प्रकारका विवाद नहीं रह गया है। ओषधियोंद्वारा चिकित्सा करनेवाले लोग तो रोग दूर करनेकी कामनासे रोगीके शरीरमें और भी अधिक विष प्रविष्ट करा देते हैं, वे रो‍गको क्या दूर करेंगे। इस प्रकार ओषधियोंसे रोगोकी दशा और भी बुरी हो जाती है।

जो पदार्थ हमारे शरीरमें पहुँचकर नियमित रूपसे नहीं पच सकता और जिससे हमारे शरीरका पोषण नहीं हो सकता, वह पदार्थ अवश्य ही हमारे शरीरके लिए विजातीय और फलत: विष है। हमारे शरीरके लिए ओषधिया या तो स्वय विजातीय होती हैं और या रूप-परिवर्त्तनके कारण विजातीय बन जाती हैं और इसी लिए उनसे हमारे शरीरको बहुत हानि पहुँचती है। जो पदार्थ हमारे शरीरके लिए इस प्रकार हानिकारक है, उन्हें जान-बूझकर और वह भी रोग दूर करनेके उद्देश्यसे, शरीरके भीतर पहुँचाना कहाँकी बुद्धिमत्ता है?

पर प्राकृतिक चिकित्सामें यह बात नहीं है। वह स्वय हमारी शारीरिक शक्तियोंमें ऐसा परिवर्तन कर देती है कि वे सब प्रकारके विषोंको अनायास ही नष्ट करके उनका शेष अश बाहर निकाल देती हैं। किसी साधारण दर्दको लीजिए। डाक्टरी चिकित्सामें उसे दूर करनेका सिद्धान्त बहुत ही विलक्षण है। शरीरके किसी अगमें पीड़ा होती है; वह पीड़ा चाहे जिस प्रकार हो दूर होनी चाहिए। उसे दूर करनेके लिए पिचकारियोंके द्वारा पीड़ित अगमें अफीमका सत्व या इसी प्रकारका और कोई विष पहुँचाया जाता है। अग जड़ हो जाता है, पीड़ा छूट जाती है;

डाक्टर समझता है कि रोगी अच्छा हो गया और रोगी समझता है कि रोग जाता रहा। पीड़ा शान्त हो जानी चाहिए, फिर उसके कारणोंका पता लगाने और उन्हें दूर करनेसे मतलब ?

पर क्या आप इसे वास्तवमें चिकित्सा कह सकते हैं ? इसमें रोगके लक्षण मात्रको दवा देने और साथ ही शरीरके अन्दर बहुतसा विष पहुँचा देनेके अतिरिक्त और क्या होता है ? पीड़ा वास्तवमें किसी शारीरिक दोषका चिह्न होनी चाहिए। प्रकृति मूर्ख नहीं है, उसमें बिना किसी कारणके कार्य्य नहीं हो सकता। यदि शरीरके किसी अंगमें पीड़ा उत्पन्न हो, तो उसका कोई न कोई कारण अवश्य होगा, चाहे हमें उस कारणका पता चले और चाहे न चले।

पीड़ा तो किसी दोषका चिह्न मात्र है वह, स्वयं कोई चीज नहीं है। क्या इस चिह्न मात्रको दवा देनेसे उसके कारणका भी नाश हो सकता है ? कभी कभी दर्द दूर करनेके लिए अंगोंमें छाले डाले जाते हैं और कभी फसद खुलवाई जाती है। हमारी प्रकृति तो जोर जोरसे चिल्लाकर हमें दोषोंकी सूचना दे और हम गला घोंटकर उसे चुप करायें ! हमारा ज्ञान तन्तु तो हमें सूचना दे कि हमारे शरीरमें शत्रु आ पहुँचा है और दर्दकी भाषामें वह हमसे सहायता माँगे और चिकित्सक तरह तरहके विषों और अत्याचारोंसे उसका मुँह बन्द करके कहे कि मैंने रोगीको चंगा कर दिया ! यह रोगीके प्राण लेकर उसे नीरोग करना नहीं तो और क्या है ? इस सम्बन्धमें डा० ट्राल ने अपने एक ग्रन्थमें लिखा है—" ओषधियोंसे और नये रोग उत्पन्न होते हैं, इस लिए ओषधि देना मानो एक और रोग उत्पन्न करना है। ओषधियोंसे एक रोग तो अवश्य दब जाता है, पर और अनेक रोग उत्पन्न भी हो जाते हैं। क्या कारणोंसे कारण दूर हो सकता है ? क्या विष निकालनेमें विष सहायक हो सकता है ? क्या विकारोंसे विकार नष्ट हो सकते हैं ? कदापि नहीं।" विषोंसे रोगोंको अच्छा करनेकी आशा रखना भूतोंसे मुरादें माँगना है।

• दस्त, कै, या पसीना आदि लानेवाली दवाओंके विषयमें अवश्य ही यह कहा जा सकता है कि वे बहुतसे विकृत पदार्थ शरीरसे बाहर निकाल देती हैं; पर उनका भी कुछ न कुछ दूषित अंश शरीरमें रह ही जाता है। जुलाब लेनेसे लाभके अतिरिक्त होनेवाली हानियाँ भी कम नहीं हैं। उन हानियोंका अनुभव उन लोगोंको और भी अच्छी तरह हो जाता है जो सालमें एक या दो बार नियमित रूपसे जुलाब लेनेके अभ्यस्त हैं। दस्त, कै या पसीने आदिके मार्गसे जो विकार ओषधियोंकी सहायतासे शरीरके बाहर निकाला जाता है, वही विकार जल-चिकित्साके कई उपायोंसे भी, शरीरको बिना किसी प्रकारकी हानि पहुँचाये ही, निकाला जा सकता है।

ओषधियोंके विषयमें यह कहा जाता है कि वे शरीरके भीतर उसके भिन्न भिन्न अंगों—मस्तक, पेट, आँत, गुर्दे, जिगर, चमड़े आदि—पर अपना प्रभाव डालती है और उनके द्वारा दस्त, पेशाब, पसीने या कै आदिके रूपमें शरीरके विकृत पदार्थोंको बाहर निकालती हैं। पर डाक्टर ट्रालका मत है कि ओषधिका शरीरपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। वास्तवमें हमारी प्रकृति स्वयं, उन्हीं ओषधियोंको जितने सहज मार्गसे शरीरके बाहर निकाल सकती है, निकाल देती है, और लोग उन्हीं ओषधियोंको उन अंगोंपर प्रभाव डालनेवाली बतलाते हैं। जिस ओषधिको हमारी प्रकृति कै द्वारा सहजमें बाहर निकाल सकती है वह ओषधि कै लानेवाली समझी जाती है और जिस ओषधिको हमारी प्रकृति दस्तोंके द्वारा बाहर निकालना उत्तम समझती है, उसीको लोग दस्तावर समझ लेते हैं। वास्तवमें ओषधियोंका शरीरपर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता। *

* स्थानाभावसे इस सम्बन्धमें यहाँ प्रमाण-आदि नहीं दिये जा सकते हैं। जो लोग प्रमाण आदि जानना चाहें वे डा० ट्राल कृत "Water Cure For the Millions" नामक ग्रन्थ देख सकते हैं। —लेखक।

पौष्टिक औषधें

जिस समय लोग अपने आपको रोगी नहीं समझते, उस समय भी वे अपनी दुर्बलता दूर करने और बल बढ़ानेके लिए तरह तरहकी पौष्टिक ओषधियाँ खाते हैं। युरोप अमेरिका आदिमें पौष्टिक औषधोंका मुख्य और सारभाग स्पिरिट या एलकोहल होता है और इस देशमें अफीम आदि। तात्पर्य यह कि सभी स्थानोंमें किसी न किसी प्रकारका मादक विष ही शक्तिवृद्धिके लिए अनक रूपोंमें खाया जाता है। अन्य औषधोंकी अपेक्षा पौष्टिक ओषधियाँ मनुष्यके शरीरको और भी अधिक हानि पहुँचाती हैं। साधारणतः लोगोंकी यह धारणा है कि ऐसे मादक द्रव्योंका शरीरपर बलकारक प्रभाव पड़ता है, पर वास्तवमें होता यह है कि शरीरको बलपूर्वक उन विषोंका विरोध करना पड़ता है। इसमें सन्देह नहीं कि आपको बहुतसे ऐसे दुबले पतले आदमी मिलेंगे जो यह कहते हों कि अमुक पौष्टिक औषधने बहुत गुण दिखाया और मैं उसके सेवनसे बराबर अच्छा हो रहा हूँ। पर सच पूछिए तो उनके शरीरपर उन ओषधियोंका प्रभाव बिलकुल उलटा पड़ता है। पौष्टिक औषधके सेवनके समय और उससे कुछ समय बाद तक तो मनुष्य अपने आपको अवश्य अच्छा समझता और कई कारणोंसे वह कुछ अच्छा भी हो जाता है, पर उसका अन्तिम परिणाम बहुत ही नाशक होता है। परीक्षासे यह बात सिद्ध हो चुकी है कि मादक द्रव्योंसे न तो मस्तिष्क पुष्ट होता है और न रग पट्ठे आदि। जब पौष्टिक पदार्थोंका सेवन आरम्भ किया जाता है, तब कुछ समयके लिए उसमेंके मादक द्रव्य दुर्बल अगोंको फुर्तीला बना देते हैं और चित्तको थोड़ा बहुत प्रफुल्लित कर देते हैं, पर शरीरके अगोंका वास्तविक पोषण उनसे हो ही नहीं सकता। इनके अतिरिक्त मादक द्रव्योंमें एक और गुण होता है जिसका परिणाम कुछ दिनों बाद मालूम होता

है। यह हमारे शरीरके बहुतसे आवश्यक द्रव्योंका बुरी तरह नाश करते हैं और फलत शरीरके लिए बहुत ही घातक होते हैं। इस प्रकार पौष्टिक औषधोंका प्रभाव हमारे शरीरपर दो प्रकारसे पड़ता है। एक बार तो वे कुछ समयके लिए अपने उत्तम गुण दिखलाती हैं और तदुपरान्त सदा शरीरमें घुन या विषकी तरह बनी रहती हैं। एक बड़े डाक्टरने ऐसी औषधोंकी उपमा जलती हुई आगसे दी है। आग जिस समय जलती है उस समय उसका दृश्य तो बहुत भला मालूम होता है, पर उसके जल-बुझनेके बाद राख ही राख बच रहती है!

बहुतसे लोगोंका यह विश्वास है और अनेक डाक्टर और वैद्य आदि भी यही कहा करते हैं कि पौष्टिक औषधें पाचन शक्तिको बढ़ाती हैं; पर यह विश्वास भी बहुत ही भ्रमपूर्ण और मिथ्या है। पाचन शक्तिका जितना अधिक नाश मादक द्रव्योंसे होता है, उतना और दूसरे द्रव्योंसे हो ही नहीं सकता। शराब पीने या अफीम आदि खानेवाले लोगोंकी पाचन शक्ति सदा बहुत मन्द रहती है। बहुधा शराबी रातको शराब पीनेके बाद दूसरे दिन या तो भोजन नहीं करते और या बहुत थोड़ा भोजन करते हैं। अफीमची तो सदा ही बहुत कम खाया करते हैं। भारतमें बहुधा अपढ़ ब्राह्मण निमन्त्रण आदिके समय खूब भाँग पीते हैं। यह ठीक है कि कुछ लोगोंको भाँग पीने पर बहुत भूख लगती है और सेरों अन्न खा जाते हैं, पर यही भाँग पीनेवाले सदा इस बातकी शिकायत करते हुए भी देखे जाते हैं कि भाँग खिला तो बहुत कुछ देती है, पर पचा कुछ भी नहीं सकती। पचावे कहाँसे? मादक द्रव्योंसे तो पाचन क्रियामें बाधा मात्र होती है। एक डाक्टरने तो *एल्कोहलको केवल इसी लिए निन्दा की है कि उससे भूख तो बढ़ जाती है पर खाया हुआ पदार्थ नहीं पचता।*

मादक द्रव्योंका एक यह भी गुण बतलाया जाता है कि उनसे शरीरमें गरमाहट रहती है, पर यह कथन भी बिलकुल निर्मूल है। डाक्टर रिचर्डसनने मद्यपानपर एक पुस्तक लिखी है। उ

एक स्थानपर आपने लिखा है- " किसी पशुको कोई मादक द्रव्य खिलाकर उसके शरीरकी परीक्षा कीजिए तो आपको मालूम हो जायगा कि मादक द्रव्यने उस पशुके सारे शरीरकी उष्णता कम कर दी है। उसके शरीरके ऊपरी भागमें अवश्य थोड़ी बहुत गरमी जान पड़ेगी; पर वास्तवमें इस गरमीका मुख्य कारण यह है कि उस समय सारा शरीर ठंढा होता जाता है। हृदयसे कुछ गरम खून चलता है और शरीरकी ऊपरी तहके पास पहुँचकर उसे अपनी उष्णता त्यागने और शरीरको ठंढा करनेके लिए विवश करता है। फल यह होता है कि शारीरिक शक्तियाँ मन्द पड़ जाती हैं, अंग ढीले हो जाते हैं, जो हृदय आरम्भमें जल्दी जल्दी चलता था वह अकड़ जाता है, जो मस्तिष्क पहले उत्तेजित हो उठा था वह अब बेकाम हो जाता है और मन दुर्बल हो जाता है।"

तात्पर्य यह कि मादक द्रव्योंसे हमारे शरीरका किसी प्रकार पोषण नहीं हो सकता और न वैज्ञानिक दृष्टिसे मनुष्य अपने शरीरके लिए उसका उपयोग कर सकता है। एक डाक्टरका मत है—" मादक द्रव्य हमारे शरीरमें प्रवेश करके बहुत उपद्रव करते हैं और अन्तमें अपना बहुत कुछ दुष्परिणाम बाकी छोड़कर स्वयं ज्योंके त्यों हमारे शरीरसे बाहर निकल जाते हैं। वे द्रव्य कभी पच नहीं सकते और न शरीरमें पहुँचनेपर उनमें किसी प्रकारका परिवर्तन होता है। "+

मादक द्रव्योंसे जिन्हें हम पौष्टिक समझ कर खाते हैं, हमारे शरीरका वास्तवमें बहुत कुछ अपकार होता है। हम उन्हें जितना पौष्टिक समझते हैं, वे वास्तवमें उतने ही घातक होते हैं। मादक द्रव्य हमारे शरीरके भीतर पहुँचकर उसकी शक्तिका नाश आरम्भ करते हैं। यदि थोड़ी मात्रामें कोई मादक द्रव्य हमारे शरीरमें

+ आप लोग इस सम्बन्धमें और अधिक बातें चाहते हों उन्हें डा० ट्रालकी लिखी हुई " The True Temperance Plat form " और " The Alcoholic Controversy " नामक पुस्तकें देखनी चाहिए।

पहुँच जाय तो उसका आक्रमण रोकनेके लिए हमारे शरीरको कम परिश्रम करना पड़ता है—थोड़ी शक्ति लगानी पड़ती है, और यदि उसकी मात्रा अधिक हो तो हमारे शरीरको भी उतना ही अधिक बल लगाना पड़ता है। उस घातक द्रव्यसे अपना पिंड छुड़ानेके लिए हमारे शरीरको जितना अधिक बल लगाना पड़ता है उसीको हम भ्रमसे बल वृद्धि समझ लेते हैं। मादक द्रव्योंमेंसे कोई नई शक्ति निकलकर हमारी शक्तिमें मिल नहीं जाती, उससे तो हमारी पुरानी शक्ति भी क्षीण होने लगती है। क्योंकि उसे शरीरसे बाहर निकालनेमें हमें अपनी बहुतसी शक्तिका वृथा उपयोग करना पड़ता है।

बहुतसे डाक्टर आदि मादक द्रव्योंके इन दोषोंको जानते हुए भी कहते हैं कि बहुत दुर्बल लोगोंके लिए पौष्टिक औषधें लाभदायक होती हैं, उनसे दुर्बलोंका बल बढ़ता है। पर वे लोग यह विचार करनेकी आवश्यकता नहीं समझते कि जो पदार्थ सबल और नीरोग पुरुषोंको इतनी हानियाँ पहुँचाते हैं, वे ही दुर्बलोंका क्या उपकार कर सकेंगे। मादक द्रव्य तो विष है, उनका प्रभाव और कार्य सदा घातक ही होगा। सबलों और नीरोगोंकी अपेक्षा दुर्बलों और रोगियोंपर तो उनका प्रभाव और भी बुरा होगा।

औषधोंपर कुछ सम्मतियाँ

ऊपर जो लिखा गया है उसे पढकर प्रत्येक समझदार आदमी अच्छी तरह समझ लेगा कि औषधोंसे मनुष्यके शरीरमें केवल नये रोग ही पैदा होते हैं। उक्त बातें केवल मन-गढ़न्त ही नहीं हैं बल्कि बड़े बड़े डाक्टरोंके अनुभवका सार हैं। इस स्थान पर औषधोंके सम्बन्धमें कुछ बड़े बड़े डाक्टरोंकी सम्मतियाँ सक्षेपमें दे देना अनुचित न होगा। नीचे जिन डाक्टरोंकी सम्मतियाँ दी गई हैं वे डाक्टर बड़े बड़े डाक्टरी कालेजोंके अध्यापक हैं

और बहुत दिनोंसे औषधोंद्वारा ही चिकित्सा करते हैं। अत औषधोंके दोष सिद्ध करनेके लिए उनके कथनसे बढ़कर और को प्रमाण नहीं हो सकता।

डा० स्टेफेन्स कहते है कि—नया डाक्टर समझता है कि मेरे पास प्रत्येक रोगके लिए बीस औषधें हैं, पर तीस वर्ष तक चिकित्सा करनेके बाद उसकी समझमें आता है कि प्रत्येक औष धसे बीस रोग उत्पन्न होते हैं। इस उन्नत कालमें भी रोगियोंकी यातना पहलेकी तरह ही ज्योंकी त्यों है। इसका कारण यही है कि डाक्टर लोग प्रकृतिका मनन न करके अपने पूर्वजोंके लेखोंक ही अध्ययन करते हैं। प्रो० पेनका मत है कि शरीरमें औषधें भ वही काम करती हैं जो काम स्वय रोगोंके कारण करते हैं। अधि औषधें भी रोग ही उत्पन्न करती हैं। एक स्थलपर आपने या भी कहा कि एक नया रोग पैदा करके हम पहलेवाले रोगक अच्छा करते हैं।

प्रो० क्लार्क कहते हैं कि,—चिकित्सकोंने रोगियोंको लाभ पहुँ चानेकी धुनमें उलटे बहुत कुछ हानि पहुँचाई है। उन्होंने हजारो ऐसे रोगियोंके प्राण लिये हैं जो यदि प्रकृतिपर छोड़ दिये जाते त अवश्य नीरोग हो जाते। जिन्हें हम औषध समझते हैं वे वास्तव विष हैं और उनकी प्रत्येक मात्रासे रोगीका बल घटता है। प्रो फॉक्सका मत है कि रोगीको जितनी ही कम औषधें दी जाये उसका उतना ही अधिक उपकार होता है। प्रो० स्मिथने कहा है— औषधोंसे कभी रोगी अच्छे नहीं होते, उन्हें स्वय प्रकृति अच्छ करती है। डा० रशने लिखा है—चिकित्सकोंने रोगोंकी सख्या और साथ ही उनकी भयकरता भी बढ़ाई है। डा० सैंडलर कहते हैं कि एलकोहल और दूसरी बहुतसी ओषधियाँ केवल रोग ही उत्पन्न करती हैं। औषधोंसे शारीरिक शक्तिका नाश होता है।

प्रो० पारकरने कहा है—मैंने कई रोगोंमें ओषधियोंका प्रयोग नहीं किया जिसका फल बहुत ही अच्छा हुआ। अब मुझे निश्चय

हो गया है कि औषधियोंकी अपेक्षा प्रकृतिसे मनुष्यके नीरोग होनेमें बहुत सहायता मिलती है।

भारतमें बहुत दिनोंसे माता या चेचकका कभी कोई इलाज नहीं किया जाता। पर पाश्चात्य डाक्टरोंने यह तत्त्व बहुत हालमें समझा है। तो भी जब चेचकका बहुत अधिक प्रकोप होता है, तब बहुधा डाक्टर कुछ चिकित्सा आरम्भ कर देते हैं। अमेरिकाके एक प्रान्तके हेल्थ आफिसर डा० स्मोने अपने देशके डाक्टरोंको एक समाचार-पत्र द्वारा यह सूचना दी थी कि मैंने बिना किसी प्रकारकी औषधिके उपयोगके ही माताके बड़े बड़े रोगियोंको बिलकुल चंगा कर दिया है। डा० एम्सने बहुतसे रोगियोंके मरने पर उनकी लाशोंको चीरकर देखा तो उन्हें शरीरके भीतरी भागोंमें अनेक ऐसे रोग मिले जिन्हें ओषधिजन्यके अतिरिक्त और कुछ कह ही नहीं सकते थे। इस कारण उन्होंने ओषधियोंका व्यवहार छोड़ दिया। जबसे वह प्राकृतिक चिकित्सा करने लगे तबसे उनका एक भी रोगी न मरा और परीक्षाके लिए उन्हें शव मिलना कठिन हो गया।

डा० ओलेरीका मत है कि रोगोंका नाश करनेमें सबसे अधिक सहायता उन्हीं लोगोंसे मिली है जिन्होंने किसी डाक्टरी कालेजकी कोई परीक्षा नहीं दी है और न कोई डिप्लोमा पाया है। अनेक प्रकारकी प्रचलित प्राकृतिक चिकित्सायें ऐसे ही लोगोंकी निकाली हुई हैं; जो चिकित्सा शास्त्रसे एकदम अनभिज्ञ थे। प्रो० एमर्सनका मत है कि चिकित्सा-सम्बन्धी बहुतसी कामकी बातें हम लोगोंको साधारण आदमियोंसे ही मिलती हैं; हम लोग तो खाली ग्रीक और लैटिन नाम रखना जानते हैं। डा० होम्स कह-ते हैं-ओषधियाँ आदि तैयार करनेके लिए द्रव्य निकालकर व्यर्थ खानें खाली की जाती हैं, वनस्पतियोंका सत्यानाश किया जाता है और साँपोंके ज़हर निकाले जाते हैं। अगर सब ओषधियाँ समुद्रमें फेंक दी जातीं, तो मनुष्यजातिका बड़ा उपकार होता।

हाँ, मछलियोंको उससे अवश्य बहुत हानि पहुँचेगी। डा० ट्रिक लिखते हैं—अनुभवकी कसौटीपर औषधियाँ पूरी नहीं उतरती हैं। दिनपर दिन उनकी निरर्थकता ही सिद्ध होती जाती है। जीवनके किसी प्राकृतिक विकारके विरुद्ध किसी औषधिका प्रयोग करना दिल्लगी नहीं तो और क्या है? ज्यों ज्यों डाक्टर और रोगी समझदार होते जाते हैं, त्यों त्यों वे समझते जाते हैं कि औषधियोंपर निर्भर नहीं रहना चाहिए।

ऊपर जितने डाक्टरोंके नाम दिये गये हैं, वे सब अमेरिकाके हैं। अब अँगरेजी साम्राज्यके कुछ डाक्टरोंकी सम्मतियाँ सुनिए। डा० इवान्स कहते हैं कि इस उन्नति-कालमें भी औषधियोंके गुण निश्चित और सतोषप्रद नहीं हैं। डा० अयरनकी कहते हैं कि चिकित्सकोंकी संख्या बढ़नेके साथ ही साथ रोगोंकी संख्या भी उसी मानमें बढ़ती जाती है। सर माइकेल्फा मत है कि रोगोंके मूल कारण तक औषधियाँ पहुँच ही नहीं सकतीं। डा० रॉबिन्सनका कथन है कि आज कलके व्यवहारमें औषधिका गुण विज्ञान, प्रारब्ध और भ्रमके विलक्षण मिश्रणपर अवलम्बित है। डा० कूपरका सिद्धान्त है कि औषधियोंपर जिसका जितना विश्वास हो उसे उतना ही अज्ञानी समझना चाहिए। लन्दनके रायल कालेजके फेलो डा० रैमजे कहते हैं कि आजकलकी औषधि चिकित्सा बड़े बड़े प्रोफेसरोंके लिए बहुत ही लज्जास्पद होनी चाहिए। विचार करके देखिए कि हमारी औषधियोंसे कितना कम लाभ होता है और रोगीकी दशा कितनी अधिक बुरी हो जाती है। मैं निर्भय होकर कह सकता हूँ कि बिना चिकित्साके रोगीकी दशा अपेक्षाकृत बहुत अच्छी रहती है। प्रोफेसर जेम्सन कहते हैं कि विज्ञानके नामपर आजकलके चिकित्सा करनेवाले प्रकृति और रोगीकी वास्तविक चिकित्सा प्रणालीसे एकदम अनभिज्ञ होते हैं। इसमें भी औषधियाँ रोगियोंके लिए बहुत ही हानिकारक होती हैं। डब्लिन मेडिकल जरनलमें एक बार प्रकाशित हुआ था कि आज-

कल जिसे चिकित्सा विज्ञान कहते हैं, वह नामको भी विज्ञान नहीं है। वह तो अटकलपच्चू सिद्धान्तों, भ्रमपूर्ण कल्पनाओं और अस्थिर सम्मतियोंका खजाना है! सर फोर्वसका मत है कि रोग या चिकित्साके सम्बन्धमें अभीतक कोई सिद्धान्त ठीक नहीं निकला। कुछ रोगी ओषधियोंकी सहायतासे अच्छे होते हैं, बहुतसे रोगी ओषधियाँ खाकर भी केवल आपसे आप ही अच्छे हो जाते हैं, और बहुत अधिक रोगी बिना किसी प्रकारकी ओषधिके ही अच्छे हो जाते हैं। डा० फ्राकको डाक्टरोंके हाथसे इतने अधिक रोगियोंको मरते हुए देखकर अतमें कहना पड़ा था कि सरकार या तो इन डाक्टरोंको न रहने दे और उनकी नष्ट चिकित्साप्रणाली रोक दे और या लोगोंके जीवनकी रक्षाका कोई नया उपाय निकाले। डा० बोस्टाक, जिन्होंने 'ओषधियोंका इतिहास' नामक एक बड़ा ग्रन्थ लिखा है, कहते हैं-हम ओषधियोंका जितना अधिक प्रयोग करते हैं, हमारा ज्ञान या अनुभव उतना अधिक नहीं बढ़ता। ओषधिकी प्रत्येक मात्रा रोगीकी सजीवनी शक्तिपर एक अन्ध प्रयोग और अनुभव मात्र है। डा० सर जान गुड जिन्होंने प्रकृति और ओषधि आदिके सम्बन्धमें कई अच्छे अच्छे ग्रन्थ लिखे हैं, कहते हैं—हमारी ओषधियोंका प्रभाव अत्यन्त अनिश्चित है। युद्ध, महामारी और अकाल आदिके कारण अब तक सब मिलाकर जितने मनुष्य मरे हैं, उनसे कहीं अधिक ओषधियोंके प्रयोगसे मरे हैं। प्रो० वाटर हाउस कहते हैं कि शिक्षित चिकित्सकोंकी अपेक्षा उन अशिक्षित चिकित्सकोंपर मेरा कहीं अधिक विश्वास है कि जिनकी चिकित्सा केवल अनुभवपर निर्भर होती है। सभी देशों और समयोंमें उन लोगोंने समस्त विश्वविद्यालयोंसे कहीं अधिक बढ़कर काम किया है। डाक्टर जान्सन, जो चिकित्सा-सम्बन्धी एक प्रतिष्ठित पत्रके सम्पादक हैं, कहते हैं-अपने बहुत दिनोंके अनुभवसे मैं यह बात कह सकता हूँ कि यदि संसारमें कोई चिकित्सक, जर्राह, अत्तार या दवा बेचनेवाला न होता, तो आजकलकी अपेक्षा रोग बहुत ही कम हो

जाते और मृत्यु सख्या भी बहुत घट जाती +। पेरिसके डाक्टर लेगोल कहते है–इस समय हम लोग बड़ी ही भूल कर रहे हैं और यदि हम सफलता प्राप्त करना चाहते हों, तो हमें अपना मार्ग बदल देना चाहिए।

एडिनबरामें प्रोफेसर जॉन फर्क नामक एक चिकित्सक हैं, जिन्होंने चालीस वर्ष तक चिकित्सा करनेके उपरान्त औषधियोंकी निरर्थकता समझी और तब बिना औषधियोंके चिकित्सा आरम्भ की। आपका मत है कि डाक्टरी कालेजोंमें विद्यार्थियोंकी बुद्धि नष्ट कर दी जाती है और उन्हें प्राकृतिक प्रणालियोंका अध्ययन करनेके लिए इतना अयोग्य बना दिया जाता है कि उन्हें फिरसे उनके योग्य बननेमें कठिन परिश्रमपूर्वक अपना आधा जीवन बिता देना पड़ता है। सर कूपरका मत है कि औषधिविज्ञानकी उत्पत्ति मिथ्या कल्पना और दिनपर दिन बढ़ती हुई हत्यासे हुई है। प्रो० माहका मत है कि समस्त विज्ञानोंमें औषधि विज्ञान सबसे अधिक अनिश्चित है। एडिनबराके मेडिकल कालेजके प्रो० ग्रेगरीने कहा है कि चिकित्सा-शास्त्रमें जिन बातोंको सत्य माना जाता है उनमेंसे ९९ प्रति सैकड़े मिथ्या हैं और उसके सिद्धान्त बिलकुल ही भोंड़े और भद्दे हैं। प्रो० कार्सन कहते हैं हम यह नहीं जानते कि रोगी हमारी औषधियोंसे अच्छे होते हैं या प्रकृतिसे। सम्भवतः उन्हें रोटीरूपी गोलियाँ ही अच्छा करती हैं। सर रिचर्डसनने कहा है कि औषधियोंके व्यवहारसे सभ्य लोगोंकी आयु बहुत ही कम हो गई है। डा० टाइटसका मत है

+ एक बार एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक उत्तरीय ध्रुवके आसपासके प्रदेशोंसे लौटकर आया था। उसके एक मित्रने उससे कहा–" बड़े आश्चर्यकी बात है कि आप कहते हैं कि उन प्रदेशोंमें एक भी चिकित्सक नहीं है और वहाँ बहुतसे लोग सौ वर्षकी आयुतक पहुँच जाते हैं। " वैज्ञानिकने उत्तर दिया " यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। आश्चर्यकी बात तो यह है कि इन देशोंमें इतने चिकित्सकोंके रहते हुए भी कुछ लोग ही सौ वर्षकी आयुतक पहुँच पाते हैं। "

कि संसारमें तीन-चौथाई आदमी दवाओंके नुसखोंसे मरते हैं। फ्रान्सके प्रसिद्ध शरीर शास्त्रवेत्ता मैगेंडिक कहते है कि ओषधियोंके विषयमें संसारमें किसीको कुछ भी ज्ञान नहीं है। रोगको दूर करनेमें बहुत कुछ सहायता प्रकृतिसे ही मिलती है। डाक्टरोंसे बहुत ही थोड़ी सहायता मिलती है और वह भी उस दशामें जब वे किसी प्रकारकी हानि न पहुँचावें। डाक्टर ओसलर जो कई विश्वविद्यालयोंमें चिकित्सा शास्त्रके अध्यापक रह चुके हैं और जो ओषधि शास्त्रके सबसे बड़े ज्ञाता माने जाते हैं, ओषधि चिकित्साकी निन्दा और बिना ओषधिकी चिकित्साकी प्रशंसा करते हुए एनसाइक्लोपीडिया एमेरिकनामें लिखते हैं कि ओषधियोंकी निरर्थकताका सबसे अच्छा प्रमाण यह है कि उन्नीसवीं शताब्दीके आरंभमें टायफाइड ज्वरकी चिकित्सामें बड़ी बड़ी भयंकर और उग्र ओषधियोंका प्रयोग होता था। रोगीकी फसद खोली जाती थी, उसके शरीरपर छाले डाले जाते थे और तरह तरहके भीषण उपाय किए जाते थे। पर आजकलके रोगियोंको विशेष प्रकारसे स्नान कराया जाता है और उन्हें कदाचित् ही कोई ओषधि दी जाती है। इससे यही सिद्धान्त निकाला जा सकता है कि ओषधियोंका उन रोगोंपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, जिनके लिए उनका व्यवहार किया जाता है। अन्तमें आपने कहा है कि वही सबसे अच्छा चिकित्सक है जो ओषधियोंको निरर्थक समझता है।

प्राकृतिक चिकित्सा

इन पृष्ठोंके पढ़नेके उपरान्त पाठकोंके मनमें स्वभावत यह प्रश्न उठ सकता है कि तब फिर रोगोंके शमनका सर्वोत्तम और निर्दोष उपाय कौनसा है? आजकल अनेक प्रकारकी चिकित्सा प्रणालियाँ प्रचलित हैं, जिनमें ओषधियोंका प्रयोग बिलकुल नहीं होता, केवल ऊपरी उपचारोंसे रोगोंको शान्त किया जाता है। ये सभी प्रणालियाँ प्राकृतिक चिकित्साके नामसे अभिहित हैं और जल चिकित्सा, उपवास चिकित्सा, विद्युत् चिकित्सा आदि

देशों और प्रकारोंके चिकित्सक किसी न किसी अवसर पर और किसी न किसी रूपमें उनके अनुसार काम करते हैं। संसारके सभी चिकित्सा ग्रन्थोंसे उनका समर्थन होता है और यहाँ तक कि पशु पक्षी आदि भी अपने आचरणोंसे उन सिद्धान्तोंकी पुष्टि करते हुए देखे जाते हैं। उपवासके सिद्धान्तोंकी उपयोगिता समझानेके लिए इससे बढ़कर और क्या चाहिए?

शरीरकी क्रियापर उपवासका जो परिणाम होता है, उसके सम्बन्धमें बहुत कुछ इस पुस्तकके आरम्भमें ही कहा जा चुका है। कैसे आश्चर्यकी बात है कि लोग बीच बीचमें अपने कामसे स्वयं तो अवश्य छुट्टी ले लेते हैं, पर अपने शरीरको कभी छुट्टी नहीं देते। हाथ पैर या मस्तिष्कसे होनेवाले कामोंको छोड़ देना ही वास्तवमें शरीरको छुट्टी देना नहीं है, क्योंकि उस समय शरीरकी भीतरी मशीनको आराम करनेका अवसर नहीं मिलता। हम अपने दिमागके साथ भले ही कभी कभी थोड़ी बहुत रियायत कर दिया करते हों, पर अपने पेटके साथ हम कभी रियायत नहीं करते और पेटसे सदा काम लेते रहना ही सब प्रकारके रोगोंकी जड़ है।

धर्म्म-ग्रन्थ और उपवास

संसारमें प्राय जितने मुख्य मत, धर्म्म या सम्प्रदाय हैं, उन सबमें किसी न किसी प्रकारके उपवास या व्रतकी आज्ञा दी गई है। पहले भारतीय धर्मोंको ही लीजिए। हिन्दुओंके धर्म्म शास्त्रोंमें भिन्न भिन्न पुण्य तिथियों और पर्व्वोंको छोड़कर प्रत्येक एकादशी, प्रदोष और रविवार आदिके लिए व्रतका विधान है। हिन्दुओंके समस्त व्रतोंकी संख्या ७५९ से ऊपर है। अधिकांश व्रतोंमें अन्न मात्रका स्पर्श न करने और बहुधा एक बार थोड़ासा फलाहार करनेकी आज्ञा है। इन सब व्रतोंके मूलमें केवल एक ही सिद्धान्त है और वह सिद्धान्त पाचन क्रियाको ठीक अवस्थामें

रखना अथवा लाना है। आजकल लोग व्रत तो करते हैं, पर इस सिद्धान्तका गला इतनी बुरी तरहसे घोंटते हैं कि उनके व्रतका फल व्रत न रखनेसे भी अधिक हानिकारक होता है। जिस व्रतमें केवल एक बार और वह भी बहुत थोड़े मानमें फल आदि ही खानेका विधान है, उस व्रतमें लोग सिंघाड़े और कूटूके आटेकी पूरियाँ, तरह तरहकी पकौड़ियाँ, दस पाँच तरहकी तरकारियाँ, दो तीन तरहके हलुए और कई तरहकी मिठाइयाँ खा जाते हैं और ऊपरसे जहाँतक अधिक हो सकता है, दूध रबड़ी और मलाईका भी सत्यानाश करते हैं। रोजसे दुगुना भोजन केवल इसी लिए होता है कि उस दिन वे लोग व्रत रहते हैं—उपवास करते हैं। इसमें दोष लोगोंका ही है, धर्म्मग्रन्थोंमें उनकी आज्ञा केवल हित और, कल्याणकी दृष्टिसे दी गई है। इसके अतिरिक्त हमारे धर्म्म-ग्रन्थोंमें निर्जल और चान्द्रायण आदि अनेक प्रकारके दूसरे व्रत भी हैं जिनमें किसी प्रकारके नियमोल्लंघनकी भी सम्भावना नहीं होती। भारतमें पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियाँ ही अधिक व्रत करती हैं और यही कारण है कि यहाँकी स्त्रियाँ साधारणत उन रोगोंसे मुक्त रहती हैं जिनके कारण मर्द परेशान रहते हैं। कब्जियत और अपचन आदि रोग स्त्रियोंको बहुत कम होते हैं। जैनियोंके धर्म्म-ग्रन्थोंमें केवल अनेक प्रकारके उपवासोंका ही विधान नहीं है बल्कि बहु-काल व्यापी उपवासोंका भी विधान है। उनके उपवास सप्ताहों नहीं बल्कि महीनों तक चलते हैं और बहुतसे अंशोंमें उन उपवासोंसे मिलते जुलते होते हैं जो आजकलके पाश्चिमात्य उपवास चिकित्सक अपने रोगियोंको कराते हैं। मुसल्मानोंको रमजानके महीनेमें तीस दिनों तक अपने धर्म्मग्रन्थके आज्ञानुसार बराबर रोजे रखने पड़ते हैं। रोजेके दिन वे बहुत सवेरे प्रात मुहूर्तमें भोजन कर लेते हैं और फिर दिन भर कुछ नहीं खाते, रोजा सूर्यास्तके बाद ही खुलता है। ईसाइयोंके धर्म्मग्रन्थोंमें भी उपवासकी स्पष्ट आज्ञा है ? वे उपवासके दिन कुछ विशिष्ट पदार्थ ही

पशु और उपवास

उपवासकी उपयोगिता सिद्ध करनेके लिए हमें सबसे अच्छे और निर्विवाद प्रमाण तरह तरहके पशुओं और पक्षियों और दूसरे जीवोंसे मिल सकते हैं। मनुष्यकी तरह इन जीवोंको सभ्यताने अपने पाशमें नहीं फँसाया है और ये बहुधा प्राकृतिक अवस्थामें ही रहते हैं। उन पशुओं और पक्षियों आदिकी बातें जाने दीजिए जिनके मालिक उन्हें जरासा बीमार समझकर ही किसी पशु चिकित्सालयमें भेज देते हैं और उनको भी जबरदस्ती दवा पिलाकर अपनी तरह जन्म-रोगी बना लेते हैं। सभ्य मनुष्योंको छोड़कर बाकी प्राय सभी जीव किसी भारी रोगसे पीड़ित होनेपर सबसे पहले भोजनका ही परित्याग करते हैं। सिंहको यदि किसी तरहसे कोई घाव लग जाता है तो वह किसी एकान्त स्थानमें जाकर बिना जल और भोजनके कई कई सप्ताहों तक पड़ा रहता है। केंचुली बदलनेके समय साँप कई सप्ताहों तक बिना आहारके ही पड़ा रहता है। इसका कारण यही है कि आहार न करनेके कारण उसकी वह क्रिया थोड़े कष्टमें और जल्दी हो जाती है। बहुतसे पशु ऐसे होते हैं जिनका खून गरम होता है। ऐसे पशु बहुधा जाड़ेमें एकान्तमें बिना आहारके पड़े रहते हैं। जाड़े भर निराहार रहने पर भी उनकी शक्ति बहुत ही कम घटती है और जाड़ेके अन्तमें वे बड़े आनन्दसे विचरने लगते हैं। रेंगनेवाले जीवोंको यदि कुछ अधिक समय तक आहार न मिले तो उनकी शक्ति किसी प्रकार क्षीण नहीं होती। रीछोंकी शरीर-रचना मनुष्यके शरीरसे मिलती जुलती होती है। बरफीले देशोंमें जाड़ेके दिनोंमें रीछ प्राय चार महीने अपनी माँदमें निराहार पड़े सोते रहते हैं। इस बीचमें यदि कोई उन्हें छेड़े, तो वे बहुधा उसे मार डालनेका ही प्रयत्न करते हैं। यह बात तो सभी लोग जानते हैं कि रोगी होने पर सब प्रकारके जीव आहार छोड़ देते हैं, पर ऊपर जो उदाहरण दिये गये हैं उनसे यह भी सिद्ध

होता है कि पशु अपना स्वास्थ्य बनाये रखनेके विचारसे भी समय समयपर उपवास किया करते हैं। डा० मैकफेडनका एक छोटासा कुत्ता सफरमें एक बार एक बहुत ऊँचे मकानकी छत-परसे नीचेके पत्थरवाले फर्शपर गिर पड़ा। उसके गिरनेके समय जो शब्द हुआ था उससे यह अनुमान हुआ था कि अब इसकी एक भी हड्डी साबित न बची होगी। गिरते ही उसके मुँह और नाकसे लहूकी धारा बहने लगी थी और वह बिलकुल अधमरा हो गया था। कुछ उपस्थित सैनिकोंने डाक्टर महाशयको सम्मति दी कि आप गोली मारकर इसे इस भयकर यातनासे मुक्त कर दें। पर उन्होंने उन लोगोंकी यह बात स्वीकार न की और उस कुत्तेको एक टोरीमें रखकर घर ले जाकर उसीपर अपने उपवास सिद्धान्तकी परीक्षा करना निश्चय किया। जाँच करने पर मालूम हुआ था कि उसकी दो टाँगें और तीन पसलियाँ टूट गई थीं और जिस कठिनतासे वह साँस लेता था उससे सिद्ध होता था कि उसके फफड़ोंपर भी अवश्य चोट पहुँची है। जब सब लोग उसके जीवनसे निराश हो गये तब उसका मृत शरीर गाड़नेके लिए गड्ढा तक खोदा गया। पर दूसरे दिन सबेरे तक उसके प्राण न निकले और वह बहुतसा पानी पी गया। बीस दिनोंतक वह उसी दशामें बिना किसी प्रकारके भोजनके पड़ा रहा। वह केवल पानी पीता था; यहाँ तक कि दूध या शोरबा भी नहीं छूता था। इक्कीस दिनोंके बाद उसने दूध पीना आरम्भ किया और छब्बीसवें दिनसे वह छिछड़े खाने लगा। उसके पैर अवश्य कुछ टेढ़े हो गये थे, पर और किसी प्रकारका दोष उसके शरीरमें न रह गया था। दूसरे वर्ष जब डाक्टर महाशय उसे अपने साथ लेकर फिर उसी स्थान पर गए, जहाँ वह मकानकी छत परसे गिरा था और उन्होंने वहाँ के पशु चिकित्सकको उसे दिखलाया तब चिकित्सकको अत्यन्त आश्चर्य हुआ। सबसे पहले तो उसकी समझमें यही बात नहीं आती थी कि यह बिना किसी प्रकारके भोजन या औषधिके जीता ही कैसे बचा। उसके सिद्धान्तके अनुसार तो उसे जीवित रखने

और नीरोग करनेके लिए इस बातकी आवश्यकता थी कि ब
तसा भोजन, शराब और बीसियों तरहकी ओषधियाँ जबरदस्त
नलीकी सहायतासे उसके पेटमें उतारी जायँ, तब फिर भल
उसका जीवित रहना और चगा हो जाना उसकी समझमें कैं
आ सकता था ! इसी लिए वह उस बातको अनहोनी समझत
था ! अन्तमें उसे यही कहना पड़ा कि इस कुत्तेकी जीवन-शक्ति
ही कुछ अद्भुत है !

प्रत्येक मनुष्य थोड़ा अनुभव करके यह बात अच्छी तरह समझ
सकता है कि जगली और पालतू सभी जानवर रोगी होनेप
खाना पानी छोड़ देते हैं और बहुधा अपेक्षाकृत शीघ्र ही नीरो
हो जाते हैं । अन्न जल छोड़नेकी शिक्षा उन्हें स्वय प्रकृतिसे ह
मिलती है; और प्रकृति यही शिक्षा पशुओंके द्वारा हम समझ
दारोंको भी देती है । पर हम अपनी समझदारीके आगे उसक
कोई फल लगने ही नहीं देते । हम लोग भोजनकी सहायतासे
रोगका पालन करते हैं और ओषधियोंकी सहायतासे उसक
वृद्धि करते हैं; और तिसपर समझते यह हैं कि हम अपनी चि
कित्सा कर रहे हैं ! पर चिकित्साके मूल सिद्धान्तोंसे हमारा को
सम्बन्ध ही नहीं रहता । हम लोगोंका मार्ग ही उससे बिलकुल
भिन्न और विपरीत है । या तो प्रकृति स्वय वैद्य बनकर हमें
नीरोग कर दे या हम तरह तरहके उपायोंसे रोग उत्पन्न करने
वाले विषको एकत्र करके शरीरके किसी अगमें दबा दें और उसे
समय पाकर फिरसे बढ़ने और फैलनेका मौका दें । इसके सिव
हमारे चगे होनेका और कोई उपाय ही नहीं है । न जाने मनु
ष्योंकी समझमें यह छोटीसी बात कब आवेगी कि रोगी जब
आहार छोड़ देता है तब आहारको पचानेवाली शक्ति उसके रोगके
शमन करनेमें लग जाती है और उस दशामें वह शीघ्र ही नीरोग
हो जाता है ।

चिकित्सा और उपवास

आजकल जितनी चिकित्साएँ प्रचलित हैं और उनमेंसे अधिकांशको हम अप्राकृतिक बतला आए हैं, उन सब चिकित्साओंमें भी किसी न किसी अवस्था और किसी न किसी रूपमें उपवास अवश्य कराया जाता है। रोगीका भोजन परिमित कर देना तो चिकित्सक मात्रका मूल मन्त्र है, पर बहुतसी अवस्थाओंमें वे उपवासकी भी बहुत बड़ी आवश्यकता समझते हैं। ज्वर आदि बहुतसे रोगोंके आरम्भमें तो रोगीको सबसे पहले अवश्य मेव उपवास ही कराया जाता है और उठते हुए ज्वरको छेड़ना किसी प्रकार ठीक नहीं समझा जाता। यद्यपि बहुतसे ऐसे शौकीन रोगी भी निकलेंगे जो रातको थोड़ी हरारत होते ही सवेरे दो चार खुराक दवाकी पी डालेंगे तथापि कोई बुद्धिमान् उनके इस कृत्यकी प्रशंसा न करेगा। अनेक रोगोंके आरम्भमें तो हम अवश्य ही पर विवश होकर प्रकृतिके कुछ नियमोंका पालन करते हैं; क्योंकि यदि हम उनका पालन न करें तो प्रकृति हमें कठोर दण्ड देती है। पर आगे चलकर जब हम उन नियमोंके पालनसे कुछ लाभ उठा चुकते हैं तब उन्हींका अतिक्रमण करने लगते हैं। इसका कारण यह है कि उस समय हम उस स्थितिमें पहुँच जाते हैं जिसमें प्रकृतिद्वारा हमें तुरन्त ही नहीं बल्कि कुछ कालके उपरान्त दण्ड मिलता है। अनेक रोगोंके आरम्भमें जब डाक्टर, वैद्य या हकीम अपने रोगीको उपवास कराता है तो उससे रोगका जोर बहुत कुछ घट जाता है। यदि रोगीको उसी स्थितिमें कुछ और समयतक रहने दिया जाय, उसे न तो किसी प्रकारकी दवा दी जाय और न किसी प्रकारका भोजन, तो अवश्य ही वह बहुत शीघ्र नीरोग हो सकता है। पर यहाँ आरम्भ तो होता है प्राकृतिक नियमोंसे और बीचमें ही अप्राकृतिक नियमोंका व्यवहार आरम्भ हो जाता है।

जो हो, पर इसमें किसी तरहका सन्देह नहीं कि सभी
त्सक किसी न किसी अवसरपर अपने रोगीका भोजन
देते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि वे उपवासका महत्त्व जान
और मानते तो अवश्य हैं और उससे समय समयपर लाभ भ
उठाते हैं; पर उनका उपवाससम्बन्धी ज्ञान अपेक्षाकृत बहुत
कम है। हकीमों और वैद्योंकी अपेक्षा डाक्टरोंका तत्सम्बन्ध
ज्ञान और भी अल्प है। कोई हकीम या वैद्य तो अपने रोगीक
दस बीस दिनोंतक बिना भोजनके रख सकता है; पर किस
डाक्टरके लिए ऐसा करना असम्भव है। प्रायः हकीमों औ
वैद्योंके ऐसे कृत्योंपर डाक्टर लोग हँसते हुए देखे गए हैं।
लोग समझते हैं कि, यदि रोगीको किसी प्रकारका आहार
दिया जायगा, तो उसकी शक्ति नष्ट हो जायगी और वह नीरो
होनेके बदले मर जायगा; पर उनका यह मत सर्वांशमें सत्य नह
उतरता। आगे चलकर हम यह दिखलानेका प्रयत्न करेंगे कि उप
वास और बल क्षयका परस्पर कितना सम्बन्ध है। पर इस अव
सरपर यह बात भूल न जानी चाहिए कि उपवास करानेवाले वैद
और हकीमोंकी निंदा करने और हँसी उड़ानेवाले डाक्टर भ
कुछ विशेष अवस्थाओं और रोगोंमें अपने रोगियोंको आठ आ
और दस दस दिनतक बिना भोजनके ही रखते हुए देखे गए हैं।

आयुर्वेद और उपवास

इस अवसरपर थोड़े शब्दोंमें यह बतला देना भी अनुचित
न होगा कि हमारे प्राचीन भारतीय चिकित्सा-शास्त्र आयु
र्वेदमें उपवासको कितना महत्त्व दिया गया है और उसके फल
क्या लाभ बतलाए गए हैं। हमारे यहाँके आयुर्वेदज्ञोंका मत है
कि शरीरमें कफ, पित्त और वात ये तीन पदार्थ हैं। जब तक
तीनों पदार्थ समान स्थितिमें रहते हैं तब तक मनुष्य नीरोग रहता
है, पर जब इनमेंसे कोई पदार्थ घट या बढ़ जाता है, तब उसकी

गिनती दोषोंमें होती है, अर्थात् उसके कारण मनुष्यके शरीरमें कोई न कोई रोग उत्पन्न हो जाता है। यह रोग बहुत ही क्षुद्र भी हो सकता है और महाभयकर भी। यही कारण है कि यदि आप किसी रोगके सम्बन्धमें आयुर्वेदका कोई ग्रन्थ उठा कर देखें, तो उसमें आपको उस रोगकी उत्पत्ति कफ, पित्त अथवा वातसे ही मिलेगी। बढ़े या घटे हुए पदार्थको समान स्थितिमें लाना और दोषका नाश करना ही वैद्य मात्रका कर्तव्य होता है। उपवास या लंघनके विषयमें हमारे चिकित्सा-शास्त्रका मत है कि उसे सहन करनेकी शक्ति केवल दोषोंमें ही होती है। जब तक मनुष्यके शरीरमें दोष रहता है तभी तक वह निराहार रह सकता है, दोषोंके शमन हो जाने पर वह बिना भोजनके नहीं रह सकता। यह बात वैद्यकके कई ग्रन्थोंमें लिखी हुई है। भावप्रकाशमें लिखा है कि लंघन करनेसे दोष नष्ट होते हैं, जठराग्नि दीप्त होती है, शरीर हलका हो जाता है और भूख बढ़ती है। जब कि दोषोंहीसे रोगोंकी सृष्टि होती है और लंघनसे दोषोंका नाश होता है, तब इस सिद्धान्तके माननेमें कोई संकोच नहीं हो सकता कि लंघनसे रोगोंका नाश होता है। सुश्रुतमें यह बात स्पष्ट रूपसे लिखी हुई है कि जिस मनुष्यकी अग्नि और दोष ठीक दशामें न हों, लंघनसे उसकी अग्नि ठीक दशामें आ जाती है और उसके दोषोंका परिपाक हो जाता है। पाश्चात्य डाक्टरोंकी सम्मतिके अनुसार पहले एक स्थानपर यह कहा जा चुका है कि रोगी जब आहार छोड़ देता है, तब उसकी आहार पचानेवाली शक्ति उसके रोगका शमन करनेमें लग जाती है और उस दशामें वह शीघ्र नीरोग हो जाता है। पाश्चात्य डाक्टरोंके इस सिद्धान्तकी पुष्टि हमारे यहाँके प्राचीन शास्त्रोंके इस वचनसे भली भाँति हो जाती है—

"आहार पचति शिखी दोषानाहारवर्जित:।"

अर्थात् अग्नि आहारको पचाती है और जब पेटमें आहार नहीं रहता तब वह दोषोंको पचाती या नष्ट करती है। इससे यह बात

प्रमाणित होती है कि खाली पेट रहनेसे दोषों या रोगोंका नाश ही होता है, निराहार रहनेसे शरीरको लाभ ही होता है, हानि नहीं। भावप्रकाशमें लिखा है कि यदि दोष साधारण या मध्यम अवस्थामें हो, तो लघन करना ही श्रेष्ठ है। उसके मतसे लघनके द्वारा वायुका दोष सात दिनमें, पित्तका दोष दस दिनमें और कफका दोष बारह दिनमें पच जाता है। यद्यपि दोषकी भयकर अवस्थामें उक्त ग्रन्थके कर्त्ताने लघनकी आज्ञा नहीं दी है, तथापि इससे हमारे सिद्धान्तपर किसी प्रकारका दोष नहीं आ सकता। कोई दोष आरम्भ होते ही महाभयंकर या उग्र रूप नहीं धारण कर लेता। पहले वह साधारण या मध्यम अवस्थामें ही रहता है, उग्र अवस्था तक पहुँचनेमें उसे कुछ समय लगता है। यदि दोषके आरम्भ होते ही उपवासका भी आरम्भ हो जाय, तो निश्चय है कि उस दोषका नाश ही होगा। सुश्रुतके अनुसार तो शरीरको हल्का करनेवाली सभी क्रियायें लंघनके अन्तर्गत आ जाती हैं और चरकने वायु सेवन और व्यायाम आदिको भी लघनके अन्तर्गत ही माना है। यदि किसी रोगीके पेटमें बहुतसा अन्न हो और वैद्य उस अन्नको वमन या विरेचनकी सहायतासे बाहर निकाल दे, तो उसकी यह क्रिया लघनसे भी कहीं बढ़कर होगी, क्योंकि लंघनकी सहायतासे उतना अन्न पचानेमें उससे कहीं अधिक समय लगता, जितना वमन या विरेचनमें लगता है। वायुसेवन और व्यायाम आदिसे भी दोषोंका नाश ही होता है। इन चिकित्साओंको लंघनके अन्तर्गत माननेसे लघनका महत्त्व और भी बढ़ जाता है और उससे सिद्ध होता है कि यह बहुत ही उपकारक क्रिया है। सुश्रुतके अनुसार लघनसे ज्वरका नाश होता है, अग्निका दीपन होता है और शरीर हल्का हो जाता है। उसके अनुसार यदि लघनके उपरान्त मल-मूत्रका त्याग उचित रीतिसे हो, भूख प्यास न सही जाय, शरीर हल्का जान पड़े, आत्मा और मन शुद्ध हो और इन्द्रियाँ निर्विकार और सुखी हों, तो समझना चाहिए कि लंघन ठीक और उचित रीतिसे हुआ है। यही बा

दूसरे शब्दोंमें इस प्रकार कही जा सकती है कि अच्छी तरह और नियमपूर्वक लंघन करनेके परिणामस्वरूप ऊपर लिखी बातें होती हैं।

ज्वरकी दशामें तो लंघनको सभीने उपयुक्त ही नहीं, बल्कि बहुत आवश्यक भी माना है। चक्रदत्तने कहा है कि नवीन ज्वर का क्षय लंघनकी सहायतासे करे और आत्रेय ऋषिकी आज्ञा है कि ज्वरके आरम्भमें लंघन करावे। वैद्यकमें वमन, विरेचन, निरूहवस्ती (इन्द्रिय-जुलाब) और शिरोविरेचन ये चार प्रकारकी सशुद्धियाँ मानी गई हैं। ये सशुद्धियाँ ज्वरमें कराई जाती हैं; पर उपवासको शास्त्रमें इन सशुद्धियोंसे कहीं अधिक उपयोगी और श्रेष्ठ माना है। चरक और वाग्भटने कहा है कि दूपित वातादि दोष आमाशयमें स्थित होकर जठराग्निको मन्द कर देते हैं और आमके साथ मिलकर शरीरके छिद्रों या रोमकूपोंको आच्छादित करके ज्वर उत्पन्न करते हैं। आम दोषादिको पचाने, जठराग्निको दीप्त करने और शरीरके छिद्रोंको शुद्ध करनेके लिए लंघनकी आवश्यकता होती है। इस अवसरपर कदाचित् यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं कि जो दोष अग्निको मन्द करते हैं उनके शमनके लिए लंघनसे बढ़कर और कोई श्रेष्ठ उपाय नहीं है।

जिन पाश्चात्य डाक्टरोंने उपवास चिकित्साका आविष्कार किया है, वे उपवासकालमें रोगीको केवल शुद्ध जल देते हैं। वैद्यकके ग्रन्थोंमें भी उपवास कालमें केवल जल ही देनेका विधान है। जल हमारे यहाँ अमृत माना गया है और यह कहा गया है कि उससे सभी दशाओंमें उपकार होता है। इसके अतिरिक्त वैद्यकके ग्रन्थोंमें यह भी लिखा है कि वैद्यको चाहिए कि लंघन इस प्रकार करावे कि जिसमें जलका नाश न हो; क्योंकि आरोग्यता जलके ही अधीन है और यह सब कार्य्यक्रम आरोग्यताके लिए ही है। उपवास-चिकित्साके आविष्कर्त्ताओंका भी ठीक यही सिद्धान्त है। सारांश यह है कि उपवाससम्बन्धी सिद्धान्त न तो हमारे आयुर्वेदके लिए नये ही हैं और न हमारे यहाँके उपवाससम्बन्धी

सिद्धान्तोंके किसी प्रकार प्रतिकूल ही हैं। आयुर्वेदसे पाश्चात डाक्टरोंके उपवास सिद्धान्तोंका सब प्रकारसे समर्थन औ पोषण ही होता है।

प्रकृति और उपवास

पश्चिममें उपवास-चिकित्साका आविष्कार, बल्कि यों कहिए कि पुनरुद्धार ऐसे लोगोंने किया है जो अपने जीवनके आरम्भ-कालमें बहुत ही दुर्बल रहा करते थे और मुद्दतों तक तरह तरहकी दवाइयाँ करके अपने जीवनसे एकदम निराश हो चुके थे। उन लोगोंने जब देखा कि ओषधियोंसे रोग किसी प्रकार दूर नहीं होते और सुना कि ओषधिसेवनसे रोगोंकी संख्या और भी बढ़ती है, तब उन्हें किसी ऐसी चिकित्सा प्रणालीकी चिन्ता लगी जो मनुष्यके लिए बिलकुल स्वाभाविक या प्राकृतिक हो और जिसमें लाभके सिवा किसी प्रकारकी हानिकी सम्भावना न हो। उन लोगोंने खोज और परिश्रम करके एक नई पर प्राकृतिक प्रणाली ढूँढ़ निकाली। ज्यों ज्यों उनकी प्रणालीका प्रयोग होता गया और ज्यों ज्यों उनका अनुभव बढ़ता गया, त्यों त्यों उन्हें इस बातके दृढ़तर प्रमाण मिलते गये कि वास्तवमें रोगीका सबसे अधिक कल्याण केवल उपवाससे ही हो सकता है। अब तो युरोप और अमेरिका आदि देशोंमें बहुतसे ऐसे चिकित्सालय खुल गये हैं जिनमें केवल उपवास और जल चिकित्सा आदिसे ही रोगीको चंगा किया जाता है। इन चिकित्सालयोंमें रोगियों पर जो अनुभव किये गये हैं उन्हें जानकर बड़ा ही कुतूहल और आनन्द होता है।

साधारण समझका आदमी भी यह बात भली भाँति समझ सकता है कि यदि मनुष्य और विशेषत रोगीको भूख न हो, तो जबरदस्ती खिलानेसे शरीरका बहुत अनिष्ट होता है—उसे बड़ी हानि पहुँचती है। ज्वर, सिरदर्द, अपचन आदि बहुतसे रोगों और

यहाँ तक कि मानसिक चिन्ताओंके कारण भी मनुष्यकी भूख मारी जाती है। उस समय शरीरकी शक्ति बनाये रखनेके उद्देश्यसे जो कुछ जबरदस्ती खाया जाता है, वह शक्ति बनाये रख-नेकी अपेक्षा उसे बिगाड़ना प्रारंभ कर देता है। उस अवस्थामें मनुष्यको इस बातके मिथ्या भ्रममें न फँस जाना चाहिए कि दो चार रोज भोजन न मिलनेके कारण ही हमारे प्राण निकल जायँगे। हमारे लिए भय या चिन्ता करनेका कोई कारण नहीं है। प्रकृति हमारी सबसे बड़ी रक्षक है। वह बहुत अच्छी तरह जानती है कि किस अवसरपर क्या होना चाहिए। प्रकृति-देवीकी गोदमें पड़-कर सुखी और स्वस्थ बननेका अभ्यास करो, रोगोंको विकार दूर करनेका हेतु या कारण समझो, विषके समान कड़ुई दवाओं और पैने नश्तरोंके कारण होनेवाले भीषण कष्टोंसे बचने और एक दो दिनके थोड़ेसे शारीरिक कष्ट सहनेका अभ्यास करो और तब देखो कि तरह तरहकी दुर्बलताओं और रोगोंसे मुक्त होकर तुम कितनी जल्दी प्रसन्न और सन्तुष्ट हो जाते हो। याद रक्खो कि हमें जितनी शारीरिक वेदनायें होती हैं वे सब किसी न किसी रूपमें प्राकृतिक नियमोंका उल्लंघन करनेके कारण ही होती है। जो मनुष्य प्राकृतिक नियमोंका पालन करता है, प्रकृतिका मनन करके अपने आपको उसपर छोड़ देता है और कष्टके समय उसे छोड़-कर किसीकी सहायता नहीं लेता, वही सबसे बड़ा भाग्यवान्, सबसे अधिक बुद्धिमान् और सबसे ज्यादह सुखी है। साथ ही यह भी याद रक्खो कि तरह तरहकी दवाइयोंकी पुड़ियाँ खाना, शीशियाँ पीना, गोलियाँ निगलना, नश्तर लगवाना आदि बातें मनुष्यके लिए कभी स्वाभाविक नहीं हो सकतीं। शरीरकी सृष्टि प्रकृतिसे होती है और उसका पालन पोषण तथा रक्षण आदि भी प्रकृतिके नियमानुसार ही हो सकता है, अन्य उपायों या नियमोंसे नहीं। प्राकृतिक चिकित्साके विरोधी यह बात कह सकते हैं कि बड़े बड़े रोग ओषधियों और चीर-फाड़से अच्छे हो जाते हैं, पर उन्हें यह बात भूल न जानी चाहिए कि उन भयंकर रोगोंका बीजा-

पोषण भी स्वयं उन्हीं ओषधियों और चीर-फाड़से ही होता है। अथवा किसी दशामें यदि उन ओषधियों और चीर-फाड़से न हो तो कमसे कम प्राकृतिक नियमोंके उल्लंघनसे अवश्य होता है। यदि आरंभसे ही मनुष्य प्राकृतिक नियमोंका पालन करे और अप्राकृतिक उपचारोंसे बचता रहे, तो उसे कोई रोग उत्पन्न भी हो तो प्रकृतिकी शरणमें आते ही वह अवश्य दूर हो जाता है।

शरीर और उपवास

शरीर शास्त्रवेत्ताओंका मत है कि भोजन पचानेके लिए अपने शरीरकी जीवन-शक्तिपर हमें उतना ही बोझ डालना चाहिए जितनेसे हमारे शरीरका काम भलीभाँति चलता रहे। उस पर व्यर्थ और आवश्यकतासे अधिक बोझ डालकर उसका अपव्यय और ह्रास करना एक प्रकारकी आत्म हत्या है। यह तो हुई साधारण और नित्यप्रतिके कामकी बात। अब विशेष अवसरों और अवस्थाओंको लीजिए। अपने शरीरको थोड़ी देरके लिए रसोईघर समझ लीजिए और पक्वाशयको रसोइया मानिए। यदि आँधी चलनेके कारण रसोईघरमें बहुतसी धूल और गर्द भर जाय, उसकी दीवारकी दो-चार ईंटें निकल जायँ, छप्परका कुछ अंश टूटकर गिर पड़े अथवा इसी प्रकारका और कोई व्यत्यय उपस्थित हो, तो विचारिए कि उस समय आपका क्या कर्तव्य होगा? आप पहले रसोईघरको झाड़ बुहारकर गर्द और धूलसे साफ करेंगे और उसके टूटे हुए अशोंकी मरम्मत करके उसे काम चलाने योग्य बना देंगे अथवा तुरन्त रसोइएको आज्ञा देंगे कि वह उस ... और गन्दे स्थानमें तुरन्त आपके लिए रसोई बनावे? उ... आप भंडारमें रक्खे हुए सत्तू, चने, गुड़ या मिठाई ... काम चला लेंगे या रोजकी तरह ... कढ़ी, चटनी और रोटी आदिकी आशा ... ही ... है कि प्रकृति हमारी सब आवश्यक...

पूर्तिके उपाय यह पहलेसे ही कर भी रखती है। हमारे शरीरके भीतर चरबी आदि अनेक ऐसे पदार्थ भरे पड़े हैं जो आवश्यकता और अड़चनके समय बड़ी सरलतासे हमारे पकाशयकी प्रधान आवश्यकताको पूरा कर सकते हैं। यह तो हुई उस समयकी बात जब कि हमारी अग्निको और कामोंसे छुट्टी मिल चुकी हो और वह अपनी स्वाभाविक स्थितिमें पहुँचकर अपना नित्यकृत्य करनेके लिए तैयार बैठी हो। रोग और व्याधि आदिके समय तो उसे अपनी सारी शक्ति दोषोंको नष्ट करनेमें ही लगा देनी पड़ती है। उस दशामें यदि हम उससे कोई और काम लें, उसका बल किसी दूसरी तरफ लगा दें तो यह कब सम्भव है कि वह हमारे शरीरके दोषोंको बाहर निकालने या नष्ट करनेमें समर्थ होगी? उस अवस्थामें हमें यही उचित है कि जहाँतक हो सके हम उसे सब प्रकारके बोझोंसे हलका कर दें, जिसमें वह अपनी सारी शक्ति हमें नीरोग बनानेमें लगा सके। रोग आदि होने पर हमारी अग्नि स्वय कोई दूसरा काम नहीं करना चाहती और यही कारण है कि बहुधा रोगोंमें लोगोंकी भूख मारी जाती है। उस समय नित्यक्रिया समझकर बलपूर्वक पेटमें भोजन उतारा जाता है और रोगको मनमाना बढ़नेके लिए अवसर दिया जाता है। यहाँतक कि लोग भूख लगनेको भी एक रोग ही समझ बैठते हैं। उनकी समझमें यह नहीं आता है कि जठराग्नि हमें सूचना दे रही है कि— "रसोईघरकी मरम्मतकी आवश्यकता है; मैं अपना काम भंडारमें रक्खी हुई चीजोंसे चलाकर यह मरम्मत कर डालूँगी।" हमारे शरीरमें बहुतसे ऐसे फालतू पदार्थ हैं, जो उपवास कालमें हमारे शरीरका काम चला देते हैं और फिरसे जिनकी भरती बादमें होती रहती है। हमारे शरीरमें बहुतसे ऐसे पदार्थ भी होते हैं जो वृद्धावस्थाके लिए जमा होते हैं; पर जब बीचमें शरीरकी मरम्मतकी आवश्यकता होती है तब उन्हींसे काम चल जाता है और मरम्मत हो चुकने पर धीरे धीरे उनकी पूर्ति होती रहती है। रक्षित पदार्थ आवश्यकता पड़नेपर तुरन्त ही काममें लाये जा

ही प्राण मानते हों, उस युगमें लोगोंको पखवाड़ों बल्कि महीनों निराहार रहनेके गुण सहजमें नहीं समझाये जा सकते। केवल यह कह देना कि महीने पन्द्रह दिन तक निराहार रहनेसे मनुष्यका शरीर सब प्रकारसे नीरोग और बलिष्ठ हो जाता है, यथेष्ट नहीं है। इसपर लोगोंको तरह तरहकी शंकायें हो सकती हैं। इस स्थलपर उन्हीं शंकाओंपर विचार किया जायगा।

अकाल आदिके समय हम लोग हजारों आदमियोंको बिना अन्नके भूखों मरते हुए देखते और सुनते हैं और इसी लिए उपवासके सम्बन्धमें सबसे पहले यही शंका हो सकती है कि बिना अन्नके मनुष्य अधिक समयतक जीवित नहीं रह सकता। इसलिए उपवास और भूखों मरनेमें जो अन्तर है उसका यहाँ बतलाना उचित जान पड़ता है। पहले बतलाया जा चुका है कि प्रकृतिने हमारे शरीरमें बहुतसा ऐसा सामान भर रक्खा है, जो विशेष आवश्यकताके समय हमारे काम आ सकता है। जब हमें अन्न नहीं मिलता तब हमारे शरीरके उसी फालतू सामानसे हमारा काम चलता है। इस देशमें नवरात्र आदिके समय बहुतसे लोग नौ नौ दिन तक बिना अन्न और जलके रह जाते हैं। बहुतसे लोग इससे भी अधिक दिनोंतक निराहार रहते हैं। उस कालमें उनका शरीर दुबला हो जाता है, चेहरा उतर जाता है और आँखें धुस जाती हैं। इस शारीरिक ह्रासका मुख्य कारण यही है कि उनके शरीरका फालतू सामान उनके पोषणमें लग जाता है। फालतू अंशके समाप्त हो जाने पर शरीरका पोषण उन पदार्थोंसे होने लगता है, जो हमारे शरीरके आवश्यक अंश हैं और जिनसे हमारे शरीरका संगठन हुआ है। मनुष्य उसी समय मरता है जब कि शरीरके फालतू अंशोंकी समाप्तिके बहुत बाद उसके आवश्यक अंश भी नष्ट हो चुकते हैं। जब तक मनुष्यके शरीरके आवश्यक अंशोंके पोषणका आरम्भ नहीं होता तब तक मनुष्य केवल दुबला ही होता है, पर आवश्यक अंशोंके पोषणमें लग जानेके उपरान्त उसके शरीरकी ठठरी मात्र बच रहती है। उपवासकाल उसी

समय तक माना जाता है जबतक कि शरीरका पोषण उसके फालतू पदार्थोंपर होता रहे; पर जब आवश्यक अंशोंकी नौबत आ जाय तब वह उपवास नहीं बल्कि भूखों मरना है। आजतक ऐसा कभी नहीं सुना गया कि केवल दो तीन दिनतक अन्न न मिलनेके कोई मनुष्य मर गया हो। उपवासके कारण मनुष्यको नियमित समयपर भले ही थोड़ी बहुत भूख लग जाय और उसके उपरान्त कुछ और समय टल जाने पर वह व्याकुल हो उठे, पर उसकी वह व्याकुलता अधिक समय तक नहीं ठहर सकती। ज्यों ही हमारे शरीरके फालतू अंशोंसे हमारा पोषण आरम्भ होने लगेगा त्यों ही हमारी व्याकुलता जाती रहेगी। यह व्याकुलता कभी किसी समयमें एक या दो दिनसे अधिक नहीं ठहर सकती। इस स्थितिके उपरान्त जैसा कि आगे चलकर विस्तृत रूपसे बतलाया जायगा, मनुष्यके शरीरके फालतू अंश और उनके साथ रोग विकार और दोष आदि पचने लगते हैं। उन सबके पच जानेके उपरान्त मनुष्यको एक बार फिर भूख लगती है और वही भूख वास्तविक होती है। यदि उस समय मनुष्यको भोजन न मिले तो फिर उसके शरीरके आवश्यक अंशोंकी बारी आ जाती है और इसके परिणाम-स्वरूप उसका शरीरान्त हो जाता है। यही कारण है कि एक विद्वान्ने उपवास और भूखों मरनेका अन्तर बतलाते हुए कहा है कि—'उपवासका आरम्भ भोजन छोड़ने और अन्त वास्तविक भूखसे होता है और भूखों मरनेका आरम्भ वास्तविक भूख और अन्त प्राण छूटनेसे होता है।"

जो लोग बहुत मोटे हों और अपनी मोटाई कम करना चाहते हों, उनके लिए उपवाससे बढ़कर उत्तम और सहज और कोई उपाय नहीं हो सकता। इससे उनके शरीरकी बहुत सी फालतू चरबी और दूसरे पदार्थोंकी समाप्ति हो जायगी। युरोप और अमेरिका आदि देशोंमें बहुतसे लोगोंने केवल उपवासकी सहाय-

नामें अपनी बहुतसी मोटाई कम कर दी है और वे आगेकी अपेक्षा कहीं अधिक सरलतासे चलने फिरने लगे हैं।

उपवासके आरम्भमें ही शरीर कुछ क्षीण अवश्य होने लगता है, पर उससे शरीरको लाभ ही होता है, हानि नहीं। अनुभवसे यह बात भी सिद्ध हो चुकी है कि उपवास-कालमें विशेष अवस्थाओंमें मनुष्यका शारीरिक बल आश्चर्य्यरूपसे बढ़ जाता है। स्वयं डाक्टर मेकफेडनने, जिनके ग्रन्थसे इस पुस्तकके लिखनेमें बहुत सहायता मिली है और जिनका उपवाससम्बन्धी निजका अनुभव पाठकोंको आगे चलकर बतलाया जायगा, यह प्रमाण जाननेके लिए एक प्रयोग किया था जो उपवासके कारण शारीरिक बलपर पड़ता है। उपवास आरम्भ करनेके दिन वे जमीनपर चित लेट गये और अपनी दोनों हथेलियोंपर उन्होंने डा मन वजनके एक आदमीको खड़ा करके लेटे लेटे हाथोंके बल ऊपरकी ओर उठाया। उस दिन वे उस आदमीको छातीसे प्राय तीन ही चार इंच ऊपर उठा सके थे, पर उपवासके अन्तिम और सातवें दिन जब उन्होंने उसी आदमीको अपनी हथेलियोंप खड़ा करके उसे ऊपरकी ओर उठाया तब वह मनुष्य उनके हाथोंसे पूरी ऊँचाई तक—छातीसे लगभग दो फुट ऊपर तक—उठ गया। अवश्य ही डाक्टर महाशयने उपवास-कालमें व्यायाम नहीं छोड़ा था और नित्य वह दस मीलका चक्कर लगाते रहे थे। इसी प्रकार एक और आदमी था, जो उपवासके प्रथम दिन आ मन वजनका डंबेल अपने कन्धे तक भी न उठा सकता था, प इक्कीस दिनोंतक उपवास करनेके उपरान्त उसने वही डंबे सिरसे ऊपर उतनी ऊँचाई तक उठाया था, जितनी ऊँचाई त कि उसका हाथ उठ सकता था।

मस्तिष्क और उपवास

कुछ लोगोंको यह शंका हो सकती है कि उपवास-कालमें मस्तिष्कका ह्रास सम्भावित है, पर यह बात भी बिलकुल व्यर्थ है। डा० एडवर्ड हूकर डेवी जो उपवास चिकित्साके आविष्कर्त्ता और सबसे बड़े पक्षपाती हैं, कहते हैं कि उपवाससे मानसिक बल कभी क्षीण नहीं होता। उनके मतसे मस्तिष्कका पोषण जिन पदार्थोंसे होता है वे पदार्थ स्वयं मस्तिष्कमें ही उपस्थित रहते हैं, शरीरके और किसी भागसे मस्तिष्क तक पोषक द्रव्य पहुँचानेकी आवश्यकता नहीं होती। उसका पोषण बिना श्रमके ही आपसे आप होता है, और वह अपना काम बराबर करता है। उपवास कालमें प्रायः बहुतसे लोग अपना नित्यका लिखने पढ़ने आदिका काम करते हुए देखे गये हैं। मनुष्यके शरीरको यदि तरह तरहकी कलोंका समूह मान लिया जाय, तो मस्तिष्क उन कलोंको चलानेवाला प्रधान इंजिन ठहर सकता है। जीवनकी सारी शक्तियोंका उद्गम मस्तिष्क ही है। रोग या निराहारके कारण उसके कार्य्यमें किसी प्रकारका व्यतिक्रम नहीं हो सकता। मस्तिष्क जिस समय काम करते करते थक जाता है, उस समय उसकी गई हुई शक्ति आराम करनेसे ही लौटती है, चौकेमें जा बैठनेसे नहीं। रातभर आराम करनेके कारण मस्तिष्ककी और फलतः सारे शरीरकी गई हुई शक्तियाँ लौट आती हैं और प्रातःकाल मनुष्य कठिनसे कठिन मानसिक या शारीरिक परिश्रम करनेके योग्य हो जाता है। परीक्षा और अनुभवसे यह भी सिद्ध हुआ है कि प्रातःकाल जल पान न करनेवाले लोग जल-पान करनेवालोंकी अपेक्षा अधिक और रातको भोजन न करनेवाले लोग भोजन करनेवाले लोगोंकी अपेक्षा अधिक और भारी काम करनेमें समर्थ होते हैं। इसका मुख्य कारण यही है कि पेटसे व्यर्थ और अनावश्यक काम न लेनेके कारण मनुष्यकी बहुत सी शक्ति व्यर्थ नष्ट होनेसे बच रहती है। खेतों और ग्रामों आदिमें

कठिन परिश्रम करनेवाले लोगोंके अनुभवसे ... चुकी है।

यदि वास्तविक दृष्टिसे देखा जाय तो मस्तिष्क और उदर दोनों एक दूसरेके विरोधी हैं। यदि पेटमें थोड़ासा भी भोजन हो मस्तिष्कसे अधिक काम लिया जाय तो पाचन क्रियामें बड़ी बाधा पड़ती है। इसी प्रकार यदि पेट खूब भरा हो तो मस्तिष्कसे काम नहीं लिया जा सकता। ये दोनों ही काम परस्पर एक रेके लिए वैसे ही बाधक हैं जैसे नींद आनेमें शोर आदि। भोजनके कुछ समय बाद मस्तिष्कसे कोई काम नहीं लेना चाहिये और मस्तिष्कसे सबसे अच्छा काम उसी समय लिया जा सकता है, जब कि पेटको अपनी चक्की चलानेसे फुरसत मिले। अतः यह सिद्ध है कि उपवाससे मस्तिष्कके कामोंमें कोई बाधा नहीं पड़ती बल्कि उलटे और उसमें सहायता मिलती है।

उपवास-कालमें शरीरकी दशा

जिस उपवासके गुण इस पुस्तकमें बतलाये गये हैं उसमें केवल जलको छोड़कर बाकी और सब प्रकारके खाद्य पदार्थ छोड़ देनेकी आवश्यकता होती है। जिस दिनसे आप उपवास करना चाहें उसी दिनसे आप भोजन आदि छोड़ सकते हैं और तब आपका उपवास आरम्भ हो जायगा। उपवासके पहले तक दो अथवा अधिकसे अधिक तीन दिन बहुधा बड़े ही कष्टसे बीतते हैं और उन दिनोंका उतने कष्टसे बीतना बहुत ही स्वाभाविक भी है। प्रत्येक पुराना अभ्यास छोड़ने और नया अभ्यास करनेमें चाहे वह नया अभ्यास कितना ही प्राकृतिक, सहज और लाभदायक क्यों न हो सभी मनुष्योंको थोड़ा बहुत कष्ट अवश्य होता है। अपने शरीरको नये अभ्यासवाली परिस्थिति तक ले आने और उसके अनुकूल बनानेमें कुछ परिश्रम अवश्य करना

पड़ता है। जो लोग उपवासचिकित्सालयमें अपनी चिकित्सा कराने के लिए जाते हैं, आरम्भके दिनोंमें उनमेंसे बहुतोंकी दशा बहुत खराब हो जाती है, उनकी आँखोंके सामने अँधेरा आ जाता है, सिरमें चक्कर आने लगते हैं, कै होती है और उन्हें यह जान पड़ता है कि हमारा शरीर एकदम खाली हो गया है। इसके अतिरिक्त और भी कई तरहके ऐसे लक्षण दिखाई पड़ते हैं जिनसे उनकी विकलता और कष्टकी चरम सीमा सी मालूम होने लगती है। पर ये सब लक्षण दो या तीन दिनसे अधिक नहीं ठहरते। उनकी असाधारण, पर केवल अभ्यासके कारण लगनेवाली और कृत्रिम भूख नष्ट हो जाती है और भोजनसे उनकी रुचि स्वय ही हट जाती है। जो मनुष्य कष्टके ये दो तीन दिन बिता देता है उसे स्वास्थ्य और बलके राजपथपर पहुँचा हुआ ही समझिए।

तीसरे या चौथे दिन भोजनसे जिसकी अरुचि हो जाती है उसकी दशा प्राय वैसी ही हो जाती है जैसी दो तीन दिन बुखार आने और छूट जाने पर होती है। जीभका स्वाद बिगड़ जाता है और उसपर कुछ पीलापन आ जाता है। इन चिह्नोंको बहुत ही शुभ समझना चाहिए, क्यों कि इनसे सिद्ध होता है कि शरीरका विकार कितनी जल्दी जल्दी बाहर निकल रहा है। इसके बाद ही ये चिह्न प्रकट होने लगते हैं, जिनसे सिद्ध होता है कि शरीरके सारे विकार प्राय बाहर निकल चुके हैं। साँस अधिक सरलतासे और गहरी चलने लगती है और फेफड़े अपना काम उत्तमतासे करने लगते हैं। पर इस अवसरपर यह बात भूल न जानी चाहिए कि बहुधा उपवास करनेवालोंके लक्षण एक दूसरेसे भिन्न हुआ करते हैं, और सब लोगोंमें समान रूपसे पाई जानेवाली बातें बहुत ही कम होती हैं। यदि एक ही मनुष्य दो बार अधिक दिनोंतक उपवास करे तो उसके दोनों बारके लक्षण एक दूसरेसे बहुत भिन्न होंगे, पर इसमें सन्देह नहीं कि सब प्रकारके लक्षणों वाले उपवासोंका फल निश्चयात्मक और एकसा स्वास्थ्यप्रद होता

है। सबके परिणामस्वरूप शरीरके सारे विकार, दोष, विष और रोग आदि बाहर निकल जाते हैं और मनुष्यके शरीरमें बल और मुखपर तेज आ जाता है। सभी उपवास करनेवालोंको अच्छी स्वाभाविक भूख लगती है और दिनपर दिन उनका शरीर अधिक बलिष्ठ और सुखी होने लगता है।

उपवासके आरम्भमें सिर-दर्द, चक्कर आदि तरह तरहके कष्टोंका मुख्य कारण यही है कि हमारा शरीर भीतरी मल और विकार बाहर निकालनेका प्रयत्न करता है। उस दशामें यदि गुदाके मार्गसे गरम पानीका एनिमा लिया जाय और पेट तथा कमरके ऊपरी भागमें हल्का सेंक किया जाय तो पेटमेंसे मल और विकारके बाहर निकलनेमें और भी सुभीता हो जाता है और कष्टसे छुटकारा हो जाता है। उपवासके आरम्भमें कान तथा आँखें भी पीड़ित होती हैं, पर उपवासके अन्तमें ये भाग बिलकुल नीरोग हो जाते हैं। तरह तरहके इन कष्टोंसे जो केवल आरम्भमें ही और वह भी शरीरकी सशुद्धिके लिए ही होते हैं, कभी घबराना न चाहिए। उस दशामें हमारे शरीरके प्रत्येक अंग और प्रत्येक शक्तिको विकार और रोग आदि शत्रुओंके साथ उसी प्रकार अपना सारा बल लगाकर लड़ना पड़ता है जिस प्रकार जानपर आ बनतेके समय किसी मनुष्यको अपने शत्रुके साथ अथवा अकेले जंगलमें किसी जंगली जानवरके साथ लड़ना पड़ता है। ज्यों ज्यों कष्ट बढ़ते जायँ त्यों त्यों यही समझना चाहिए कि विकारोंका नाश हो रहा है और उनका अन्त समीप ही है। विकारोंका नाश होते ही कष्टोंका भी अन्त हो जाता है और मनुष्यकी दशा आपसे आप सुधरने लगती है।

कुछ अवस्थाओंमें उपवास करनेवालोंके शरीरसे बहुत ही बदबूदार पसीना निकलता है। यह भी शरीरसे विकारके बाहर निकलनेका बहुत बड़ा लक्षण है। कुछ लोगोंकी जीभका स्वाद उपवासके चौथे या पाँचवें दिन बेतरह बिगड़ जाता है और [illegible]

दशामें यदि उन्हें वमन आवे तो कुछ आश्चर्य नहीं। किसी किसी उपवास करनेवालेका मुँह बहुत खट्टा हो जाता है और उसमेंसे बहुत लार बहती है। कभी कभी उसकी जीभ और होंठोंपर छाले भी पड़ जाते हैं। बहुत अधिक मिठाइयाँ खानेवालों और पित्तके दोषवालोंको अपेक्षाकृत कुछ अधिक कष्ट होता है। कुछ उपवास करनेवालोंको अठवारों तक के होती रहती है। इसी प्रकारके और भी अनेक कष्ट होते रहते हैं। कष्टोंकी इस असमानताका मुख्य कारण यह है कि प्रत्येक मनुष्यके शरीरकी भीतरी अवस्था एक दूसरेसे बहुत ही भिन्न होती है और प्रत्येक शरीरमें एक विलक्षण प्रकारका विकार होता है। अपनी स्थिति और सुविधाके अनुसार शरीर उन विकारोंको जिस मार्गसे और जिस प्रकार सरलतापूर्वक निकाल सकता है, वह उसी मार्गसे और उसी प्रकार उन्हें बाहर निकालता है। जिस मनुष्यके शरीरमें जितना अधिक विकार होता है, उपवास-कालमें उसे उतना ही अधिक कष्ट होता है और जिसे जितना अधिक कष्ट होता है, उपवासकी समाप्ति पर वह उतना ही अधिक नीरोग और स्वस्थ हो जाता है।

उपवास-सम्बन्धी अनुभव

उपवास-कालमें शरीरकी जो दशा होती है, उसका सबसे अच्छा पता उन लोगोंके लिखित अनुभवोंसे हो सकता है, जो प्रसिद्ध उपवासकरियोंने लिख रक्खे हैं। यद्यपि इस प्रकारके लिखित अनुभव संख्यामें बहुत अधिक और विस्तृत हैं तथापि उनमेंसे कुछ चुने हुए अनुभवोंका सारांश यहाँपर दे देना बहुत ही उपयुक्त और आवश्यक जान पड़ता है। सबसे पहले डाक्टर बरनर मैकफेडनके निजके अनुभवको ही लीजिए जो प्राकृतिक चिकित्साके बड़े अच्छे विद्वान् हैं, जिन्होंने कई प्राकृतिक चिकित्सालय खोलकर हजारों रोगियोंको अच्छा किया है और जिनके बनाये हुए तत्सम्बन्धी बीसियों अच्छे अच्छे ग्रन्थों और

विश्वकोशके पाँच खडोंका आश्चर्यजनक प्रचार हुआ है। रामकहानी आपके मुहँसे ही सुनी जानेके योग्य है; अतः वह आपके शब्दोंमें ही यहाँपर दी जाती है। आप कहते हैं —

" मुझे पहले न्यूमोनियाके सिवा और भी कई छोटे मोटे रोग थे। उस समय तक उपवासचिकित्साके सम्बन्धमें कई ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके थे पर मैंने बिना उन्हें पढे ही अपने लिए चिकित्साके सिद्धान्त स्वयं स्थिर किये। ये सिद्धान्त मुझे इतने गुणकारी प्रतीत हुए हैं कि गत पन्द्रह वर्षोंसे मैंने इनके सिवा दूसरे चिकित्सा-सिद्धान्तोंका ग्रहण ही नहीं किया। पहले में चार दिनतकके उपवास किया करता था और उस बीचमें भी कभी कभी एकाध सेव या और कोई फल खा लेता था। इसके बाद मैंने बिना किसी प्रकारके भोजनके एक सप्ताहतक रहना निश्चय किया। उपवासके पहले दिन मैं तौलमें ढाइ सेर और दूसरे दिन दो सेर घट गया। इसी प्रकार मेरा शरीर तौलमें घटने लगा, पर साथ ही उस घटनेका मान सा घटता जाता था। यहाँतक कि सातवें दिन मैं तौलमें केवल आध सेर घटा। सब मिलाकर सात दिनोंमें मेरा शरीर साढे सात सेर घट गया था।

" और लोग तौलमें इससे अधिक घट सकते हैं, पर मेरे कम घटनेका मुख्य कारण यह था कि मैं नित्य खूब व्यायाम करता था। मैं रोज दस मीलका चक्कर लगाया करता था। इस बीचमें उपवासके केवल दूसरे दिन मुझे सबसे अधिक दुर्बलता मालूम हुई थी। मैं सबेरे उठते ही टहलने चला जाता था। आरम्भमें मुझे कुछ दुर्बलता मालूम होती थी, पर दो एक मील चुकनेके बाद वह दुर्बलता न रह जाती थी। किसी स्थानपर थोडी देर तक बैठ जानेके उपरान्त उठनेके समय भी मुझे कुछ अधिक घबराहट रही। मैं अपने नित्यके काम बराबर और नियम पूर्वक किया करता था। मानसिक परिश्रम करनेमें मुझे और दिनोंकी अपेक्षा कम कष्ट होता था और मेरा मस्तिष्क बिलकुल स्वच्छ जान पडता था। पेटमें जो थोडी बहुत गडबडी होती थी वह बहुतसा ठंडा पानी पीनेसे शान्त हो जाती थी। उपवासके छठे और सातवें दिन बडे ही आरामसे बीते थे। यद्यपि मैं समझता था कि थोडे प्रयत्नसे ही मैं और तीन चार सप्ताह तक उपवास कर सकता हूँ, तथापि उद्देश्य पूरा हो जानेके कारण मैंने वैसा करनेकी आवश्यकता न समझी। चौथे दिन मेरी इच्छा कुछ खानेकी हुई थी। साधारणतः इस प्रकारकी भूखसे बचनेके लिए मनको किसी दूसरी तरफ लगा देनेसे बहुत लाभ होता है। पर उस दिन मुझे

ई काम न था, दो चार दोस्तोंसे बातचीत करनेके बाद भी समय बच ही गया। भूख अधिक जोर कर रही थी, इसलिए मैं किसी भोजनागारमें जानेके विचारसे चल पड़ा। कुछ दूर चलनेके बाद मेरी प्रवृत्ति बदल गई और मैं भोजनागारमें जानेके बदले पासकी एक व्यायामशालामें चला गया और आध घंटे तक मैंने वहाँ खूब कसरत की। उस समय उपवास छोड़नेकी मेरी इच्छा एकदम जाती रही। अवश्य ही उन दिनों मेरा चेहरा बहुत उतर गया था और आँखें बहुत धँस गई थीं। पर सातवें दिन मेरे शरीरमें आश्चर्यजनक बल आ गया था। उपवासके आरम्भमें मैं केवल पचास पाउंडका डंबल ही उठाता था, पर उसके अन्तिम दिन मैंने पहले साठ, तब सत्तर और अन्तमें सौ पाउंडतकका डंबल उठा लिया। उसी दिनसे मैंने निश्चय कर लिया कि यह समझना बड़ी भारी भूल है कि उपवास करनेसे शरीरकी सारी शक्ति नष्ट हो जाती है।"

मिस हाल नामकी एक महिलाको एक बार लकवा मार गया था। जब अनेक प्रकारके औषधोपचारसे उनका रोग अच्छा नहीं हुआ तब अन्तमें उन्होंने चालीस दिनोंतक उपवास किया; जिससे उनका शरीर एकदम नीरोग हो गया। अपने उपवासके सम्बन्धमें वे लिखती हैं —

"उपवासके चालीस दिन बितानेमें मुझे बहुत अधिक कठिनता नहीं हुई। जब कभी मुझे अधिक भूख मालूम होती थी तब उसे शान्त करनेके लिए मैं केवल पानी पी लेती थी। आरम्भमें मेरे मित्र, सम्बन्धी और शुभचिन्तक मुझसे भोजन करनेके लिए बहुत आग्रह किया करते थे पर मुझे स्वभावतः बिना भोजनके रहना ही अधिक उत्तम और सुखप्रद जान पड़ता था, इसलिए मैं उन लोगोंको साफ जवाब दे दिया करती थी।

"उपवास कालमें मैं नित्य एक डाक्टरके आफिसमें छः घंटे तक काम किया करती थी और नित्य बहुत दूर तक पैदल चला करती थी। उपवासके पाँच दिनसे मैं उतनी तेजीसे चलने लगी कि जितनी तेजीसे पहले कभी नहीं चल सकती थी। पहले बीस दिनोंमें ही मेरे शरीरमें बहुत कुछ शक्ति और फुरती आ गई थी। उन्हीं दिनों मुझे आरोग्यताका वास्तविक सुख मिलने लगा और शरीरमें किसी प्रकारकी व्याधि न रह जानेके कारण मैं बिलकुल निश्चिंत हो गई थी।

" मेरे शरीरका मांस धीरे धीरे बहुत कम होता जाता था और कुछ सरदी सी मालूम होती थी। मैं समझती हूँ कि यदि मैं जाड़ेके दिनोंमें करती तो सरदीके कारण मुझे और भी कठिनता होती। उपवास-कालमें मुझे बड़ा लाभ यह हुआ कि मेरी विचार-शक्ति बहुत बढ़ गई थी। उपवासके कै दिन बीत जानेके बाद भोजन करनेके लिए मेरे मित्रोंका आग्रह और भी बढ़ गया था, क्योंकि उन दिनों मैं देखनेमें बहुत ही दुर्बल जान पड़ती थी। पर मैं उस ओरसे एकदम निश्चिन्त थी और मुझे भोजनकी कोई आवश्यकता जान न पड़ती थी। कभी कभी मेरी इच्छाके विरुद्ध भी मेरी आँखें झपने लगती थीं और मुझे चक्कर सा मालूम होता था। मुझे नींद बहुत अधिक आती थी और सन्ध्याके सात बजे ही बिस्तरपर जाकर पड़ जाती थी। उस समय मुझे बहुत अधिक थकावट मालूम होती थी।

" उपवासके अट्ठाइसवें दिन मुझे विशेष कष्ट हुआ था। मेरा बायाँ हाथ जिसे लकवा मार गया था, अपेक्षाकृत बहुत अधिक सूख गया था और मुझे उसकी चिन्ताने आ घेरा था। उस समय यह बात मेरी समझमें न आई थी कि प्रकृति मेरे हाथके रोगका नाश कर रही है।

" उन्तालीसवें दिन डाक्टरने मेरी जीभकी परीक्षा की। उस दिन उसे मेरा शरीर बहुत ही स्वस्थ दशामें जान पड़ा। उस दिन उसने कह दिया कि अब मुझे भूखे रहनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। चालीसकी संख्या पूरी करनेके विचारसे और एक दिन मैंने भोजन नहीं किया। उस अन्तिम दिन मैं बड़े ही आनन्दमें रही और मैंने नित्यकी अपेक्षा कहीं अधिक काम किया। इन चालीस दिनोंमें तौलमें प्रायः सत्ताइस पाउंड घट गई थी।

" इकतालीसवें दिन मैंने आधा सन्तरा खाया पर वह आधा सन्तरा भी मुझे जबरदस्ती खाना पड़ा था। क्योंकि उस समय मुझे तनिक भी भूख न थी। सन्तरेमें भी मुझे कोई स्वाद न आता था। उसके दूसरे दिनसे मुझे भूख लगने लगी और मैंने दो।दो घंटेके बाद आधा आधा सन्तरा खाना आरम्भ किया। इस प्रकार धीरे धीरे मेरी भूख बढ़ती गई। उपवास-कालके बीतनेके तीन सप्ताह बाद मैं इच्छानुसार सब चीजें खानेके योग्य हो गई। तबसे मेरा शरीर बहुत ही नीरोग है और मेरे जिस हाथको लकवा मार गया था उसमें पहलेकी अपेक्षा अधिक बल आ गया है।"

प्राय तीस वर्षसे अधिक हुए कि डाक्टर हेनरी एस० टैनरने एक बार चालीस दिनों तक उपवास किया था। आपने अपने उपवासके आरम्भिक पन्द्रह दिनों तक जल भी नहीं पीया था। उपवास चिकित्सकोंका मत है कि भोजनके विना तो मनुष्य जीवित रह सकता है, पर जलके विना उसके प्राण नहीं बच सकते। डाक्टर टैनरने अपने निजके अनुभवसे इस सिद्धान्तको भी बहुतसे अंशोंमें खण्डित कर दिया। पर इसमें सन्देह नहीं कि जिस दिनसे उन्होंने पानी पीना आरम्भ किया था उस दिनसे उनका बल बराबर बढ़ने लगा था। पहले ही जिस समय उन्होंने जल पिया था, एक समाचारपत्रके संवाददाताके साथ उन्होंने दौड़की शर्त लगाई थी। संवाददाता समझता था कि इतने दिनों तक निराहार रहनेके कारण डाक्टर महाशयमें दौड़नेकी कौन कहे, चलनेकी भी शक्ति न होगी। इस तथा और भी कई कारणोंसे डा० टैनरके उपवासकी युरोप और अमेरिकामें खूब चर्चा फैली थी। उपवास समाप्त करनेके कुछ दिनों बाद डाक्टर टैनर एकान्तवास करनेके लिए किसी जंगलमें चले गये थे। समाचारपत्रोंमें उनकी मृत्युका झूठा समाचार छप गया था। पर हालमें डाक्टर मैकफेडनने उनके पास एक पत्र भेजकर उनसे प्रार्थना की थी कि वे उपवासके सम्बन्धमें अपना कुछ अनुभव लिख भेजें। उन्होंने यह प्रार्थना स्वीकार करके उपवासके बहुतसे लाभ भी लिख भेजे थे। बहुत वृद्ध हो जाने पर भी वे अब तक बड़े ही हृष्ट पुष्ट और नीरोगी हैं।

अमेरिकाके सुप्रसिद्ध लेखक मार्क ट्वेनने जो एक बार भारत भी हो गये हैं, उपवासके सभी गुणोंको मुक्तकण्ठसे स्वीकार किया है। उन्हें जब कभी जुकाम या बुखार होता था तभी वे तुरन्त उपवास करते थे। उपवास चिकित्सासम्बन्धी उनका लिखा हुआ " At the Appetite Cure " नामक एक बहुत अच्छा ग्रन्थ भी है, जिसमें यह बतलाया गया है कि जब तक खूब भूख न लगे तबतक कभी भोजन न करना चाहिए। अमेरिकाके अप्टन सिंक-

ठिअर नामक सुप्रसिद्ध लेखकने उपवाससे बहुत कुछ लाभ उठा- ई और यथासाध्य उसका समर्थन करके लोगोंको उसके गुण बतलाये हैं।

सबसे अधिक लंबा उपवास रिचर्ड फॉसेल नामक एक क्रिया था। इसने नब्बे दिनों तक किसी प्रकारका नहीं किया था। फॉसेलको भीषण रूपसे जलोदर रोग हो था और उसके पैरों तकमें बहुत सूजन आ गई थी। इस कारण उसका शरीर तौलमें लगभग पाँच मन हो गया था। एक होटलका मालिक था; पर शरीरके बहुत अधिक भारी रोगी हो जानेके कारण वह चलने फिरनेमें नितान्त गया था। जब वह सब प्रकारके औषधोपचारसे एकदम हो गया तब उसने उपवासकी शरण ली। एक बार उपवास नेके उपरान्त वह अच्छा हो गया था; पर उपवासके अन्तमें उस भोजन करनेमें कई भारी भूलें कीं, जिससे वह फिर बीमार गया। उस समय उसका शरीर तौलमें घटकर प्रायः पौने म मन रह गया था। दूसरी बार उसने नब्बे दिनों तक उपवा किया। उसके ये दोनों उपवास डा० मैकफेडनकी देख रेखमें हु थे। इतने अधिक दिनोंका उपवास शायद ही और किसीने आ तक किया हो। अपने उपवासकालका अधिकांश उसने या काम करनेमें और या व्यायाम करनेमें ही बिताया था। दू उपवासके आरम्भिक चालीस दिनों तक वह नित्य पन्द्रह मी पैदल चला करता था और इसके अतिरिक्त बहुत कुछ कसर भी करता था। भूखके कारण उसे केवल पहले सप्ताहमें ही कु अधिक कठिनता और बेचैनी हुई थी, इसके बाद उसे कभी को कष्ट नहीं हुआ। इसके बाद उसे फिर कभी भूख लगी ही नहीं उपवास-कालमें वह नित्य पाँच छः बड़े बड़े गिलास पानीके पीत था और कभी कभी उनमें दो चार बूँद नीबूका रस भी छोड़ लेत था। उपवास समाप्त करनेके उपरान्त भी तीन चार दिन त

उसके पेटमें किसी प्रकारका भोजन न ठहरता था। इसके बाद धीरे धीरे उसे भोजन पचने लगा और उसका शरीर बिलकुल निरोग और आगेसे बहुत हल्का हो गया।

इस अवसरपर हम दो एक ऐसे उदाहरण भी दे देना चाहते हैं, जिनसे यद्यपि उपवासके दैनिक क्रम आदिका तो पता नहीं चलता, पर उसकी सर्वश्रेष्ठ उपयोगिताका पता अवश्य लगता है। सन् १९०२ ई० में अमेरिकामें एक मनुष्यको अचानक एक रिवाल्वरके छूट जानेसे गोली लग गई और वह गोली उसके गुर्दे, जिगर और दाहिने फेफड़ेको चीरती तथा पाँच पसलियाँ तोड़ती हुई निकल गई। बड़े बड़े डाक्टरोंने उसे देखकर कह दिया था कि वह किसी प्रकार नहीं बच सकता और थोड़ी ही देरमें मर जायगा। पर वह मनुष्य उपवास चिकित्साका पक्षपाती था, इसलिए उसने दस दिनों तक बिलकुल कुछ न खाया। इस बीचमें प्रकृतिको उसे चंगा करनेका समय मिल गया और वह एक मासके उपरान्त बड़े आनन्दसे चलने फिरनेके योग्य हो गया। इसी प्रकार एक और आदमीको रेलमें घुटना दब जानेके कारण बहुत बड़ी चोट आ गई थी। डाक्टरोंने महीनों उसके शरीरमें पिचकारियोंसे अफीम तथा दूसरे मादक द्रव्य पहुँचाये, बराबर ह्विस्की और दूधका सेवन कराया और पचेसियों दवाइयाँ उसके पेटमें उतार दीं। पर किसीसे कुछ भी फल न हुआ और वह मनुष्य तौलमें पैंतालीस सेर घट गया। अन्तमें डाक्टरोंने निराश होकर उसकी चिकित्सा छोड़ दी और तब वह उपवास चिकित्सकोंके पाले पड़ा। पाँच मास तक बिना किसी प्रकारके अन्नके रहकर अन्तमें वह मनुष्य सब प्रकारसे नीरोग और हट्टा कट्टा हो गया।

इसी प्रकार और भी सैकड़ों हजारों ऐसे आदमियोंके वर्णन दिये जा सकते हैं जो चालीस चालीस और पचास पचास दिनों तक उपवास करके अजीर्ण, बवासीर, गरमी, कण्ठमाला, तापतिल्ली आदि सब तरहके रोगोंसे मुक्त हो गये हैं। यदि उन सबके

विवरण संग्रह किये जायँ तो एक बहुत बड़ा पोथा हो सकता अंगरेजीमें यह पोथा प्राय: तीन हजार पृष्ठोंमें मौजूद भी है, हजारों रोगियोंके विवरणके अतिरिक्त सैकड़ों ऐसे रोगियोंके भी हैं, जिन्हें बड़े बड़े डाक्टरोंने जवाब दे दिया था और केवल उपवासकी सहायतासे ही बिलकुल चंगे और नीरोग हो गये हैं।

उपवास-कालमें भयके चिह्न

साधारणत उपवास-कालमें किसी प्रकारका भय करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। डा० मैकफेडन जोर देकर यह बात कहते हैं कि मेरे हजारों रोगियोंमेंसे जिन्हें मैंने लम्बे लम्बे उपवास कराये, एक भी नहीं मरा; और प्राय: प्रत्येक दशामें उपवाससे सदा लाभ ही हुआ, हानि कभी नहीं हुई। तथापि जो लोग बहुत अधिक रोगी, दुर्बल या असमर्थ हो गये हों उन्हें भयके कुछ चिह्नोंका सामना करनेके लिए तैयार रहना चाहिए।

उपवास-कालमें कभी तो रोगीकी नाड़ी बहुत तेज चलने लगती है और कभी बहुत धीमी। यदि साधारणत नाड़ी एक मिनटमें ६० से ९० बार तक चलती हो तब तो किसी प्रकारकी चिन्ताकी बात नहीं है;* पर यदि वह इससे कम या अधिक चले और उपवास करनेवाला किसी योग्य डाक्टरकी देख रेखमें न रहकर स्वयं ही उपवास करता हो तो आवश्यकता पड़ने पर वह अपना उपवास छोड़ भी सकता है।

उपवास कालमें यह विश्वास मनसे एकदम निकाल देना चाहिए कि बिना भोजनके मनुष्यका शरीर चल ही नहीं सकता। इस विश्वासके कारण कभी कभी बहुत हानि हो जाती है। उपवास कालमें बहुत लोगोंका जी घुटने लगता है और उन्हें बेहोशी आने

* परिशिष्टमें नाड़ीसम्बन्धी कुछ नये अनुभव लिखे गये हैं, उन्हें भी पढ़िए।

जाती है। बहुतसे अशोंमें इसका मुख्य कारण उक्त मिथ्या विश्वास ही हुआ करता है। दुर्बल हृदयके लोगोंपर इस विश्वासका और भी बुरा प्रभाव पडता है। उस बुरे प्रभावसे बचनेके लिए उपवास कालमें इस बातकी बहुत बडी आवश्यकता है कि मन सब प्रकारसे सन्तुष्ट और शान्त रहे, उसमें किसी प्रकारकी उद्विग्नता या चिन्ता न हो। उपवासकालमें जिस रोगीका मन इस स्थितिमें रहता है, उसे उपवाससे बहुत अधिक लाभ पहुँचता है और वह बहुत शीघ्र नीरोग हो जाता है।

उपवास-कालमें यद्यपि शरीर बहुत दुर्बल और कृश हो जाता तथापि इससे भयभीत होनेका कोई कारण नहीं है। बहुधा यह दुर्बलता उन्हीं विषोंके कारण होती है जो रोगीके रक्तमें मिले हुए होते हैं। यदि कसरत करने और खूब घूमने, फिरने या टहलनेसे भी यह दुर्बलता कम न हो और रोगीके हरदम बिस्तरपर पडे रहनेकी नौबत आ जाय, तो उस दशामें भी उपवास छोड देना ही श्रेयस्कर है। यद्यपि वास्तवमें यह निर्बलता कोई विशेष या भारी हानि नहीं पहुँचा सकती, तो भी यदि रोगी किसी योग्य डाक्टरकी देख रेखमें न हो तो उपवास छोड देना ही बुद्धिमत्ता है।

डा० मेकफेडनके चिकित्सालयमें बहुतसे ऐसे रोगी भी पहुँच चुके हैं, जिनकी इच्छाशक्ति बहुत प्रबल थी। उन लोगोंने केवल अपनी इच्छाके कारण ही आवश्यकतासे अधिक दिनोंतक उपवास किया था। उनमेंसे अधिकांशको उपवाससे लाभके बदले हानि ही हुई थी। यह पहले ही बतलाया जा चुका है कि उपवास-कालमें पहले शरीरके अनावश्यक और फालतू पदार्थ हमारी जठराग्निकी नजर होते हैं और तदुपरान्त शरीरके आवश्यक पदार्थोंकी बारी आती है। इसलिए कदापि वह दशा न आने देनी चाहिए जिसमें आवश्यक पदार्थोंका नाश आरम्भ होता है। इसकी एक बहुत अच्छी पहचान भी है। जब तक मनुष्य मालोंके चक्कर लगाने और खूब कसरत करनेके योग्य रहे-उसके शरीरका

वल बराबर बना रहे—तब तक उपवास जारी रखना चाहिए
जब शरीरका बल घटने लगे तब तुरन्त उपवास
चाहिए। दूसरी बात यह है कि बहुत लम्बे उपवासके बाद भ
आरम्भ करनेमें भी बड़ी सावधानीकी आवश्यकता होती
उपवास जितने ही अधिक दिनोंका हो, उसके छोड़ने पर भ
भी उतनी ही अल्प मात्रामें होना चाहिए। उपवास किस प्र
छोड़ना चाहिए, इस विषयमें अधिक बातें आगे चलकर
जायँगी। पिछले पृष्ठोंमें पाठक मिस हालका विवरण पढ़
होंगे जिन्होंने चालीस दिनोंतक उपवास करके लकवेसे छुट
पाया था। मिस हालने उपवास छोड़नेके बाद अपना भोजन
सन्तरेसे आरम्भ किया था। पर उनका पक्वाशय उतना भ
पचानेमें भी समर्थ न था, इसलिए उन्हें कुछ समय तक
उठाना पड़ा था। मि० मैकफेडनने उनकी दशा देखकर
सिद्धान्त निकाला था कि उन्हें अथवा उनके समान लंबे उप
करनेवाले दूसरे रोगियोंको जिनका पक्वाशय बहुत अ
दशामें न हो—आधे सन्तरेसे नहीं बल्कि आधे सन्तरेके रस म
भोजन आरम्भ करना चाहिए। उचित समय तक उपवास
नेसे कभी कोई हानि नहीं होती; हानि उसी समय होती है
उपवास छोड़नेके समय भोजनका उचित ध्यान न रक्खा
और उसमें किसी प्रकारका व्यतिक्रम हो। उपवास-कालमें
भयका कोई चिह्न हो तो एलोपैथिक या होमियोपथिक चिकि
करनेवाले डाक्टरोंस सलाह लेनेकी अपेक्षा स्वयं अपनी बु
काम लेना ही अधिक उत्तम है। स्वयं हमारी प्रकृति ही ह
सबसे बड़ी रक्षक और शुभचिन्तक है। बहुधा वही हमें सम
हमारा कर्तव्य बतलाती रहेगी। भयके अधिक चिह्न उसी स
उत्पन्न होंगे जब कि उपवास अधिक दिनोंतक किया जायगा।
साधारणतः कभी अधिक दिनोंका उपवास न करना चाहि
सब प्रकारके भयके चिह्नोंसे बचनेका सर्वोत्तम उपाय यह है
मनुष्य उसका आरम्भ बहुत थोड़ेसे करे। यदि मनुष्यका श

साधारणत स्वस्थ रहता हो पर उसके अन्दर कोई रोग हो, तो उसे उचित है कि पहले महीने वह एक या दो दिन तक उपवास करे। तीन चार महीने तक इसी प्रकार उपवास करनेके उपरान्त वह तीन चार दिनोंतक उपवास करे। इस प्रकार साल दो साल बाद वह आठ दस दिन तकका उपवास करनेके योग्य हो जायगा। उस दशामें किसी प्रकारके भयके चिह्नोंके उत्पन्न होनेका कोई कारण न रह जायगा। यह तो हुई साधारणत स्वस्थ और नीरोग मनुष्योंकी बात। पर यदि मनुष्यको अचानक कोई भारी रोग आ घेरे, तो केवल उस रोगके कारण ही वह आठ दस दिनोंतक निराहार रह सकता है और उसके शरीरमें भयका कोई चिह्न दिखलाई नहीं दे सकता।

अच्छे उपवासका लक्षण यह है कि मनुष्यका मन बहुत ही स्वच्छ और सन्तुष्ट रहे, उसमें किसी प्रकारकी घबराहट या बेचैनी आदि न हो। यदि मनमें प्रसन्नताके बदले घबराहट या बेचैनी हो और इच्छा-शक्ति निर्बल पड़ती जाय, तो उपवास कालमें बहुत सावधानीसे रहना चाहिए और यदि उस प्रकार रह सकना असम्भव हो और किसी योग्य उपवास चिकित्सककी सम्मति भी न मिल सकती हो तो उपवास छोड़ देना ही उत्तम है।

नींद और प्यास

जो लोग उपवास करते हैं उन्हें प्राय नींद बहुत कम आती है। बहुधा ऐसा जान पड़ता है कि सारे शरीरके ज्ञान तन्तुओंमें तनाव आ गया है या खींचातानी हो रही है। मनुष्यको निद्रा उसी समय आती है जब कि उसका सारा शरीर सब प्रकारके तनावसे छुटकारा पा जाय और आराममें हो। पर ज्ञान तन्तुओंके व्यतिक्रमके कारण शरीरको आराम नहीं मिलता

और फलत मनुष्यको नींद भी नहीं आती। ऐसी अवस्थामें मनु
ष्यको उचित है कि वह जल पीए। जल ठंडा हो या गरम, य
पीनेवालेकी इच्छा और मुँहके स्वादपर निर्भर है। यदि जल
पीनेसे कुछ लाभ न हो तो उचित और आवश्यक जान पड़नेपर
गरम पानीसे नहा लेना चाहिए। नहानेसे उस समयके शारीरिक
कष्ट दूर हो जायँगे और शरीरको आराम मिलनेके कारण नींद
आवेगी। यदि नहानेका मौका न हो तो निचोड़े हुए गीले अगो
छेकी तहें लगाकर और उसे किसी तौलिये आदिमें इस प्रकार
लपेटकर कि उसका पानी बिछौनेपर न पड़े, छाती, पेट और
जाँघ पर रखना या फेरना चाहिए। उपवास-कालमें नींद
आनेका मुख्य कारण यह है कि उस समय शरीरमें रक्तका सचा
बहुत ही कम होता है। कभी कभी पैर बिलकुल ठंडे हो जाते
और भारी कपड़ोंसे ढकनेपर उनमें आवश्यक गरमी नहीं आती
उस समय पैरोंपर या तो खूब गरम कपड़ा या कोई भारी तकिय
रख लेना चाहिए। यदि उससे भी अभीष्टसिद्धि न हो तो बोतल
गरम पानी रखकर और उसे कपड़ेसे लपेट कर पैरोंपर फेर
चाहिए; इससे तुरन्त पैरोंमें गरमी आ जायगी। उस समय पैरों
खून खिंच आवेगा और तुरन्त नींद भी आने लगेगी। जो लो
उपवास न करते हों वे भी नींद न आने और पैर ठंडे हो जाने
समय यह उपाय कर सकते हैं। नींद न आनेके कारण बहुत
तड़फड़ानेवाले रोगी इस उपायसे थोड़ी ही देरमें गहरी नींद
सो जाते हैं।

इस अवसरपर यह बात भी भूल न जानी चाहिए कि उपवा
कालमें बहुत अधिक नींद आनेकी कोई आवश्यकता भी नहीं है
उपवास-कालमें शारीरिक शक्तियोंको किसी प्रकारका भोज
नहीं पचाना पड़ता और न कोई परिश्रम ही करना पड़ता है
इसका परिणाम यह होता है कि वे शिथिल नहीं होतीं। अधि
निद्राकी आवश्यकता उसी समय होती है, जब कि सब शारी
रिक शक्तियाँ शिथिल हों। साधारणत जिन लोगोंको सात य

ाठ घटोंतक सोनेकी आवश्यकता होती हो, उपवास-कालमें नके लिए केवल चारसे छ घटे तककी निद्रा ही यथेष्ट होती है। दि उपवास-कालमें किसीको नियमित रूपसे कुछ ही कम नींद ावे, तो उसे नींद बढानेके लिए किसी प्रकारका प्रयत्न न करना ाहिए। उपवास-कालमें जल अधिक परिमाणमें पीना चाहिए। दि उपवास करनेवाला स्वच्छ और यथेष्ट जल पीए तो वह पवास-कालमें होनेवाली बहुतसी कठिनाइयोंसे बचा रहेगा। धिक और उत्तम जल पीनेसे उसके शरीरके भीतरी भाग मानों च्छी तरहसे धुलते रहेंगे और उनमें जो कुछ दूषित पदार्थ होंगे सब बाहर निकलते रहेंगे। जिसकी जीभ खराब हो जाय, ुहका स्वाद बिगड जाय, या साँसमें बहुत बदबू आती हो, उसके लिए तो अधिक पानी पीनेकी ओर भी विशेष आवश्यकता है। जस मनुष्यके पाचन क्रिया करनेवाले अवयवोंको किसी प्रकारका ोजन ग्रहण और पाचन न करना पडता हो और जिसका शरीर हुतसे विषों और दूषित पदार्थोंसे भरा हो उसे अवश्य ही अधिक ल पीना चाहिए; क्योंकि बहुधा विष और दूषित पदार्थ आकर टमें ही इकट्ठे होते हैं। अधिक पानी पीनेसे वे सब विकार सह ्में ही शरीरके बाहर निकल जाते हैं। यदि कभी कभी पानीमें ो चार बूँद नींबूका रस छोड़ दिया जाय तो और भी अधिक ाभ होता है। शरीरके भीतरी अवयवोंपर विकारोंके कारण ो पपडियाँसी जम जाती हैं, नींबूके रससे वे सहजमें ही अपना ्थान छोड देती हैं और जल उन्हें बाहर निकालनेमें सहायक ोता है। इसके अतिरिक्त जल पीनेसे एक और लाभ यह भी ोता है कि उपवास करनेवालेका शरीर तौलमें बहुत अधिक हीं घटता। यदि हर एक घंटेके बाद एक गिलास स्वच्छ जल ी लिया जाय तो बहुत ही उत्तम है। यदि इतना पानी न पीया ा सके तो कमसे कम बेचैनी होने या भूख मालूम पड़ने पर तो अवश्य ही ठंडा और साफ जल पी लेना चाहिए। इससे उदर और शरीरको बहुत कुछ शान्ति मिलेगी और उपवास-काल सह-

जमें ही पिताया जा सकेगा। इस लिए उपवास करनेवालेको उचित है कि वह जहाँ तक अधिक पानी पी सके वहाँ तक पीए।

आहार-कालमें भी बहुतसे डाक्टर सम्मति दिया करते हैं कि भोजनके साथ कभी जल न पीना चाहिए। पर यह बात ठीक नहीं है। साधारणत सब लोगोंको और विशेषत उपवास क चुकनेवाले लोगोंको भोजनके साथ और उसके उपरान्त और बीचमें भी यथेष्ट जलका व्यवहार करना चाहिए। हमारे यहाँ वैद्यकशास्त्रमें जलको अमृत कहा है और उसके विषयमें य बतलाया गया है कि उससे कभी किसी दशामें कोई हानि नह होती। बहुतसे डाक्टर, वैद्य और हकीम आदि ज्वर कालमें अप रोगियोंको पानी नहीं पीने देते। पर यह बड़ी भूल है। बहुत बहुत अधिक पानीसे और कुछ विशेष दशाओंमें थोड़े पानी बहुत ही लाभ होता है। पर पानी न पीना सदा हानिकारक ह होता है। इसलिए प्रत्येक रोगी और नीरोगी, अशक्त औ सशक्त सबको स्वच्छ, ताजे और मीठे जलका खूब सेवन करन चाहिए। अन्नकी अपेक्षा जलमें कहीं अधिक सजीविनी शा होती है। जल सदा शरीरको लाभ ही पहुँचाता है हानि नहीं

जलके अतिरिक्त एक और पदार्थ है, उपवास-कालमें जिसक व्यवहार करनेसे बहुत कुछ लाभ होता है। वह पदार्थ है शु और साफ की हुई रेत। यह रेत थोड़ी थोड़ी मात्रामें उपवास कालमें फाँकी जाती है। शायद हमारे पाठक रेत फाँकनेका ना सुनकर हँस पड़ेंगे और यह बात है भी बहुतसे अशोंमें हँसी आ योग्य ही, पर वास्तवमें रेत फाँकनेका शरीरपर बहुत ही अच्छ परिणाम होता है। रेत फाँकनेके गुणोंकी जानकारी पहले पह बोस्टन नगरके प्रो० विलियम विडसनने प्राप्त की थी। * उन्हों

* अवध प्रान्तमें रेत फाँकनेकी प्रणाली बहुत पहलेसे प्रचलित है। यह ए धर्मकी बात समझी जाती है कि लोग गंगाजीकी रेणुका फाँकें। बहुत से अशा उदर-रोगोंमें गंगाजल और गंगाजीकी रेणुका सेवन की जाती है और इससे रो आराम हो जाते हैं। हमारी ग्रन्थमालाके एक प्रेमी पाठक श्रीयुत बनारसीदास अग्रवालने हमें इस बातकी सूचना देनेकी कृपा की है। —प्रकाशक

यह सिद्धान्त निकाला था कि मनुष्यके अतिरिक्त प्राय सभी जान वर अपने भोजनमें थोडी बहुत रेत सदा और अवश्य मिला लेते हैं। उस रेतसे उनकी भोजनवाहिनी नलिका सदा बहुत साफ और स्वच्छ रहती है और इसके कारण भोजन गुठलोंमें बँधकर कब्जियत नही उत्पन्न कर सकता। स्वय डाक्टर मैकफेडनने जब यह विलक्षण सिद्धान्त सुना तब उन्हें बहुत आश्चर्य हुआ था; क्योंकि रेतको कोई मनुष्यका स्वाभाविक खाद्य नहीं मान सकता। पर जब डाक्टर महाशयने लगातार तीन वर्षो तक हजारों रोगि योंको उसका व्यवहार कराया तब उसके गुणोंके सम्बन्धमें उनका पहला आश्चर्य और भी बढ़ गया। हजारोंमेंसे एक रोगी भी ऐसा न निकला जिसे रेतके व्यवहारसे किसी प्रकारकी हानि पहुची हो।

फाँकनेके लिए रेत ऐसी होनी चाहिए जिसके दाने गोल और खुरदरे हों, जो पानीमें न घुल सके और जो बहुत साफ हो। जिस रेतके दाने नुकीले या धारदार हों उसका व्यवहार नहीं करना चाहिए, क्योंकि उससे शरीरके भीतरी कोमल भागोंपर रगड़ लगती है। इसके अतिरिक्त ऐसी रेतके दाने परस्पर एक दूसरेके साथ मिल जाते है। पर गोल दाने परस्पर एक दूसरेसे अलग रहते हैं; और वे ही हमारी कब्जियत दूर कर सकते हैं। उनसे बिना किसी प्रकारकी कठिनाई या कष्टके हमारी अँतडियाँ आदि बिल्कुल साफ और मल रहित हो जाती हैं। इस स्थानपर कदाचित् यह बतलानेकी कोई आवश्यकता न होगी कि फाँकनेके लिए रेत बहुत ही साफ होनी चाहिए। सफेद रेतकी अपेक्षा भूरे काले रंगकी रेत बहुत अच्छी होती है। यदि रेत साफ न हो तो उसे साफ कर लेना चाहिए। खूब खौलते हुए गरम पानीमें उबा लनेसे रेत साफ हो जाती है। साधारणत दिन भरमें एकसे तीन चम्मच तक रेत फाँकी जा सकती है। रेत फाँकनेके उपरान्त ऊपरसे बहुतसा स्वच्छ जल पीना चाहिए। उपवास न करने वाले लोगोंको भी यदि बहुत कब्जियत हो तो वे थोड़ीसी रेत

फाकफर और ऊपरसे स्वच्छ जल पीकर अपनी कब्जियत दूर कर सकते हैं। कब्जियत दूर करनेका यह बहुत ही सादा और सर्वोत्तम उपाय है।

उपवास-कालमें एनिमा

एनिमा उस क्रियाका नाम है जिससे गुदाके मार्गसे अँतड़ियाँ तथा पेटके दूसरे भीतरी भाग धोये जाते हैं। एलोपैथिक चिकित्सक बहुधा इसका व्यवहार करते हैं और कुछ विशेष प्रकारकी पिचकारियोंसे ओषधिमिश्रित जल गुदद्वारा पेटमें पहुँचाते हैं। इन पिचकारियोंको भी एनिमा कहते हैं। अँग्रेजी दवा बेचनेवालोंके यहाँ दो तीन रुपयेमें एनिमा मिलता है। इस क्रियासे पेट और पेड़ू आदिमें फँसा हुआ सारा दूषित और गन्दा मल बाहर निकल जाता है और रोगीकी दशा बहुत सुधर जाती है। कब्जियत और अँतड़ियोंकी दूसरी बीमारियोंमें समप्राय इसका व्यवहार होता है। हम पहले कह आये हैं कि शरीरको नीरोग और शुद्ध करनेके लिए जहाँ तक हो सके प्राकृतिक नियमोंसे काम लेना चाहिए। अप्राकृतिक नियमोंसे काम लेनेका परिणाम बहुत बुरा होता है। एनिमाका विधान बतलानेके कारण हमपर यह आक्षेप किया जा सकता है कि हम भी एक अप्राकृतिक उपाय बतला रहे हैं। पर इस सम्बन्धमें केवल इतना कह देना ही यथेष्ट है कि जुलाबकी गोलियाँ या रेंड़ीके तेल आदिकी तरह एनिमाका कोई ऐसा परिणाम नहीं होता जो शरीरमें अधिक समय तक स्थायी रूपसे रहकर हमें हानि पहुँचावे। ऐसी दशामें उसे विधेय बतलाते हुए उसकी आवश्यकता और लाभोंका वर्णन कर देना भी यहाँ उचित जान पड़ता है।

किसी मनुष्यके नीरोग होनेका सबसे अच्छा चिह्न यह है कि उसे पैखाना साफ आवे। यदि उसे किसी प्रकारकी कब्जियत है तो यही माना जायगा कि अभी उसके शरीरमें कुछ रोग बाकी है। एनिमाके व्यवहारसे मनुष्यकी कब्जियत बहुत ही सरलता

पूर्वक—विना उसे किसी प्रकारकी हानि पहुंचाये—दूर हो जाती है और उसका मल मार्ग बहुत ही सहजमें साफ हो जाता है। हमारी आँतोंमें यह गुण है कि वे सदा फलती और सिकुड़ती रहती हैं। भोजन पचनेके उपरान्त जो अनावश्यक और दूषित पदार्थ बच रहता है वह आँतोंकी इसी फैलने और सिकुड़नेवाली क्रियाके कारण मल रूपमें हमारे शरीरके बाहर निकलता है। जिस समय मनुष्य उपवास आरम्भ करता है, उस समय भोजनके अभावके कारण आँतोंका सिकुड़ना और फैलना बन्द हो जाता है, जिसके कारण मल हमारे शरीरसे बाहर नहीं निकल सकता। उस समय आँतोंके ऊपरका मल ऊपर ही रह जाता है और उसी मलको सरलतापूर्वक बाहर निकालनेके लिए एनिमाका उपयोग लाभ दायक होता है।

इसके अतिरिक्त एनिमासे और भी कई लाभ होते हैं। हमारे शरीरमें हरदम जो तरह तरहके विष और दूषित पदार्थ उत्पन्न होते रहते हैं, उपवास कालमें भी उनकी उत्पत्ति बराबर होती रहती है। यदि वे विष और दूषित पदार्थ बाहर न निकाले जायँ तो उनका दुष्परिणाम सारे शरीरपर और विशेषतः रोगग्रस्त अगोंपर पड़ता है। एनिमासे उन विषोंके बाहर निकालनेमें भी बहुत सहायता मिलती है।

इस प्रकार अधिक जल पीनेसे तो शरीरका ऊपरी भाग स्वच्छ होता रहता है और एनिमा लेनेसे पेट, पेड़ू और आँतों आदिकी सफाई होती रहती है ×। अधिक जल पीने और एनिमा लेनेवाले उपवासकारियोंकी साँस बहुत साफ हो जाती है और उनकी जीभपर जमी हुई पपड़ी छूट जाती है और उनकी जीभकी रंगत ठीक वैसी ही गुलाबी हो जाती है, जैसी किसी छोटे नीरोग बालककी जीभकी होती है। साँसमें किसी प्रकारकी बदबू नहीं रह जाती और मुँहका स्वाद बहुत अच्छा हो जाता है।

× एनीमा लेनेकी विधि हमारे यहांसे प्रकाशित 'पदार्थविज्ञान सच्चा मित्र' नामक पुस्तकमें देखिए। —प्रकाशक

कुछ ज्ञातव्य बातें

बहुत सम्भव है कि कुछ लोग उपवास करनेको बड़ा भारी युद्ध समझें और उसके लिए तरह तरहके अस्त्र शस्त्रोंसे सुसज्जित होनेका प्रयत्न करें। ऐसे लोगोंसे हमारा निवेदन है कि उपवासके लिए पहलेसे कभी किसी प्रकारकी तैयारीकी आवश्यकता नहीं होती। न तो बहुत पहलेसे उपवासके उद्देश्यसे ही लम्बी चौड़ी कसरतें करनेकी आवश्यकता है और न खाने पीनेमें कोई बड़ा परहेज करनेकी ही। उपवास एक बहुत ही सीधी सादी और प्राकृतिक क्रिया है। जिस प्रकार प्यास लगनेपर जल पीनेके लिए किसी प्रकारके सोच-विचारकी आवश्यकता नहीं होती उसी प्रकार रोगग्रस्त होनेपर उपवास करनेके लिए भी किसी प्रकारका सोच विचार न होना चाहिए। उपवासके आरम्भमें केवल मनको शान्त और अविकल रखनेकी आवश्यकता होती है जहाँ मनकी उपवाससम्बन्धी उद्विग्नताका नाश हुआ वहाँ उपवासमें फिर और किसी प्रकारकी अड़चन या कठिनता नहीं रह जाती।

दूसरी बात ध्यान रखने योग्य यह है कि उपवास-कालमें किसी प्रकारकी औषधि आदिका कदापि सेवन न करना चाहिए। उपवास एक प्राकृतिक क्रिया है और उसके साथ किसी अप्राकृतिक क्रियाका व्यवहार नहीं होना चाहिए। सन् १९०३ में लफायेके एक रोगीने चालीस दिनोंका उपवास किया था। उपवासके अन्तमें उसे शरीरके एक ऐसे अंगमें कुछ पीड़ा जान पड़ी जिसमें उसे पहले कभी कोई पीड़ा नहीं हुई थी। मंगलके दिन उसने अपना उपवास समाप्त किया था और शुक्रवारके दिन उसकी मृत्यु हो गई। पता लगानेपर मालूम हुआ कि उपवास छोड़नेके दूसरे ही दिन वह एक डाक्टरके पास चला गया था, जिसने उसे औषधके अतिरिक्त कुछ दूध और फलोंका रस भी दिया था और उसकी मृत्यु इसी कारणसे हुई थी। उपवास करनेवालोंको इस

बातका सदा ध्यान रखना चाहिए कि उपवास-कालमें और उसके उपरान्त शरीरकी हालत बहुत ही नाजुक हो जाती है और उस दशामें औषधों आदिका शरीरपर बहुत ही भयंकर परिणाम होता है।

जो लोग अपने रोगोंकी चिकित्सा औषध आदिसे करते हैं, बहुधा औषध छोड़ देनेपर उनके रोग फिरसे उन्हें कष्ट देने लगते हैं। पर उपवासकी सहायतासे नीरोग हो जानेपर रोगके फिरसे आरम्भ आनेकी कभी कोई सम्भावना नहीं रहती। हाँ, उपवास समाप्त करनेके कुछ दिनों बाद यदि वह फिर औषधोंका सेवन आरम्भ कर दे, तो अवश्य ही वह फिरसे रोगी हो सकता है।

कुछ लोग यह प्रश्न कर सकते हैं कि यदि हम उपवास न करके केवल अपना भोजन घटा दें, तो क्या उससे हमें लाभ न होगा? इसका उत्तर यही है कि बहुत छोटे और साधारण रोगोंमें तो थोड़े भोजनसे अवश्य लाभ होता है, पर तीव्र और भयंकर रोगोंके समय उससे कोई लाभ नहीं होता। बात यह है कि रोगी होनेपर हम जो कुछ खाते हैं उससे हमारे शरीरकी अपेक्षा, रोगका ही अधिक पोषण होता है। भोजन करके रोगको पालनेकी अपेक्षा भोजन छोड़कर उसे दूर कर देना ही अधिक बुद्धिमत्ता है। बहुतसे लोगोंने बहुत दिनों तक थोड़ा भोजन करके यही सिद्धान्त निकाला है कि उसका कोई परिणाम नहीं होता। दूसरी बात यह कि उपवास करनेकी अपेक्षा थोड़ा भोजन करके रहना बहुत कठिन और कष्टप्रद है। उपवासमें तो केवल दो तीन दिनोंतक ही कष्ट होता है और इसके बाद जब भूख मारी जाती है तब मनुष्य बड़े सुखपूर्वक रहता है। पर थोड़ा भोजन करनेवालोंका कष्ट सदा बना रहता है। थोड़ा भोजन करनेसे भूख बढ़ती है और तब मनुष्यको विवश होकर अधिक भोजन करना ही पड़ता है। अप्टन सिंक्लेअरने एक बार केवल थोड़ेसे फल खाकर ही कुछ दिनों तक रहना निश्चय किया था। पर उस कालमें उन्हें इतनी

अधिक दुर्बलता जान पड़ने लगी, जितनी उपवास-कालमें कभी नहीं जान पड़ती थी। इसलिए थोड़ा भोजन करके रहना का दायक भी है और व्यर्थ भी। जो लोग एकदम उपवास न कर सकते हों वे पहले महीनेमें एक या दो दिनका ही उपवास करें और इसी प्रकार उपवासका अभ्यास बढ़ाते जायँ, तो अवश्य ही फायदेमें रह सकते हैं।

यह भी प्रश्न हो सकता है कि मनुष्यको उपवास-कालमें अप नियमित काम धन्धा करना चाहिए या नहीं। जिस प्रकार बातोंमें कुछ शर्तें होती हैं उसी प्रकार इसमें भी कुछ खास है। जिस मनुष्यकी जीवन-शक्ति बहुत ही घट गई हो, वह अधिक समय तक या कठिन और भारी काम करेगा तो अव ही उसके शरीरपर उनका बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ेगा। तथा ऐसे मनुष्यको कुछ टहलना फिरना या थोड़ा व्यायाम अव करना चाहिए। जो मनुष्य बिछौनेपरसे भी न उठ सकता हो भी बिछौनेपर पड़ा पड़ा ही अपने शरीरको इधर उधर हिला सकता और इस प्रकार व्यायामसे होनेवाला थोड़ा बहुत ला उठा सकता है; पर जिस मनुष्यके शरीरमें थोड़ी बहुत शक्ति उसके लिए यथासाध्य अपने काम-काजमें लगा रहना ही अधि उत्तम है। यह बात सदा स्मरण रखनी चाहिए कि प्रत्येक दशा मनकी स्थितिका शरीरपर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है। जिस म ष्यका मन काममें लगा रहेगा उसका शरीर बहुधा ठीक दशा ही रहेगा। मनको इधर उधर भटकानेसे बचाने और कृत्रि भूखके फेरमें न पड़नेके वास्ते काम धन्धेसे बहुत अच्छी सहाय मिलती है। ठाली बैठे रहनेवाले लोग कृत्रिम भूखके फन्देमें फँस कर अपना उपवास छोड़ भी सकते हैं। बहुत ही प्रबल इच्छ शक्तिवाले लोगोंके लिए भी काम धन्धेमें लगे रहना बहुत ही आवश्यक और लाभदायक है। उपवास-कालमें जहाँतक हो सके हाथों, पैरों और मनको किसी न किसी काममें लगाए रखना चाहिए। इस अवसरपर यह बतला देना भी आवश्यक है कि

गरमीके दिनोंमें उपवास करना बहुत कठिन होता है। उस समय मनुष्य बहुत ही निबल हो जाता है। जाड़ेमें उपवास तो अवश्य अच्छी तरह हो सकता है, पर उन दिनों कठिनता यह होती है कि मनुष्यको भूख अधिक लगने लगती है। पर यदि आरोग्यपर पड़नेवाले प्रभावके विचारसे देखा जाय तो जाड़ेके दिन ही अधिक उत्तम ठहरते हैं, क्योंकि अनुभवसे यह बात सिद्ध हो चुकी है कि गरमीमें तीन दिनोंतक उपवास करनेसे शरीरको जितना लाभ पहुँचता है, जाड़ेमें उतना ही लाभ केवल दो दिनोंमें होता है।

बड़ा और छोटा उपवास

उपवास दो प्रकारके होते है। एक उपवास तो बहुत दिनोंका और दूसरा उपवास थोड़े दिनोंका होता है। जो लोग बहुत दिनोंके उपवासको उत्तम बतलाते हैं वे भी उसकी अवधि निश्चित नहीं करते,—वे यह नहीं बतलाते कि अधिकसे अधिक कितने दिनों तक उपवास किया जा सकता है। उनका यह कथन है कि उपवासकी अवधि स्वयं प्रकृति निश्चित करती है। हमारी प्रकृति हमें यह बतला देती है कि हम एक सप्ताह तक निराहार रहें या एक मास तक। उनका यह भी मत है कि जबतक प्राकृतिक और वास्तविक भूख न लगे, तबतक भोजन न करना चाहिए। भोजनकी वास्तविक रुचि या असली भूखकी निशानी साधारण और अभ्यास जन्य रुचिसे कुछ भिन्न प्रकारकी होती है और जिस प्रकार सूर्य्यके प्रकाशके सामने और सब प्रकारके प्रकाश एकदम तुच्छ जान पड़ते हैं, उसी प्रकार वास्तविक क्षुधाके सामने कृत्रिम या और किसी प्रकारकी भूख बिलकुल ही तुच्छ बोध होने लगती है। उपवास करनेवालेको वास्तविक भूख और खानेकी इच्छा मात्रका भेद तुरन्त मालूम हो जाता है। इस सिद्धान्तकी सत्यताके प्रमाणस्वरूप वे लोग उपस्थित किये

जा सकते हैं जिन्होंने अस्सी और नब्बे दिनोंतकके उपवा किये हैं।

साधारण रोगोंके समय यही बात ठीक जान पड़ती है कि ज तक रोगका जोर बिल्कुल नष्ट न हो जाय और वास्तविक भू न लगे तबतक उपवास बराबर जारी रखना चाहिए। जिन लोगों जीवन शक्ति बहुत ही घट गई हो अथवा जो अपनी मानसिक शारीरिक दुर्बलताके कारण अधिक दिनों तक उपवास न सकते हों, वे बड़े बड़े उपवास न करके छोटे छोटे उपवासोंसे बहुत कुछ लाभ उठा सकते हैं। हाँ, इसमें सन्देह नहीं कि छो उपवास करके बिलकुल नीरोग और स्वस्थ होनेमें बहुत सम लगता है। इसके अतिरिक्त उसमें अधिक समय तक विशेष सा धान रहनेकी आवश्यकता होती है। बड़े और छोटे उपवास गुण और लाभ अप्टन सिंक्लेअरने बड़ी ही उत्तमतासे बतलाये इस अवसरपर उन्हींका सारांश देना अधिक उपयुक्त जान पड़ है। आप कहते हैं—

"बहुधा लोग प्रश्न किया करते हैं कि कितने दिनों तक उपवास करना चा और यह किस प्रकार मालूम हो सकता है कि अब उपवास छोड़नेका समय गया। मैं एक उपवास भी पूरा नहीं कर सका। मैंने दो बार बारह बारह दिन उपवास किये हैं। दोनों बार मुझे उपवास छोड़ना पड़ा था। इसका कारण यह कि मैं बारह दिनोंमें ही बहुत दुबल हो गया था और मेरी बहुत इच्छा होती कि मेरा शरीर बहुत जल्दी फिरसे पहलेकी भाँति सबल हो जाय। यद्य उन बारह दिनोंतक मुझे वास्तविक भूख नहीं लगी थी, तो भी कई डाक्टरों मुझसे कहा था कि इन बारह दिनोंके उपवाससे ही तुम्हें बहुत कुछ लाभ पहुं चुका है। और बात भी वास्तवमें कुछ ऐसी ही थी। मेरी समझमें पाचन-शक्ति मन्द पड़ने, आँतोंमें मल जमा होने, सिरमें दर्द रहने, कब्जियत होने अथवा इ प्रकारकी और दूसरी साधारण छोटी मोटी शिकायतोंके लिए दस बारह दिनों उपवास बहुत ठीक होता है। पर जिन लोगोंको नासूर, गरमी, बवासीर, गठिय आदि भारी और भयकर रोग हों, उन्हें अधिक दिनोंतक उपवास करना चाहिए।

"यदि कोई मनुष्य एक बार उपवास आरम्भ करे और उपवास-कालमें उसे किसी प्रकारकी कठिनता या कष्ट बाध न हो तो उसे यथासाध्य कुछ अधिक समय तक उपवास अवश्य जारी रखना चाहिए। लोगोंको केवल अपना सामर्थ्य दिखाने, अपना कुतूहल शान्त करने या दिल्लगी देखनेके लिए कभी बड़ा उपवास न करना चाहिए। बार बार छोटे या बड़े उपवास करना भी ठीक नहीं। यदि किसीको बार बराबर उपवास करनेकी आवश्यकता जान पड़े तो उसे समझ लेना चाहिए कि किसी बहुत बुरी आदत या क्रियाके कारण उसका शारीरिक सङ्गठन बिलकुल बिगड़ गया है। ऐसी दशामें उसे सब प्रकारके अनुचित कार्यों और अभ्यासोंको सदाके लिए छोड़कर तब उपवास करना चाहिए। जो लोग दुबले पतले हों उन्हें अधिक दिनों तक कदापि उपवास न करना चाहिए। अधिक दिनों तक उपवास करनेकी शक्तिका आधार मनुष्यके शरीरकी मोटाई है। जो मनुष्य जितना ही अधिक मोटा होगा और जिसके शरीरमें जितना ही अधिक फालतू द्रव्य सञ्चित होगा, वह उतना ही लम्बा उपवास कर सकेगा। जब तक मनुष्यको स्वयं यह निश्चय न हो जाय कि मुझे केवल बड़े उपवाससे ही लाभ होगा तब तक उसे कभी अधिक दिनों तक उपवास न करना चाहिए। जिसे इस विषयमें तनिक भी शंका हो उसे सदा थोड़े दिनोंका उपवास करना ही उचित है। यदि थोड़े दिनोंके उपवासका अनुभव प्राप्त करनेके उपरान्त भविष्यमें उसे किसी प्रकारका भय या कष्ट न दिखाई पड़े तो वह उसी उपवासको कुछ अधिक दिनों तक जारी रख सकता है अथवा आवश्यकता पड़नेपर एक बार उपवास छोड़कर दूसरी बार अधिक दिनोंका उपवास कर सकता है।'

छोटे बच्चोंके लिए उपवास

छोटे बच्चोंको उपवाससे इतने अधिक लाभ होते हैं जितने वयस्क पुरुषोंको नहीं होते। दुधमुँहे और पालनेमें झूलनेवाले बच्चोंसे लेकर १४-१५ वर्ष तककी अवस्थाके बच्चोंके लिए उपवास बहुत ही लाभदायक होता है। बालकोंको प्रायः छोटी मोटी बीमारियाँ हुआ करती हैं। यदि माता पिताओंमें

इतना साहस और विश्वास हो कि बालकको किसी छोटा मोटा रोग होते ही वे उसका भोजन आदि बन्द कर दें, वे रोग देखते ही देखते आश्चर्यजनक रूपसे दूर हो जायें जुकाम और खाँसीसे लेकर बड़े बड़े भयंकर ज्वरोंतक सब रो इस प्रकार बहुत ही सहजमें दूर किये जा सकते हैं।

इस अवसरपर बड़े उपवासके सम्बन्धमें यह बतला देना बहु ही आवश्यक जान पड़ता है कि चार छह दिनसे अधिक लम्बे उपवास बिना किसी अच्छे चिकित्सक और विशेषतः उपवास चिकित्सककी सम्मति और देख-रेखके कदापि न करना चाहिए क्योंकि कभी कभी उसके सम्बन्धमें पूर्ण नियम आदि न जान अथवा उनके पालन न करनेसे बहुत कुछ हानिकी सम्भावना है जो लोग अधिक लम्बा उपवास करना चाहते हों, उन्हें उचित कि वे किसी उपवास चिकित्सककी सम्मति लेकर अथवा अप ही नगरके किसी योग्य चिकित्सककी देख-रेखमें रहकर उप वास करें।

बालकोंका शारीरिक सगठन ही इतना उत्तम और आरोग्य वर्द्धक होता है कि उन्हें कभी किसी प्रकारकी ओषधिकी आवश्य कता ही नहीं होती। ज्यों ही किसी बालकको कोई रोग हो त्यों ही उसका भोजन बन्द कर दो, उसे केवल स्वच्छ जल पीनेके लि दो और उसे उसकी प्रकृतिपर छोड़ दो और तब देखो कि व कितनी जल्दी नीरोग और स्वस्थ हो जाता है। इस सम्बन्ध तनिक भी भय या चिन्ताका कभी कोई कारण नहीं है। क्यों इससे बढ़कर आश्चर्यजनक और रामबाण चिकित्सा हो ही न सकती। जो माता पिता एक दो बार भी इस चिकित्साकी परीक्ष करेंगे, वे आगे चलकर अपनी पहली मूर्खता और दूसरोंके व्य भय आदि पर हँसने लगेंगे।

पर यदि किसी बालकके रोगी होने पर महीनों तरह तरहकी ओषधियाँ देकर उसका स्वास्थ्य बिल्कुल बिगाड़ दिया जायगा और उसे मृत्यु मुख तक पहुँचा दिया जायगा, तो उसको बचा

नेकी शक्ति उपवासमें भी न दिखलाई पड़ेगी। उस दशामें अपनी
अज्ञताका दोष उपवासके मत्थे न मढना चाहिए। हाँ, यदि दूषित
पायोंसे बालकका शरीर बिगड़ न गया हो, उसके शरीरमें
रह तरहके विष न भरे गये हों तो अवश्य ही उपवासका चम
त्कार देखा जा सकता है। सबसे पहली बात तो यह है कि स्वयं
बालकके शरीरमें कभी किसी प्रकारका रोग नहीं होता। या तो
वह रोग माता पिताके कुपथ्य और दोषों आदिके कारण हो
सकता है और या तरह तरहकी ओषधियों आदिकी सहायतासे
उसमें आरोपित किया जाता है। जिस प्रकार किसी प्रतिष्ठित
कुले आदमीकी प्रवृत्ति चोर डाकू या खूनी बननेकी ओर नहीं
हो सकती, उसी प्रकार किसी बालकके शरीरकी प्रवृत्ति रोगी
होनेकी ओर नहीं हो सकती। बहुतसी अवस्थाओंमें तो यहाँ
तक देखा गया है कि यदि बालक कोई रोग साथ लेकर उत्पन्न
हो, तो आगे चलकर उसका बाल शरीर ही उस रोगको नष्ट कर
देता है। पर दुर्भाग्यवश हम लोगोंको यह मिथ्या भ्रम हो जाता
है कि बालकको सदा भोजनकी आवश्यकता बनी रहती है। रोगी
होनेके समय उसे औषध अवश्य देनी चाहिए, यदि उसे नींद न
आती हो तो थोड़ी अफीम या और या कोई नशीली चीज खिला
देनी चाहिए, आदि आदि। और इसी भ्रमके कारण हम लोग
जान-बूझकर बालकोंके शरीरको रोगोंका घर बना देते हैं।

प्रकृति हमें यह बात बतलाती है कि किसी बालकको जन्म
लेनेके उपरान्त कमसे कम तीन दिन तक किसी प्रकारके भोज
नकी आवश्यकता नहीं होती। साधारणत प्रत्येक दाई और माता
यह बात अच्छी तरह जानती है कि बालकको जन्म लेनेके तीसरे
दिन दूध पिलाया जाता है। वह दूध भी बहुत ही थोड़ी मात्रामें
होता है। पर उसके बाद ही माता या दासी उसे थोड़ी थोड़ी
देरके बाद जबरदस्ती अथवा जब जब वह रोता है तब तब उसे
दूध पिलाती है। इस प्रकार बाल्यावस्थासे ही बालककी पाचन
क्रिया और शक्ति बिगाड़ी जाती है। धीरे धीरे बालकपर भूखका

अधिकार बढता जाता है। उसके पीछे एक ऐसी बुरी लगा दी जाती है कि जो आजन्म उसका पीछा न छोडनेके रिक्त उसे तरह तरहके रोगोंका पात्र बना देती है। छोटे कोंको केवल दिनके समय और वह भी कमसे कम दो दो घण्टों अन्तर देकर बहुत ही थोडी मात्रामें दूध पिलाना चाहिए रातको कभी दूध न पिलाना चाहिए। जिस समय बालक रो हो उस समय उसे दूध पिलानेके बदले एक चमचा पानी पि देना चाहिए। अधिकाश अवसरोंपर बालकका रोना पानीसे ही शान्त होगा और वह तुरन्त सो जायगा। यह चाहे साधारणत लोगोंके मनमें न बैठे, पर इसमें सन्देह नहीं यदि अनुभव करके देखा जाय तो जान पडेगा कि इस प्रकार पा हुए बालकोंमेंसे ७५ प्रति सैकडे सदा नीरोग और हृष्ट पुष्ट रहेंगे। प्रत्येक रोग भूख और जीभको काबूमें न रखनेके का ही होता है। जिस बालकको आरम्भसे ही भूख और जीभ काबूमें रखनेकी शिक्षा दी जायगी, वह वयस्क होनेपर कभी न होगा।

पर अभाग्यवश आज कलके जमानेमें बहुत ही थोड़े बालक प्रकार पाले जाते हैं। प्राय उन्हें बार बार और इतना अधि दूध पिलाया जाता है कि पाचन क्रियाके प्राकृतिक नियमों प्रेरणाओं आदिका बुरी तरह नाश हो जाता है। यहाँ तक जब बालक उनकी समझसे कम दूध पीता है तब वह रोगी मा जाता है और उसकी चिकित्साकी चिन्ता होने लगती है। जो लोग ध्यान और विचार पूर्वक उपवाससे होनेवाले लाभों जाँच करते हैं उन्हें तुरन्त यह मालूम हो जाता है कि बालकों प्राय सभी रोगोंका सम्बन्ध उनके अनियमित और अधिक भो नसे ही होता है। वास्तवमें स्वय शरीर कभी रोगी नहीं होत प्रकृतिके नियमोंके उलघन, कुपथ्य और परिस्थिति आदिके वि धके कारण उसे रोगी होनेके लिए विवश होना पड़ता है। प्रत्ये माता पिताका यह प्रधान कर्त्तव्य होना चाहिए कि वह अप बालकके स्वास्थ्यकी, उसे इन सब बातोंसे बचाकर, रक्षा करे।

उपवास किसे न करना चाहिए ?

अनुभव और परीक्षासे पता लगा है कि कई रोग ऐसे भी हैं जिनमें उपवाससे कोई लाभ नहीं होता। उनमेंसे एक क्षय-रोग भी है। इस रोगमें रोगीकी जीवन-शक्ति इतनी अधिक नष्ट हो जाती है कि वह अधिक दिनोंतक उपवास कर ही नहीं सकता। ऐसे लोग यदि थोड़ा थोड़ा भोजन करें अथवा छोटे छोटे उपवास करें तो उन्हें बहुत लाभ हो सकता है। थोड़े विचारसे ही इस सिद्धान्तकी उपयुक्तताका पता चल जाता है। बहुत ही थोड़ीसी बची हुई शक्तिवाले रोगीके लिए बड़ा उपवास करना कदापि युक्तिसंगत नहीं हो सकता, क्योंकि उपवासके आरम्भमें शक्तिका न्हास होता है। यदि थोड़ीसी बची हुई शक्तिका इस प्रकार नाश कर दिया जायगा, तो 'रोग रहे न रोगी' वाली कहावत ही चरितार्थ होगी। हाँ, यदि उसे पहले एक या दो दिनका उपवास कराया जायगा, तो पाचन शक्ति और पक्वाशयको कुछ आराम मिलेगा और उनसे रोगको पचाने और विषोंको बाहर निकालनेमें कुछ सहायता मिलेगी। इसके उपरान्त उसे थोड़ी मात्रामें ऐसा भोजन देना उचित होगा जो शीघ्र ही पच सके और तदुपरान्त एक दूसरा छोटा उपवास कराना ठीक होगा। इस क्रियासे धीरे धीरे उसका शरीर नीरोग होने लगेगा और उसका बल भी न घटने पावेगा।

यदि क्षयके रोगीको आरम्भमें ही उपवास कराया जाय तो उससे बहुत लाभ हो सकता है। डा० मैकफडनने अपने चिकित्सालयमें कई ऐसे रोगियोंको जिन्हें क्षयरोग आरम्भ हुआ था, उपवास कराके चंगा किया था। कुछ अवस्थाओंमें यह भी देखा गया है कि उपवास-कालमें रोगीके शरीरका जो वजन घटा था, वह नीरोग होनेपर फिर न बढ़ा, ज्योंका त्यों बना रहा। बहुत सम्भव है कि ऐसे रोगी उपवासके उपरान्त भोजन आदिमें कुपथ्य करते हों और उसीके फलस्वरूप उनका वजन न बढ़ता हो।

यह बात आवश्यक नहीं है कि ससारके प्रत्येक रोगमें उपवा ही किया जाय। जो मनुष्य आवश्यकतासे अधिक खाता हो, समझकर कि अधिक भोजनसे हमारे शरीरका बल बढ़ेगा, थोड़ी देरके बाद और बहुतसा खाता ही तो अवश्य ही यह मान पड़ेगा कि यह बहुत अधिक भोजन करनेके कारण ही रोगी हु है। ऐसे मनुष्यके रक्तमें बहुतसा विप उत्पन्न हो जाता है जिस परिणाम उसके शरीरके लिए बहुत ही हानिकारक होता प्राकृतिक नियम यह है कि यदि ऐसा मनुष्य उपवास करे कुछ समयके लिए भोजन छोड़ दे तो अवश्य ही उसके रक्तमें विष नष्ट हो जायगा और उसके शरीरका बल बढ़ेगा। पर मनुष्य बहुत दिनोंसे आवश्यकतासे कम भोजन करता आया और इस प्रकार बहुत ही दुर्बल हो गया हो, उसे उपवास करा लिए बहुत ही सावधानीकी आवश्यकता होती है। एक अथवा अधिकसे अधिक तीन दिनोंके उपवाससे ही ऐसे म ष्यकी पाचन-शक्ति सुधरकर अपनी साधारण अवस्थातक प आयगी और वह यथेष्ट भोजन पचानेके योग्य हो जायगा। लोगोंको तीन दिनसे अधिक निराहार रहनेकी आवश्यकता होगी। उपवासकी समाप्तिपर ऐसे लोगोंको थोड़ासा हल और अधिक पोषक भोजन देना चाहिए, जो जल्दी पच ज और जिससे उसके शरीरका बल अधिक बढ़े और उसका पोषण हो। साधारणत ऐसा उत्तम भोजन दूध ही माना जा है और उससे बहुधा यथेष्ट लाभ पहुँचता है। बहुतसे रोगियों शक्ति इतनी नष्ट हो जाती है कि वे दूध भी नहीं पचा सकते पर ऐसे लोगोंको भी कभी निराश न होना चाहिए और हो थोड़ी मात्रामें दूध या फलों आदिका रस पीते रहना चाहि

ऊपर यह बतलाया जा चुका है कि जिन लोगोंकी जीवन-श बहुत अधिक नष्ट हो गई हो उन्हें कभी अधिक दिनोंतक उपवा नहीं करना चाहिए। इसी प्रकार जिन लोगोंका रोग औषध खाते बहुत अधिक बढ़ गया हो उन्हें भी उपवासको व्यर्थ बदन

करनेके लिए भोजन न छोड़ना चाहिए। गर्भवती स्त्रियोंके लिए भी उपवास करना युक्तिसंगत नहीं है। इसके अतिरिक्त केवल मनोविनोद या दिखानेके लिए भी कभी उपवास न करना चाहिए। भारी शोक या चिन्ताके समय भी उपवास करना हानिकारक होता है, क्योंकि उपवास कालमें सदा प्रसन्नचित्त रहनेकी आवश्यकता होती है। जो लोग सब प्रकारसे नीरोग हों और जिनके शरीरमें किसी प्रकारकी बीमारी न हो, उन्हें भी व्यर्थ उपवास न करना चाहिए, क्योंकि उपवास केवल रोगको शरीरसे बाहर निकाल देनेकी एक सर्वोत्तम क्रिया है। स्वयं उपवाससे शारीरिक संगठन और बल-वृद्धि आदिमें कोई सहायता नहीं मिलती। हाँ, जो विष और विकार आदि शरीर-संगठन और बल-वृद्धि आदिमें बाधक होते हैं, उन विषों तथा विकारोंको उपवास अवश्य ही शरीरके बाहर निकाल देता है।

जिस युवक अथवा युवतीकी पाचन शक्ति ठीक हो, जिसे किसी प्रकारका रोग न हो, जिसका जिगर और फेफड़ा ठीक तरहसे काम करता हो, उसे उपवासकी कभी कोई आवश्यकता नहीं है। जिस मनुष्यका शरीर सब प्रकारसे नीरोग हो उसे केवल इसी बातकी आवश्यकता होती है कि वह पथ्यसे रहे, स्वच्छ वायुका सेवन करे और खूब कसरत करे। इस अवसरपर यह बात भूल न जानी चाहिए कि एक मात्र उपवास ही सब रोगोंको नष्ट कर नेका उपाय नहीं है; बल्कि उसके लिए शारीरिक संयम, खुली हवा, सूर्य्यके प्रकाश, पूरी नींद और यथेष्ट शारीरिक परिश्रमकी भी बहुत कुछ आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त सदा नीरोग रह नेके लिए शुद्ध और निर्दोष मनोवृत्ति, दृढ़ निश्चय और प्रफुल्लता आदिकी भी बहुत बड़ी आवश्यकता होती है।

उपवाससम्बन्धी कुछ परीक्षायें

जो लोग इस बातकी परीक्षा करना चाहें कि उपवासो रोगका नाश होता है या नहीं, उनके लिए सबसे अच्छा और सहज उपाय यह है कि वे पहले एक या दो दिन का उपवास करें। उस एक या दो दिनमें ही उन्हें बहुत कुछ लाभ मालूम होने लगेगा, और उस दशामें यदि उनको अच्छी तरह सन्तोष हो जाय तो वे और अधिक दिनोंतक उपवास कर सकते हैं। अथवा यदि उनकी हिम्मत न पड़ती हो, तो वे पहले बहुत छोटे छोटे उपवास करें और ज्यों ज्यों उन्हें उसके लाभ मालूम होते जायँ त्यों त्यों वे अधिक दिनोंके उपवास करते जायँ। जिन लोगोंकी देख-रेखके लिए योग्य उपवास चिकित्सक न मिल सकते हों और जिन्हें स्वय भी उपवाससम्बन्धी विशेष जानकारी न हो, उनके लिए इस उपायका अवलम्बन बहुत ही उत्तम और उपयुक्त है।

जिस उपवासकी समाप्तिपर जीभका स्वाद न सुधरे, जीभपर जमी हुई पपड़ी आपसे आप न उतर जाय तथा इसी प्रकारके और दूसरे ऐसे चिह्न न प्रकट हों जिनसे विषोंके बाहर निकल जानेका पूरा पूरा प्रमाण मिलता है, उस उपवासको अपूर्ण और अधूरा समझना चाहिए। साधारणत आठ दस दिनके उपवासको योग्य उपवास चिकित्सक अधूरा ही समझते हैं। क्योंकि उन आठ दस दिनोंमें भी वास्तविक उपवासके दिन चार या पाँच ही होते हैं; और ऐसे छोटे उपवास विना किसी प्रकारकी कठिनता या कष्टके ही किये जा सकते हैं। ऐसे अधूरे उपवासोंसे शरीरकी कभी कोई शक्ति भी नहीं घटती। शक्तिके सम्बन्धमें सबसे पहले यह बात समझ लेनी चाहिए कि शक्ति न तो भोजन करनेके उपरान्त तुरन्त ही उत्पन्न होती है और न दुर्बलता सदा थोड़ा खानेसे ही होती है; दुर्बलताका मुख्य कारण वे विष होते हैं जो हमारे रक्तमें मिल जाते हैं।

इस अवसरपर हम एक ऐसा उपाय बतलाते हैं जिससे उपवासकी परीक्षा भी हो सकती है और आरम्भ भी। जो लोग उपवासपर विश्वास न करते हों अथवा विश्वास करनेपर भी जिनमें उससे लाभ उठानेका साहस न हो उनके लिए यह उपाय बहुत ही अच्छा है। ऐसे मनुष्योंको उचित है कि वे पहले दिन उपवास करें और दो दिनतक नियमित भोजन करें और तब दो दिनों तक उपवास करके चार दिन नियमित भोजन करें, तदनतर वे चार दिन विना भोजनके रहकर आठ दिन भोजन करें और यह क्रम बराबर जारी रक्खें। इसमें सिद्धान्त यही होना चाहिए कि एक बार वे जितने दिनोंका उपवास करें, उपवासके उपरान्त उससे दूने दिनोंतक वे भोजन करें। इस प्रकार उन्हें उपवासके लाभ भी मालूम हो जायँगे और वे विना अधिक कष्ट सहे उपवासका अभ्यास भी कर लेंगे। इसके सिवा उन्हें उपवास कालमें प्रकट होनेवाले अनेक चिह्नों तथा उसके सम्बन्धमें दूसरी बहुतसी आवश्यक और जानने योग्य बातोंका पता भी लग जायगा और वे उस सम्बन्धमें सब प्रकारका अनुभव भी प्राप्त कर लेंगे। इस अवसरपर हम यह भी बतला देना चाहते हैं कि उपवास कालमें कभी स्वच्छ जलके अतिरिक्त और किसी चीजका बहुत छोटा टुकड़ा या एक दाना भी न खाना चाहिए; नहीं तो भूख उभड़ आवेगी और तब विवश होकर उन्हें भोजन करना ही पड़ेगा। उस समय सारा परिश्रम व्यर्थ हो जायगा।

बहुत छोटा और अधूरा उपवास प्रत्येक दशामें और प्रत्येक अवसरपर किया जा सकता है। एक नीरोग मनुष्य जब चाहे तब एक या दो बारका भोजन छोड़कर अच्छा लाभ उठा सकता है। उपवासके लाभोंका बहुत कुछ पता उसीसे लग जाता है। जो मनुष्य यह समझता हो कि मुझे उपवास करनेकी आवश्यकता है, पर उसे लम्बे या बड़े उपवासोंसे भय लगता हो वह पहले एक बारका भोजन छोड़े। तदुपरान्त जब उसे बहुत अधिक भूख लगे तब वह एक या दो गिलास साफ गरम पानी पी ले। अथवा एक

गिलास ठंढा पानी बहुत ही धीरे धीरे, मानों चूस-चूसकर
यदि उस समय मुँहका स्वाद कुछ बिगड़ जाय और पानी अच्छा
न लगे, तो उसमें नीबू या किसी और फलका बहुत थोड़ासा रस
डाल ले। जिस समय मुँहका स्वाद बदला हो अथवा मुख में
मालूम हो उस समय कदापि भोजन न करना चाहिए। भूखकी
सबसे अच्छी परीक्षा यही है कि मुँहका स्वाद ठीक हो और जो
कुछ खाया जाय वह बहुत स्वादिष्ट मालूम हो। भोजन उसी
समय अच्छी तरह पचता है जब कि वह सादेसे सादा होने पर
भी बहुत स्वादिष्ट जान पड़े। मुँहके अन्दर कुछ विशेष भाग ऐसे
हैं जिन्हें अँगरेजीम)ast bueds कहते हे। भोजनका स्वाद उसी
समय मिलता है जब कि भोजनका उन भागोंमें समावेश होता है
और उनमें भोजनका समावेश उसी समय होता है जब कि मनु-
ष्यका पकाशय खाली और भोजन ग्रहण करनेके लिए तैयार हो।
जिस समय पाचन-शक्तिके लिए पहलेसे ही बहुत सा काम तैयार
हो और उसे नये भोजनको पचानेकी आवश्यकता न हो उस समय
मनुष्यको भोजनका वास्तविक स्वाद कभी नहीं मिल सकता।
स्वाद हमें यह बतलाता है कि इस समय हमें भोजनकी आवश्य-
कता है या नहीं।

जो लोग उपवास करते हों उनके लिए बीच बीचमें यह जान-
नकी भी बड़ी आवश्यकता होती है कि अभी उपवास पूरा हुआ
है या नहीं। यद्यपि उपवासकी समाप्तिपर मनुष्यका वास्तविक
भूख लगती है और उसे भोजनकी बहुत अधिक आवश्यकता
होती है, तथापि इसके अतिरिक्त और भी ऐसे उपाय हैं जिनसे
उपवासकी समाप्तिका पता चल जाता है। कभी कभी उपवा-
सकी समाप्तिसे पहले ही किसी विशेष कारणवश कृत्रिम
भूख लगनेकी भी सम्भावना होती है और उस दशामें अनेक
दूसरे चिह्नोंसे इस बातका पता लगता है कि अभी उपवास
समाप्त हुआ या नहीं। उपवाससे शरीरको पूरा पूरा लाभ पहुँ-
चानेका सबसे अच्छा चिह्न यह है कि उपवास-कालमें जिसपर

ो पपड़ी जमती है वह स्वयं ही धीरे धीरे साफ हो जाय और ामका वास्तविक गुलाबी रंग भीतरसे निकल आवे*। इसके ातिरिक्त उस समय मुँहका स्वाद भी बहुत अच्छा और मीठा ो जाता है और साँस बहुत साफ हो जाती है। पहले जो असा- ारण और बहुत विलक्षण भूख लगी रहती थी वह मिट जाती ै और उसके स्थानपर हलकी और स्वाभाविक भूख उत्पन्न होती ै। उस समय बहुत हलके और स्वास्थ्यप्रद भोजनकी ओर रुचि ोती है, सभी अच्छी बुरी चीजोंपर मन नहीं चलता।

कुछ अवस्थायें ऐसी भी होती हैं जिनमें रोगीको बीचमें ही उपवास छोड़ देना चाहिए। जिस समय रोगीमें चलने फिरने, यहाँतक कि उठने बैठनेकी भी शक्ति न रह जाय और जब कि वह इतना निर्बल हो जाय कि सदा बिछौनेपर ही पड़ा रहे तो उसे अपना उपवास छोड़कर भोजन आरम्भ कर देना चाहिए उस समय उसे बहुत थोड़ा दूध या फलों आदिका रस पीना चाहिए जिसमें उसका शरीर धीरे धीरे हरा होने लगे। पर इस अवसरपर यह बात भूल न जानी चाहिए कि उपवास कालमें बहुधा कृत्रिम दुर्बलता भी हो जाती है। यदि प्रातःकाल सोकर उठनेके समय दुर्बलता जान पड़े और सिरमें चक्कर आवे अथवा उठा न जाय, तो उस समय थोड़ा साहस करके उठ बैठना चाहिए और धीरे धीरे या लकड़ी आदिके सहारे इधर उधर टहलना चाहिए। इस प्रकार थोड़ी ही देरके बाद शरीरकी सब शक्तियाँ चैतन्य और जाग्रत हो जायँगी और शरीरमें साधारण शक्ति आ जायगी। बहुतसे ऐसे रोगी देखे गये हैं जिन्हें पहले तो बहुत अधिक दुर्बलता जान पड़ती थी, पर जहाँ उन्होंने थोड़ीसी गहरी और लंबी साँसें लीं और दो चार बार उठने बैठनेका प्रयत्न किया वहीं उनमें इतनी शक्ति आ गई कि वे बिना थके कुछ मीलोंका चक्कर लगा आये। ऐसे लोगोंको कभी उपवास छोड़नेकी कोई

* यह चिह्न सदा ही विश्वसनीय नहीं है इसके लिए परिशिष्टमें विस्तारसे लिखा गया है उसे पढ़िए।

आवश्यकता नहीं है। हाँ, जो लोग वास्तवमें एकदम निर्बल हो गये हों और सब कुछ प्रयत्न करनेपर भी उठने बैठनेतकमें असमर्थ हों, उन्हें अवश्य उपवास छोड़ देना चाहिए। बात असल यही है कि उपवास-कालमें शरीरकी शक्तियोंको जाग्रत करने और काम करनेके योग्य बनानेके लिए थोड़ेसे परिश्रमकी आवश्यकता होती है। शरीरमेंसे आलस्य निकलते ही मनुष्य ज्योंका त्यों हो जाता है और अपने सब काम बड़े आनन्दसे पहलेकी तरह करने लगता है। वास्तविक दुर्बलता बहुधा उन्हीं लोगोंको होती है जो आवश्यकतासे अधिक उपवास कर जाते हैं, या उपवास-कालमें यथेष्ट व्यायाम नहीं करते।

उपवास किस प्रकार छोडना चाहिए?

उपवास करनेवालोंके लिए यह जानना बहुत अधिक आवश्यक है कि उपवास किस प्रकार छोड़ना चाहिए। यदि उपवास छोड़नेके समय किसी प्रकारकी असावधानता या कुपथ्य हो जाय तो उपवासका सारा लाभ नष्ट हो जाता है और कभी कभी उलटे हानि भी सहनी पड़ती है। यदि नियमोंका ठीक ठीक पालन किया जाय तो चिन्ताकी कोई बात नहीं रह जाती और शरीर बिल्कुल नीरोग और पुष्ट हो जाता है। उपवास छोड़नेके उपरान्त कुछ अधिक खा लेनेसे मृत्युतककी सम्भावना होती है। इस लिए बहुत तेज भूखके फेरमें पड़कर एक ही बारमें बहुत सा भोजन न कर लेना चाहिए। उपवास छोड़नेके उपरान्त खानेकी इच्छा इतनी अधिक होती है कि उस समय जो कुछ मिले वही खा जानेका मन करता है। इसका यह कारण नहीं है कि उस समय उपवास करनेके उपरान्त भूखका जोर ही इतना अधिक बढ़ जाता है, बल्कि उस समय मनकी अवस्था ही ऐसी हो जाती है। इस सम्बन्धमें एक अच्छे विद्वानका मत है—

"उपवास छोड़नेके समय बहुत सावधानी रखनी चाहिए। उपवासकी समाप्तिके उपरान्त शरीरकी रचना मानो पुन नये सिरेसे होती है और उस समय इस बातपर विशेष ध्यान रखना चाहिए कि हम क्या खायँ, किस प्रकार खायँ और कितना खायँ। उपवास छोड़नेके उपरान्त जब हम भोजन आरम्भ करते हैं, उस समय यदि अधिक खाना आरम्भ कर दें तो उपवास करनेसे हमारे शरीरको जितने लाभ हुए होंगे वे सब नष्ट हो जायगे। इस लिए उपवास छोड़नेके समय किसी अच्छे उपवास चिकित्सककी सम्मति लेनी चाहिए, और जिस प्रकार वह बतलाए उस प्रकार हमें भोजन करना चाहिए, और बराबर कसरत जारी रखनी चाहिए।"

अधिक दिनोंतक उपवास करनेवाले लोगोंको उपवास छोड़नेके समय भोजनपर विशेष ध्यान रखनेकी आवश्यकता होती है। हाँ, एक दो या चार दिनोंका उपवास करनेवालोंको उसके लिए उतनी चिन्ता न करना चाहिए। पर जो लोग कई सप्ताहों या मासों तक बिना भोजनके रह चुके हों उन्हें उस समय तक भोजनका विशेष ध्यान रखना चाहिए, जब तक उनके भोजन पचाने वाले अवयव भोजनको अच्छी तरह पचानेमें समर्थ न हो जायँ। उपवास छोड़नेके उपरान्त पहले या नित्यके अनुसार भोजन करनेका प्रयत्न कदापि न करना चाहिए और न भोजन करनेमें किसी प्रकारका उतावलापन करना चाहिए। भोजन बहुत ही थोड़ी मात्रामें आरम्भ करके बहुत धीरे धीरे बढ़ाना चाहिए।

बहुत दिनोंतक बिना भोजनके रहनेके कारण रोगीके शरीरकी हालत बहुत नाजुक हो जाती है और उपवास छोड़ने पर, बल्कि बहुधा बीचमें भी उसे इतनी भूख लगती है कि यदि वह किसी अच्छे डाक्टरकी देख रेखमें हो, तो कभी कभी लुक-छिपकर भी कुछ खानेका प्रयत्न करता है। अत डाक्टरोंकी देख रेखमें उपवास करनेवालोंको यह बात दृढतापूर्वक अपने मनमें अंकित कर लेनी चाहिए कि बिना डाक्टरकी सम्मतिके अथवा उसे बतलाये

हुए कभी कोई काम करना न चाहिए, विशेषत कभी कोई खानी न चाहिए। उस समय भूख ऐसी लगती और जितनी मात्रामें मिले वह सब खाई जा सकती है। समय लोग कभी कभी ऐसी चीजें भी खा लेते हैं, जिनका पर बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ता है। उस दशामें डाक्टरको भारी विपत्तिका सामना करना पड़ता है और रोगीको भी कष्ट सहना पड़ता है। यदि इस बातका पता लग जाय कि उ वास छोड़नेके उपरान्त किसीने कोई अधिक पदार्थ खा लिया है, तो तुरन्त के कराके अथवा उसके पेटमेंसे वह पदार्थ निकलवा देना चाहिए। यदि उपवास करनेवालेसे न रहा जाय तो उसे कमसे कम डाक्टरकी सम्मतिके अनुसार अवश्य चलना चाहिए, जिससे वह बहुतसी भूलों और दोषोंसे बचा रहे।

जिन लोगोंका शरीर दुर्बल हो उनके लिए और भी अधिक सावधानीकी आवश्यकता होती है। उनमेंसे कुछ लोग ऐसे होते हैं जिन्हें वास्तवमें दो तीन सप्ताह तक उपवास करनेकी आवश्यकता होती है। पर एक ही सप्ताह तक उपवास करनेके उपरान्त वे इतने दुर्बल हो जाते हैं कि उन्हें उपवास छोड़ देनेकी आवश्यकता होती है। यदि पहली बार ही रोगी अधिक दिनोंका उपवास न कर सके तो उसके लिए सुगम उपाय यह है कि जिस रोगके लिए उपवास कराया जाता हो वह रोग जब तक अच्छा न हो जाय तब तक वह रोगी थोड़े थोड़े दिनोंका उपवास करता रहे और ज्यों ज्यों उसकी शक्ति बढ़ती जाय त्यों त्यों वह उपवासकी मुद्दत भी बढ़ाता जाय। जो लोग दुर्बल होते हैं वे आरम्भमें अधिक लम्बे उपवास नहीं कर सकते, पर यदि वे धीरे धीरे अपने उपवासकी मुद्दत बढ़ाते जायँ तो आगे चलकर अधिक उपवास कर सकते हैं।

प्रत्येक उपवास करनेवालेको यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि छोटे या बड़े प्रत्येक उपवाससे होनेवाला लाभ उप-

वास छोड़नेके प्रकारपर ही अवलंबित रहता है। जिस प्रकार कोई बहुत दुःखभरी बात किसीको बहुत धीरे धीरे सुनाई जाती है, उसी प्रकार उपवास भी बहुत धीरे धीरे छोड़ना चाहिए। उपवास छोड़नेके पहले अच्छे फलोंके रसके सिवा और कोई चीज नहीं लेनी चाहिए। अंगूर या सन्तरे आदिका रस सबसे अच्छा है। इनमेंसे किसी फलका रस एक छोटेसे गिलासमें लेकर उसमें थोड़ी चीनी डाल देनी चाहिए और उसमेंसे बहुत ही धीरे धीरे एक एक घूँट करके और स्वाद ले लेकर गलेमें उतारना चाहिए। एक दमसे बहुत सा रस गटर गटर करके पी जाना बहुत ही हानिकारक है। इस प्रकार दिनमें दो तीन बार पीना चाहिए। दूसरे दिन ताजा, बढ़िया और गरम दूध एक एक गिलास करके दिनमें तीन चार बार पीना चाहिए। दूध या रसको बराबर उस समय तक मुँहमें ही रखना चाहिए, जबतक उसमें किसी प्रकारका स्वाद रहे। तीसरे दिन दूधकी मात्रा कुछ बढ़ा देनी चाहिए और उसके साथ कुछ खट्टे (एसिडवाले) फल भी खाने चाहिए। चौथे दिन दूधकी मात्रा और फलोंकी संख्या कुछ बढ़ा देनी चाहिए। पाँचवें दिन सदाके नियमानुसार अपना साधारण पर सादा भोजन करना चाहिए, लेकिन वह भोजन नित्यकी मात्रासे कम हो। जो लोग एक सप्ताह या इससे अधिक समय तक उपवास कर चुके हों, उनके लिए इन नियमोंका पालन बहुत ही आवश्यक है।

इस अवसरपर यह बतला देना आवश्यक जान पड़ता है कि, उपवास-कालमें शरीरके भीतर क्या क्या फेरफार होते हैं। शरीरमेंसे सदा कुछ ऐसे रस निकलते रहते हैं, जिनसे भोजन पचता है। उपवास कालमें उन रसोंका निकलना बन्द नहीं होता बल्कि बराबर जारी रहता है। पर स्वयं पक्वाशयकी शक्ति बहुत मन्द पड़ जाती है और यही कारण है कि उपवासकी समाप्तिपर उसके लिए एक दमसे भारी या अधिक भोजन पचा सकना असम्भव होता है। शरीरके भीतरी मार्गसे निकलनेवाले पाचक

इसोंकी मात्रा चार पाँच दिनों बाद कुछ कम होने लगती इसलिए चार दिनोंतकका उपवास करनेवाले लोग उपवासके उपरान्त नियमानुसार भोजन कर सकते हैं, क्योंकि उन लोगोंको उस भोजनसे कोई हानि नहीं पहुँच सकती। यद्यपि कुछ लोग ऐसे होते हैं, जो एक सप्ताह तक उपवास करनेके उपरान्त भी बिना किसी प्रकारकी जोखिम सहे नियमानुसार भोजन कर सकते हैं, पर तो भी सर्व साधारणको इसके लिए बहुत ही सचेत रहना चाहिए। जिन लोगोंको उपवास छोड़नेके दो दिन बाद बहुत अधिक भूख लगनेके कारण बेचैनी हो उनकी बेचैनी थोड़ा दूध पीते ही दूर हो जायगी और शरीरको किसी प्रकारकी हानि भी न पहुँचेगी। उपवास छोड़नेके पाँच छः दिन बाद भी जब नियमित भोजन आरम्भ किया जाय तब कुछ दिनों तक इस बातका बहुत ध्यान रखना चाहिए कि भोजन बहुत ही हल्का और सदासे कम हो। जीभके स्वाद अथवा और किसी कारणसे कभी अधिक न खाना चाहिए। साधारणतः उपवास-चिकित्सालयोंमें जब एक सप्ताह या इससे अधिक समयतक उपवास करनेवालेका उपवास छुड़ाया जाता है, तब पहले दो दिनों तक उसे केवल फलोंके रस ही देते हैं और तब उसके बाद तीसरे दिनसे दूध आरम्भ करते हैं। तीसरे दिन दो दो घंटोंपर और चौथे दिन एक एक घंटेपर एक गिलास दूध दिया जाता है। पाँचवें और छठे दिन इसी प्रकार अन्तर कम किया जाता है और ज्यों ज्यों उपवास करनेवालेकी पाचनशक्ति बढ़ती जाती है त्यों त्यों उसे अधिक दूध मिलता जाता है। दूधकी मात्रा इस प्रकार धीरे धीरे बढ़ानेसे तौलमें शरीर भी बहुत जल्दी जल्दी बढ़ने लगता है। कभी कभी तो वह एक ही दिनमें डेढ़ दो सेर तक बढ़ जाता है। बहुतसे उपवास करनेवाले एक ही सप्ताहमें तौलमें १२-१३ सेरतक बढ़ गये है।

उपवासके उपरान्त दूध पीनेसे अनेक लाभ होते हैं। सबसे पहली बात तो यह है कि दूध हलका और लघुपाक होता है और

दूसरे, शरीरका बल बहुत बढ़ता है। उसका तीसरा लाभ यह भी होता है कि भोजन करनेकी बहुत प्रबल इच्छा इससे कुछ दब जाती है। पर जो लोग दूधपर किसी प्रकार रह ही न सकते हों उन्हें बहुत ही अल्प मात्रामें चौथे या पाँचवें दिनसे अपना नियमित भोजन आरम्भ करना चाहिए। जो लोग चार दिनोंतकका उपवास कर चुके हों उन्हें अपना नियमित भोजन आरम्भ करनेके समय इस बातका ध्यान रखना चाहिए कि जिस दिन वे भोजन आरम्भ करें उस दिन रोजसे आधा भोजन करें। जो लोग एकसे दो सप्ताह तकका उपवास कर चुके हों उन्हें भोजन आरम्भ करनेके दिन नित्यके भोजनका पाँचवाँ भाग खाना चाहिए; उसके दूसरे दिन नित्यके भोजनका तीसरा भाग, तीसरे दिन आधा भाग और चौथे दिन नित्यसे कुछ कम खाना चाहिए। पाँचवें दिनसे यदि वे नियमित रूपसे भोजन करें तो कोई हानि नहीं है। उपवासके उपरान्त जो कुछ कम खाया जाय वह बहुत ही सादा और बलवर्द्धक होना चाहिए। जितना ही सादा भोजन किया जायगा उतना ही अधिक स्वाद मिलेगा।

अब हम उपवास छोड़नेके सम्बन्धमें दो सज्जनोंके मत देकर यह प्रकरण समाप्त करते हैं। अप्टन सिंक्लेअर अपने निजके अनुभवके अनुसार लिखते हैं—

"बरनर्ड मेकफेडनका उपवास चिकित्सालय छोड़नेके उपरान्त मैंने कई बार उपवास किये हैं और प्रत्येक बार मैंने भिन्न भिन्न प्रकारका भोजन लेकर उपवास छोड़नेका प्रयत्न किया है। जिस समय मैं एलबामार्गे था उस समय मैंने बारह दिनोंका उपवास किया था। उपवास कालमें मेरी इच्छा वहाँके एक विशेष प्रकारके फलपर बहुत अधिक थी, इस लिए जब मैंने उपवास छोड़ा तब वही फल खाया था, पर उसके खानेसे मेरे पेटमें मरोड़ होने लगा। तबसे मैं बराबर लोगोंको वह फल खानेसे मना करता हूँ। मेरे एक मित्रने एक बार उपवास छोड़नेके उपरान्त मोटे नींबूका रस लिया था, उसे भी मेरी ही तरह मरोड़ हुआ था। पर वह ऐसी प्रकृतिका मनुष्य था, जिसे खट्टे या एसिडवाले फल जरा भी पसन्द न आते थे। मैं एक ऐसे आदमीको भी जानता हूँ जिसने मांस खाकर उपवास छोड़ा था पर

यह भोजन इस योग्य नहीं है कि इसकी सिफारिश की जाय। मेरी एक ..ने एक सप्ताहका उपवास किया था और उसे छोड़ते समय उसने चावल और उबाले हुए अंडे खाये थे, पर इस भोजनसे उसे किसी प्रकारका लाभ न ...
क्योंकि उसकी भूख जितनी अधिक बढ़नी चाहिए थी उतनी उससे न ...
लगातार कई सप्ताहों तक चावल और अंडा खाते रहनेसे पैखाना बिलकुल ... होता था।

"मेरा अनुभव यह है कि उपवासके उपरान्त पक्वाशय बहुत ही दुर्बल ... है और उसपर बहुत ही शीघ्र हानिकारक प्रभाव पड़नेकी सम्भावना होती है। इसके अतिरिक्त उस समय आँतोंकी शक्ति भी बहुत कम होती जाती है। ... उस अवसरपर ऐसा भोजन पसन्द करना चाहिए, जो बहुत जल्दी हजम हो ... साथ ही इस बातका भी ध्यान रखना चाहिए कि जब तक आँतोंमें शरीरका ... बाहर निकालनेकी पूरी पूरी शक्ति न आ जाय तब तक एनिमाका उपयोग ... जारी रखना चाहिए। उपवास छोड़नेके समय पहले दो या तीन दिनतक ... मीठे नींबू या अंगूरके रसपर रहना चाहिए और तदुपरान्त दूधका सेवन आरम्भ कर देना चाहिए। उस समय पहले पहल आधा गिलास गरम दूध पीना चाहिए। यदि केवल दूध अच्छा न लगता हो तो उसमें अंगूर, खजूर या आलू भी मिला लेना चाहिए। यदि आवश्यकता हो तो चावल काँजी और शोरबे आदिका व्यवहार भी आरम्भ कर देना चाहिए पर उसके साथ ही साथ एनिमा लेना भी जारी रखना चाहिए। मैंने तीन तीन दिनके कई उपवास छोड़े हैं मुझे निश्चय हो गया है कि उस समयके लिए दूधसे बढ़कर और कोई उत्तम पदार्थ नहीं है।"

उपवास चिकित्साके प्रसिद्ध विद्वान् डाक्टर टेनरने अपना पहला उपवास छोड़ते समय आरम्भसे ही तरबूज खाना शुरू किया था। यद्यपि कुछ विशेष अवस्थाओंमें तरबूज उपयुक्त हो सकता है तथापि प्रत्येक मनुष्यके लिए आरम्भसे ही तरबूज खाना ठीक न होगा। एक व्यक्तिने पहले कुछ अखरोट पानीमें भिगो लिए थे और तब उन्हें आठ दस पहर तक सुखाया था। उपवास छोड़नेके समय उसने वही सुखाये अखरोट खाये थे। उसका कथन है कि इस भोजनसे मेरा पूरा सन्तोष हुआ था और मुझे कोई हानि नहीं पहुँची थी। अपने इच्छानुसार कोई हलका और

शीघ्र पचनेवाला भोजन किया जा सकता है। उसमें विशेष ध्यान रखने योग्य केवल एक यही बात है कि उपवास छोड़नेके उपरान्त बहुत अधिक भूख लगनेपर कभी भोजन बहुत अधिक न करना चाहिए। जहाँ तक हो सके बहुत ही कम खाना चाहिए। इस प्रकार दो चार दिनोंतक नहीं बल्कि दो तीन सप्ताहों तक रहना चाहिए।

डाक्टर हरवर्ड केरिंगटन उपवास चिकित्साके बहुत बड़े ज्ञाता और पंडित माने जाते हैं। उपवास छोड़ने और उस समय भोजन करनेके सम्बन्धमें आपकी जो सम्मति है उसे परमोपयोगी समझकर हम इस स्थानपर उसका आशय दे देते हैं—

"उपवास छोड़नेकी क्रिया मेरी समझमें बहुत ही महत्वपूर्ण और विचारणीय है। क्योंकि यदि उपवास छोडनेमें किसी प्रकारकी असावधानी आ जायगी तो उपवाससे उसका अधिकांश लाभ प्राय बहुत कम हो जायँगे। जिन लोगोंको उपवास-सम्बन्धी विशेष अनुभव है वे यह बात भलीभाँति समझते होंगे कि उपवास छोड़नेके समय कितनी अधिक सावधानीकी आवश्यकता होती है। मैं अपने अनुभवके अनुसार इस सम्बन्धमें कुछ बातें बतलाता हूँ।

"उपवाससम्बन्धी सबसे बड़ा इस नियमका ध्यान सदा और अवश्य रखना चाहिए कि प्रकृति हमें स्वय यह बतलाती है कि उपवास कब छोड़ना चाहिए। इस सम्बन्धमें हमारे शरीरमें कुछ विशेष और स्पष्ट चिह्न प्रकट होते हैं जिनमेंसे कुछका उल्लेख यहाँ किया जाता है,—

(१) उपवास कालमें शरीरकी जो गरमी साधारणसे अधिक अथवा कम हो जाता है, वह उपवास छोडनेके समय अपनी ठीक (Normal) अवस्थामें आ जाती है।

(२) उपवास कालमें जीभपर जो पपड़ी जमी होती है वह धीरे धीरे आपसे आप उतर जाती है और जीभ साफ हो जाती है।

(३) उपवास-कालमें नाड़ी अधिक शीघ्रतासे अथवा धीमी चलती है पर उपवास छोड़नेकी आवश्यकता होनेपर वह अपने नियमित रूपसे चलने लगती है।

(४) उपवास-कालमें जो साँस दुर्गन्धयुक्त रहती है वह उपवास पूरा होनेपर बिल्कुल साफ और बिना दुर्गन्धकी हो जाती है।

(५) त्वचा तथा शरीरके दूसरे अंग जो पहले विशेष या न्यून क्रिये करते थे, व अपनी साधारण स्थितिमें आकर पूर्णरूपसे काम करने लगते हैं।

(६) अन्तिम और सबसे बडा चिह्न यह है कि भूख नियमित रूप अपनी साधारण अवस्थामें लगती है। कृत्रिम भूखकी तरह विशेष रूपसे नहीं ल

" कई दिनातक किसी प्रकारका भोजन न करनेके उपरान्त जब साधारण अवस्थामें पहुँच जाता है तब उक्त चिह्न प्रकट होत हैं।

" इस अवसरपर प्रश्न हो सकता है कि वास्तविक और कृत्रिम भूखकी चान क्या है ? दोनों अवस्थाओंमें ही मनुष्य कह सकता है कि मुझे भूख लगी उनमेंसे एकको भोजनकी वास्तविक आवश्यकता है, पर दूसरको वैसी आवश्य नहीं होता। ऐसी दशामें यह किस प्रकार जाना सकता है कि उनमेंसे किसे भ दिया जाना चाहिए और किसे नहीं ?

" इस लिए वास्तविक और कृत्रिम भूखको पहचाननेके लिए यहाँ उ कुछ अन्तर बतला देना आवश्यक जान पडता है। जिस समय झूठी भूख ह है उस समय पेटमें एक प्रकारकी थोडी बहुत गुड़गुडी होती है। पर जिस वास्तविक या सच्ची भूख लगती है उस समय शरीरमें वे चिह्न उत्पन्न होते हैं ऊपर बतलाये गये हैं। इसके अतिरिक्त गलेमें एक विशेष प्रकारकी खुश्की सी है, जो वास्तवमें प्यास तो नहीं होती पर प्यास सी जान पडती है। गलेकी टियों (Glands) मेंसे एक प्रकारका पानी या रस निकलने लगता है। पानीका रस निकलना ही वास्तविक भूखका सबसे अच्छा और प्रामाणिक चिह्न उपवास कालका समाप्तिके और चाहे जितने लक्षण शरीरमें उत्पन्न हो जायँ, जब तक गलकी गिलटियोंसे पानी न निकलने लगे तब तक कभी उपवास न छो चाहिए।

" दूसरा लक्षण यह है कि जिस मनुष्यको झूठी भूख लगी होगी, वह जो कुछ पावेगा सो सब अपने पेटकी ज्वाला शान्त करनेके लिए खा लेगा। पर जिसे वास्त विक भूख लगी होगी वह खानेके लिए कोई विशेष पदार्थ माँगेगा। उस अवस्थ समझ लेना चाहिए कि अब वास्तविक भूख लगी है।

" इस अवसरपर यह भी प्रश्न किया जा सकता है कि जब तक वास्तविक भूखके चिह्न प्रकट न हो तब तक उपवास करनेमें कोई जोखिम तो नहीं है ? उपवास समाप्तिके चिह्न उत्पन्न होनेसे पहले ही उपवास करनेवाला मर तो न जायगा ?

इस प्रश्नका बहुत सीधा, सहज, निश्चयात्मक और विश्वसनीय उत्तर यही है कि, ऐसा कदापि न होगा। इसमें न तो किसी प्रकारकी जोखिम है और न जान जानेका भय है। जोखिम अथवा मृत्युकी अवस्थातक पहुँचनेसे बहुत पहले ही वास्तविक भूखके चिह्न अवश्य प्रकट हो जायँगे। बात यह है कि अन्नके बिना मरनेसे पहले कुछ समय तक मनुष्यका शरीर धीरे धीरे गलता रहता है और उस अवस्थातक पहुँचनेसे बहुत पहले ही वास्तविक भूख लग जाती है।

" जो लोग बिना अन्नके भूखों मरते हैं उनके शवकी परीक्षा करके यह जाना गया है कि मरनेके समय उनके शरीरमेंसे नीचे लिखे पदार्थ इतने मानमें घटते हैं—

चरबी	९७ %
स्नायु (Tissue)	३० %
कलेजा (Liver)	५६ %
तिल्ली (Spleen)	६३ %
और खून केवल	१६ % नष्ट होता है।

" ज्ञानतन्तुओं (Nervous system) का कोई अंश नष्ट नहीं होता। इस कथनके प्रमाण शरीर शास्त्रके प्रत्येक प्रामाणिक ग्रन्थमें मिल सकते हैं।

" ऊपरके अंकोंसे इस बातका पता लग जाता है कि उपवास कालमें शरीरका वही अंश सबसे अधिक नष्ट होता है, जिसका उपयोग हमारे शरीरके अस्तित्वके लिए बहुत ही कम होता है। वह अंश चरबी है। इसके अतिरिक्त शरीरमें और भी अनेक अनावश्यक पदार्थ होते हैं, जिनपर उपवास कालमें शरीरका पोषण होता है और यही शरीरके नीरोग होनेका प्रधान कारण है।

" उपवास छोड़नेके सम्बन्धमें मैं यह कहना चाहता हूँ कि भोजन आरम्भ करनेके समय बहुत सावधानीसे और समझ बूझकर सब काम करना चाहिए। उपवास जितने ही अधिक दिनोंका हो उसे छोड़नेके समय उतनी ही अधिक सावधानीकी आवश्यकता होती है। साधारण कागज छापनेका प्रेस जब कुछ समय तक बन्द रहनेके उपरान्त फिरसे चलाया जाता है उस समय आरम्भमें उसे हमेशा बहुत धीरे धीरे चलाते हैं और उसकी गति क्रमशः बढ़ाते जाते हैं। पर यदि उसे आरम्भमें ही पूरी तेजीके साथ चलाया जायगा तो वह अवश्य ही टूट जायगा अथवा उसका कोई कल पुरजा बिगड़ जायगा। उस समय वह यंत्र ऐसा बिगड़ जायगा कि उसे बहुत समय तक बन्द रखनेकी आवश्यकता होगी। ठीक

यही दशा अपने शारीरिक यन्त्रकी भी समझिए। यदि कुछ दिनोंके उपवासके उप रान्त तुरन्त ही इससे पूरी तेजीसे काम लिया जायगा तो यह अवश्य ही बेकाम हो जायगा इस लिए उपवास हमेशा धीरे धीरे छोड़ना चाहिए और ज्यों ज्यों दिन बीतते जायँ त्यों त्यों भोजनकी मात्रा बढ़ती जानी चाहिए। इस उत्तमरूपसे होती रहेगी और शरीरका बल भी क्रमशः बढ़ता जायगा।

"उपवास जब तक स्वाभाविक रूपसे स्वयं ही पूरा न हो जाय, उसकी पूर्तिके सब लक्षण दिखाई न देने लगें तब तक उसे स्वयं न छोड़ना चाहिए। बीचमें ही उपवास छोड़ना मानों चलती गाड़ीमें रोड़ा अटकाना। शरीरकी आरोग्य-क्रियामें इससे बहुत विघ्न पड़ेगा। पेटमें आये हुए नये ठिकाने लगानेमें ही शक्ति लगने लगगी और आरोग्य क्रिया बहुधा मन्द जायगी। इस लिए उपवासको बिना पूरा किये बीचमें ही छोड़ देना ठीक नहीं है। मान लीजिए कि किसी मनुष्यने १५ दिनोंतक उपवास किया। उसकी पपड़ी अभीतक जमी हुई है और उसकी साँसमेंसे बदबू निकलती है, उस यदि वह एक ग्रास भी खा लेगा तो बहुत शीघ्र उसकी भूख बढ़ने । शरीरकी आरोग्य क्रिया बन्द हो जायगी। उसकी जीभपरकी पपड़ी उयर साँसकी बदबू जाती रहेगी, उसके शरीरके विषोंका बाहर निकलना बन्द हो और शरीरकी अधिकांश शक्ति भोजन पचानेमें लगने लगेगी।

"इस अवसरपर यह बात भी ध्यान रखने योग्य है कि उपवास आरम्भ नेके दो दिन बाद मनुष्यको भूख ही नहीं लगती। यही आरम्भिक दो दिन कठिनतासे बीतते हैं और यह कठिनता शरीरके अस्वाभाविक दशासे अथवा शान्त दशामें आनेके कारण होती है। इन दो तीन दिनोंके उप करनेवालेका समय बहुधा बहुत शान्तिपूर्वक और आनन्दसे कटता है। जबतक उसके शरीरके विषोंका शमन नहीं हो जाता तबतक उसे वास्तविक भूख लगती।

"क्षुधा भूख लगना ही उपवासकी समाप्तिका सबसे अच्छा लक्षण है। ऐसी भूख हमें यह बतलाती है कि हमारे शरीरसे सब प्रकारके विष बाहर निकल गये हैं और अब वह भोजनके लिए तैयार हो गया है। उस अवस्थामें भोजनके विषयमें दो बातें विचारणीय होती हैं। एक तो यह कि भोजन कितना होना चाहिए और दूसरे यह कि वह किस प्रकारका होना चाहिए।

" ऊपर बतलाया जा चुका है कि आरम्भमें भोजन बहुत ही कम होना चाहिए। पहले सप्ताह तो बहुत ही कम भोजन करना चाहिए और उसकी मात्रा धीरे धीरे बढ़ानी चाहिए और तदुपरान्त साधारण और नियमित भोजन करना चाहिए। पर उस दशामें भी इस बातका ध्यान रखना चाहिए कि दिन रातमें केवल दो बार भोजन किया जाय और कुछ भूख बाकी रहने पर ही भोजनसे हाथ खींच लिया जाय। उपवास छोड़नेके उपरान्त सबसे पहले दो दिनों तक केवल तरल पदार्थोंसे ही भूख शान्त करना चाहिए। उस समय दृढ़तापूर्वक मनको अपने वशमें रखनेकी बहुत बड़ी आवश्यकता होती है।

" उपवास छोड़नेके समय किस प्रकारका भोजन करना चाहिए इसके विषयमें कुछ मतभेद है। डाक्टर डेवीकी सम्मति है कि उस समय जिस चीजकी इच्छा हो वही चीज खाई जाय। पर मेरी समझमें यह विधान ठीक नहीं है। इसका कारण यह है कि उस समय मनुष्यका मन तरह तरहकी चीजोंपर चलता है, यदि वह सभी चीजें खाने लगा तो उनमेंसे बहुतसी उसके लिए हानिकारक प्रमाणित होंगी। बहुतसे रोगियोंके अनुभवसे मैंने यह बात अच्छी तरह समझ ली है कि मनुष्य जन्मसे जो पदार्थ अधिक मात्रामें खाता आता है, उपवास छोड़नेके समय उसकी रुचि साधारणतः उसी पदार्थकी ओर होती है। उत्तरीय ध्रुवके एस्किमो लोग उपवास छोड़नेके उपरान्त चरबी और आलू ही मांगेंगे। जो लोग जन्मसे अन्न, शाक और फल खाते आये होंगे वे सदा अन्न और फल ही मांगेंगे।

" परन्तु प्रेरणा और बुद्धि दोनों सदा साथ ही साथ काम नहीं करतीं। इसलिए क्षुधातुरकी मांगी हुई चीज उसे देना सब दशाओंमें ठीक नहीं। मनुष्य मात्रके शरीरका संगठन समान प्रकारका और समान पदार्थोंसे ही होता है। इसलिए उन सबके लिए क्रमशः कम उस स्वाभाविक दशामें एक ही प्रकारका ऐसा निश्चित भोजन होना चाहिए जो उनके शरीरके लिए लाभदायक और पुष्टिकर हो। मेरी समझमें उपवास छोड़नेके समय इस प्रकार भोजन आरम्भ करना चाहिए।—

" पहला दिन—जब उपवास छोड़नेका समय आवे और उसकी समाप्तिके सब लक्षण दिखाई दें उस समय उपवास करनेवालेको एक गिलास सन्तरेका पतला रस पीना चाहिए। यदि वह कुछ गाढ़ा हो तो उसमें थोड़ा पानी भी मिला लेना चाहिए। इसी प्रकारके और दूसरे फलोंका रस भी लिया जा सकता है पर वह रस न तो बहुत ठंढा होना चाहिए और न उसमें चीनी मिली होनी चाहिए।

" **दूसरा दिन**—रोगीको इस बातका विशेष ध्यान रखना चाहिए कि अधिक पदार्थ न चला जाय क्योंकि उस दिन भूख बहुत लगती है और रूप धारण कर लेती है। उस समय इच्छा और भूखको वशमें रखनेकी आवश्यकता होती है। यदि उस समय विशेष सावधानी न रक्खी जायगी तो परिणाम बहुत ही भयकर होगा।

" दूसरे दिनके लिए सबसे अच्छी खोराक सन्तरा है। खजूर और आदि और अखरोटोंपर भले ही लाभदायक हों पर उपवास छोडनेके समय उनके व्यवहार करनेकी सम्मति मैं नहीं देता। दूसरे दिन जहाँ तक हो सके एक फल खाकर काम चलाना चाहिए। यदि एक फल खाकर न रहा जाय तो एक और खा लेना चाहिए—इससे अधिक नहीं।

" **तीसरा दिन**—उपवास छोडनेके दो ही तीन दिन बाद तक बहुत सावधानीकी आवश्यकता होती है। इसके बाद यदि दिनपर दिन भोजन बढ़ाया जाय तो कोई हानि नहीं होती। तीसरे दिन एक आध रोटी, थोडी तरकारी और एक गिलास गरम दूध तक लिया जा सकता है। उस दिन एक तो भोजन बहुत सादा होना चाहिए और दूसरे मात्रामें भी कम होना चाहिए।

" उपवास छोडनेके उपरान्त बहुधा दूध ही सबसे अधिक उपयुक्त और लाभदायक होता है। उपवास छोडनेके दूसरे दिन जो दूध पीया जाय वह इतना गरम हो कि उससे मुँह न जले। दूध एक एक घूँट करके और बहुत धीरे धीरे पीना चाहिए। हर एक घंटे बाद एक गिलास दूध पीया जा सकता है। दिन हर घण्टेपर एक गिलास दूध पीना चाहिए। दूधसे शरीरका बल भी बढ़ता और वजन भी। शरीरके लिए सबसे अच्छा पोषक पदार्थ यही माना जाता है। प्रत्येक दशामें इससे लाभ ही होता है हानि कभी नहीं होती।

दिन-रातमें एक बार भोजन

प्रत्येक बुद्धिमान् यह बात स्वयं ही समझ सकता है कि बहुत अधिक या आवश्यकतासे अधिक भोजन करनेका शरीरपर बहुत बुरा परिणाम होता है। यदि पहला भोजन न पचा हो, पेटमें मौजूद ही हो और ऊपरसे एकबार और भोजन कर

लिया जाय तो निश्चय ही शरीरको उसका बहुत बुरा परिणाम भोगना पड़ेगा। आरम्भके पृष्ठोंमें एक स्थानपर बतलाया जा चुका है कि सभ्य देशोंमें प्रत्येक तीन घंटेके बाद भोजन करनेकी प्रथा है। भारतवासी भी दिनमें कमसे कम तीन चार बार अवश्य ही भोजन और जल पान करते हैं, पर बहुत अधिक भोजन करनेका यह रोग हालका ही है। आजसे डेढ़ दो हजार वर्ष पहले संसारके किसी भागके निवासियोंको इतना अधिक खानेकी लत नहीं थी। उन दिनों सभी देशों और जातियोंके लोग इस उन्नत और सभ्य कालकी अपेक्षा स्वास्थ्यके प्राकृतिक नियमोंका कहीं अधिक पालन करते थे। वे सदा खुली हवामें रहते थे, बहुत सा परिश्रम और लम्बी यात्रायें करते थे, और जब तक अच्छी तरह भूख न लगती थी तब तक भोजन न करते थे। बल्कि यह कहा जाय कि वे एक बारका किया हुआ भोजन पहले खूब परिश्रम करके पचा लेते थे, तब दूसरी बार भोजन करते थे तो अधिक उत्तम होगा। प्राचीन भारत, चीन, मिस्र, रोम और यूनान आदि सभी देशोंके प्राचीन निवासी यह बात भली भाँति समझते थे कि कब, कैसा और कितना भोजन करना चाहिए। पर आजकलकी सभ्यता, शिक्षा और उन्नतिने जहाँ हमें बहुतसे लाभ पहुँचाये हैं वहाँ स्वास्थ्यसम्बन्धी बहुत कुछ हानि भी पहुँचाई है। प्राचीन कालमें लोग अधिक परिश्रम भी करते थे और तरह तरहके कष्ट भी सहजमें सह लेते थे। पर आज कलकी सभ्यताने लोगोंको बहुत ही सुकुमार और आराम-तलब बना दिया है। इस सुकुमारता और आराम-तलबीका यथेष्ट फल भी लोगोंको भोगना पड़ता है। यह फल सैकड़ों बल्कि हजारों तरहके नये नये रोगोंके रूपसे प्रकट होता है।

संसारके अधिकांश प्राचीन निवासी दिन-रातमें केवल एक बार सन्ध्याके समय भोजन किया करते थे। दिन भर अपने काम धन्धोंमें लगे रहते थे, भरपूर परिश्रम करते थे और तब सन्ध्याके समय परिवारके सब लोग एकत्र होकर आनन्दपूर्वक भोजन करते

थे। दिन भर कुछ न खाने और खूब परिश्रम करनेके कारण उन्हें बहुत अच्छी तरह भूख लगती थी और उस समय वे लोग जो कुछ खाते थे वह अच्छी तरह पचा लेते थे। उनका रूखा-सूखा, हल्का और थोड़ा भोजन उनके शरीरके पोषण और बलवृद्धिके लिए यथेष्ट होता था, रोग आलस्य या विकार आदि उत्पन्न करनेके लिए उसका कोई अंश बच ही न रहता था। भोजनके उपरान्त संगीत, नृत्य, और हास्यविनोद आदिका आरम्भ होता था और यही सब बातें उन दिनों आज कलके सुलेमानी नमक और हिंगाष्टककी गोलियोंका काम देती थीं। कुछ जातियोंमें केवल दिनके समय ही खानेकी प्रथा थी। उन लोगोंका मुख्य भोजन आठ पहरमें केवल एक बार होता था और वह भी उतनी ही मात्रामें, जितनी मात्रामें आज कलके लोग 'जल-पान' करते हैं।

यद्यपि प्रकृति और प्रवृत्तिका बहुत ही घनिष्ठ सम्बन्ध है, तो भी अभ्यास एक ऐसी चीज है जो सबको और फलतः प्रवृत्तिको भी दबा लेती है। आप दिन भरमें पसेरी भर अन्नका भी सत्यानाश कर सकते हैं और डेढ़ पाव या आध सेरमें भी आपका निर्वाह बहुत मजेमें हो सकता है। इसमें आवश्यकता है केवल अभ्यासकी। यदि आप आवश्यकतासे अधिक भोजन करनेका अभ्यास करेंगे तो अवश्य ही आपकी भूखसम्बन्धी प्रवृत्ति और सहज-बुद्धिका थोड़े समयमें नाश हो जायगा और आप उस अभ्यासके वशीभूत हो जायँगे। यदि बहुत ही छोटी अवस्थाके दो बालक भिन्न भिन्न दाइयोंको दे दिये जायँ और उनमेंसे एक दाई बहुत थोड़ी थोड़ी देरके बाद दूध पिलाती रहे और दूसरी नियमित रूपसे दो दो या तीन तीन घंटोंके बाद दूध पिलाया करे तो निश्चय है कि पहली दाईवाला बालक–चाहे बीमार हो क्या न हो जाय–हर दम दूधके लिए रोया करेगा; पर जिस बालकको नियमित रूपसे छः या आठ बार दूध पिलाया जायगा उसे सातवीं या नवीं बार दूध पिलाना भी बहुत कठिन हो जायगा। इसका कारण यही है कि अभ्यासके कारण उसकी प्रकृति

इच्छा और सहज-बुद्धिका नाश हो जायगा, और इस नाशका परिणाम सदा घातक और अत्यन्त हानिकारक ही होगा। उसका स्वास्थ्य सदा बिगड़ा रहेगा और वह कभी शारीरिक सुख न भोग सकेगा।

बहुधा हम लोग देखा करते हैं कि नागरिकोंको देहातियोंका स्वास्थ्य देखकर बड़ा ही आश्चर्य होता है। नागरिक बहुतसा घी-चीनी, पूरी पक्वान्न, मेवा मिठाई, मास-मछली, पुआ पकोड़ी खाया करते हैं, पर सदा रोगी और दुर्बल ही बने रहते हैं। लेकिन देहातवाले बाजरे, जौ और मकईकी सूखी रोटी खाकर इतने नीरोगी और हृष्ट पुष्ट बने रहते हैं कि यदि वे चाहें तो दो एक नागरिकोंको बड़े आनन्दसे बगलमें दबाकर कोस दो कोसका चक्कर लगा सकते हैं। इसका कारण यही है कि वे स्वच्छ वायुमें रहकर इतना अधिक परिश्रम करते हैं कि उनका सारा भोजन पच जाता है और दूसरे भोजनके समयतक उन्हें खूब गहरी भूख लग जाती है। एक देहाती प्रात काल चार बजे उठकर अपनी गौओं भैंसोंके सानी-पानीका सब प्रबन्ध करेगा और ग्यारह बारह बजेतक या तो एकाध बीघा खेत जोतकर रख देगा और या घी दूध, मक्खन, खोआ आदि बेचनेके लिए चार पाँच कोसके किसी शहरका चक्कर लगा आवेगा। शहरमें ही वह थोड़ेसे भुने दाने खाकर पानी पी लेगा और अपने घर पहुँच कर थोड़ी देर तक सुस्तानेके बाद फिर किसी शारीरिक परिश्रममें लग जायगा। ऐसी दशामें सन्ध्या या रातके समय उसे खूब तेज भूख लगना बहुत ही स्वाभाविक है और तेज भूख लगने पर जो कुछ खाया जायगा वह अवश्य ही बहुत अच्छी तरह पचकर हमारे शरीरमें लगेगा और हमारे अंग प्रत्यंगको पुष्ट करेगा। शहरके रहनेवाले सवेरे उठते ही स्नान आदिसे निश्चिन्त होकर जल पानपर टूटेंगे, मानो रात भर उन्होंने चक्की ही पीसी हो। जल पानके उपरान्त वे हाथमें या तो तार, अखबार या किताब आदि उठा लेंगे और या अपने मकानकी अँधियाली अपनी

दूकानपर जा बैठेंगे। ग्यारह बजे आप यह कहते हुए उठेंगे! आज कुछ भूख तो नहीं मालूम पड़ती, पर चलो खा ही आवें नहीं तो रसोई ठंढी हो जायगी। नौकरीपेशा लोग ज्यों त्यों खाने इस विचारसे पेट खूब कस लेंगे कि अब दिनभर तो कुछ मिलेगा ही नहीं और चटपट कपड़े पहनकर इक्के या ट्रामवेपर घसिटते हुए कचहरी या दफ्तरमें पहुंच जायंगे। दिन भर उनके हाथमें खाली कलम रहेगी और वह भी बड़ा भारी बोझ मालूम पड़ती। अमीर लोग दिन भर तो तकिया और गद्दियोंमें गड़े हुए पड़े रहेंगे और सन्ध्या समय गाड़ीपर सवार होकर अपने बदले घोड़ोंसे थोड़ा शारीरिक परिश्रम करवाके निश्चिन्त हो जायँगे। इन सभी लोगोंको सबेरेके जलपान और दोपहरके भोजनके अतिरिक्त सन्ध्याका जल पान और रातका भोजन भी अवश्य ही चाहिए। यदि दोपहरके भोजनके बाद कुछ फल और रातके भोजनके उपरान्त थोड़ा दूध मिल जाय, तो उनके लिए भी पेटमें जगहकी कमी नहीं है। ऐसी अवस्थामें यदि देहातियोंका स्वास्थ्य देखकर शहर वाले अपना मन न मसोसेंगे तो और क्या करेंगे? आपको नगरोंमें जो दुबले पतले, जन्मरोगी और धँसी हुई आँखोंवाले हजारों लाखों दूकानदार, फेरीदार, मुंशी, शिक्षक, वकील और छात्र आदि मिलेंगे उनके शारीरिक कष्टोंका कारण भीमसेनी भोजनके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है।

इन शारीरिक कष्टोंसे बहुत ही सहजमें छुटकारा पानेका सर्वोत्तम उपाय यही है कि मनुष्य अपना भोजन धीरे धीरे कम और परिमित करता हुआ दिन रातमें केवल एक बार भोजन करनेका अभ्यास डाले। यह अभ्यास अधिकसे अधिक एक मासमें हो जायगा और जब एक दो मासमें वह केवल एक बार भोजन करनेके गुण बहुत अच्छी तरह समझ लेगा तब नियमित भोजनके अतिरिक्त उसे अमृततत्व पिलाना कठिन ही नहीं बल्कि असम्भव सा हो जायगा। दिन रातमें केवल एक बार भोजन करनेवाला मनुष्य कभी आवश्यकतासे अधिक खा ही नहीं सकता। उसे

टेके नीचे उतना ही भोजन उतरेगा, जितना उसका पक्वाशय चौबीस घंटोंमें पचा सकेगा। भारतवर्षमें ऐसे सैकड़ों हजारों आदमी मिलेंगे, जो व्रतरूपमें केवल एकाहार करते हैं। ऐसे लोग मनमें स्वभावतः प्रसन्नचित्त, शरीरसे हृष्टपुष्ट और सात्विक वृत्तिके होंगे। निश्चित समयको छोड़कर और कभी कुछ खानेकी उनकी प्रकृति ही न होगी। क्यों? इसी लिए कि वे प्रकृतिके अनुकूल आचरण करते हैं। वे कभी रोगी नहीं होते। क्यों? इसी लिए कि वे अपने पेटकी मशीन कभी व्यर्थ नहीं चलाते।

जो लोग दिन रातमें केवल एक बार भोजन करना चाहते हों उनके लिए भोजनका सबसे अच्छा समय सन्ध्या है। यह एक बहुत ही साधारण बात है कि पेट भरे होने पर न तो परिश्रम होता ही है और न परिश्रम करना उचित ही है। दिनके समय मनुष्यको बहुत कुछ शारीरिक अथवा मानसिक परिश्रम करना पड़ता है। ऐसी दशामें दिनके समय किसी प्रकारका भोजन न करके केवल रातके समय भोजन करना बहुत ही श्रेष्ठ और लाभदायक है। एक बार जब अनुभवसे दिनको भोजन न करनेके गुण मालूम हो जायँगे, तब फिर कभी किसी तरहकी चीजपर आदमीका मन ही न चलेगा। वयस्क लोग एक मासमें बहुत अच्छी तरह इसका अभ्यास कर सकते हैं और बालकोंको कम वयकी अवस्थातक सहजमें इसका अभ्यास डाला जा सकता है। डा० टिफन नामक एक विद्वान् अपने बालकोंको दिनमें कभी किसी प्रकारकी चीज खानेके लिए नहीं देते थे और प्रायः कहा करते थे कि बिना दिन भर काम किये भोजनकी इच्छा करना ठीक वैसा ही है, जैसा कि किसी कारीगरका बिना दिन भर काम किये पहले ही अपनी मजदूरी माँगना।

मनुष्योंको बहुतसे रोग ऐसे होते हैं, अधिक भोजनके अतिरिक्त जिनका और कोई कारण हो ही नहीं सकता। ऐसे लोगोंको जो

अधिक भोजन करके ही अपने शरीरको रोगी बनाते हैं कि
रातमें केवल एक बार भोजन करनेसे बहुत अधिक लाभ
है। एक बार भारतमें एक पादरी महाशय ज्वरसे बुरी तर
पीड़ित हुए। सात महीने तक डाक्टरोंने उनका शरीर दि
तीन बार भोजन, छ बार औषध और कदाचित् इससे भी अधि
बार दूध, और व्हिस्कीसे खूब भरा। यहाँ तक कि अन्तमें वे सू
कर काँटा हो गये और विवश होकर अपने देश अमेरिकाको च
गये। वहाँ सौभाग्यवश उनकी भेंट एक योग्य उपवास चिकि
कसे हो गई। उपवास चिकित्सकने उन्हें दिन रातमें केवल ए
ही बार भोजन देना आरम्भ किया और थोड़े ही दिनोंमें उन
सारी शिकायतें दूर हो गईं। चार महीनेके अन्दर ही वे बहुत ह
पुष्ट हो गये और तोलमें आध मन बढ़ गये। वहाँसे नीरोग हो
वे फिर भारत चले आये और खूब परिश्रम करके दिन रात
केवल एक ही बार भोजन करके रहने लगे। इस प्रकार वे ब
वर्षों तक यहाँ रहे और इस बीचमें वे या उनके परिवारके लो
भी कभी बीमार नहीं हुए।

ब्रिटिश मेडिकल एसोसिएशनमें एक बार डा० रेंयेलेंटीन ए
ऐसी बालिकाका हाल सुनाया था, जिसकी अवस्था चार वर्ष
थी और जिसके दाहिने घुटनेमें भयकर या अस्थि
Tuberculosis हो गया था। उस बालिकाको दिनरातमें चार बार
बदले केवल एक बार भोजन दिया जाने लगा। सुबह और शाम
उसे थोड़ा थोड़ा दूध भी दिया जाता था। उस बालिकाको और
कई भयकर रोग थे। पर सवा बरसमें उसके सब रोग समूल नष्ट
गये और वह वजनमें चौदह सेरसे बढ़कर उन्नीस सेर हो गई।
अवसरपर यह बात ध्यान रखने योग्य है कि अस्थि
Tuberculosis एक ऐसा रोग है, जिसका अच्छा होना प्रा
असम्भव समझा जाता है और जो रोगीके प्राण बिना लिये छूट
ही नहीं।

इंग्लैण्डमें एक बार एक स्त्रीके गर्भमें पथरीकासा एक रोग हो
या और उसमें कई सेर तौलकी एक गाँठ पड़ गई। उसका
हरा बिलकुल पीला पड़ गया था, शरीर सूखकर काँटा हो
या था, दिन-रात सिरमें दरद रहता था, कब्जियत थी, कै आती
ी और इसी तरहकी बीसियों शिकायतें थीं। शस्त्र चिकित्सा
रके उसके गर्भकी गाँठ तो निकाल दी गई थी, पर उसकी दुर्ब-
ता और दूसरी सब शिकायतें बराबर बढ़ती ही जाती थीं। जब
सके बचनेकी कोई आशा न रही तब उसे दिन-रातमें दो बार
ोजन दिया जाने लगा। पर जब उससे कुछ लाभ न हुआ तब
वल एक बारके भोजनकी ठहरी। इससे उसकी सारी शिकायतें
र होनेके सिवा छ सप्ताहमें उसका वजन तीन सेर बढ़ गया।
लाई १९०१ में उसकी अस्त्र चिकित्सा हुई थी और दिसम्बरमें
ह पूर्ण रूपसे नीरोग और अपने सब काम करनेमें समर्थ हो गई
ी। यदि वह औषधों और भोजनके सहारे ही रक्खी जाती, तो
समें कोई सन्देह नहीं था कि वह उन्हींका शिकार बन जाती।

जल-पान न करना

यदि आरम्भमें ही आप एक दमसे दो पहरका भोजन न
छोड़ सकें तो कमसे कम सबेरेका जल पान या कलेवा
रना अवश्य छोड़ दें। इससे होनेवाले लाभ भी अपेक्षाकृत कुछ
म नहीं हैं। इस अवसरपर हम अपनी ओरसे कुछ अधिक न
हकर प्रसिद्ध विद्वान् डाक्टर डेवीके अनुभवका सारांश यहाँ
र दे देना ही अधिक उत्तम समझते हैं। आपने लिखा है—

"जिस दिन मैंने पहलेपहल जल-पान दिन छोड़ा था उस दिन मेरा शरीर और मन
ना हलका और प्रसन्न हुआ जितना कभी बाल्य या युवा अवस्थाओंमें भी नहीं
आ था। दोपहरके समय खूब भूख लगनेपर मैंने बहुत अच्छी तरह भोजन
या। उस समय भोजन बहुत ही स्वादिष्ट जान पड़ता था। रातभर सोकर बाद
नाश्ता करनेकी स्वाभाविक भूख नहीं लगती। थोड़ा कार्य किया नहीं ह

जिससे कि उसकी समाप्ति पर ही भूख लग आवे। हजारों ऐसे आदमी हैं, अपना प्रात कालका जल-पान छोड दिया है और थोड़े ही दिनों उसकी आवश्यकता नहीं जान पड़ी। यदि जल-पान आवश्यक होता तो कभी न होती, क्योंकि प्रकृति अपनी आवश्यकताको पूरा किये मानती। यह कदापि सम्भव नहीं है कि वह अपनी किसी आवश्यकताको किए ही अथवा थोड़े भोजनपर ही हमारे शरीरका बिलकुल ज्योंका त्यों रक्खे। जो जल-पान तुम बिना आवश्यकताके और केवल अपने अभ्यासके करते हो, वह बड़ी सरलतासे तुम्हें उसके छोड़ देनेकी आज्ञा दे सकती है यदि तुम उसकी आवश्यकताओंको पूरी तरहसे पूरा न करोगे तो आगे तुम्हें उसका फल भी अवश्य ही भोगना पड़ेगा।

"जल-पान करना छोड़ दो और जब तक खूब तेज भूख न लगे तब कभी कुछ मत खाओ। जब तुम उस भूखके आसरे रहोगे तब अवश्य अपने समयपर चित्तरूपमें मालूम पड़ेगी। उस अवसरपर तुम स्वयं निश्चय कर सकोगे कि क्या चीज और कितना खानी चाहिए। जब तक पूरी पूरी आवश्यकता न हो तब तक कोई भोजन बल-वर्द्धक हो सकता। वास्तविक आरोग्यता प्राप्त करनेके लिए खूब तेज भूख, खूब मालूम होनेवाले सादे भोजन, खाद्यपदार्थको बहुत अच्छी तरह चबाने और समय मनके खूब शान्त रहनेकी आवश्यकता होती है।

"बिना जल पान किये अपने कामपर जाओ दोपहरके भोजनके समय खूब तेज भूख लगेगी। इतनी तेज भूख लगेगी कि यदि तुम भोजनसे किसी प्रकारकी रुचि-वर्द्धक औषध खानेके अभ्यस्त होगे तो वह आदत भूल जाओगे! तुमको भोजन बहुत ही स्वादिष्ट जान पड़ेगा और भोजनके तुम्हारी तबीयत इतनी अच्छी जान पड़ेगी कि तुम्हें किसी तरहका पाचक खानेकी भी आवश्यकता न रह जायगी। कितनी सीधी बात है। जबतक ठीक और खूब भूख न लगे तबतक कुछ मत खाओ, चाहे सारा दिन महीना भी क्यों न बीत जाय। उपवास करना बहुत ही सुरक्षित है उसमें प्रकारकी हानिकी कोई सम्भावना नहीं है।"

"यदि परिवारमें एक मनुष्य प्रातःकालका जलपान करना छोड़ देगा तो उसके लाभदायक कामोंको देखकर सम्भवतः परिवारके और लोग भी बहुत ही

लोग अपना जल-पान छोड़ देंगे । जल पान न करनेवालोंका चित्त सदा प्रसन्न रहता है उन्हें जलदा कभी किसी तरहकी शिकायत नहीं होती । अमरिकावालोंकी देखा-देखी युरोपवाले भी जल-पान न करनेके गुण समझने लगे हैं । अभी हालमें इंग्लैण्डमें एक स्वास्थ्य संवर्द्धिनी सभा स्थापित हुई है जिसका प्रधान उद्देश्य जल पानकी प्रथा रोकना है । जिस दिन उस सभाकी स्थापना हुई उस दिन उसमें नगरके बड़े बड़े अधिकारी, रईस और विद्वान् इकट्ठे हुए थे । यह सभा इंग्लैण्डके मैंचेस्टर नगरमें हुई थी । उस अवसरपर वहाँके 'मैंचेस्टर गार्डियन' नामक पत्रने लिखा था—"आज मैंचेस्टर नगरमें पहले दिनोंकी अपेक्षा सैकड़ों जल पान कम हो जायँगे और यहाँकी स्वास्थ्यसभा थोड़े ही घंटोंमें अपनी स्थापनाका शुभ फल देख लेगी । सम्भवतः उसकी देखादेखी 'जल पान' का निषेध करनेवाली सैकड़ों सभायें स्थापित होंगी । लोगोंका बहुत सा समय केवल जल पान करनेमें ही लग जाता है । स्वास्थ्य सुधारने, आयु बढ़ाने और सुखी रहनेके लिए इससे अच्छा और कौनसा काम हो सकता है ? तरह तरहके रोगोंसे बचने और प्राप्त रोगोंसे मुक्त होनेका इससे अच्छा कौनसा उपाय हो सकता है ? जातिके लिए इससे अधिक उपकारक और कौनसी बात हो सकती है ? यदि प्राकृतिक नियमोंका पालन किया जाय और अपने शरीरको अवसर दिया जाय तो अवश्य ही वह अपनी सारी मरम्मत आप ही कर लेगा । और यह प्रथा कोई नई नहीं है, केवल पुरानी प्रथाकी पुनरावृत्ति है । यह सर्वरोगनाशक कोई पेटेंट दवा नहीं है बल्कि सारे जीवनकी रक्षाका सर्वोत्तम उपाय है । इस नये उपायसे उन पुराने दुष्ट रोगोंका नाश होगा, जिनके कारण शरीररक्षाके बहानेसे जानिका तरह तरहके कष्ट और दण्ड सहने पड़ते हैं ।"

लण्डनके एक दिग्गज डाक्टरने—जो इंग्लैण्डके कई विशाल अस्पतालोंमें चिकित्सकका काम कर चुके हैं—रोगोंके कारणोंके सम्बन्धमें एक पुस्तक लिखी है । उस पुस्तकमें आपने एक स्थलपर लिखा है—

"अमरिकाके डा॰ डेवीने एक ग्रन्थ लिखा है, जिसका मुख्य तात्पर्य यह है कि कई दिनों तक पूरा पूरा उपवास करनेसे सैकड़ों तरहके रोग नष्ट हो जाते हैं और सब साधारण रोग केवल जलपान छोड़ देनेसे ही छूट जाते हैं । यदि पाकाशयको बारह घंटे या उससे अधिक समय तक शान्तिपूर्वक अपना काम करने दिया जाय

तो बहुतसे रोगोंसे मुक्ति हो सकती है। उस पुस्तकमें इस क्रियासे अच्छे हुए बहुतसे लोगोंके विवरण दिये गये हैं। मैं जहाँ तक समझता हूँ, उनका तर्क है और कथन बिलकुल सत्य है।

"यह परिणाम निकालकर मैंने स्वयं अपने ऊपर उसका अनुभव आरम्भ किया और मैं जल पान छोड़कर दिनमें केवल दो बार भोजन करके रहने लगा। जब मैंने सवेरे और सन्ध्याका जल पान छोड़ दिया तब दोपहरको एक बजे बहुत अच्छी तरह भूख लगने लगी। उस समय अच्छी तरह खानेके बाद रात आठ बजे तक कभी कुछ खानेकी मेरी इच्छा न होती थी। इसका परिणाम वैसा ही हुआ, जैसा डा० डेवीने अपनी पुस्तकमें बतलाया है। प्रातःकाल तबीयत बहुत प्रसन्न रहने लगी और मैं बहुत अच्छी तरह शारीरिक और मानसिक परिश्रम करनेके योग्य हो गया। एक बजे मुझे ऐसी तेज भूख लगती, जैसी पहले कभी बरसोंसे न लगी थी। जब मैं जलपान किया करता था तब उसके उपरान्त मुझे बहुत सुस्ती मालूम हुआ करती थी और उसके घंटे दो घंटे बाद तक अच्छी तरह मानसिक परिश्रम न हो सकता था। इस प्रकार मैं दो बार भोजन करके बहुत अच्छी तरह रहने लगा।"

यह मिथ्या भ्रम मनसे निकाल डालो कि अपना स्वास्थ्य ठीक और बल बनाये रखनेके लिए हमको दिनमें तीन बार भोजन करना आवश्यक है। प्रत्येक मनुष्यके लिए दिन-रातमें दो बार भोजन करना यथेष्ट है। बहुत अधिक शारीरिक परिश्रम करनेवाले युवावस्थाके लोग भी बड़े आनन्दसे दिन-रातमें केवल दो बार भोजन करके रह सकते हैं। इससे उनका स्वास्थ्य सुधरेगा और बल बढ़ेगा। बहुधा लोग सवेरे स्नान आदिसे निवृत्त होते ही बिना भूख लगे जबरदस्ती कुछ न कुछ खा ही लेते हैं। शरीरपर इस जबरदस्तीका बहुत ही बुरा परिणाम होता है। यदि यह अभ्यास छोड़ दिया जाय और प्राकृतिक नियमोंका अनुसरण किया जाय, केवल उसी समय भोजन किया जाय जब कि खूब भूख लगे तो संसारमें बहुतसे रोग और फलतः चिकित्सक और चिकित्सालय आदि भी कम हो जायँ।

खान-पानका विचार

प्रत्येक मनुष्यके लिए अपने खान पानका विचार रखना बहुत ही आवश्यक है, क्यों कि हम जो कुछ खाते या
ते हैं उसका प्रभाव केवल हमारे शारीरिक संगठनपर ही नहीं
ड़ता, बल्कि हमारे आचार विचार और स्वभावके साथ भी
सका बहुत ही घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। संसारमें जितने जीव
प्राय उन सबके लिए कुछ न कुछ विशिष्ट प्राकृतिक भोजन
निश्चित होता है और निश्चित भोजनको छोड़कर वह जीव और
किसी प्रकारका पदार्थ नहीं खाता। आप किसी शाकाहारी
पशुको लाख प्रयत्न करने पर भी कभी किसी प्रकारका मांस या
कीड़े मकोड़े आदि नहीं खिला सकते। किसी मांसाहारी पशुको
घास आदि खिलानेका प्रयत्न कभी सफल नहीं हो सकता, पर
संसारके समस्त जीवोंमें अपने आपको सर्वश्रेष्ठ समझनेवाला
मनुष्य अपने खान-पानके सम्बन्धमें कभी किसी प्रकारका विचार
नहीं रखता। बहुधा उसे जब जो कुछ मिलता है वह सब खा
जाता है। तरह तरहके विषाक्त और मादक द्रव्य और झींगुर,
मेंढ़क, कुत्ते, चूहे आदि सभी उसके लिए खाद्य हैं। संसारमें
कठिनतासे कोई ऐसा पदार्थ मिलेगा जिसे मनुष्य किसी रूपमें भी
अपने पेटमें न उतार सकता हो। यही नहीं बल्कि अपने खानेके
लिए नित्य तरह तरहके नये पदार्थोंका अन्वेषण और आविष्कार
किया करता है। पर खान पान सम्बन्धी यह अत्याचार मनुष्य-
जातिके लिए कितना हानिकारक और कितना दुःखदायक है,
इसका विचार करनेका कष्ट बहुत ही कम लोगोंने उठाया होगा।

मोटे हिसाबसे संसारमें दो प्रकारके खानेवाले लोग माने जाते हैं,
एक शाकाहारी और दूसरे मांसाहारी। शाकाहारियोंके सम्बन्धमें
किसीको कुछ कहनेकी आवश्यकता ही नहीं है क्योंकि फल
और शाक आदि मनुष्यका निसर्गसिद्ध भोजन है। मांस बहु-
तसे बड़े पक्षपाती भी बहुत 'केवल शाकाहार' की निन्दा करते

ही करें, पर 'शाकाहार' पर ये किसी प्रकारका आक्षेप कर सकते। क्योंकि प्रत्येक मासाहारी अवश्य ही शाकाहारी होता है। आक्षेप करने योग्य केवल मासाहारी ही हैं। देखना यह है कि मासाहारियोंपर जो आक्षेप किये जाते हैं वास्तवमें कहाँतक सत्य हैं।

कदाचित् यहाँ इस बातको विशेष रूपसे सिद्ध करनेकी आवश्यकता न होगी कि मास खानेवालोंकी प्रकृति बहुधा उद्दण्ड और हिंसक हो जाती है और फलतः ये लोग क्रूर, निष्ठुर और अत्याचारी हो जाते हैं। मासाहारियोंके कारण मनुष्यों और जीवोंको बहुत कुछ अत्याचार सहना और पीड़ित होना पड़ता है। उदाहरणस्वरूप शेर और गौ, बाज और पठान और वैष्णव उपस्थित किये जा सकते हैं। यदि अत्याचार और बल-प्रयोग आदिकी गणना गुणोंमें की जा सकती हो तो अवश्य ही मासाहार भी उत्तम और प्रशंसित हो सकता है, अन्यथा यह इसके विरुद्ध प्रमाणित होगा। कुछ लोग मासाहारके पक्षका समर्थन करते हुए यह कहा करते हैं कि मनुष्यको अपने अधिकारोंकी रक्षा करने और अपना अस्तित्व बना रखनेके लिये ही मासाहारी होना बहुत आवश्यक है। इसी कोटिके एक सज्जनने एक बार अपने पक्षके समर्थनके लिए लेखकको किसी ग्रन्थका इस आशयका एक मन्त्र सुनाया था कि सृष्टिका परम्परागत नियम है कि 'चार पैरोंवाले दो पैरोंवालोंको और दो पैरोंवाले बिना हाथ पैरवालोंको खायें।' तात्पर्य यह कि प्रत्येक सबल अपनेसे निर्बलको खा जाता है। आधुनिक पाश्चात्य विद्वानोंमें भी इस सिद्धान्तके अनुयायियोंकी कमी नहीं है। ये लोग दुर्बलताको महान् पाप समझते हैं और उत्तरोत्तर सबल बनना अपना परम धर्म और कर्तव्य समझते हैं। प्रत्येक विद्वान् बिना किसी प्रकारका आगा पीछा किये राजनीतिक और सामाजिक आदि कारणोंसे यह सिद्धान्त तुरन्त स्वीकार कर लेगा और उसकी उपयोगितामें कभी किसी प्रकारका सन्देह न

रेगा। पर यदि कोई मासाहारी इस सिद्धान्तको अपनी पाश-
विक वृत्तिके समर्थन और पोषणके लिए सामने रक्खेगा तो
विचारवानोंको अवश्य ही उसपर दया और हँसी आवेगी।
अपना अस्तित्व बनाये रखने और राजनीतिक अधिकार-रक्षणके
लिए अधिकसे अधिक बलकी ही आवश्यकता हो सकती है। क्रूर,
शोषण और अत्याचारी प्रकृतिसे उसमें क्या सहायता मिलेगी?
कोई मासाहारी दावेके साथ यह बात नहीं कह सकता कि उसमें
किसी शाकाहारीकी अपेक्षा अधिक बल है। शारीरिक बल बहुधा
शारीरिक शक्तियोंके निरन्तर और सदुपयोगसे ही बढ़ता है।
प्रत्येक मनुष्य जिसके आचार आदि परिमित हों बलिष्ठ हो जाता
है। मासाहारसे शरीरकी बलवृद्धिमें कभी किसी प्रकारकी सहा-
यता नहीं मिल सकती, बल्कि उल्टे उससे मनुष्यका शरीर तरह
तरहके भयकर रोगोंका घर हो जाता है और वह उसकी मृत्युका
कारण होता है। इसका मुख्य कारण यही है कि मास मनुष्यका
स्वाभाविक भोजन नहीं है।

भारत सरीखे दरिद्र देशोंमें कुछ लोग मास मछली खाना इस
लिए उपयुक्त समझते हैं कि उसमें दाम कम लगता है। मास तो
अन्नसे सस्ता पड़ ही नहीं सकता। रही मछली, सो उससे भी सस्ते
दामका शाक आदि प्राय सभी स्थानोंमें मिलते हैं। इसके अति
रिक्त यदि यह बात भी मान ली जाय कि मास और मछली बिल-
कुल मुफ्त मिलती है और अन्न, फल और दूध आदिमें घरकी
सारी जमा लग जाती है, तो भी मासाहारका समर्थन नहीं होता।
क्या कोई पदार्थ केवल इसी विचारसे खाद्य सिद्ध हो सकता है
कि उसमें हमारा दाम नहीं लगता? कदापि नहीं। किसी पदार्थको
खाद्य सिद्ध करनेके लिए उसमें प्रधानत कुछ विशिष्ट गुणोंकी
आवश्यकता होती है, मूल्यका प्रश्न तो बहुत ही गौण है। साथ
ही यह बात भी विचारणीय है कि मास मछली आदि कहाँ तक
सस्ती पड़ती है। पर उसके सस्तेपनका विचार करतेके समय
डाक्टरोंकी उस फीस और औषधियों आदिके मूल्यको न भूल

जाना चाहिए जो मासाहारके परिणामस्वरूप हमारी मोले मिकल जाता है। यदि मासाहारके कारण होनेवाले भीषण और प्राणघातक रोगोंका भी विचार कर लिया जाय तो सम्मत ससारमें इससे बढकर महँगा सौदा और कोई न दिखाई देगा।

मासाहारियोंने अपने पक्षके समर्थनके लिए जहाँ और तरह तरहकी युक्तियाँ लड़ाई हैं वहाँ मनुष्यके शारीरिक और विशेषत मांस संगठनकी भी बहुत कुछ आड ली है। पर शरीर शास्त्रके आधुनिक बड़े बड़े विद्वानोंने परीक्षा और अनुभवसे यह बात सिद्ध की है कि शरीर-संगठनके विचारसे मनुष्य शाकाहारी है मांसाहारी नहीं। इसके अतिरिक्त लेखकने एक बार स्वर्गीय प० खुशीलाल शर्म्माको—जिन्होंने बरेलीमें शायद बौद्ध धर्मसे मिलता जुलता 'निर्विकल्प' नामका एक नया सम्प्रदाय खड़ा करनेका विचार किया था—अपने व्याख्यानमें यह कहते सुना कि ससारका कोई जीव वास्तवमें और स्वभावतः मासाहारी नहीं होता, यहाँ तक कि शेरनीका बच्चा भी जन्म लेते ही पहले अपनी माताका दूध पीता है, बकरी या भैंसेका मांस नहीं खाता। पर ये सब विषय अपेक्षाकृत अधिक गूढ़ हैं और इनपर विचार करना बहुत बड़े बड़े विद्वानोंका ही काम है। पर मानव शरीरपर पड़नेवाले मासके प्रभाव आदिका विचार बहुत कुछ बाद विवाद और अनुभव आदिके कारण इतना सरल, स्पष्ट और सिद्ध हो गया है कि हम बिना किसी प्रकारकी कठिनतासे उसे अपने पाठकोंके सामने रख सकते हैं।

जो पदार्थ दाँतोंसे अच्छी तरह कुचलकर चबाया और पीसा न जा सके वह मनुष्यके लिए कदापि खाद्य नहीं हो सकता। मांस जो रेशे होते हैं वे भी ऐसे ही होते हैं और फलत वह खाने योग्य नहीं होता। प्रश्न हो सकता है कि जो पदार्थ मनुष्यके खाने और पचाने योग्य नहीं है उनके खानेकी प्रथा कब, क्यों और कैसे चली? इसका उत्तर इसके सिवा और कुछ नहीं हो सकता कि बहुत प्राचीन कालमें बहुत ही विपदा होनेपर कुछ लोगोंने मांस

खाना आरम्भ किया होगा और तभीसे वह खाद्य पदार्थोंमें गिना जाने लगा और वास्तवमें पराकाष्ठाकी विवशताके अतिरिक्त मांस सरीखे घृणित पदार्थके खानेका और कोई कारण हो ही नहीं सकता। बहुत सम्भव है कि मनुष्यको मांस खानेकी कुछ शिक्षा हिंसक पशुओं आदिसे भी मिली हो। आज कल जब कि मनुष्यको संसारके कोने कोनेमें उत्तम वनस्पत्य और स्वाभाविक भोजन मिल सकता है तो कोई कारण नहीं है कि मनुष्य ऐसे अस्वाभाविक और हानिकारक पदार्थका खाना बराबर जारी रक्खे। मांसके अस्वाभाविक भोजन होनेका सबसे अच्छा प्रमाण यह है कि कभी कोई बालक या वयस्क जिसने कभी मांस न खाया हो पहले पहल बिना बहुत अधिक अरुचि प्रकट किये कभी उसे खाना आरम्भ नहीं कर सकता। मांस खानेका आरम्भ अरुचिको दबाकर अपनी प्रकृति और इच्छाके विरुद्ध करना पड़ता है। मांस खाना मनुष्यके लिए कितना अधिक हानिकारक है, इसके प्रमाण स्वरूप यदि बड़े बड़े डाक्टरोंकी सम्मतियां एकत्र की जायँ तो शायद बहुत बड़ा पोथा बन जायगा। बड़े बड़े वैज्ञानिकोंने रासायनिक परीक्षासे यह बात सिद्ध की है कि मांसमें शरीरको हानि पहुँचानेवाले द्रव्य तो बहुतसे होते हैं, पर कोई ऐसा पौष्टिक द्रव्य नहीं होता जो हमें वनस्पतिजन्य खाद्य पदार्थोंमें न मिलता हो। सब प्रकारके अन्नोंमें पौष्टिक द्रव्य मांसकी अपेक्षा कहीं अधिक होते हैं। परीक्षाद्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि शाकाहारी लोग मांसाहारियोंकी अपेक्षा अधिक बलवान, अधिक परिश्रमी, अधिक शान्त और अधिक विचारवान होते हैं। संसारमें अब तक जितने बड़े बड़े महात्मा, दार्शनिक, ऋषि और विद्वान हो गये हैं उनमेंसे बहुत ही थोड़े ऐसे निकलेंगे जो मांसाहारी हों; और उनमें भी मांसके पक्षपातियोंकी संख्या तो और कम होगी।

मांसमें यदि अन्नकी अपेक्षा कोई विशेषता होती है तो वह उन उत्तेजक तत्त्वोंकी अधिकता है, जो प्रायः सब प्रकारके मादक द्रव्योंमें हुआ करते हैं। जिस प्रकार मादक द्रव्य हमारे शरीरमें

पहुँचकर उसकी सजीवनी शक्तिको अपने साथ युद्धमें म
करके उसे चचल बना देते हैं, ठीक उसी प्रकारका प्रभाव
शरीरपर मास भक्षणका भी होता है। इसलिए मास भी
लिए उतना ही हानिकारक है जितना कोई मादक
यदि मासमें बल बढ़ानेकी शक्ति होती तो मासाहारी
शाकाहारी अरने भैंसे या ओरग ओटानसे अपनी
करानेकी नौबत न आती। जिस माससे मनुष्यको क्षय,
माला, पक्षाघात तथा तरह तरहके सैकड़ों भयकर
और होते हैं वह मास क्या कभी बलवर्द्धक अथवा
कम खाद्य ही हो सकता है? हृद्रोगकी उत्पत्तिकी भी,
खानेमें, बहुत अधिक सम्भावना हुआ करती है। यूरिक
नामका एक विषैला द्रव्य होता है जो मूत्रके साथ मनुष्यके
रसे बाहर निकलता है। मांस खानेवालोंके मूत्रमें यह
बढ़कर दुगुना और तिगुना तक हो जाता है, जिससे सिद्ध
है कि मास खानेका गुर्दोंपर भी बहुत बुरा प्रभाव पड़ता
मास खानेसे रक्त सचालनमें भी बड़ी बाधा पहुँचती है।
अमेरिका आदि देशोंमें आजकल कैन्सर नामका एक बहुत
फोड़ा फैल रहा है जिससे लाखों मनुष्योंके प्राण जाते हैं।
बड़े बड़े डाक्टरोंने परीक्षा और अनुभवसे यही निश्चित कि
कि इस भयकर फोड़ेका कारण मासाहारके अतिरिक्त और
नहीं है। वहाँ इस भयकर फोड़ेको रोकनेके लिए मासकी बि
तक बन्द करनेके लिए आन्दोलन हो रहा है। तात्पर्य यह
मनुष्यके लिए मास खाना अत्यन्त हानिकर और अनुचित
मास खाना मानों प्राकृतिक नियमोंका उल्लघन करना है। मांस
अनेक प्रकारके कीड़े होते हैं जो उसके साथ हमारे पेटमें
जाते हैं और हमारा स्वास्थ्य नष्ट कर देते हैं। इसके अतिरि
स्वय मास पूरी तरहसे नहीं पचता और उसका बहुतसा
पेटमें पड़ा सड़ता है। अत जो लोग सदा नीरोग और हृष्ट
बन रहकर अपनी पूरी आयु भोगना चाहते हों, उन्हें मास

दि सात्त्विक, स्वाभाविक और श्रेष्ठ पदार्थोंको छोड़कर मास दि तामसिक, अस्वाभाविक और निकृष्ट पदार्थ कभी न खाने हिए।

मास आदिके बाद शरीरके लिए बहुत ही हानिकारक पर प्रच त द्रव्योंमें दूसरा नंबर मादक द्रव्योंका है। शरीरपर मादक योंका जो दुष्परिणाम होता है वह मासके दुष्परिणामोंसे भी ही अधिक स्पष्ट और व्यक्त है, अत उसके लिए बहुत अधिक वेचनाकी आवश्यकता नहीं है। जिस मनुष्यको यह समझानेकी वश्यकता पड़े कि मादक द्रव्योंके व्यवहारसे मनुष्यकी आर्थिक, रीरिक, धार्मिक और नैतिक आदि सभी दृष्टियोंसे बहुत हानि ती है, उससे बढ़कर अभागा और दुर्बुद्धि शायद ही कोई होगा। दक द्रव्योंका व्यवहार करना अपने शरीर, बुद्धि और बल दिको जान-बूझकर बेतरह तंग करना नहीं है तो और क्या ? जिस मनुष्यका मस्तिष्क शराब या गाँजेके प्रभावसे चकराया गा होगा वह कौनसी उत्तम बात सोचने समझने अथवा करनेमें र्थ हो सकता है ? तात्पर्य यह कि मादक द्रव्योंसे संसारका र प्रकारका अपकार ही होता है, उपकार कुछ भी नहीं होता। धा लोग जब कुछ अधिक परिश्रम करनेके कारण थक जाते तब उस समय थकावट उतारनेके लिए किसी प्रकारके मादक व्यका व्यवहार करते हैं। पर नशेके उतारके समय कोई उनकी ावटके उतारका हाल पूछे। उस समय केवल उनकी थकावट नहीं बढ़ जाती, बल्कि उनके शरीरमें बहुत कुछ बेचैनी भी पन्न हो जाती है। थकावट दूर करनेके लिए मादक द्रव्योंका वहार करना वैसा ही है, जैसा कि जलती हुई आग बुझानेक ए उसपर घी या तेल छोड़ना। जो थकावट केवल थोड़ासा न अन्न पीने और कुछ देरतक खुली हवामें टहलनेसे ही दूर हो ती है, उसे उतारनेके लिए किसी प्रकारके मादक पदार्थका वन करना मूर्खता ही है। एक गिलास शराब पी लेनेके उप न्त दूसरा गिलास पीनेकी इच्छा होगी और उसके बाद बोतल

खाली करनेकी नीयत आवेगी। यहाँतक कि अन्तमें उसे मनुष्यत्वसे एकदम गिरा देगा। कुछ लोग केवल विचारसे ही मादक द्रव्योंका व्यवहार करने लगते हैं संग-साथके विचारसे ही ऐसे पदार्थोंका व्यवहार हमारी शारीरिक मानसिक और आत्मिक शक्तियोंके नाश जिनसे हमारे जीवनकी उपयोगिताका नाश हो और कर्तव्योंमें बाधा पड़े—बड़ी भारी मूर्खता है। कुछ लोग काम करनेसे पहले केवल इसी लिए कोई नशा खा या पी कि उसकी सहायतासे उनके शरीरमें खूब फुर्ती आ ॰ ॥ वे उस कामको शीघ्रता और उत्तमतासे कर सकेंगे। पर बातका विश्वास रखना चाहिए कि प्रत्येक कार्य जितनी और उत्तमतासे स्वयं प्रकृति, बिना किसी दूसरी शक्तिकी सहायताके कर सकती है, उतनी शीघ्रता और उत्तमतासे किसी दू पदार्थकी सहायतासे और विशेषतः मादक सरीखे नाशक प थोंकी सहायतासे कदापि नहीं कर सकती। इन सब पा अतिरिक्त नशीली चीजोंसे तरह तरहके रोग उत्पन्न होते हैं शराब पीनेवालोंका जिगर सड़ जाता है, गाँजा या चरस पीनेवाले पागल हो जाते हैं, अफीमचियोंकी आँतें बेकाम जाती हैं और भाँगका आँखोंपर बहुत ही नाशक प्रभाव प है। संसारके जितने मादक पदार्थ हैं वे सब चिर है और सदा हमारे शरीरके शत्रु ही प्रमाणित होंगे; उनसे किसी प्रकार हित या कल्याणकी आशा रखना व्यर्थ है।

खान पानके विचारके अन्तर्गत मांस और मादक पदार्थ छोड़ देनेके अतिरिक्त और भी अनेक बातें हैं, जिनका ध्यान र स्वास्थ्य बनाये रखनेके लिए बहुत आवश्यक है। सबसे पह बात तो यह है कि जहाँ तक हो सके मनुष्यको सादा सूखा फलका भोजन करना चाहिए। इस सम्बन्धमें यह बात सब अधिक ध्यान रखने योग्य है कि हमारे शारीरिक संगठनमें पदार्थोंसे सहायता मिलती है जिन्हें हम अच्छी तरह पचा लेते हैं

ोष सब पदार्थ हम चाहे उन्हें कितना ही पोष्टिक क्यों न समझें में कभी कोई लाभ नहीं पहुँचा सकते। ये तो एक मार्गसे हमारे शरीरमें केवल प्रवेश करते हैं और दूसरे मार्गसे निकल जाते हैं, हमारे शारीरिक सगठनमें उनसे कोई सहायता नहीं मिलती। इस पाँच सेर दूधके केवल पी लेनेसे उतना लाभ नहीं हो सकता, जितना पाव भर या आध सेर दूधके पच जानेसे होता है। अत केवल बलवृद्धि आदिके विचारसे तरह तरहके पौष्टिक पदार्थोंको बराबर उदरस्थ करते रहनेका फल उल्टा ही होता है। हल्के भोजनका विधान इसलिए किया जाता है कि गरिष्ठ भोजनसे पाचन शक्तिका नाश होता है और अग्नि मन्द पड़ जाती है। पूरियों और पक्का खाकी अपेक्षा रोटियाँ सहजमें पच जाती हैं और इसी लिए उनसे हमें अधिक लाभ भी पहुँच सकता है। इसके अतिरिक्त भोजन रूखा भी होना चाहिए। घी, मक्खन, पक्वान्न और हलुए आदिसे भी पाचन-शक्ति बहुत मन्द पड़ जाती है। यही कारण है कि नित्य हलुआ पूरी खानेवाले भोजनके समय एक बारमें चार पाँच पूरियोंसे अधिक नहीं खा सकते, पर सूखी रोटियाँ अथवा भूने हुए दाने खानेवाले उनसे चौगुना और पचगुना भोजन कर जाते हैं। उनके भोजनकी केवल मात्रा ही नहीं बढ़ जाती, बल्कि उससे होनेवाले लाभका मान भी बहुत कुछ बढ़ जाता है। रूखा भोजन करनेवाले लोग सदा खूब नीरोग और बलिष्ठ रहते हैं और तर माल खानेवाले दुर्बल होते हैं। तरह तरहके मसालों आदिका भी कभी व्यवहार न करना चाहिए, क्योंकि उनके सयोगसे खाद्य पदार्थोंके स्वाभाविक गुणोंका नाश होता है। जहाँ तक हो सके ऐसे पदार्थ खाने चाहिए जो अपने वास्तविक स्वरूपमें हों अथवा जिनमें बहुत ही थोड़ा परिवर्तन हुआ हो। किसी पदार्थके प्राकृतिक स्वरूपमें जितना ही परिवर्तन किया जायगा उसके गुणोंका उतना ही अधिक नाश भी होगा। दरदरे पिसे हुए गेहूँका व्यवहार करना लोग आजकलकी सभ्यताके जमानेमें भले ही हास्यास्पद समझें, पर इस बातसे कोई समझदार आदमी इनकार नहीं

कर सकता कि आटा जितना ही अधिक पीसकर महीन कि और छाना जाता है वह, उतना ही गरिष्ठ भी होता जाता है। बिना छाने हुए आटेकी अपेक्षा छाने हुए आटेकी रोटी और छने हुए आटकी रोटीकी; अपेक्षा बढ़िया मैदेकी पूरी कहीं अधिक गरिष्ठ और हानिकारक होती है। इसी प्रकार दूध जितना औटाया जायगा वह भी उतना ही गरिष्ठ होता जायगा। पदार्थोंका प्राकृतिक रूप ज्यों ज्यों बदलते जाइएगा त्यों त्यों उनके प्राकृतिक गुणोंका भी नाश ही होता जायगा। मनुष्यके लिए दूध और फलोंसे बढ़कर बलकारक और स्वास्थ्यप्रद और कोई पदार्थ हो ही नहीं सकता। पर जो लोग सदा दूध और फलोंपर ही न रह सकते हों और दूसरे पदार्थोंपर भी जिनका मन चलता हो उन्हें इस बातका सदा ध्यान रखना चाहिए कि उनका भोजन जहाँतक हो सके सादा, हलका और रूखा हो। मनुष्यके स्वाभाविक भोजनकी सबसे अच्छी पहचान यह है कि पदार्थको स्वाभाविक स्थिति या स्वरूपमें देखकर मनुष्यके मनमें उसके खानेकी इच्छा उत्पन्न हो। बढ़िया सेब, नाशपाती, अमरूद, अंगूर, सन्तरे या दूध आदि पर तो मनुष्यका मन सहजहीमें चल जाता है, पर मांसके लोथे रक्खे हुए देखकर मनुष्यको सदा घृणा ही होती है। उपयुक्त और अनुपयुक्त भोजनकी यही सबसे अच्छी पहचान है। तो भी आजकलके जमानेमें मनुष्यमात्रके लिए केवल फल खाकर और दूध पीकर रहना प्रायः असम्भव है। मनुष्यका स्वाभाविक भोजन अन्न भी है; क्योंकि यदि सूक्ष्म दृष्टिसे देखा जाय तो वह भी फलोंकी कोटिमें ही आ जायगा। अतः मनुष्यको फलोंके साथ अन्न भी खाना चाहिए। पर वह अन्न जहाँ तक हो सके बहुत ही कम विकृत रूपमें आया हो और उसमें दूसरी चीजोंका बहुत ही कम मेल हो; क्योंकि मनुष्यको नीरोग और बलिष्ठ बनाये रखनेमें सबसे अधिक सहायता ऐसे ही पदार्थोंसे मिल सकती है। छौंके बघारे और तले हुए पदार्थ तो हमारे शरीरके लिए किसी न किसी प्रकार हानिकारक ही होंगे।

खान पानके सम्बन्धमें दूसरी सबसे अधिक विचारणीय बात यह है कि मनुष्यको जब तक खूब तेज और खुलकर भूख न लगे तब तक कभी कुछ न खाना चाहिए। यह बात सब लोग स्वीकार करेंगे कि अनावश्यक रूपसे या अनिच्छापूर्वक किया हुआ काम सदा हानिकारक ही होता है। भोजनके समय भी इस सिद्धान्तकी कभी भूल न जानी चाहिए। भूखका अस्तित्व हमें बतलाता है कि हमारे शरीरको पोषक द्रव्योंकी आवश्यकता है, पर उसका अभाव यही सूचित करता है कि अभी शरीरमें यथेष्ट पोषक द्रव्य उपस्थित हैं। खूब तेज भूख लगनेपर हम जो कुछ खायँगे वह हम तुरन्त पचा सकेंगे और इसी लिए उसके द्वारा हमारे शरीरका बल बढ़ेगा। पर यदि हम बिना भूखके ही जबरदस्ती कुछ खा लेंगे तो उससे हमारी पाचन-शक्तिपर आवश्यकतासे अधिक बोझ पड़ जायगा और उसके परिणामस्वरूप हमारे शरीरका नाश ही होगा। खूब तेज भूख लगनेपर हम जो कुछ खायँगे वह हमें स्वादिष्ट भी जान पड़ेगा और उसीसे हमारे शरीरका पोषण भी होगा। केवल दैनिक-चर्या समझकर खाया हुआ भोजन न तो खानेमें ही स्वादिष्ट मालूम होगा और न हमारे तनमें लगेगा। उलटे उससे हमारे शरीरको हानि ही पहुँचती है और तरह तरहके रोग उत्पन्न होते हैं। दूसरी बात यह है कि जब थोड़ीसी भूख बाकी रह जाय तभी भोजनसे हाथ खींच लेना चाहिए; खूब ठूँसकर भोजन करना और नाक तक भर लेना ही शरीरकी सारी व्याधियोंकी जड़ है। यदि भोजन करनेके समय कोई पदार्थ बहुत ही चरपरा या बढ़िया होनेके कारण स्वादिष्ट जान पड़े और उसे अधिक खानेकी इच्छा हो तो कदापि उस स्वादके फेरमें न पड़ना चाहिए और तुरन्त भोजनसे हाथ खींच लेना चाहिए। ऐसे अवसरके लिए एक विद्वान्का आदेश है कि "अपने कल्याणके लिए अपनी इच्छा और रसनाको वशमें रक्खो, यह प्रमाणित करो कि तुममें इतना नैतिक बल है कि तुम तुच्छ लालसाओंके फेरमें नहीं पड़ सकते।" बहुतसे लोग पारलौकिक

स्वर्गकी कामनासे बड़े बड़े व्रत करते और
करते हैं; तुम इहलौकिक स्वर्गकी इच्छासे ही पेटू बनना
इस पेटूपनसे छुटकारा पानेका सबसे अच्छा उपाय य
हम सदा सादा और रूखा भोजन करें। पहले तो सादे और
भोजनपर तुम्हारा मन ही नहीं चलेगा; परन्तु जब कुछ दि
तुम अभ्यस्त होकर उसके गुण जान लोगे तब गन्दी स
चीजपर भी तुम्हारा मन नहीं चलेगा। साधारण फल
दूध पीनेके कारण कभी मनुष्यको अपचन नहीं होता और
उभार ही आते हैं। उन दोषोंको उत्पन्न करनेका गुण पूरी,
और मिठाईमें ही है। खान पानके सम्बन्धमें प्रकृतिकी आज्ञा
पालन करो। खूब तेज भूख लगनेपर सादा भोजन उसी
तक करो जब तक कि वह तुम्हें खूब स्वादिष्ट जान प
कभी कोई शारीरिक व्यथा न होगी।

जल और वायु

जीवमात्रको अपने जीवन कालमें जिस पदार्थकी जि
अधिक आवश्यकता पड़ती है प्रकृतिने वह प
उतनी ही अधिक मात्रामें उत्पन्न और संग्रह करके पहले
रख दिया है। जीवमात्रके लिए बहुत अधिक मात्रामें और
आवश्यक वायु होती है। यह वायु संसारमें सब पदार्थोंसे अ
मानस है और बिना किसी प्रकारके प्रयास या व्ययके सब
मिल सकती है। यही नहीं, बल्कि प्रकृतिने ऐसी योजना कर
है कि वह छोटे, बड़े, अरक्षित, सुरक्षित, सभी स्थानोंमें अपने
पहुँच जाती है। प्रत्येक जीवको कुछ न कुछ वायुकी आवश्य
होती है; और यदि कोई विशेष प्रतिबन्ध न हो तो उसके
प्रत्येक स्थानमें वायु पहुँच भी जाती है। परम उपयोगिता
आवश्यकताके विचारसे सांसारिक पदार्थोंमें दूसरा स्थान
है। हजारों ऐसे जीवोंके नाम बतलाये जा सकते हैं, जो

भिन्न पदार्थ खाते हे, पर वायुके अतिरिक्त संसारमें यदि कोई एसी चीज है, जिसकी आवश्यकता उन हजारों जीवोंको होती है तो वह जल ही हे। सृष्टिमें जहाँ तहाँ जलकी अधिकता इसी आवश्यकताकी पूर्तिके लिए है।

जिस वायु और जलकी संसारको इतनी अधिक आवश्यकता है, उस वायु और जलमें अनन्त गुणोंका होना केवल सहज और स्वाभाविक ही नहीं बल्कि अनिवार्य भी है। वायु और जलमें और यहाँ ईश्वरका वास माना गया हे और वास्तवमें इन्हीं दोनों पदार्थोंमें सबसे अधिक संजीवनी शक्ति है। जेठ असाढ़की धूपमें दो-चार कोस चलने या दिनभर बहुत अधिक परिश्रम करनेके उपरान्त जितनी शान्ति एक गिलास ठंडे जल और ठंडी वायुके दस पाच झकोरोंसे होती है उतनी शान्ति, उतना सन्तोष, उतना सुख संसारके और किसी पदार्थसे सम्भावित नहीं। यदि अधिक सुख और अधिक सन्तोष मिल सकता है तो केवल अधिक जल या अधिक वायुसे ही मिल सकता है। कपड़े उतार दीजिए और शरीरमें ठंडी हवा लगने दीजिए, आपके सारे कष्ट मिट जायँगे और मन प्रफुल्लित हो जायगा। बढ़िया ठंडे जलसे स्नान कर डालिए सारी थकावट दूर हो जायगी और शरीर हलका हो जायगा। उस समय आप भी हमारी तरह कहने लगेंगे कि एसे सुन्दर पदार्थोंसे लाभ उठानेकी अपेक्षा जो लोग और तरहके दूषित, निन्दनीय और हानिकारक उपाय करते हैं, वे महामूर्ख है।

पर तो भी संसारमें ऐसे लोगोंकी कमी नहीं है जो ठंडी हवा और ठंडे जलका हौआ समझते हों—जिन्हें ठंडी हवा और ठंडे जलमें बड़े बड़े दाँत दिखाई देते हों। खुली हवामें रहने और खुले जलमें स्नान करनेसे जितने लाभ होते हैं उनका वर्णन नहीं हो सकता। पाश्चात्य विद्वानोंने तो उनकी उपयोगिताका यहाँतक पता लगा लिया है कि अन्तमें उन्हें जल चिकित्सा और वायु-चिकित्साको एक निश्चित और नियमित विज्ञानका रूप देना पड़ा है। संसा-

रकी प्राचीन जातियोंने भी अपने अपने समयमें आवश्यकतानुसार उनके लाभ समझ लिए थे और उनकी उपयोगिता सिद्ध कर दी थी। ब्राह्म मुहूर्तमें—जिस समयकी वायु सबसे अधिक शुद्ध होती है—उठना, पास या दूरकी नदीमें स्नान करना और खुली हवामें बैठकर ईश्वराराधन करना; प्राचीन आर्य्योंका सर्वप्रधान कर्तव्य होता था। आजतक उनकी बहुतसी सन्तानें उस कर्त्तव्यका बहुतसे अंशोंमें पालन करती ही हैं। मिश्र तथा यूनानके प्राचीन निवासी भी इन प्राकृतिक और स्वास्थ्यप्रद आवश्यकताओंको बहुत अच्छी तरह समझते थे। यहाँके प्रत्येक नगरमें बढ़िया बढ़िया स्नानागार होते थे जिनमेंसे अधिकांशके व्यय-निर्वाहके लिए सर्वसाधारणपर कर लगाया जाता था। दक्षिण यूरोपमें इस प्रकारके स्नानागार ईसासे पाँच छः सौ वर्ष पहले तक हुआ करते थे। रोमके प्राचीन निवासियोंने अपने उन्नति-काल्में इसी प्रकारके अनेक प्रबन्ध किये थे। आजतक संसारमें खुले जलमें तैरने अथवा खुली हवामें टहलनेसे बढ़कर और कोई व्यायाम लाभदायक प्रमाणित नहीं हुआ। इन दोनोंकी श्रेष्ठताका मुख्य कारण जल और वायुकी ही श्रेष्ठता है, हमारे शरीर-सञ्चालनका इसमें कोई निहोरा नहीं है।

संसारकी सारी गन्दगीका नाश या तो जलसे होता है और या वायुसे। सूर्यके प्रकाशसे भी उसके नष्ट होनेमें बहुत सहायता मिलती है; पर गन्दगी दूर करनेवाले पदार्थोंमें उसका नम्बर तीसरा ही है। मैले कपड़े या स्थान आदि धोनेके लिए जलका ही व्यवहार होता है। यहाँ तक कि हमारे शरीरके भीतरकी गन्दगी भी जलसे ही नष्ट होती है। हर तरहकी बेचैनी और घबराहट दूर करनेमें जल पीनेसे ही सहायता मिलती है। शारीरिक किसी कष्ट हुए स्थानपर पानी डालने या गीला कपड़ा बाँधनेसे ही आराम मिलता है, और यहाँतक कि फोड़े फुंसियों आदिमें भी गीला कपड़ा बाँधना ही लाभदायक होता है। पाश्चात्य जल-चिकित्सक तो सारे रोगोंकी चिकित्सा जलके अनेक प्रकारके प्रयोगसे ही

करते है। ऐसे उपयोगी पदार्थसे कभी किसी दशामें डरनेका कोई कारण नहीं है। आरोग्यताकी इच्छा रखनेवाले प्रत्येक व्यक्तिको हर एक चावीस घंटेमें यदि सम्भव हो तो दो बार और नहीं तो कमसे कम एक बार अवश्य खुले जलमें स्नान करना चाहिए और यथासाध्य बहुतसा स्वच्छ और ताजा जल पीना चाहिए। स्नान करनेसे मारे शरीरके रोम-कूप खुल और साफ हो जाते है और उनमेंसे शरीरका बहुतसा विकार अनायास ही निकल जाता है। जल पीनसे भी प्राय यही लाभ होता है; बल्कि कुछ अशोंमे उससे होनेवाला लाभ विशेष होता है क्योंकि पेटमें उतारा हुआ जल पेट और पेडूके बहुतसे विकारोंको भी निकाल बाहर करता है।

वायु और रोग

ठंडे स्वच्छ और अधिक जलके अभावमें उसका बहुतसा काम ठंढी, स्वच्छ और अधिक वायुसे भी निकल जाता है। प्राय सभी देशोंमें वर्षके अधिकाशमें ठंडी ही हवा चलती है, गरम हवा कम। बहुत गरम देशोंमें भी कमसे कम सवेरे और सन्ध्याके समय चलनेवाली हवा तो अवश्य ही ठंढी होती है। ठंढी हवामें गहरी साँस लेनसे हमारे फेफड़ोंके सारे विकारोंका नाश हो जाता है। यह बात सभी लोग जानते है कि गन्दी और थोड़ी हवाके कारण मनुष्यको अनेक प्रकारके रोग हो जाते है और उन रोगोंमें क्षय प्रधान है। स्वच्छ और ठंढी वायुके यथेष्ट सेवनसे कमसे कम श्वास और कफ-सम्बन्धी सभी रोग बहुत सहजमें नष्ट हो जाते है। रोगियों और चिकित्सकोंकी इतनी अधिकता होनेपर भी आजकल रोगोंके कारणोंका किसीको ठीक ठीक पता नहीं चलता। पर जुकामको ही लीजिए। सब लोग समझते है कि ठंढी हवा लेनेसे ही जुकाम हो जाता है; अथवा जुकामका कारण किसी न प्रकारकी ठंडक है। सालमें कमसे कम

दो तीन बार तो सभीको जुकाम होता है, पर बहुतसे लोगोंको हर महीने भी जुकाम हो आया करता है। यदि कहीं जुकाम बिगड़ गया तो बनफशा या इसी प्रकारकी और कोई दवा पीते पीते नाकमें दम आ जाता है। लोग बरसात या जाड़ेके दिनोंमें सब खिड़कियाँ और किवाड़ोंको इस प्रकार बन्द कर लेते हैं कि उन मेंसे जरासी भी हवा न आ सके, और उस कमरेकी गरम हवामें रातभर बन्द रहते हैं। यदि आप किसीसे पूछिए कि भाई, तुम्हें जुकाम कैसे हो गया ? तो उत्तर मिलता है कि रातको सोते सोते बहुत गर्मी मालूम हुई, जरा खिड़की खोली उसके खोलते ही ठंढी हवाका झकोरा लगा और जुकाम हो गया। अथवा इसी प्रकार जहाँ और कहीं थोड़ीसी ठंढक मिली कि लोगोंको जुकाम हो गया। पाश्चात्य देशोंके विद्वानोंने तो अन्य रोगोंके कीटाणुओंकी तरह जुकामके भी कीटाणु ही मान लिये हैं और उन कीटाणुओंके नाशके लिए ही जुकामके रोगियोंको तरह तरहकी औषधियाँ दी जाती हैं। पर कोई बुद्धिमान् इस बातका जरा भी विचार करनेकी आवश्यकता नहीं समझता कि जुकाम उन्हीं लोगोंको होता है जो ठंढी हवाको हौआ समझकर उससे डरते हैं, और जो लोग सदा ठंढी हवामें घूमते फिरते हैं उन्हें कभी जुकाम होता ही नहीं। जुकामके सारे कीड़े मकानों और गरम स्थानोंमें ही फैलते हैं, ठंढे, बर्फीले या पहाड़ी स्थानोंपर उनकी कोई दाल नहीं गलती। जो लोग उत्तरी ध्रुव तक हो आये हैं उनका कथन है कि वहाँके देशोंमें जुकाम या इसी प्रकारका और कोई रोग नहीं होता। वहाँ नहीं बल्कि दिनरात ठंढी हवा और बरफमें रहनेवाले वहाँके निवासी कफकी किसी बीमारीका नाम भी नहीं जानते। ये सब रोग उन्हीं लोगोंको होते हैं जो ठंढी हवासे डरते और घबराते हैं, स्वच्छ, खुली और ठंढी हवाका सेवन करनेवालोंसे स्वयं उन रोगोंको डर लगता रहता है।

गरमीके दिनोंमें मच्छड़ोंसे बचनेके लिए घर घर मसहरियाँ टाँगी जाती हैं। उन मसहरियोंमें बहुतसे रुपये भी खर्च होते हैं।

इस देशमें तो मसहरियोंका व्यवहार केवल मच्छड़ोंके डसनेसे बचनेके लिए ही होता है, पर पाश्चात्य देशोंमें उन रोगोंसे बचनेके लिए भी होता है जो मच्छड़ोंके द्वारा भयंकर रूपसे फैलते हैं। पर लाख उपाय करने पर भी मच्छड़ काटते ही हैं और फैलते ही हैं। पर क्या मच्छड़ोंके डंक और उनके द्वारा फैलनेवाले रोगोंसे डरनेवाले लोगोंने कभी यह किस्सा भी सुना है कि एक बार मच्छड़ोंने जाकर अल्लाह मियांसे फरियाद की थी कि सरकार, हवा हमें बहुत दिक करती है, कहीं ठहरने नहीं देती। अल्लाह मियाँने जब हवाको बुलवाया तो मच्छड़ वहाँसे भी भाग गये। हवाके वहाँसे चले जाने पर मच्छड़ फिर रोते हुए अल्लाह मियाँके पास पहुँचे। उस बार अल्लाह मियाँने मच्छड़ोंको बहुत फटकारा और कहा कि फैसला तभी हो सकता है जब मुद्दई और मुद्दालेह दोनों मौजूद हों, जब तुम हवाके आनेपर यहाँ ठहरते नहीं, तब फिर मैं तुम्हारा फैसला कैसे करूँ? यदि मच्छड़ोंके द्वारा फैलनेवाले रोगोंसे छुटकारा पानेके लिए प्रयत्न करनेवाले रोगिया और डाक्टरों तथा मच्छड़ोंके डंकसे बचनेकी इच्छा रखनेवाले शौकीनोंने यह किस्सा न सुना हो, तो अब सुन लें, और यदि पहले भी कभी सुना हो तो अब समझ लें कि मच्छड़ोंको दूर करनेका सबसे सहज उपाय है—बढ़िया, ठंडी और तेज हवा। मकान ऐसे बनवाइए जिनमें हर तरफसे बढ़िया हवा आती हो। फिर क्या मजाल जो मच्छड़ आपको काटें या दूसराकर रोग लगाकर आपको रोगी करें।

बारहों महीने जुकाम और खांसी आदि रोगोंसे पीड़ित रहने वाले लोग यदि अधिक समय तक खुली और ठंडी हवामें रहनेका अभ्यास करें तो बहुत सहजमें और सदाके लिए उन रोगोंसे उनका छुटकारा हो जाय। ठंडी हवा एक ऐसा पौष्टिक द्रव्य है जो हमारे फेफड़ों आदिको ऐसी दशाओंमें भी बल प्रदान करती है जब कि संसारभरकी सारी पौष्टिक औषधियाँ व्यर्थ सिद्ध होती हैं। क्या हो गुर्दे गले या फफड़े आदिमें किसी प्रकारकी शिकायत उठती हुई

जान पड़े त्योंही ठढो और साफ हवाका खूब सेवन करें, उस शिकायतका नाम भी न रह जायगा। बात यह है कि जिस स्थान पर किसी प्राकृतिक तत्त्वकी आवश्यकता होती है वहाँ औषधों अथवा इसी प्रकारके और किसी पदार्थसे काम नहीं चल सकता। जब हमें बहुत तेज धूप या आँच लगती है तब हमारी त्वचा किसी प्रकारका मरहम या तेल नहीं माँगती, बल्कि वह वहाँसे हटकर केवल ठंढे स्थानमें जाना चाहती है। दूसरे पदार्थसे उसका कष्ट दूर ही नहीं हो सकता। इस प्रकार जो रोग शुद्ध, स्वच्छ और अधिक वायुके अभावके कारण होते हैं, क्या गोलियाँ, पुड़ियाँ और शीशियाँ उन्हें दूर करनेमें कभी समर्थ हो सकती है? कदापि नहीं। उनकी आवश्यकता तो केवल स्वच्छ और अधिक हवा ही पूरी कर सकती है।

पाचनसम्बन्धी दोषोंको दूर करनेके लिए भी स्वच्छ वायु राम बाण ही है। इसका प्रमाण आपको सारे संसारमें मिलेगा। जो लोग निपुरम् श्वास जितनी ही दूर रहते हैं उनकी पाचन-शक्ति उतनी ही अधिक होती है। उत्तरी ध्रुवमें रहनेवाले एस्किमो लोग इतना अधिक भोजन पचाते हैं जितना हम हिन्दू भी नहीं पचा सकते। जो लोग सदा खुली हवामें रहते हैं, उनकी शारीरिक और पाचन शक्ति बिना किसी प्रकारके परिश्रम या व्यायामके ही बढ़ जाती है। खुली हवामें साँस लेनेसे रक्त खूब शुद्ध होता है और उसका संचार भी बढ़ जाता है। इस शुद्धि और संचारका शरीरके सभी अंगोंपर बहुत ही उत्तम प्रभाव पड़ता है। जब डाक्टर लोग औषध आदि देते देते थक जाते हैं और रोगीकी दशा किसी प्रकार नहीं सुधरती तब रोगियोंको वे लोग पहाड़ या समुद्र तटपर जानेकी सम्मति इसी लिए देते हैं। जिन लोगोंको अलसर हो गया हो वे और दिनोंमें रात भर खुली हवामें सोकर तथा जाड़े दिनामें अधखुली खिड़कियोंके पास सोकर ही अपने रोगसे मुक्त बहुत पा सकते हैं। यो मधपान आदि अथवा इसी प्रकारके अन्य

ऐसे पदार्थ जिनमें नाइट्रोजन नहीं होता, ठंढी और सहज वायुकी सहायतासे बहुत ही सहजमें पचाये जा सकते हैं।

ठंढी और स्वच्छ वायुमें उन्निद्र रोगको दूर करनेकी विलक्षण शक्ति है। बहुत ठंढे प्रदेशोंमें जाड़ा आते ही बहुतसे जानवर किसी एकान्त स्थानमें चले जाते हैं और बसन्त ऋतुके आगमन तक बिना किसी प्रकारका आहार किये महीनों सोते या ऊँघते रहते हैं। स्वयं हम सब लोगोंको और दिनोंकी अपेक्षा जाड़ेमें कहीं अच्छी और अधिक नींद आती है। इसका कारण यही है कि जाड़ेमें हवा ठंढी और अधिक होती है। डा० फ्राङ्क्लिनकी सम्मतिमें ठंढी हवा नींद आनेकी बहुत अच्छी दवा है। आप लिखते हैं,—

"गरमियोंमे रातके समय जब मैं सोनेके अनेक निरर्थक प्रयत्न कर चुकता हूँ तब उठकर बैठ जाता हूँ और अपने सामनेकी खिड़की खोलकर प्रायः पन्द्रह मिनट तक नंगे बदन हवाके रुखपर बैठा रहता हूँ। उस समय नींद न आनेका चाहे जो कारण हो वह दूर हो जाता है और उसके बाद जब मैं लेटता हूँ तब मुझे कमसे कम दो तीन घंटोंके लिए खूब गहरी नींद आ जाती है।"

यदि नींद न आनेपर स्वच्छ वायुका सेवन करनेके समय थोड़ी हलकी कसरत भी कर ली जाय तो उससे और भी अधिक लाभ होता है। सोनेके समय रक्तकी यथेष्ट रूपसे शुद्धि नहीं होती, इसी लिए बहुधा सोए सोए नींद खुल जाया करती है। यदि सन्ध्याके समय थोड़ासा व्यायाम कर लिया जाय या दो चार मीलका चक्कर लगा दिया जाय तो उस दोषकी सम्भावना नहीं रह जाती और मनुष्य बड़े आनन्दसे सारी रात खूब गहरी नींदमें सोया रह सकता है।

वायु-सेवन

पिछले पृष्ठोंमें एक स्थानपर यह बतलाया जा चुका है कि शरीरको नीरोग करने और स्वास्थ्य बनाये रखनेमें एक मात्र उपवास ही सहायक नहीं हो सकता; बल्कि उसके लिए स्वच्छ वायु और व्यायाम आदिकी भी आवश्यकता होती है। स्वच्छ वायुके सेवनसे जितने लाभ हो सकते हैं उन सबका वर्णन करना कमसे कम हमारे सामर्थ्यके तो बाहर है। केवल घरोंमें बन्द रहकर रहन्त करनेवाले बालकोंकी अपेक्षा गलियों, सड़कों और मैदानोंमें चक्कर लगानेवाले बालक और उनकी अपेक्षा सदा खुली हवामें रहनेवाले देहाती बालक कहीं अधिक नीरोग और बलिष्ठ हुआ करते हैं। पालतू (और फलत गन्दी हवामें रहने वाले) जानवरोंकी अपेक्षा जंगली (और फलत साफ हवामें रहनेवाले) जानवर कहीं अधिक बलिष्ठ और फुर्तीले हुआ करते हैं। प्राय सभी धर्म्मोंमें नंगे पैरों और पैदल चलकर अनेक तीर्थोंकी यात्रायें करनेका विधान है। और उस विधानमें भी स्वास्थ्य सम्बन्धी यही परमोपयोगी और लाभदायक सिद्धान्त है। उन यात्राओंपर आजकलकी नई रोशनीके लोग भले ही हँसें, पर उन्हें भी किसी न किसी रूपमें—कमसे कम किसी बड़े मैदानकी ही सही—यात्रा करनेकी अवश्य आवश्यकता होती है। और यदि वे यह यात्रा न करें तो उन्हें उसका दुष्परिणाम भी भोगना पड़ता है।

वायु-सेवनका सबसे अच्छा समय प्रभात है, क्योंकि उस समय वायु बहुत शुद्ध, स्वच्छ, शीतल, मन्द और अधिक होती है। ऐसे समयमें यदि मनुष्य नित्य दो, चार या पाँच मीलका चक्कर खेतों और मैदानों आदिमें लगाया करे, तो उसे कभी किसी डाक्टर, वैद्य या हकीमका मुँह देखनेकी आवश्यकता नहीं रह सकती। उस समय हमारे शरीरको वायुसे जो लाभ पहुँचता है वह तो पहुँचता ही है; इसके अतिरिक्त रातभरकी भोग

हमारे पैरोंसे लगकर हमें और भी अधिक लाभ पहुँचाती है ठंढे देशोंमें रहनेवाले लोगोंको तो यह लाभ अनायास हो ही जाता है; पर जो लोग गरम देशोंमें रहते हैं वे भी सवेरेके समय मैदानों और जंगलोंमें घूमकर पहाड़ों और ठंढ देशोंमें रहनेका लाभ उठा सकते हैं। साँस लेनेसे जो वायु दूषित हो जाती है वह साधारण और शुद्ध वायुकी अपेक्षा कहीं अधिक भारी होती है; और इसी लिए वह प्रायः बन्द और नीचे स्थानों—कोठरियों, दालानों, तहखानों और गलियों, आदि—में ही रहती है; अतः वायु-सेवनके लिए मनुष्यको ऐसे स्थानोंपर निकल आना चाहिए जो बस्तीसे बहुत दूर और ऊँचे हों। पर यह बात बहुत ऊँचे पहाड़ोंपर रहनेवालोंके लिए नहीं है क्योंकि बहुत अधिक ऊँचाईपर वायु स्वयं ही कम और हल्की हो जाती है और साँस लेनेके लिए यथेष्ट नहीं होती। वहाँकी वायु तो शरीर और विशेषतः फेफड़ोंके लिए और भी हानिकारक होती है। अतः ऐसे स्थानोंपर जहाँ तक हो सके और नीचे ही उतर आना चाहिए। यदि सम्भव हो तो सोनेके लिए बल्कि रहनेके लिए भी नगरसे दूर किसी ऐसे मैदानमें प्रबन्ध करना चाहिए जहाँ श्वाससे दूषित वायुके पहुँचनेकी सम्भावना न हो और जहाँ यथेष्ट सरदी पड़ती हो। ऐसा प्रबन्ध एक साधारण छोटी मोटी झोपड़ी बनाकर भी किया जा सकता है। वहाँ मनुष्य जब चाहे तब सुन्दर, स्वच्छ, शीतल और पहाड़ोंकी वायुके मुकाबलेकी वायुका सेवन कर सकता है। जिस समय ठंढी वायु न मिल सकती हो उस समय पासके किसी झरने या छोटी नदीके शीतल जलमें ही स्नान कर लेना चाहिए।

उन मैदानों और जंगलोंमें भी मनुष्यके लिए ऐसे कामोंकी कमी नहीं है जिनसे उसका मनोरंजन होनेके साथ ही साथ बहुत कुछ व्यायाम भी हो जाता है। घूम घूमकर तरह तरहके फल मूल आदि खाना और आवश्यकता पड़नेपर ऊँचे पेड़ोंपर चढ़ना कम स्वास्थ्यप्रद नहीं है। चतुर और दक्ष मनुष्य मधु-मक्खियोंके

छत्तेमेंसे बहुतसा शहद भी जमा कर सकता है। पेड़ोंपर चढ़ना एक ऐसी कसरत है जिससे शरीरके अंग प्रत्यंगपर जोर पड़ता है और शरीर खूब फुर्तीला हो जाता है। यह कसरत उन लोगोंके लिए और भी अधिक उपयोगी होती है जो दमे अथवा इसी प्रकारके और किसी रोगसे पीड़ित हों। इसी प्रकार यहां और भी अनेक ऐसे काम निकाले जा सकते हैं जिनसे मनोविनोद, शारीरिक श्रम और आर्थिक लाभ आदि सभी बातें हो सकती हैं। यहां रहकर मनुष्य तरह तरहकी प्राकृतिक शोभायें निरख सकता है, अपना ज्ञान बढ़ा सकता है, रोगसे मुक्त हो सकता है, अनेक प्रकारकी बुराइयों और दोषोंसे बच सकता है और अपने मन तथा आत्माको शुद्ध और स्वस्थ कर सकता है। यदि मनुष्य सदा ही ऐसा जीवन न व्यतीत कर सकता हो तो उसे कमसे कम सप्ताहमें एक दिन, महीनेमें चार दिन अथवा वर्षमें एक महीने अवश्य ही ऐसा जीवन व्यतीत करना चाहिए। ऐसा जीवन स्वास्थ्यप्रद होनेके अतिरिक्त बड़ा ही सात्विक और शुद्ध होता है और उसीमें मनुष्यको वास्तविक और सच्चा सुख मिल सकता है।

नगरमें रहनेवाले बालकोंको आरम्भसे ही ऐसा मनोहर जीवन व्यतीत करनेका अभ्यास डालना चाहिए। जो बालक इस प्रकार प्राकृतिक शोभाओंको निरखता रहता है वह बड़े बड़े शहरोंकी गन्दी गलियोंमें घूमनेवाले बालककी अपेक्षा कहां अधिक नीरोग, बुद्धिमान् और धर्मात्मा होगा। रेलों और जहाजोंपर चढ़कर बड़े बड़े नगरों आदिके देखनेमें बहुतसा धन व्यय करनेकी अपेक्षा बहुत ही थोड़े खर्चमें आसपासकी प्राकृतिक शोभायें देखना कहीं अधिक लाभदायक है। हममेंसे अधिकांश लोग ऐसे ही हैं जो सदा अपने व्यापारों और कार्यों आदिमें ही लगे रहकर कूप-मण्डूक और रोगोंके घर बने रहते हैं। वे जो कुछ वे सुखी होनेके लिए करते हैं वे ही उन्हें और अधिक दुःखी बनानेके साधन होते हैं। ऐसे लोगोंको यह बात भलीभांति समझ लेनी

चाहिए कि प्रकृतिसे बढ़कर हमें सुखी करनेवाला और कोई संसारमें नहीं है। जो लोग देहातसे चलकर किसी काम धन्धेके लिए शहरोंमें रहते हैं वे कभी कभी छुट्टी लेकर आराम करनेके लिए अपने देहाती मकानोंमें तो अवश्य पहुँच जाते हैं; पर नगरमें पड़े हुए अभ्यासके कारण वे देहातोंमें होनेवाले लाभसे वंचित ही रह जाते हैं। यदि वे लोग थोड़ासा भी प्रयत्न करें तो बड़ी बड़ी पौष्टिक ओषधोंकी अपेक्षा कहीं अधिक पौष्टिक पदार्थोंसे विशेष लाभ उठा सकते हैं। प्राकृतिक शोभाओं आदिके देखने और सुन्दर स्वच्छ वायु सेवन करनेके इतने अधिक लाभ हैं कि एक विद्वानने उनसे वंचित रहनेको बड़ा भारी पाप कहा है।

बहुतसे अभागे लोग स्वच्छ और शीतल वायुसे इतना अधिक डरते हैं कि जब वह स्वयं उनके पास आना चाहती है तब भी वे लोग अपने द्वार बन्द कर लेते हैं। रातके समय आपको नगरोंके अधिकांश मकानोंकी खिड़कियाँ और दरवाजे आदि बन्द ही मिलेंगे; चाहे उनके भीतर रहनेवालोंको कितना ही कष्ट क्यों न होता हो। लोग छोटीसी कोठरीके सब किवाड़ बन्द कर लेते हैं और लिहाफ या ओढनेके अन्दर मुँह ढँककर सो रहते हैं। रात भर वे उसी लिहाफ या अधिकसे अधिक कोठरीकी हवा साँस लेकर गन्दी करते और फिर उसी गन्दी हवामें साँस लेते हैं। भारतवर्ष ऐसे गरम देशमें भी यह दशा सालमें छः सात महीने अवश्य रहती है। हमारे बंगाली भाई तो गरमीके दिनोंमें भी ओस और हवासे बचनेके लिए रातको छाता लगाकर सड़कोंपर चलते और मसहरियाँ लगाकर सोते हैं। खुली छतोंपर सोना तो मानो उनके भाग्यमें लिखा ही नहीं है। स्वास्थ्यकी दृष्टिसे ऐसा करना बहुत ही हानिकारक है।

युरोप अमेरिका आदि देशोंमें रातको सोनेके समय मकानोंकी सारी खिड़कियाँ और दरवाजे आदि बन्द कर लेनेकी और भी अधिक प्रथा है। क्रीमियाके युद्धमें रोगियोंकी सेवा शुश्रूषा आदि करनेमें जिस देवी नाईटिंगेलने इतना नाम पाया था, उसे रोगि

थोंको रातके समय अस्पतालके दरवाजे आदि बन्द करके रातभर गन्दी वायुमें रहते देखकर अत्यन्त आश्चर्य और दुःख हुआ था। एक बार उसने कुछ रोगियोंसे पूछा भी था—" रातकी वायुसे तुम लोग इतना क्यों डरते हो? क्या तुम लोग यह समझते हो कि कुछ समयके लिए सूर्य्यका प्रकाश न रहनेके कारण ही वायु भय कर और नाशक हो जाती है? सूर्य्यास्तके बाद तुम्हें प्रकाशपूर्ण दिनकी हवा तो मिल ही नहीं सकती, अब चाहे तुम रातकी स्वच्छ प्राणप्रद और स्वास्थ्यवर्द्धक बाहरी वायुका सेवन करो और चाहे रोग उत्पन्न करनेवाली कमरेके अन्दरकी गन्दी हवामें रहो।"

लोग हवासे तो इतना नहीं डरते, पर उसके झोकोंसे बहुत अधिक डरते हैं। वे लोग यह नहीं समझते कि यही झोक हमारे शरीर और फेफड़ोंका बल बढ़ानेमें सबसे अधिक सहायक होते हैं। सूर्य्यास्तके उपरान्त जब वातावरण ठंढा हो जाता है तब उसके कारण वायुमें संचार शक्ति स्वभावतः बढ़ जाती है। संचारके कारण वायुकी शुद्धिमें बहुत अधिक सहायता मिलती है। इसीलिए रातकी वायु दिनकी वायुकी अपेक्षा अधिक शुद्ध होती है। बाहरकी बहती हुई और कमरेके अन्दरकी रुकी हुई हवामें उतना ही अन्तर है, जितना कि हरिद्वारके पासकी गंगा और किसी बंगाली गाँवकी गड़हीके जलमें अन्तर होता है। वायुमें ठढकके कारण इतना अधिक गुण बढ़ जाता है कि जाड़ेके दिनोंमें जब कि हवा अधिक ठंढी होती है, रोगों और मृत्युकी संख्या और दिनोंकी अपेक्षा बहुत घट जाती है। रातकी उसी ठंढी हवासे लोग इतना अधिक भागते और डरते हैं। पर इस भागने और डरनेका उनके स्वास्थ्यपर बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ता है। प्रत्येक मनुष्यको जहाँ तक हो सके सदा अपने कमरोंकी खिड़कियाँ और दरवाजे आदि खुले रखने चाहिए। आप यह समझें कि रातके समय ठंढी हवा मरी नहीं जाती। वह हवा इसी लिए नहीं मरी आ सकती कि आप बहुत दिनोंसे उसके सहनेका अभ्यास नहीं

बैठे हैं। जिस नदीका मार्ग जबरदस्ती बदला गया हो उसे अपने प्राकृतिक मार्गपर लानेके लिए जिस प्रकार किसी विशेष परिश्रमकी आवश्यकता नहीं होती, उसी प्रकार जिस मनुष्यका स्वभाव जबरदस्ती बदला गया हो उसे अपना प्राकृतिक स्वभाव ग्रहण करनेमें विशेष अड़चन नहीं होती। केवल एक महीनेमें आपको खिड़कियाँ और दरवाजे खोलकर सोने और बैठनेका इतना अभ्यास हो जायगा कि फिर आपको बन्द कमरेमें थोड़ी देरतक रहना भी बहुत कठिन जान पड़ेगा। जाड़ेके दिनोंमें अथवा अन्य अवसरोंपर जब कि ठंढी और तेज हवा चलती हो, आप सर्दीसे बचनेके लिए एकके बदले दो और दोके बदले तीन लिहाफ ओढ़, पर खिड़कियाँ और दरवाजे बन्द करके गन्दी और जहरीली हवामें कभी रातभर न पड़े रहें। किवाड़ बन्द करनेमें यदि आपका मुख्य उद्देश्य सर्दीसे बचना ही हो, तो वह उद्देश लिहाफोंकी संख्या बढ़ानेसे भी पूरा हो जाता है; पर हाँ यदि आप गन्दी और विषाक्त हवाके उद्देश्यसे ही किवाड़े बन्द करते हों तो बात दूसरी है। आपका स्वास्थ्य बनाये रखने और सुधारनेके लिए साफ हवाकी आवश्यकता है; आप इस बातकी कभी चिन्ता न करें कि वह साफ हवा कितनी ठंढी है। बहुत तेज जाड़ा पड़ने पर आप यदि पूरी खिड़की न खोल सकें तो आधी अथवा थोड़ीही अवश्य खोल दें, क्योंकि बहुत तेज ठढकसे सब प्रकारके दूषित कीटाणुओं आदिका नाश होता है।

सदा खुली हवामें रहनेका अभ्यास करो, तुम्हें कभी कोई रोग न होगा। यही नहीं बल्कि उस दशामें तुम गन्दी और बन्द हवामें थोड़ी देरतक भी न रह सकोगे। अभी हालमें जब कप्तान कुक दक्षिणी ध्रुवकी ओर गये थे तब वहाँके एक टापूमें उनका जहाज ठहरा था। वहाँके कुछ जंगली लोग महाशयके साथ जहाजपर चले आये और थोड़ी देरतक उनकी कोठरियोंमें रहे। उसने ही समयमें उन्हें बेतरह खाँसी आने लगी, छातीमें दरद होने लगा और उनमेंसे कुछको बुखार भी आ गया। बुखारका बुखारने खुन

हवामें रहनेके कारण वे उसके इतने अभ्यस्त हो गये थे कि दस पाँच मिनट भी गन्दी हवामें रहकर वे उसके दुष्परिणामसे न बच सके।

व्यायाम

अब हम स्वास्थ्य-सम्बन्धी अन्तिम सिद्धान्तकी कुछ बातें बतलाकर यह पुस्तक समाप्त करते हैं। उपवास, जल और वायु आदिके अतिरिक्त मनुष्यकी आरोग्यताके लिए व्यायाम भी बहुत ही आवश्यक है। व्यायामकी उपयोगिता इतनी अधिक और सर्व-सम्मत है कि आजतक उसके सम्बन्धमें कभी किसी प्रकारका वादविवाद या विरोध हुआ ही नहीं। मनुष्य जातिको व्यायामसे होनेवाले लाभ हजारों वर्षोंसे मालूम हैं और सदा उनकी उपयोगिताका समर्थन होता आया है। एक प्रसिद्ध डाक्टरका मत है कि जब मैं शारीरिक श्रमसे होनेवाले कामोंकी ओर ध्यान देता हूँ तब मुझे कहना पड़ता है कि यदि सर्वसाधारणमें व्यायामका यथेष्ट प्रचार हो जाय तो आजकलके बहुतसे फैशनेबुल रोगोंका आपसे आप नाश हो सकता है। रोगोंको औषध आदिकी सहायतासे दूर करनेकी अपेक्षा शारीरिक सगठनको दृढ़ करके दूर कर देना कहीं अधिक उत्तम और निर्दोष है। चिरायता या नीमकी पत्तियोंको औंटा-औंटाकर उनके विषतुल्य कड़ुए काढे पीनेकी अपेक्षा उन पेड़ोंपर चढ़ना अथवा उन्हें कुल्हाड़ीसे काटना कहीं अधिक उपयोगी है। इङ्गलैण्डके प्रसिद्ध राजमन्त्री ग्लैडस्टनने भूख बढानेके लिए तरह तरहकी औषधोंकी अपेक्षा कुल्हाड़ी और रस्सी लेकर सवेरेके समय जगलकी ओर निकल जानेको ही अधिक उपयोगी बतलाया था।

मनुष्यके शरीरकी उपमा किसी ऐसी नावसे दी जा सकती है जिसके चलानेके लिए बिजली (या भाफ आदि) और पाल दोनोंकी आवश्यकता होती हो। जिस समय हवा बन्द रहेगी उस

समय तो यह नाव बिजली या भाफके सहारेसे चलती रहेगी; पर जब हवा चलने लगेगी तब उसकी गतिके बढ़ानेमें पालसे भी सहायता मिलेगी। ठीक यही दशा हमारे शरीरकी है। साधारण स्थितिमें तो यह अपनी भीतरी शक्तिसे काम करता ही रहेगा; पर वायु-सेवन और व्यायाम आदि पालकी तरह उसकी सहायता करेंगे। यही नहीं बल्कि जब कभी हमारे शरीरके भीतरी शक्तिके बिगड़नेकी बारी आवेगी तब उसी व्यायामरूपी पालकी सहायताके कारण उसकी गतिमें कोई अन्तर न आने पावेगा। व्यायामके लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह दंड, मुद्गर, बैठक, डम्बेल या जिम्नास्टिक आदिके रूपमें ही हो। सभी प्रकारके कठिन शारीरिक परिश्रम व्यायाम ही हैं। किसी पहाड़ीपर चढ़ने या दौड़नेसे आपका केवल व्यायाम ही नहीं होगा बल्कि आप कलेजे और श्वाससम्बन्धी सब प्रकारके रोगोंसे भी मुक्त रहेंगे। अफीमके सतकी गोलियाँ खाकर आप कुछ समयके लिए उन्निद्र रोगको भले ही दबा लें, पर उसका अन्तिम परिणाम आपके लिए घातक ही होगा। पर दिनके समय मैदानोंमें दौड़ धूप कर अथवा चक्कर लगाकर बिना कुछ व्यय किये अथवा जोखिम उठाये आप केवल अपने उन्निद्र रोगसे ही मुक्त नहीं हो जायँगे, बल्कि और भी किसी रोगको अपने शरीरमें घर न करने देंगे। रोगोंकी भयंकरताका कारण बहुधा शारीरिक दुर्बलता ही हुआ करती है और उस दुर्बलताको समूल नाश करनेका मुख्य और सर्वोत्तम साधन व्यायाम है।

डाक्टर हफ़लेण्डकी सम्मति है कि इधर बहुत दिनोंसे मनुष्य घरके अन्दर बन्द रहने और पका पकाया भोजन करने लग गया है, और दिन पर दिन उसके रोगी और दुर्बल होनेका मुख्य कारण यही है। यदि मनुष्य अपनी शारीरिक दशा सुधारना चाहे तो उसे उचित है कि वह उन्हीं प्राकृतिक नियमोंका पालन फिरसे आरम्भ कर दे, जिनके अनुसार वह बहुत प्राचीन कालमें चलता था। अर्थात् यदि मनुष्य नीरोग रहना और बलिष्ट होना चाहता

हो तो उसे उचित है कि वह यथासाध्य शहरके, शहर मैदानमें रहे अथवा कमसे कम घूमे फिरे और सदा सादा भोजन करे। डाक्टर वरनर मैकफेडनका मत है कि मनुष्यका शारीरिक अथवा नैतिक सगठन कदापि आधुनिक नए सभ्यताके उस जीवनके लिए उपयुक्त नहीं है जो उसे सदा घरोंमें वन्द रखता और दिन पर दिन उसको शारीरिक श्रमसे वंचित करता जाता है। यदि डारविन साहबका सिद्धान्त ठीक मान लिया जाय—जो कि वास्तवमें बहुतसे अशोंमें ठीक होनेके अतिरिक्त ससारमें प्राय सब मान्य सा है—तो उक्त दोनों विद्वानोंके मतोंकी और भी अधिक पुष्टि हो जाती है। उसके भाईबन्द—बन्दर, गुरिल्ले, चिम्पेंजी आदि सदा एक पेड़परसे दूसरे पेड़पर कूदा करते हैं और जगल जगल घूमते रहते हैं। इस दृष्टान्तसे हमारा यह तात्पर्य नहीं है कि मनुष्य भी विज्ञान और कला-कौशल आदिका पीछा छोड़कर उन्हींका सा हो जाय। कहनेका मतलब केवल यही है कि मनुष्य निकम्मा और सुस्त बने रहनेके लिए नहीं है, बल्कि चचल, चपल और फुर्तीला बने रहनेके लिए है।

जो लोग सभ्यताके इतिहास और विकासके सिद्धान्तोंसे भली भांति परिचित हैं उन्हें यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं कि मनुष्य निरी जगली अवस्थासे कितने रूपोंमें परिवर्त्तित होकर वर्त्तमान स्थिति तक पहुँचा है। उसकी सभ्यता और एकदेशीयताके साथ ही साथ अकर्मण्यता और अस्वस्थता आदि अनेक दोषोंकी भी समान मात्रामें ही वृद्धि होती जाती है। यद्यपि मानव समाजका फिर उसी प्राचीन स्थिति तक पहुँच जाना न तो किसीको अभीष्ट ही हो सकता है और न सम्भव ही है, तथापि उसके शारीरिक कल्याणके लिए यह बहुत ही आवश्यक है कि वह उस प्राचीन कालके अपने जीवनका सर्वांशमें परित्याग न कर दे। जिस मनुष्यके पूर्वज सदा अपना डेरा डडा लादे हुए एक स्थानसे दूसरे स्थान तक घूमा करते थे, वही मनुष्य आजकल सभ्य हो जानेके कारण सौ पचास कदम चलनेमें भी अपना अप

मान समझता है। आजकल मकान ऐसे स्थानोंपर बनवाये या लिये जाते हैं, जहाँ दरवाजे तक गाड़ी लग सके, गाड़ीपर सवार होनेके लिए बाबू साहबको सड़क तक चलनेकी तकलीफ भी न उठानी पड़े। इस सुकुमारताका फल भी हाथोंहाथ मिल जाता है। बाबू साहब सदा दो चार रोगोंका अड्डा बने रहते हैं। अधिक पैदल चलनेसे सालमें दो चार जूतोंका खर्च भले ही बढ़ जाय, पर डाक्टरकी फीस और नुसख़ोंके दाम देनेसे अवश्य छुटकारा हो जायगा। खूब घूमने फिरनेके लाभोंकी परीक्षा दो ही दिनमें हो सकती है, एक दिन आनन्दपूर्वक घरमें ही बैठे रहकर और दूसरे दिन दो चार दस मीलका चक्कर लगाकर। पहले दिन आप जो कुछ खायेंगे वह छातीपर धरा रह जायगा और रातको अच्छी तरह नींद न आवेगी और दूसरे दिन भोजन मजेमें पच जायगा और रात भर आप खूब खर्राटे लेंगे।

मनुष्यका शारीरिक-सगठन ही कुछ ऐसा अद्भुत है कि उसके जिस अगसे काम न लिया जायगा वह धीरे धीरे दुर्बल होने लगेगा और अन्तमें बेकाम या नष्ट हो जायगा। हाथों पैरोंसे काम न लिया जाय तो वे सूख जायँगे बहुत ही मुलायम और पतला भोजन करनेसे दाँत झड़ जायँगे, और यदि हम दिन-रात टोपी और साफेका व्यवहार करके बालोंकी आवश्यकता दूर कर देंगे तो हमारे बाल भी व्यर्थ सिरका बोझ बने रहना पसन्द न करेंगे और झड़ने लगेंगे। यही दशा फेफड़ोंकी भी समझिए। यदि हम उनसे यथेष्ट अथवा विशेष रूपसे काम लेना छोड़ देंगे, तो निश्चय है कि वे भी रोगी हो जायँगे। फेफड़ों आदिसे यथेष्ट काम लेनेका सबसे अच्छा उपाय व्यायाम है। जो मनुष्य सदा किसी न किसी प्रकारका व्यायाम करता रहेगा वह किसी प्रकारका व्यायाम न करनेवालेकी अपेक्षा कहीं अधिक नीरोग और बलिष्ठ होगा। यदि समान स्थितिकी दो बहनोंमेंसे एकका विवाह किसी देहाती साधारण जमींदारके साथ और दूसरीका शहरके किसी धनी कोठीवालके साथ कर दिया जाय, तो शरीरसे काम

लेनेकी उपयोगिता सहजमें सिद्ध हो जायगी। देहातीकी स्त्रीको कुएँसे पानी भरना पड़ेगा, चक्की चलानी पडेगा, गाओं भैंसोंकी म्सानी आदिका प्रबन्ध करना पड़ेगा और इसी प्रकारके और भी अनेक कार्य करने पड़ेंगे। पर कोठीवाल महाशयकी स्त्री दिन भर मुलायम बिछोनोंपर पड़ी पड़ी 'सरस्वती' और 'स्त्री-दर्पण' के पन्ने उलटेगी, जी घबराने पर हाथमें मोजा बुननेकी दो तीन सला इयाँ और दो चार तोले ऊन ले लेगी और मिसरानी तथा मजदू रनीपर हुकुम चलावेगी। दस बरस बाद जब कभी किसी अव सरपर दोनों बहनोंकी भेंट होगी तब दोनोंका अन्तर आप ही प्रकट हो जायगा। देहातवाली स्त्री स्वयं हृष्टपुष्ट होनेके अतिरिक्त दो चार मोटे ताजे बालकोंकी माँ होगी और कोठीवालकी स्त्री दुबली, पतली और प्रदर रोगसे पीड़ित। यह एक अनुभवसि- बात है कि पानी भरने और चक्की पीसनेवाली स्त्रियोंको प्रदर य उसी प्रकारका और कोई रोग बहुत ही कम और कदाचित् ही होता है, पर युरोप और अमेरिका आदि देशोंमें जो स्त्रियाँ खू पढ़ लिखकर डाक्टरी, बेरिस्टरी या क्लर्की करने लगती हैं उन तरह तरहके सैकड़ों रोग आकर घेर लेते हैं। अत आँखें बन्द करके किसी देशकी प्रथाका अनुकरण करनेसे पहले उस प्रथाके गुण-दोष आदिकी भी भली भाँति मीमांसा कर लेनी चाहिए ऐसा न हो कि केवल तड़क भड़कके भुलावेमें ही पड़कर हम अपने यहाँके उत्तम गुणोंको छोड़ बैठें और पीछे हाथ मलनेकी बारी आवे।

आजकलकी सभ्यता शरीरसे काम लेनेको पापसा समझती है, उसे सब कामोंके लिए कलें चाहिए। तो भी अधिकांश नगर निवासियोंको अपने पैरोंसे तो बहुत कुछ काम लेना पड़ता है पर हाथोंसे काम लेनेकी उन्हें बहुत ही थोड़ी आवश्यकता पड़ती है। पर उचित और आवश्यक यह है कि जिस अंगसे हमारे व्यापारमें काम कम लिया जाता हो उस अंगसे काम लेनेके लिए हम या तो व्यायाम करें और या अपने लिए कोई नया व्यापार

निकालें। केवल मनोविनोद और स्वास्थ्यके लिए यदि हम बढ़ई या लोहारका काम सीखें और फुरसतके समय घरपर ही दो चार पीढ़े पटरियाँ बना सकें तो इसमें लज्जा या सकोचकी कोई बात नहीं है। जगलमें जाकर लकड़ियाँ काटनेमें कोई शरम नहीं है; यदि शरम हो भी तो वह अधिकसे अधिक उन्हें अपने सिरपर लादकर अपने घर तक लानेमें ही हो सकती है। गोलियाँ निगलने और शीशियाँ पीनेकी अपेक्षा डड पेलना, बैठकें करना और मुगदर फेरना कहीं श्रेयस्कर है। अस्पताल बनवानेमें बहुतसे रुपये लगानेकी अपेक्षा अखाड़े और व्यायामशालायें बनानेमें थोड़े रुपये लगाना कहीं उत्तम है। रोग उत्पन्न करके उन्हें चगा करनेका प्रयत्न व्यर्थ है। प्रयत्न ऐसा होना चाहिए, जिसमें रोगका मूल ही नष्ट हो जाय; उसे उत्पन्न होने, बढ़ने और फैलनेका अवसर ही न मिले। जड़ छोड़कर पेड़ काटना कभी लाभदायक नहीं हो सकता; क्योंकि जड़ फिर पनपेगी, पेड़ फिर उगेगा। यही नहीं बल्कि उसके बीज चारों ओर गिरकर और भी नये पेड़ उत्पन्न करेंगे। अपने शरीररूपी भूमिको रोगरूपी वृक्षके जमने योग्य ही न होने दो, और पहलेसे जो रोग उत्पन्न हो उनका समूल नाश करो; इसीमें तुम्हारा, तुम्हारी जातिका, तुम्हारे देशका और समस्त ससार तथा मानव जातिका कल्याण है। एवमस्तु।

समाप्त
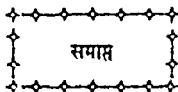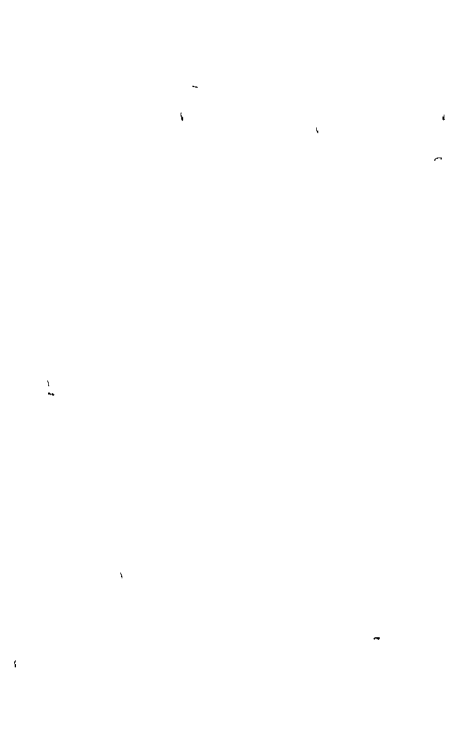
परिशिष्ट

उपवासोकी परीक्षाओंके परिणाम

अमेरिकाके बोस्टन नगरमें वहाँके सुप्रसिद्ध धन-कुबेर और दानवीर कार्नेगीकी स्थापित की हुई एक संस्था है जिसका 'नाम कार्नेगी इन्स्टीट्यूट न्युट्रिशन लेबोरेटरीज'* है। इस संस्थाकी ओरसे प्रोफेसर डा० फ्रांसिस गानो बेनेडिक्टने दो महत्त्वपूर्ण ग्रंथ (A Study of Prolonged Fasting और The Influence of Inanition on Metabolism) प्रकाशित किये हैं। इन ग्रंथोंमें जो उपवाससम्बन्धी परीक्षाओंके परिणाम दिये गये हैं, उनका सारांश आगे दिया जाता है—

उपवासके पहले हफ्तेमें तापमान (टेम्परेचर) नार्मल या नार्मलके आसपास रहा—कभी उसका झुकाव घटतीकी ओर रहता था और कभी बढ़तीकी ओर; परन्तु पहले हफ्तेके बाद तापमानकी निश्चित रूपसे घटती हुई जो कि करीब करीब उपवासके अंततक कायम रही। नाड़ि-स्पन्दन अर्थात् नाड़ीकी चाल अधिकतर नार्मलके आसपास रही—कुछ केसोंमें कुछ अधिक और कुछमें कुछ कम। रेस्पिरेशन या श्वासोच्छ्वासकी गति एकसी स्थिर रही। परिणाम यह निकाला गया कि नाड़ीकी अपेक्षा श्वासोच्छ्वासकी गति उपवास कालमें अधिक स्थिर और बिना फेरफारकी रहती है।

सीनेटर मूरने सेट्टी और ब्रिथॉप नामक दो रोगियोंके खूनकी परीक्षा करके बतलाया कि दोनोंके खूनमें लाल कोषोंकी वृद्धि हुई है। बादकी परीक्षाओंके परिणाम डा० टॉसने इस प्रकार

---

* जिस रसायनशालामें पोषणसम्बन्धी अन्वेषण किये जाते हैं।

निकाले।—(१) लाल कोष आरंभमें कुछ समय तक कम होते हैं, परन्तु बादमें बढने लगते है। (२) खूनके सुफेद कोषोंका सख्यामें कमी होती जाती है । (३) एककेन्द्रीय कोष अर्थात् मोनोन्युक्लियर सेल्समें घटती होती है। (४) इओसिनोफाइल्स और अनेक-केन्द्रीय कणोंकी सख्यामें वृद्धि होती है। (५) खूनमें क्षारकी कमी होती है।

इसके बाद शक्तिकी परीक्षा की गई और इसके लिए डायनोमोमीटर या शक्ति मापक यंत्रकी सहायता ली गई। ये परीक्षायें डा० बेनेडिक्टने डा० लेवान्जिनपर और लुसियानीने सुक्कीपर कीं। उपवासके २१ वें दिन उक्त यंत्रके द्वारा परीक्षा करनेपर सुक्कीकी पकड़ या मुट्ठी (grip) उपवासके प्रथम दिनकी पकड़से कहीं अधिक मजबूत मालूम हुई, परन्तु २० वें दिनसे ३० वें दिनतक वह कम होती गई। इसपर टीका करते हुए डा० लुसियानी लिखते हैं कि आरंभमें सुक्कीकी ताकत बढ़नेका कारण उसका इस बातका तीव्र विश्वास था कि उपवाससे मेरी ताकत दिनपर दिन बढ़ती जा रही है। कमजोर इच्छा शक्तिवाले अविश्वासी लोगोंमें इसका परिणाम उल्टा भी हो सकता है, परतु यह निश्चित है कि उपवासके कारण उतनी शक्ति नहीं घटती जितनी कि सभव है या लोग समझते हैं। थकावटकी जाँचसे मालूम हुआ कि २९ वें दिन भी सुक्कीकी थकावटका माप उतना ही था जितना कि साधारण लोगोंका होता है।

'मेरलाटी' ने ५० उपवास किये। उपवासके दिनोंमें उसे बहुत बेचैनी और तकलीफ रही तथा कुछ ठडसी मालूम होती रही। 'जेक्स' ने ३१ उपवास किये। उसे भी बेचैनी रही और उसपर १६ वें दिन गठियाका हलकासा हमला हुआ। परतु अधिकांश रोगियोंमें जिन्हें उपवास कराये गये किसी प्रकारकी स्पष्ट बेचैनी नहीं देखी गई, प्राय सभी खुश नजर आते थे।

स्टॉकहोमकी सरकारी रसायन शालामें भी एक मनुष्यपर उपवासके प्रयोग किये गये। पहले छह दिनोंमें ही उसकी सारी तकलीफें रफा हो गई और छठे दिन उसे फुर्ती और ताकत मालूम होने लगी, परन्तु उसके ज्ञानतन्तुओंकी कुछ ऐसी अवस्था हो गई कि यदि वह बिस्तरपरसे एकाएक उठता था तो उसकी आँखोंके आगे काले धब्बे नजर आते थे। परन्तु इसका कारण कमजोरी नहीं था।

डाक्टर बेनेडिक्ट साहब इस परसे यह परिणाम निकालते हैं कि स्वयं उपवासके कारण—खासकर आरम्भमें—किसी प्रकारकी कमजोरी नहीं होती और जो थोड़ी बहुत कमजोरी होती भी है, उसके विषयमें यह जोर देकर नहीं कहा जा सकता कि वह उपवासके ही कारण हुई है।

डा० बेनेडिक्टके कथनानुसार उपवासका सर्व प्रथम असर दस्तके परिमाण और नियमिततापर होता है। आँतोंमें बहुत देर पड़े रहनेके कारण पाखाना बहुत ही कठिन, सूखा और गोलियां जैसा हो जाता है, जिससे प्रायः बेचैनी होती है। उसे निकालनेमें बड़ी कठिनाई होती है। कभी कभी तो बहुत तकलीफ होती है, और कुछ खून भी निकल आता है। उपवासके दिनोंमें मल निकालनेके लिए एनिमाका उपयोग बहुत साधारण है। सुकीके ३० दिनोंके उपवासके अवसरपर इसका उपयोग किया गया था। उपवासके प्रथम दिन तो पाखाना नित्यके समान ही नियमित हुआ; परन्तु आगे अधिक ध्यान देने योग्य बात यह हुई कि पाखाना अनेक दिनोंतक रुका रहा और एनिमाके द्वारा उसे निकालनेका कोई भी दृश्य उद्योग नहीं किया गया।

शरीरकी उष्णतापर भी उपवासका विचित्र प्रभाव पड़ता है। डा० रेबलग्लिटी (A Rnbalgliti) लिखते हैं कि एक मनुष्यको—जिसे सात वर्षसे कब्ज रोग था, और इस कारण जो बहुत दुर्बल हो गया था और जिसके शरीरकी गर्मी ९५ रह गई थी—उसे ३५ उपवास करनेकी सलाह दी। उपवासकालमें उसकी गर्मी आर

भी कम रहने लगी, परन्तु उपवासके अतम अच्छे होनेपर वह ९८५ डिगरी हो गई।

ऊपरके दृष्टान्तसे यह सिद्धान्त गलत ठहरता है कि शारीरिक गर्मीका मुख्य स्रोत भोजन है और यह सिद्ध होता है कि शरीर अपनी गर्मीके लिए भोजनकी रासायनिक दहन क्रियापर सीधे तौरपर अवलम्बित नहीं है।

जीभकी अवस्था रोगीके स्वास्थ्यका दर्पण मानी जाती है। यदि जीभ साफ होती है और सब बातें बराबर होती हैं तो कहा जाता है कि स्वास्थ्य ठीक है, परन्तु यदि उसपर मैलकी तह जमी हो, तो रोगी कम या अधिक अस्वस्थ समझा जाता है। परन्तु उपवासके कई केसोंमें यह बात गलत साबित हुई है। उपवासका अध्ययन इस बातको सिद्ध करता है कि वह मनुष्य जिसकी कि जीभपर मैलकी तह जमी हो उस मनुष्यसे कहीं अच्छी अवस्थामें हो सकता है जिसकी कि जीभ पूर्ण रूपसे साफ है।

पहले चाहे जीभ साफ रहती हो, परन्तु उपवास आरम्भ करते ही उसपर पपड़ी जमने लगती है और करीब करीब अन्ततक अधिकाधिक जमती जाती है। इस परसे यह नहीं कहा जा सकता कि उपवासके पहले रोगी विशेष स्वस्थ था या अब उपवास करनेसे उसकी दशा विशेष खराब हो गई है। जीभपर पपड़ी जमनेका कारण यह है कि प्रकृति मलको निकालनेके सभी सम्भव रास्तोंका उपयोग करती है। इसमें शरीरके समस्त बारीक झिल्लीदार अंगों—मुँह, नाक कान और आँखों—में मलकी तहें जमती हैं और फिर जीभ तो बृहत् अन्ननलिका (Alimentary canal) का एक अंश है, इसलिए प्रकृतिके द्वारा यह खास तौरसे इस उपयोगमें लाई जाती है। यहाँ यह कह देना आवश्यक है कि जब उपवासकी आवश्यकता नहीं रहती और प्राकृतिक भूख लगने लगती है, तब जीभ अपने आप साफ हो जाती है। परन्तु इसमें व्यतिक्रम भी होता है। उपवासको चालू रखनेके लिए केवल इसी एक बातपर अवलम्बित न रहना चाहिए।

कालमें ही कई कट्टर रोगी इस हठके कारण मर गये कि जब तक जीभ बिलकुल साफ न हो जायगी, तबतक कुछ न खायेंगे।

उपवासके कारण श्वासोच्छवासकी गन्धमें भी फर्क पड़ता है। उपवास आरम्भ करनेके कुछ दिन बाद मुँहसे एक खास और विचित्र तरहकी गन्ध निकला करती है और उसके साथ एक और तरहकी भी गन्ध आने लगती है। यह दोनों प्रकारकी गन्ध मिश्रित होनेपर क्लोरोफार्मकी गन्धके समान कुछ मीठीसी मालूम होती है। साधारण अवस्थाओंमें उपवासका अन्त समीप आनेपर यह गन्ध बदल जाती है और फिर पहलेके समान गन्ध आने लगती है।

अनेक लोगोंपर अनुभव और प्रयोग करनेके पश्चात् यह निष्कर्ष निकला है कि उपवासके समय वजन घटनेका औसत परिमाण एक पौंड या आध सेर प्रति दिन है। आरम्भमें इससे कुछ अधिक घटता है और बादमें कुछ कम। चर्बीवाले स्थूल आदमियोंका वजन अधिक शीघ्रतासे घटता है और दुबलोंका कम। ऐसे भी अनेक लोग देखे गये हैं जिनका वजन उपवाससे बिलकुल नहीं घटा और सबसे अधिक आश्चर्यकी बात यह हुई कि कुछ लोगोंका वजन उपवास कालमें बढ़ने लगा। इस तरहकी अनेक आश्चर्यजनक घटनाओंका विवरण डा० आर० टी० ट्रालने अपने उपवाससम्बन्धी महान ग्रन्थमें दिया है। उनका कहना है कि वजन बढ़ना ऐसी अवस्थामें होता है जब कि मनुष्यके शरीरका तन्तुजाल बहुत घना और ठोस होता है और उपवासके समय उसके बीचकी जगह स्पञ्जके छिद्रोंकी तरह खुल जाती है। उपवास कालमें जो पानी पीया जाता है वह उक्त जगहमें उसी तरह भरकर रह जाता है, जिस तरह स्पञ्जमें पानी, और वह शरीरके वजनको बढ़ा देता है। डाक्टर ट्राल इस प्रयोगसे इतने अधिक प्रभावित हुए हैं कि इस परसे उन्होंने मनुष्यकी 'प्राकृतिक मृत्यु' की भी व्याख्या कर डाली है। उनका कहना है कि प्राकृतिक मृत्यु शरीरकी वह अवस्था है जब कि शरीरमें ठोस द्रव्योंका अनुपात तरल द्रव्योंकी अपेक्षा इतना

अधिक बढ़ जाता है कि जीवन क्रिया ही असम्भव हो जाती है। इसपरसे यह अनुमान किया जा सकता है कि शरीरमें तरलता और लचीलापन जीवनके लिए कितना महत्त्वपूर्ण है, और उपवास इस प्रकारकी अवस्था लानेका सर्वोत्तम उपचार है।

ठोस भोजन बन्द कर देनेपर पेटके अन्दरकी दीवालें एक दूसरेके समीप झुकने लगती हैं और अन्तमें एक दूसरीसे सट जाती हैं। यह अवस्था तब तक रहती है जब तक कि भोजन फिर शुरू नहीं कर दिया जाता। उपवासके बाद मलके बहुत दिनोंतक निकलते रहनेका यही कारण है। जैसे जैसे मल पकता जाता है, वैसे वैसे निकलता जाता है।

एक दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि उपवास-कालमें पाचक रसका स्राव बिल्कुल बन्द हो जाता है। इस प्रयोगसे साधारण अवस्थामें यह परिणाम निकाला जा सकता है और फिर इसे एक नियमके रूपमें रखा जा सकता है कि शरीरको जितने भोजनकी आवश्यकता है उतना भोजन पचानेके लिए जितने पाचक रसकी आवश्यकता होती है उतने ही परिमाणमें वह पैदा होता है और यदि शरीरको भोजनकी आवश्यकता बिल्कुल नहीं होती, तो पाचक रस भी बिल्कुल पैदा नहीं होता, चाहे फिर खा चाहे जितना क्यों न लिया जाय। उपवासके दिनोंमें शरीरको भोजनकी आवश्यकता नहीं होती, इस लिए पाचक रस भी नहीं चूता और इस लिए इस बातसे डरनेकी आवश्यकता नहीं रह जाती कि पाचक रसकी खटाई पेटकी दीवालोंको गलाकर पचा डालेगी। जब शरीरको भोजनकी आवश्यकता होती है—उसके सब रोग शान्त हो जाते हैं—तब पाचक रस अपने आप चूने लगता है और उस समय न खाना एक प्रकारसे आत्म-हत्या करना है।

उपवासका सबसे पहला असर पेटपर होता है। उसके बाद दूसरा नम्बर फेफड़ोंका है। उपवाससे श्वासोच्छ्वासकी सब प्रकारकी रुकावटें दूर हो जाती हैं, आवाज साफ और गहरी हो

जाती है। फेफड़ोंका मुख्य काम खूनको साफ करना है, इससे उपवासका प्रभाव खूनपर भी शीघ्र पड़ता है जिससे सारे देहकी हालत सुधरने लगती है।

तीसरा असर यकृत और मूत्राशयपर होता है। आरम्भमें ३ ४ दिन तक तो इन अंगोंपर पुराने बचे हुए कामका बोझ रहता है, इस लिए कोई असर नहीं मालूम होता, परन्तु इसके बाद शीघ्र ही इनकी हालत सुधरने लगती है।

चौथा असर हृदयपर पड़ता है। हृदयपरसे अनावश्यक बोझ हटने लगता है जो कि तरह तरहके विषों और मादक द्रव्योंके इकट्ठे होनेके कारण पैदा हो जाता है। इसी कारण उपवाससे हृदयके रोगोंके बहुतसे रोगी अच्छे हो जाते हैं।

पाँचवाँ असर आँतोंपर होता है। पेडू छोटा हो जाता है और धीरे धीरे आँतें खाली होने लगती हैं जिसमें कि एनिमाके प्रयोगसे बहुत अधिक सहायता होती है। आँतोंकी दीवालें साफ-स्वच्छ हो जाती हैं और एक तरहका काया पलट होना आरम्भ हो जाता है।

छठा असर यह होता है कि शरीरकी ग्रन्थियोंके स्रावोंमें फर्क होने लगता है और अनेक बार एक तरहके स्रावकी बजाय दूसरे तरहके स्राव होने लग जाते हैं। लाला ग्रन्थियोंका स्वाद ही बदल जाता है, परन्तु यह सब चिह्न उपवास समाप्त होनेपर अन्य चिह्नोंके समान समयपर नष्ट हो जाते हैं।

सातवाँ फर्क यह होता है कि स्पर्श, घ्राण, श्रवण और दर्शनकी इन्द्रियाँ अतिशय तीव्र हो जाती हैं और इस लिए जो बहुतसे रोगी वर्षोंसे इन इन्द्रियोंका पूरा उपयोग नहीं कर सकते थे वे करने लगे और बहुतसे अब बहरे रोगी अच्छे हो गये। इसका कारण यह था कि आवाज-नालिका (Eustachian tube) में खूनका दबाव कम हो गया, जिससे कि कानकी झिल्ली (drum) का दोनों ओरका दबाव बराबर हो गया और अनावश्यक वायु जो उस नलिकामें भरकर रह गई थी निकल गई।

उपवासका आठवाँ असर खूनपर पड़ता है। इससे खूनमें पतलापन बढ़ने लगता है, जिससे नहीं ग्रहण किया हुआ पोषक पदार्थ तथा मल एक जगहसे दूसरी जगह घुलकर शीघ्र पहुँचाया तथा शरीरके बाहर फेंका जा सकता है। इसके सिवाय लाल अणुओंकी वृद्धि होती है।

उपवासका नौवाँ प्रभाव मस्तिष्क और नाडियोंपर होता है। अधिक विचार और चिन्ताके कारण मस्तिष्कके कोषोंमें जो ज़हर पैदा हो जाता है वह उपवाससे बहुत शीघ्र दूर हो जाता है और विचार करनेकी ताकत तथा स्पष्टता बढ़ने लगती है। बड़े बड़े दार्शनिकों और विद्वानोंमें अधिक विचार या चिन्ता करनेसे जो एक प्रकारकी विक्षिप्तता नजर आती है, वह भी दूर हो जाती है। प्राचीन समयसे बड़े बड़े आध्यात्मिक पुरुष शायद इसी लिए इसका उपयोग करते रहे हैं।

किन किन रोगोंमें उपवाससे लाभ होता है और किनमे नहीं

रोग दो प्रकारके होते हैं। एक आङ्गिक दूसरे प्रक्रियात्मक। पहले प्रकारके आङ्गिक (Organic) रोग वे हैं, जो किसी अगके टूटने फूटने, सड़ने या बनावटसम्बन्धी किसी बिगाड़के कारण होते हैं। दूसरे प्रक्रियात्मक (Functional) रोग वे हैं जो किसी अगके ठीक ठीक काम न करनेसे होते हैं, स्वय उस अगमें कोई दोष नहीं होता।

यह बात निश्चित है कि उपवास किसी प्रकारके गभीर आङ्गिक दोषको दूर नहीं कर सकता। उपवाससे टूटा पॉव नहीं जोड़ा जा सकता। इसी प्रकार सूजन, सड़न या फोड़ोंकी कमीके कारण यकृत (मूत्राशय) या फेफड़ोंका जो हिस्सा नष्ट हो गया हो, वह उपवासके द्वारा फिरसे नहीं बनाया जा सकता। हृदयरूपी पंप या पिचकारीमें खूनके आने-जानेके जो

मार्ग हैं, उनमें जो एक-मार्गी फाटक या वाल्व (Valve) लगे हैं जिनके द्वारा खूनकी एक ओरकी गति रोकी जा सकती है ये यदि छोटे हो जाते हैं जिससे कि वे रास्तेको पूरी तरहसे ढक नहीं सकते, तो उनकी यह कमी भी उपवासके द्वारा दूर नहीं की जा सकती। फिर भी, इस प्रकारके रोगोंमें जितना आराम उपवास पहुँचा सकते हैं उतना अन्य कोई उपचार नहीं पहुँचा सकता और मृत्यु जितने अधिक दिन उपवाससे स्थगित की जा सकती है उतने दिन और किसी उपायसे नहीं। इसका कारण यह है कि उपवास खूनको साफ करता है, विषोंको दूर करता है, नष्ट अगों और कोषोंकी राखको शरीरके बाहर फेंक देता है और कभी कभी नष्ट हुए तन्तुजाल और छोटे मोटे अगों को भी फिरसे बनाकर पुरानोंकी जगहमें स्थापित कर देता है। आगिक दोषोंसे उत्पन्न बीमारियाँ भी खासकर आरभमें और जवानीमें उपवासके द्वारा संपूर्ण रूपसे आराम हो सकती हैं।

दूसरे प्रकारके प्रक्रियात्मक या अगोंके आलस्यसे उत्पन्न होने वाले रोग तो शर्तसे उपवासके द्वारा अच्छे हो जाते हैं। इनपर तो उपवास जादूका सा असर करता है।

यह कोई नियम नहीं है कि शरीरका दुबला होना या सूखना केवल भूखसे या अन्न न मिलनेसे होता हो। अनेक बार तो खुराककी कमी ही शरीरको खूब पुष्ट कर देती है। परंतु क्षय रोगमें शरीर अत्यत शीघ्रतासे सूखता है तथा इस प्रकार उत्पन्न हुई कमीकी पूर्ति बड़ी मुश्किलसे होती है, इसलिए क्षयके रोगीको प्रारभमें एक छोटे उपवाससे अधिक नहीं कराना चाहिए और सो भी शरीरमेंसे विष सचयको दूर करनेके लिए। यद्यपि कुछ बहुत सावधानीसे निरीक्षित क्षयके केसोंमें लम्बे उपवास भी कराये गये हैं और उनसे क्षय बिलकुल निर्मूल किया जा चुका है, परन्तु फिर भी क्षयके प्रत्येक रोगीको उपवास करनेकी राय नहीं दी जा सकती।

केन्सर (दुष्ट अर्बुद) के पिछले स्टेजोंमें उपवाससे सिवा इसके और कोई फायदा होनेकी आशा नहीं की जा सकती कि यह तकलीफको शीघ्र रोक देता है, परन्तु आरम्भकी अवस्थाओंमें यह (केन्सर) बिल्कुल अच्छा हो जाता है। सिवाय इसके केन्सरकी पिछली अवस्थाओंमें भी उपवासके सिवाय और कोई ऐसा उपाय ज्ञात नहीं है जो रोगकी बाढ़को रोकनेकी तथा अपेक्षाकृत अधिक कष्टरहित और लम्बी जिन्दगी देनेकी आशा दिला सके।

जन्मजात अङ्गसबन्धी तथा शरीरकी बाढसबधी अन्य बीमारियोंमें भी उपवाससे कोई लाभ नहीं हो सकता; परन्तु बचपनमें उपवासके द्वारा उक्त कमियोंकी पूर्ति किसी अशमें की जा सकती है। रक्तको रोकनेवाले हृदयके ढक्कनोंके चूँनेको भी इससे फायदा नहीं हो सकता और न धमनिभेद (Aneurism) में ही फायदा हो सकता है। दुष्ट पाण्डुरोग (Pernicious Anemia) में भी यह उपवासकी राय नहीं दी जा सकती।

मस्तिष्कके नष्ट होनेसे जो पागलपन होता है, उसमें भी उपवास फायदा नहीं पहुँचाता; परन्तु यदि किसी चोटके कारण मस्तिष्कके गूदेमें तह (Concussion) पड़ गई हो, तो उपवासकी आवश्यकता होती है और उसे तबतक चालू रखना चाहिए जब तक भयकर लक्षण शात न हो जावें, मन ठिकाने न आ जाय और होश दुरुस्त न हों। विषोंकी मादकताके कारण जो मनकी बीमारी हो जाती है, उसमें भी उपवास फायदा पहुँचाता है। कपवात या चोरिया (Chorin) नामक बीमारी पोषक पदार्थोंकी कमीसे होती है। उसमें भोजनकी नहीं किन्तु पोषक पदार्थोंकी आवश्यकता होती है। हिस्टीरिया या अपतन्त्र वायु और साइको न्यूरोसिस (Psycho neurosis) या मानसिक वायु-रोग नामक बीमारीमें भी उपवाससे फायदा होता है, परन्तु छोटे उपवासोंसे तथा ठीक ठीक और पोषक भोजनोंसे इनका इलाज करना अधिक श्रेष्ठ है।। यही बात मेलिनकोलिज्म (Melancholism) या उदासीनताकी बीमारीके लिए भी ठीक है।

शरीरमें यदि विषोंकी बहुत ही अधिकता न हो, तो गर्भिणी स्त्रीका उपवास करना ठीक नहीं है और खास तौरसे बिना विशेष कारणके।

मसूरिका (Measles), लाल बुखार (Scarlet Fever), डिफ-थीरिया (Diphtheria), गलेकी सूजन (Sore throat), पारिगर्भिक या कुकुर खासी (Whooping cough) और यहाँ तक कि बच्चोंके अर्धांगवात रोगमें भी आरम्भमें उपवासकी आवश्यकता होती है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि यदि बीमारीके आरम्भमें ही आँतोंके धोनेके साथ उपवास कराये जावें, तथा साथमें शामक स्नान, स्वच्छ वायु और जलका उपयोग किया जावे तो भयंकरसे भयंकर बीमारी रुक जायगी। दवाओंके बेचनेवाले और सीरमोंकी पिचकारी देनेवाले डाक्टरोंके लिए इससे अधिक भयंकर और कौनसी बात हो सकती है कि बिना रोगकी जाँच कराये उपवास आरम्भ कर दिये जाएँ? परन्तु यह मानना पड़ेगा कि रोगको अच्छा करनेकी अपेक्षा रोगीको अच्छा करना अधिक आवश्यक है। क्योंकि सिर-दर्द, दस्त, फ्लू आदिपर उपवासका शीघ्र परिणाम होता है। इन रोगोंमें उपवासोंके साथ अन्य प्राकृतिक उपाय भी काममें लाने चाहिए।

लोगोंका विश्वास है कि दुर्बल दिखनेवाले लोगोंको उपवास-से फायदा नहीं होता, मोटे चर्बीवालोंको ही होता है, परन्तु यह गलत है। ९८ से १०० पौण्ड वजनवाले पचासों रोगियोंको उपवास कराये गये हैं और उन्हें इससे बहुत लाभ पहुँचा है।

स्कर्वी (Scurvy) और बालकोंके सूखी नामक रोगोंमें शरीरमें कुछ तत्त्वोंकी कमी हो जाती है जिसकी पूर्ति आवश्यक है। उपदंश या गर्मीके रोगमें आरम्भमें तो उपवास फायदा पहुँचाता है, परन्तु तीसरी अवस्थामें जब कि उसका आक्रमण तीव्रतर होता है उपवास कराना अच्छा नहीं है। रीढ़के टेढ़ेपनका एक केस हालमें ही उपवाससे अच्छा हो गया है; परन्तु इसपरसे

विकृताग लोगोंको यह आशा दिलाना ठीक नहीं है कि उपवाससे वे भी अवश्य अच्छे हो जायँगे।

कुछ लोगोंका कहना है कि उपवाससे रक्तमें अम्ल या खटाईकी वृद्धि होती है, परन्तु यह ठीक नहीं है। डा० हेगका कहना तो यह है कि उपवास शरीरपर मानों क्षारकी खुराकोंका असर करता है। उपवाससे खून क्षारीय होता है जो स्वास्थ्यका चिह्न है, अम्लीय नहीं होता।

उपवास करते हुए मृत्यु भी हो जाती है, परन्तु जाँच करनेसे मालूम हुआ है कि मृत्यु स्वय उपवासके कारण कभी नहीं हुई, बल्कि उपवाससे तो जीवन कुछ बढ़ ही गया है। उपवाससे हमें असम्भव कार्य कर दिखानेकी आशा नहीं करनी चाहिए। जो रोग अच्छा हो सकता है वह उपवाससे अवश्य अच्छा हो जायगा, यह निश्चय है, इसमें सन्देह नहीं किया जा सकता। परन्तु जो रोग अच्छा हो ही नहीं सकता, उसमें उपवासका कोई दोष नहीं।

उपवास-कालके उपद्रव

ज्वर—उपवासके आरम्भमें कभी कभी बुखार आ जाता है। यह बुखार और कुछ नहीं है केवल इस बातका चिह्न है कि शरीर विषोंको बाहर निकालनेकी क्रिया अत्यंत तीव्रतासे कर रहा है। प्रत्येक क्रियासे गर्मी उत्पन्न होती है। यही गर्मी जब शरीरमें अधिक बढ़ जाती है तब बुखार कहलाने लगती है। अनेक बार गर्मी मालूम होते हुए भी तापमानमें फर्क नहीं होता। उपवासके शुरू करते ही यदि हमें बुखार आ जाता है, तो यह इस बातका चिह्न है कि हम भोजन ठीक तौरसे नहीं करते। बुखारका आ जाना उपवासका कोई आवश्यक परिणाम नहीं है, वह आकस्मिक या सयोगवश भी हो सकता है। यदि बुखार आ जाय,

तो पानी खूब पीना चाहिए और शीतल स्पंज-स्नान करना चाहिए। ठंडे पानीमें स्पंज या कपड़ेको भिगोकर शरीरपर फेरने और तुरत टुवालसे रगड़-पोंछकर कम्बल उढा देनेको स्पंज-स्नान कहते है। इसे करते समय हवाके झोकेसे बचना चाहिए।

अनेक बार कमजोरी, बेहोशी, धैर्यहीनता और निराशा आदिके आक्रमण होते हैं। कमर पैर और जोड़ोंमें दर्द होता है, बैठे रहनेमें अशक्यता आदिका अनुभव होता है। परतु जैसे जैसे मल निकलता जाता है, वैसे वैसे ये लक्षण कम होते जाते हैं।

अनेक बार वर्षो पहलेके पुराने रोग उभड आते है जो दवाओं-पिचकारियों आदिसे दबा दिये गये थे। इससे मालूम होता है कि उपवाससे बीमारियोंकी जड़ें तक खोद डाली जाती हैं।

खुजली वगैरह चमड़ेके दर्द भी पैदा हो जाते है। इनके होनेपर धूपमें बैठनेके सिवाय और कुछ करनेकी आवश्यकता नहीं है।

इनके सिवाय और भी कुछ छोटी मोटी तकलीफें हैं जिनपर बहुतसे रोगी तो ध्यान ही नही देते, और बहुतोंको ये होती ही नहीं हैं, जैसे—

चक्कर आना—सुबह बिस्तरसे उठनेपर चक्कर आता है। उपवासमें प्रायः सब ही अग विश्रान्ति लेना आरम्भ कर देते हैं। इस कारण ज्ञानतन्तुओं या नाड़ियोंकी असावधानतासे यह लक्षण प्रकट होता है। उपवासमें नाड़ियाँ काम करनेके लिए हमेशा तैयार नहीं रहतीं। मस्तकमें खूनकी कमी या अधिकतासे भी यह होता है। इसकी विशेष पर्वाह करनेकी आवश्यकता नहीं है। उठते बैठते समय किसी वस्तुको पकड लेना चाहिए।

बेहोशी होना—चक्कर आनेके समान बेहोशी भी मस्तिष्कमें खूनकी कमीसे होती है। बेहोशीकी हालतमें रोगीके मस्तकको नीचे करके पैरोंको ऊपर उठाना चाहिए। [illegible] या [illegible] कप-ड़ेको गीला करके मस्तकपर थोड़ा ठंडा पानी डालना चाहिए, जूतोंको खोलकर हाथ और पैर रगड़ना चाहिए, मुँहपर पखा

झलना चाहिए तथा नौसादर और चूनेके मिश्रण या सुगंधके लवण (Smelling Salts) सुँघाने चाहिए। पैर ऊपर और सिर नीचे (शीर्षासनके समान) करनेसे भी यदि रोगीकी बेहोशी शीघ्र दूर न हो तो समझना चाहिए कि रोगी और किसी कारणसे बेहोश हुआ है।

पेटका दर्द—कभी कभी आँतोंमें दर्द होता है। प्रत्येक रोगमें एक ऐसा समय आता है जब कि वह अधिकतम तीव्रतासे प्रकट होता है, परन्तु इसके बाद ही उसका उतार प्रारम्भ हो जाता है। इस कालको चोटीका समय या क्राइसिस कहते हैं। अनेक बार पेटका दर्द इसी अंदरूनी क्राइसिसके कारण होता है। पेटके अतिचेतन ज्ञानतंतुओंकी एकाएक (Spasmodic) सिकुड़न या ऐंठनके कारण, जमे हुए मलके अपनी जगहसे एकाएक विचलित होनेके कारण बहुत दिनसे संगृहीत मलमेंसे बुरी वायु निकलनेके कारण तथा कभी कभी बेसमझीसे किये गये ठंडे पानीके प्रयोगोंके कारण भी यह दर्द थोड़ी देरके लिए होता है। यदि यह बहुत देर ठहरे, तो गुनगुने पानीका एनीमा देना चाहिए और पेडूपर पानीमें भींगे कपड़ेकी गर्म पुल्टिस बाँधना चाहिए। गुनगुना पानी पीकर पेटपर हल्की मालिश करनेसे भी लाभ होता है।

सिर-दर्द—मलका जो अंश शरीरके बाहर न निकलकर आँतोंके द्वारा सोख लिया जाता है और रक्तमें मिलकर मस्तिष्क तक पहुँच जाता है, वह जब उपवास कालमें बहुत तेजीके साथ नीचेकी ओर हटाया जाता है, तब (इस हटाये जानेकी क्रियासे) सिर दर्द होने लगता है। यह अक्सर अधिक खानेवालों और चा काफीकी नियमित रूपसे उपासना करनेवालोंको होता है। उपवासके लम्बे होनेपर कुछ ही दिनके बाद यह अच्छा हो जाता है। यदि दर्द अधिक बढ़ जाय तो पानी अधिक पीना चाहिए, गुनगुने पानीका एनिमा लेना चाहिए, कपड़ेको ठंडे या गर्म पानीमें भिगोकर सिरपर रखना चाहिए और पैरोंको कुछ समय तक गर्म पानीमें डुबाये रखना चाहिए।

दस्त लगना—उपवास-कालमें दस्त शायद ही किसीको होते हैं। यदि हों, तो उन्हें रोकनेका प्रयत्न न करके गर्म पानीका एनीमा देकर और सहायता करनी चाहिए। यह बहुत अच्छा लक्षण है। रोग निवारणमें इससे बहुत सहायता मिलती है।

मुँहका स्वाद बिगडना—पानीमें नमक या नीबू मिलाकर कुरले करना चाहिए और बार बार जीभ साफ करना चाहिए। इन उपचारोंसे लाभ होता है, परन्तु इनकी कोई ऐसी विशेष आवश्यकता नहीं है।

नींद नहीं आना—उपवास-कालमें अधिक नींदकी आवश्यकता ही नहीं होती, थोडी नींदसे काम चल जाता है; परन्तु यदि नींद बिल्कुल ही न आवे, या बहुत ही कम आवे तो सारे शरीरपर खुली हवा लगने देवे। श्वासोच्छ्वासकी कसरत करने और गुनगुने पानीके टबमें बैठकर सर्वांग स्नानसे भी लाभ होता है।

पेशाबका रुकना—यह तकलीफ शायद ही कभी होती है। उपवासके आरम्भसे यदि रोगी काफी पानी पीता रहे, तो इसके होनेकी सम्भावना ही नहीं रहती। यदि अधिक पानी पीने पर भी पेशाब १२ घंटेसे अधिक रुकी रहे तो गरम सिट्ज़ बाथ (मेहन-स्नान) लेना चाहिए और पेडूपर गरम पानीका कपडा बाँधकर (हाट वाटर पैक) उसके नीचेके भागको दबाना चाहिए। यदि इतनेपर भी तकलीफ रफा न हो तो फिर किसी होशियार डाक्टरके द्वारा कैथीटर (निरूह-यन्त्र) का उपयोग करना चाहिए।

हृदयमें दर्द और उसका कम्पन—पेटमें उत्पन्न होनेवाली गैसोंके दबावसे और दूसरे पाचनसम्बन्धी बिगाड़ोंसे यह होता है। उपवासके समय यह शायद ही कभी होता है, परन्तु यदि कभी हो, तो गुनगुने पानीके २-३ ग्लास पीने चाहिए और लेट करके अगोंको ढीला कर देना चाहिए। कभी कभी ठंडे पानीके कपडेको भी हृदयपर रखनेकी आवश्यकता होती है।

नाड़ीकी मन्द गति—पुरुषोंकी नाड़ीकी गति एक मिनटमें साधारणत ७२ और स्त्रियोंकी ८० होती है। उपवास-कालमें उन व्यक्तियोंकी ५०, ४५ और ४० तक हो जाती है, जो सुस्त, मजनी और जड़ होते हैं। मैकफेडन साहबने तो एक मनुष्यकी नाड़ीकी गतिको ३६ तक कम होते देखा है और फिर भी उसमें कोई चिंता जनक लक्षण नहीं थे। कहा जाता है कि वीर-केसरी नेपोलियन बोनापार्टकी नाड़ीकी गति हमेशा ४० से कम रहती थी। अपने आप पर और दुनियापर काबू रखनेवाले महापुरुषों और योगियोंकी नाड़ी प्राय मन्द चलती है। यदि नाड़ीकी गति मन्द हो, परन्तु साथमें और कोई दुर्लक्षण प्रकट न हों, तो कोई चिन्ता करनेकी बात नहीं। जब नाड़ी साधारणत मन्द चलती है तब वह अधिक गहरी और शक्तिशालिनी भी होती है, जिससे प्रकट होता है कि हृदय अपनी धड़कनकी सख्याकी कमीको कामकी मात्रासे पूरा कर रहा है। जिस समय नाड़ी मन्द चलती है, उस समय हृदय अधिक विश्राम करता है और इसलिए उपवासके बाद वह पहलेकी अपेक्षा अधिक बलवान् हो जाता है।

नाड़ीकी मन्दताके साथ यदि आगे लिखे हुए लक्षण प्रकट हों, तो अवश्य ही चिन्ता करनी चाहिए—रक्ताभिसरणमें कमी होना (हाथ पैरोंका ठडा होना, होठोंका काला या नीला पड़ जाना), ज्यादा चक्कर आना, अत्यधिक कमज़ोरी मालूम होना आदि। नाड़ीकी गतिके ५० तक गिरने तक विशेष ध्यान देनेकी आवश्य कता नहीं है; परन्तु यदि इससे और भी नीचे जाने लगे, तो हलकी कसरत और गहरी श्वाससे सहायता लेनी चाहिए। गरम पानीके टबमें बैठकर सर्वांग-स्नान करनेसे नाड़ीकी गति बहुत जल्दी बढ़ जाती है। इससे रक्तका अभिसरण इतना तेज हो जाता है कि नाड़ीकी गति ७० से बढ़कर १५० तक हो जाती है। गरम पानीके स्नानके समय सिरपर ठडे पानीमें भिगोया हुआ कपड़ा बाँध लेना चाहिए। मालिश और रगड़नेसे भी नाड़ीकी गति बढ़ाई जा सकती है।

नाडीका तेज चलना—जिन लोगोंका मन कमजोर होता है, जो अत्यधिक भावुक होते हैं और जिनके ज्ञानतन्तु दुर्बल होते हैं, उपवास-कालमें उनकी नाड़ीकी गति तेज हो जाती है। यदि इसके साथमें कोई खास तकलीफ बेचैनी आदि न हो, तो इसपर कोई ध्यान देनेकी आवश्यकता नहीं है। मैकफेडन साहबने ऐसे कई केस देखे हैं जिनमें नाड़ीकी गति १४० थी, फिर भी रोगियोंको किसी तरहकी शिकायत नहीं थी, वे मजेमें थे।

नाड़ीकी गति तेज होनेपर मनुष्यको विश्रान्तिकी आवश्यकता होती है। उसे १२० से अधिक न बढ़ने देना चाहिए और जब नाड़ीकी गति १२० के आसपास पहुँच जाय, तब रोगीको दिलासा देना चाहिए। इस समय मध्यम तापमान (९९° फा०) के जलसे स्नान कराना चाहिए और टबमें बहुत समय तक बिठाए रखना चाहिए। हृदयपर साधारण ठंडे पानीसे भीगे हुए कपड़ेको रखनेसे भी लाभ होता है।

कै या उलटी होना—उपवास-कालमें सबसे अधिक चिन्ता जनक उपद्रव यही है। कभी कभी उपवासके ४० से ५० वें दिन तक भी कै होती देखी गई है। कै होनेके लक्षण प्रकट होते ही उपचार आरम्भ कर देना चाहिए। यदि कैका रंग चमकीला हरा अथवा कालासा हो तो उसे खतरनाक समझना चाहिए। इस तरहकी कै करनेवाले, एक दो रोगियोंकी मृत्यु हो गई है, परन्तु इस तरहके केस बहुत ही कम—हजारमें एक दो ही—होते हैं और वह भी मोटे चर्बीवाले। साधारण या दुबले पतले शरीरवालोंको तो इसके होनेकी सम्भावना ही नहीं है। इस तरहकी कै क्यों होती है, अभी तक इसका कोई ठीक ठीक निर्णय नहीं हुआ है। कैके लक्षण प्रकट होनेपर नीचे लिखे उपचार करने चाहिए—

अधिक मात्रामें गरम पानी पीना चाहिए, भले ही वह कैके साथ निकल जाय। इससे पेट साफ होगा, उत्तेजित नाड़ियाँ शान्त होंगी और वायुओंकी गति जो ऊपरकी ओर होने लगती है वह फिर नीचेको होने लगेगी। इसी तरह पित्त भी ऊपर न

नाड़ीकी मन्द गति—पुरुषोंकी नाड़ीकी गति एक मिनटमें साधारणत ७२ और स्त्रियोंकी ८० होती है। उपवास-कालमें उन व्यक्तियोंकी ५०, ४५ और ४० तक हो जाती है, जो सुस्त, मजर्गी और जड़ होते हैं। मैकफेडन साहबने तो एक मनुष्यकी नाड़ीकी गतिको ३६ तक कम होते देखा है और फिर भी उसमें कोई चिंता जनक लक्षण नहीं थे। कहा जाता है कि वीर-केसरी नेपोलियन बोनापार्टकी नाड़ीकी गति हमेशा ४० से कम रहती थी। अपने आप पर और दुनियापर काबू रखनेवाले महापुरुषों और योगियोंकी नाड़ी प्राय मन्द चलती है। यदि नाड़ीकी गति मन्द हो, परन्तु साथमें और कोई दुर्लक्षण प्रकट न हों, तो कोई चिन्ता करनेकी बात नहीं। जब नाड़ी साधारणत मन्द चलती है तब वह अधिक गहरी और शक्तिशालिनी भी होती है, जिससे प्रकट होता है कि हृदय अपनी धड़कनकी संख्याकी कमीको कामकी मात्रासे पूरा कर रहा है। जिस समय नाड़ी मन्द चलती है, उस समय हृदय अधिक विश्राम करता है और इसलिए उपवासके बाद वह पहलेकी अपेक्षा अधिक बलवान् हो जाता है।

नाड़ीकी मन्दताके साथ यदि आगे लिखे हुए लक्षण प्रकट हों, तो अवश्य ही चिन्ता करनी चाहिए—रक्ताभिसरणमें कमी होना (हाथ पैरोंका ठंडा होना, होठोंका काला या नीला पड़ जाना), ज्यादा चक्कर आना, अत्यधिक कमजोरी मालूम होना आदि। नाड़ीकी गतिके ५० तक गिरने तक विशेष ध्यान देनेकी आवश्यकता नहीं है; परन्तु यदि इससे और भी नीचे जाने लगे, तो हलकी कसरत और गहरी श्वाससे सहायता लेनी चाहिए। गरम पानीके टबमें बैठकर सर्वांग-स्नान करनेसे नाड़ीकी गति बहुत जल्दी बढ़ जाती है। इससे रक्तका अभिसरण इतना तेज हो जाता है कि नाड़ीकी गति ७० से बढ़कर १०० तक हो जाती है। गरम पानीके स्नानके समय सिरपर ठंडे पानीमें भिगोया हुआ कपड़ा बाँध लेना चाहिए। मालिश और रगड़से भी नाड़ीकी गति बढ़ाई जा सकती है।

नाड़ीका तेज चलना—जिन लोगोंका मन कमजोर होता है; जो अत्यधिक भावुक होते हैं और जिनके ज्ञान-तन्तु दुर्बल होते हैं, उपवास-कालमें उनकी नाड़ीकी गति तेज हो जाती है। यदि इसके साथमें कोई खास तकलीफ बेचैनी आदि न हो, तो इसपर कोई ध्यान देनेकी आवश्यकता नहीं है। मेकफेडन साहबने ऐसे कई केस देखे हैं जिनमें नाड़ीकी गति १४० थी, फिर भी रोगियोंको किसी तरहकी शिकायत नहीं थी, वे मजेमें थे।

नाड़ीकी गति तेज होनेपर मनुष्यको विश्रान्तिकी आवश्यकता होती है। उसे १२० से अधिक न बढ़ने देना चाहिए और जब नाड़ीकी गति १२० के आसपास पहुँच जाय, तब रोगीको दिलासा देना चाहिए। इस समय मध्यम तापमान (९९ फा०) के जलसे स्नान कराना चाहिए और टबमें बहुत समय तक बिठाए रखना चाहिए। हृदयपर साधारण ठंडे पानीसे भींगे हुए कपड़ेको रखनेसे भी लाभ होता है।

कै या उलटी होना—उपवास-कालमें सबसे अधिक चिन्ता जनक उपद्रव यही है। कभी कभी उपवासके ४० वें ५० वें दिन तक भी कै होती देखी गई है। कै होनेके लक्षण प्रकट होते ही उपचार आरम्भ कर देना चाहिए। यदि कैका रंग चमकीला हरा अथवा कालासा हो तो उसे खतरनाक समझना चाहिए। इस तरहकी कै करनेवाले, एक दो रोगियोंकी मृत्यु हो गई है, परन्तु इस तरहके केस बहुत ही कम—हजारमें एक दो ही—होते हैं और वह भी मोटे चर्बीवाले। साधारण या दुबले पतले शरीरवालोंको तो इसके होनेकी सम्भावना ही नहीं है। इस तरहकी कै क्यों होती है, अभी तक इसका कोई ठीक ठीक निर्णय नहीं हुआ है। कैके लक्षण प्रकट होनेपर नीचे लिखे उपचार करने चाहिए—

अधिक मात्रामें गरम पानी पीना चाहिए, भले ही वह कैके साथ निकल जाय। इससे पेट साफ होगा उत्तेजित नाड़ियाँ शान्त होंगी और स्नायुओंकी गति जो ऊपरकी ओर होने लगती है वह फिर नीचेको होने लगेगी। इसी तरह पित्त भी ऊपर न

आकर नीचे जाने लगेगा। पेडू और पीठके चारों ओर गरम कपड़ा लपेट देना चाहिए। स्वच्छ हवा और गहरी साँससे भी लाभ होता है।

यदि कोरे पानीसे काम न चले, तो उसमें नीबू या सन्तरेका रस, मधु या जौका पानी मिलाकर देना चाहिए और अधिक मात्रामें देना चाहिए। केवल नीबूका रस भी पानीमें मिलाकर देना अच्छा है। ४०–५० नीबू तक दिये जा सकते हैं।

यह प्रश्न अनेक बार पूछा जा चुका है कि क्या ऐसी अवस्थामें खुराक देना योग्य है? डा० डिउई इसके विरुद्ध हैं। वे कहते हैं कि ऐसी अवस्थामें खुराक देना मौतको बुलाना है। उनकी रायमें मन और शरीरको पूरा आराम देना चाहिए। यदि यम राजकी मुहर न लग चुकी होगी, तो प्रकृति रोगीको अवश्य अच्छा कर देगी।

जब किसी भी तरहसे कै बन्द न हो, तब रोगीके कुटुम्बियों और मित्रोंको दिलासा देनेके लिए हलका भोजन भी दिया जा सकता है, जिसे एनीमासे निकाल देना चाहिए। डा० डिउईने एक ऐसे केसका उल्लेख किया है जिसमें भोजन देनेसे कै बन्द हो गई थी, परन्तु उस भोजनको पेटमें नहीं रहने दिया था। यह रोगी आगे चलकर ६० वें दिन बिलकुल नीरोग हो गया था और उसकी भूख लौट आई थी।

कमजोरी और शिथिलता—यह उपवासके आरम्भके दिनोंमें और कभी कभी बीचमें कुछ दिन छोड़-छोड़कर मालूम होती है। जिन लोगोंके रोगोंको दबानेके लिए दवाओंका अधिक उपयोग किया गया होता है उन्हें यह तीव्रताके साथ होती है। यदि ब्रोमा इड वगैरह मारक और निस्तब्ध करनेवाली दवाओंका अधिक सेवन कराया गया हो, तो उपवास-कालमें उक्त दवाओंके गुणोंसे ठीक उलटी हालत होती है। प्रायः दो दो तीन तीन दिनके अन्तरसे अप्राकृतिक फुर्ती और उत्साह मालूम होता है। लगातार बहुत समय तक विषोंका उपयोग किये जानेपर भी यह अप्राक

तिक स्फूर्ति मालूम होती है। यह इस बातका प्रमाण है कि उपवाससे पूर्वोक्त विष नष्ट हो रहे हैं और ज्ञानतन्तुओंकी पुनर्घटना हो रही है।

उपवासपर अविश्वास और शंका होनेके कारण भी कमजोरी और शिथिलता मालूम होने लगती है। ऐसी हालतमें उपवासके लाभोंका वर्णन करके रोगीको खूब उत्साहित करना चाहिए। यदि हालत कुछ ज्यादा खराब मालूम हो तो ठंडा पानी पिलाना चाहिए। गहरी साँस लेने आदि प्रयोगोंसे भी लाभ होता है। यदि रोगी शय्याशायी हो, तो अँगड़ाई लिवाना चाहिए या अंगोंको खास करके कन्धोंको ताननेकी कसरत कराना चाहिए। हलकी मालिशसे भी उपकार होता है।

आँखोंके आगे बिजलीसी चमकना या प्रकाशकी चिनगारियाँ निकलना—यह प्राय सिर-दर्दके साथ होता है और मस्तकमें खूनके अत्यधिक जमावसे या अत्यधिक ह्राससे होता है। ज्ञानतन्तुओंकी कमजोरी, विषोंकी अधिकता और यकृत तथा मूत्राशयके विकारसे भी यह होता है। परन्तु ऐसी बातोंपर ध्यान न देना ही अच्छा है। हलके व्यायामसे इसमें लाभ होता है।

कानोंमें घंटेकी-सी आवाज या भन भन सुनना—उपवास-कालमें शरीर अपने सभी द्वारोंसे मल बाहर निकालता है, तदनुसार कानोंमेंसे भी मोम जैसा द्रव्य निकलता है और यह ज्यादा परिमाणमें इकट्ठा हो जाता है। उसीसे यह उपद्रव होता है। मस्तकमें खूनके जमावसे भी इसके होनेकी सम्भावना है। यदि यह जल्दी अच्छा न हो, तो कानोंमें गर्म पानीके दो तीन बूँद या गर्म 'ओलिव्ह आइल' आदि तेल या ग्लिसरीन डालना चाहिए।

शरीरमेंसे दुर्गन्ध निकलना—उपवास-कालमें विषों और मलोंके अधिक परिमाणमें निकलनेके कारण दुर्गन्ध आती है। यह गन्ध गठिया (Rheumatism), गुर्देकी सूजन (Brights'

disease) और मधुमेह आदि भिन्न भिन्न रोगोंमें भिन्न भि
प्रकारकी होती है। इसमें साधारण स्नान और घर्षण स्नान (शरी
रको खूब रगड़कर धोने) से त्वचाके कार्यमें सहायता करने
सिवाय और कुछ करनेकी जरूरत नहीं है।

मुँहसे ईथर सरीखी वास आना—शरीरमें एसीटोन (Ace
tone) नामक द्रव्यके इकट्ठा होनेसे इस प्रकारकी वास आती है
यह द्रव्य शरीरके प्रत्येक स्रावके साथ थोड़े परिमाणमें निकला करत
है और आंगिक द्रव्यके पृथक्करणसे उत्पन्न होता है। इसक
अधिक मात्रामें निकलना इस बातको सूचित करता है कि
शरीरका कोई आवश्यक अंग या पदार्थ नष्ट हो रहा है, इस लिए
यह लक्षण अच्छा नहीं है। इसके प्रकट होनेपर उपवास कमस
कम कुछ दिनोंके लिए अवश्य तोड़ देना चाहिए और फलोंका
रस लेना आरम्भ कर देना चाहिए।

तंद्रा—इससे प्रकट होता है कि दवाइयोंके सेवनसे शरीरमें
जो विष बहुत अधिक मात्रामें एकट्ठा हो गये हैं, वे बाहर
निकाले जा रहे हैं। इसमें भीगी चादरके प्रयोगसे लाभ
होता है। ठंडे पानीमें एक चादर भिगोकर उससे रोगीको
लपेट देना चाहिए। चादर सब अंगोंसे सट जानी चाहिये।
इसके बाद ऊपरसे तीन चार कम्बल ओढ़ा देना चाहिए और
उन्हें तब अलग करना चाहिए जब खूब पसीना आ जावे। ठंडी
हवासे बचाना चाहिए। इस प्रयोगसे शरीरसे विषोंको निकाल
नेमें सहायता मिलती है।

हिक्का या हिचकी आना—अक्सर लम्बे उपवासोंमें हिचकी
आने लगती है। छाता या डायाफ्रामके एकाएक सिकुड़नेसे अथवा
पित्त रसके पेटमें फिर लौट आनेसे यह उपद्रव होता है। इससे
मृत्यु भी हो सकती है; परन्तु यह आँतोंमें रुकावट होनेपर ही
होती है। यों साधारण तौरसे यह कोई अधिक चिंताकी बात
नहीं है। इसका सर्वोत्तम उपाय मुँहके द्वारा या एनीमासे उठौ

रमें पानी पहुँचाना है। मेरुदण्डपर गर्म पानीकी पुल्टिस बाँधनेसे भी लाभ होता है।

यदि और कोई उपाय कारगर न हो, तो कमरके जरा ऊपर चारों ओर पट्टा बाँधकर उसे धीरे धीरे कसते जाना चाहिए और तब तक कसते जाना चाहिए जब तक कि ऐसी अवस्था न हो जाय कि पेड़ूका प्रदेश हिचकीमें ऊपरको न उठ सके। कभी कभी इस पट्टेको कसनेमें सारी शक्ति लगा देनी पड़ती है, तब आराम होता है।

ऊपर जो सब उपद्रव लिखे गये हैं, उनके विषयमें रोगीको यह न समझ लेना चाहिए कि मुझे उपवास-कालमें इन सबका अथवा इनमेंसे दो चारका सामना निश्चयपूर्वक करना ही पड़ेगा। चक्कर आना, मुँहका स्वाद बिगड़ना, निद्राकी कमी, और सिरदर्द इनके सिवाय अन्य लक्षण शायद ही कभी किसी रोगीके उपवास कालमें प्रकट होते हैं। अधिकांश रोगियोंको तो इनमेंसे एक भी तकलीफ नहीं होती है।

मृत्यु—ऐसे कई केस हुए हैं जिनमें उपवास-कालमें और उपवासके बाद ही रोगीकी मृत्यु हो गई है; परन्तु मृत्युके बाद जब जब शवकी परीक्षा सरकारी अदालतद्वारा कराई गई है तब तब यही प्रकट हुआ है कि शरीरके भिन्न भिन्न भीतरी अंगोंकी अवस्था ऐसी थी कि चाहे उपवास कराये जाते, चाहे नहीं, मृत्यु अवश्य होती; बल्कि अनेक बार इस बातपर आश्चर्य प्रकट किया गया है कि यह रोगी इतने दिन जीता कैसे रहा ?

यह बात न भूल जानी चाहिए कि मृत्युको सबसे अधिक निकट बुलानेवाला रोग भय है। रोग या उपवाससे बहुत अधिक भयसे जीवन शक्ति बहुत कम हो जाती है। जहाज डूबने, गाड़ियोंके लड़ जाने आदिमें जो लोग मर जाते हैं, उनमेंसे बहुतसे तो केवल भयके कारण ही मर जाते हैं, उनके शरीरपर चोटका कोई चिह्न भी नहीं मिलता।

मैकफेडन साहबके चिकित्सालयमें उनके हाथके नीचे कई डाक्टरोंने उपवासके द्वारा लगभग दस हजार रोगियोंकी चिकित्सा की, जिनमेंसे केवल १८ रोगी मरे, जो गर्मी (सिफलिस), यकृतके नाश, मूत्राशयके नाश, मस्तिष्कके नाश, फेफड़ोंके नाश, आदि असाध्य रोगोंसे आक्रान्त थे। यह निश्चित था कि कोई दवाई या कोई चीर-फाडका प्रयोग इन्हें अच्छा न कर सकता। और यह तो सभी जानते हैं कि प्राकृतिक चिकित्सकोंके पास प्राय वही रोगी आते है जिन्हें सब जगहसे जवाब मिल जाता है। परीक्षासे मालूम हुआ है कि इन सभी मरणप्राप्त केसोंमें चर्बीकी मात्रा काफी बाकी थी, हृदयकी गति ठीक थी, खून भी कम नहीं हुआ था और पेनक्रियास (Pancreas) भी अपनी साधारण अवस्थामें था। यदि भूख या उपवासके कारण मृत्यु हुई होता, तो दुर्भिक्षमें मरे हुए लोगोंके समान उनके शरीरमें चर्बी न होती, हृदयका कुछ अंश पचकर नष्ट हो गया होता, खूनकी कमी हो जाती और पेनक्रियाजका पता ही नहीं चलता।

फिर ये क्यों मरे, इसका ठीक ठीक निश्चय नहीं हो सका। सम्भव है कि किसी ऐसे अगका नाश हो जानेसे उनकी मृत्यु हुई हो, जो जीवनके लिए बहुत ही उपयोगी है। परन्तु यह निश्चित है कि यह शरीरमें पोषक पदार्थकी कमी हो जानेके कारण नहीं हुई। इस लिए उपवासके सिर यह दोष नहीं मढ़ा जा सकता। जब मृत्यु आ ही रही है, तब दुनियामें ऐसा कोई उपाय नहीं जो उसे टाल सके।

लम्बे और छोटे उपवास

जिनकी जड़ें बहुत गहरी पहुँच गई हैं ऐसी बीमारियोंके लिए लम्बे उपवासोंकी जरूरत है। दो सप्ताहसे अधिक दिनोंके उपवासको लम्बा उपवास कहते हैं और यह दो सौ

महीने तकका हो सकता है। निम्न लिखित बीमारियोंमें लम्बे उप वासोंकी जरूरत होती है।

१—मूत्राशयकी सूजन (Bright's Disease)
२—मधुमेह (Diabetes)
३—सन्धिवात-गठिया (Rheumatism Gout)
४—उपदंश या गर्मी (Syphilis)
५—दमा या श्वास (Asthma)
६—मेदरोग-स्थूलता (Obesity)
७—मस्तकपर खून चढ़ जाना (Apoplexy)
८—मस्तकपर खून चढ़नेसे होनेवाला लकवा (Paralysis from Apoplexy)
९—यकृतमें खूनका जमाव (Liver Congestion)
१०—विद्रधि या पीव पड़ना (Abcesses)
११—ऐपेण्डिसाइटिज (Appendicitis)
१२—मोतीझरा (Typhoid)
१३—उदरावरण दाह (Peritonitis)
१४—दुष्ट अर्बुद (Cancer)
१५—ग्रन्थि क्षत (Benign Tumours)
१६—नसोंका कड़ा होना और उमड़ आना(Arteriosclerosis)

यदि शरीरमें अधिक कमजोरी या दुर्बलता मालूम हो, तो उप वासका समय कम कर देना चाहिए। जो रोगी उपवासके सिद्धान्तको ग्रहण नहीं कर सकता—उसपर अच्छी तरह विश्वास नहीं ला सकता, उसे भी छोटा उपवास कराना चाहिए। क्षय रोगमें लम्बे उपवास कराना ठीक नहीं है।

एक बारका भोजन छोड़ देना ही छोटे उपवासको आरम्भ कर देना है। जिस दिन भूख न मालूम हो उस दिन यही करना चाहिए। यदि इससे सिरमें दर्द हो जाय, तो उसे इस बातका चिह्न मानना चाहिए कि अभी और भी उपवासोंकी आवश्यकता है। क्योंकि शरीरमें विषोंके हुए बिना सिर दर्द नहीं होता। एक

धार भोजन छोड़नेसे लेकर ७ से १२ दिनोंतकके उपवासको छोटा उपवास कहते हैं।

नीचे लिखे हुए साधारण रोगोंमें लम्बे उपवाससे कम किंतु आंशिक उपवाससे अधिककी आवश्यकता होती है—

१—कफ आना (Catarrh)

२—कब्ज (Constipation)

३—अतिसार (Diarrhea)

४—सिर-दर्द (Headaches)

५—शूल (Colic)

६—फोड़े (Boils)

७—बाहरी अगोंमें पीब पड़ना (Superficial abcesses)

८—चर्मरोग (Skin Eruptions)

९—न्यूरिटिज (Neuritis)

१०—न्यूरेल्जिया (Neuralgia)

११—दाँतोंमें पीब पड़ना (Pyorrhea)

१२—कृमि (Worms)

इनके सिवाय ज्वरसहित या रहित मंद व्याधियों—जैसे हाइव्स (Hives), सर्दी, इन्फ्लूएन्जा, कौएकी सूजन (Tonsilitis), टोमेन विष (Ptomaine Poisoning) के उपद्रव, सीरम या टीकेका बुखार आदि—में भी छोटे उपवास कराने चाहिए। और दुर्बल रोगियोंको जंगली बुखार (Hay Fever) दमा, और पार्श्वशूलमें छोटे उपवास कराना चाहिए। इसी प्रकार मासिक धर्मका बिगाड़, पेडूकी जलन, प्रोस्टेट ग्रंथिकी तकलीफ, नपुंसकता, मूत्राशय (Bladder) की बीमारियाँ, गुदा और पेडूके यन्त्रोंका खिसक जाना, छूतसे पैदा होनेवाली मंद व्याधियाँ, मसूरिका, लाल बुखार और जलीय बुखार या डिफथीरिया, इनमें भी छोटे उपवास कार्यकारी होते हैं।

आंशिक उपवास अथवा फलोपवास

फल शब्द बहुत व्यापक है। केला, अजीर, खजूर, आदि एक प्रकारके भोजन ही हैं, इस लिए यदि चिकित्साके लिहाजसे फलाहार किया जाय, तो केवल खट्टे, खटमिट्टे और रसीले फलोंका ही उपयोग करना चाहिए, जैसे—अंगूर, खट्टे पीच, खट्टे सेव, खट्टे बेर आदि। नारंगी और सन्तरे चाहे जितने खाये जा सकते हैं। यह सर्वोत्तम खुराक है। गर्मीके दिनोंमें एक दो महीने केवल फलोंपर रहना बहुत लाभदायक है। फलाहार इस प्रकार किया जाना उत्तम होगा—

१–प्रतिदिन तीन सन्तरे तीन बारमें खाये जायें। यदि दस्त साफ न आता हो, तो सन्तरेके बीजोंको भी चबाकर खा लिया जाय।

२–चौबीस घंटोंमें तीन बार एक एक गिलास (२० तोले) फलोंका रस पीया जाय और पानी भी खूब पीया जाय।

३–दोसे चार बार तक खट्टे फल और रसभरी खावे। पानी खूब पीए। शक्करका उपयोग न करे।

४–दिनमें दो बार तीनसे लेकर छह औंस (एक औंस=ढाई तोला) तक एक खट्टा और मीठा फल प्रत्येक बारमें खावे और खूब पानी पीए।

५–मक्खन निकाला हुआ दूध एक गिलास सवेरे और एक गिलास दोपहरको पीया करे।

६–तीन बार एक एक गिलास छाँछ या मट्ठा पीए। पानीका खूब उपयोग करे।

यह फलोपवास या आंशिक उपवास नीचे लिखे रोगोंमें बहुत लाभकारक है।

Paralysis agitans (एक प्रकारका लकवा)
Locomotor ataxia (ज्ञानतंतुओंकी एक बीमारी)
Goitre (कण्ठरोग)

Hysteria (अपतन्त्रक वायु)
Melancholia (उदासी)
Old syphilis with gummatous formations or spinal cord affections, (पुरानी गर्मी जिसका असर रीढ़ आदि अंगों तक पहुँच गया हो।)
Pernicious anemia (दुष्ट पाण्डु)
Myocarditis (एक हृदय-रोग)
Inflammation and weakness of the heart muscle (हृदयके स्नायुकी सूजन, कमजोरी और कभी कभी उसका थक जाना)
Hypertrophy prostatis (प्रोस्टेट ग्रथिका अशनाश)
इनके सिवाय क्षय खाँसी, नाकके मस्से, गलेके कौएकी सूजन आदि रोगोंमें भी फलोपवाससे अत्यन्त उपकार होता है।

उपवासोंका प्रारम्भ और समाप्ति

बीमारियाँ दो प्रकारकी होती हैं—एक तो तीव्र (acute) और दूसरी बहुत समय तक ठहरनेवाली (chronic). पहले प्रकारकी बीमारियाँ एकाएक भयकर हो जाती हैं, जब कि दूसरे प्रकारकी बीमारियाँ काफी भयकर होनेपर भी बहुत दिनों तक मन्थर गतिसे चला करती हैं। इनमें रोगी अपने दैनिक काम काज ठीक तौरसे करता रहता है, उसे कोई विशेष अड़चन नहीं मालूम होती।

इनमेंसे पहले प्रकारकी बीमारियोंमें उपवास जल्दी शुरू कर देने चाहिए, विलम्ब करना ठीक नहीं। दूसरे प्रकारकी बीमारियोंमें उपवासकी तैयारीमें समय लगाया जा सकता है जिससे शरीरको एकाएक धक्का न सहना पड़े और उपवास सुगमतासे हो जाय।

दूसरे प्रकारकी बीमारियोंमें केवल विषोंका संग्रह ही एकमात्र कारण नहीं होता, अक्सर उपयुक्त और आवश्यक क्षारों तथा

जीवन-कणों (Vitamins) से युक्त आहारके अभावसे भी ये बीमारियाँ होती हैं, इसलिए उपवास आरम्भ करनेके पहले कुछ दिन ऐसा आहार लेना चाहिए जो हलका हो तथा जीवन-कण और तत्त्वोंसे युक्त हो। कच्चे, खट्टे और रसीले फल तथा शाक भाजियोंमें ये तत्त्व अधिक होते है। शाक भाजियोंके क्षार और जीवन-तत्त्व इतने लाभदायक हैं कि उनके बिना शरीरका काम ही नहीं चल सकता; परन्तु उनमें कीड़े और जीवाणु बहुत रहते हैं जो रोगी मनुष्योंके शरीरमें पहुँचकर नये रोग पैदा कर देते हैं, इसलिए डा० केलागकी सम्मतिके अनुसार उनको अच्छी तरह साफ करके और कीटाणुनाशक औषधियोंसे धोकर काममें लाना चाहिए। नमक फिटकरी आदिके घोलमें धो लेना भी अच्छा है।

आरम्भमें फलों और शाक भाजियोंपर रहकर उपवास करनेसे जल्दी फायदा होता है और कोई तकलीफ नहीं होती।

यदि उपवास समयके पहले ही तोड़ दिया जाता है तो अक्सर उससे हानि होती है। कभी कभी बुखार आ जाता है और नाड़ीकी गति बहुत तेज हो जाती है। कै आने लगती है अथवा अरुचि हो जाती है। ऐसी अवस्थामें फिरसे उपवास करना चाहिए।

जिन विशेषज्ञोंने उपवास-शास्त्रका अध्ययन किया है उनकी सम्मतिके अनुसार उपवासकी समाप्तिका आहार तरल पेय ही होना चाहिए, विशेष करके पानी मिला हुआ फलोंका रस। इससे पाचन क्रिया बहुत ही अच्छी तरह आरम्भ होती है।

आरम्भमें नीबू, सन्तरा, चकोतरा, सेब, टमाटा, मनक्कास आदि फलोंका रस पानी मिलाकर देना चाहिए। सन्तरा सर्वोत्तम है। यदि ये वस्तुयें न मिल सकती हों, तो पानीमें थोड़ासा शहद और नीबू मिलाकर देना चाहिए। अथवा दो सेरके लगभग विविध प्रकारके शाक, भाजियां, फाली मुनक्का आदि चीजोंको एक गैलन पानीमें उबाल लेना चाहिए और फिर उसके पानीको छानकर

तीसरा दिन—एक एक ताजा फल और आधा आधा गिलास दूध तीन बार।

चौथा दिन—तीन बार फलाहार और एक गिलास गरम दूध।

पाँचवाँ दिन—दिनके एक बजेतक आधा पिण्ट दूध कई बारमें। और ५–६ बजेके लगभग शाक-भाजीका आहार।

छठा दिन—सबेरे एकसे डेढ़ पिंट तक गुनगुना दूध दोपहरको शाक भाजियाँ और १–२ रोटी, शामको छह बजे दोपहरके समान और सोते समय एक पिंट दूध।

२० दिनसे अधिकके उपवासका पथ्य

ऊपरका अनुक्रम ही इसमें ठीक रहेगा। आरम्भके तीन बार निर्दिष्ट जो पथ्य बतलाया गया है उसे कम मात्रामें लेना चाहिए। एक गिलास २० तोलेसे कुछ कमका समझना चाहिए। दूधके साथ फल ही लिये जावें, अन्न नहीं।

उपवासके बाद शक्ति-निर्माण

उपवासके बाद शरीरमें जीवन तत्त्वों और क्षारोंकी कमी हो जाती है, क्योंकि उपवास-कालमें ये अत्यन्त आवश्यक वस्तुयें प्राप्त नहीं होतीं। चर्बी, प्रोटीन आदि तत्त्व तो शरीरमेंसे ही मिल जाते हैं, परन्तु क्षार और जीवन-तत्त्व नहीं मिलते। इस कारण उपवासके बाद जो खुराक ली जाय उसमें वानस्पतिक क्षार और विटामिन्स या जीवन-तत्त्व अधिक होने चाहिए।

उपवास समाप्त करनेके बाद पथ्य लेनेका क्रम पहले लिखा जा चुका है। उसमें दूधके आहारसे जितना लाभ हो सकता है उतना प्राप्त करके फिर नीचे लिखे हुए क्रमोंमेंसे कोई एक क्रम ग्रहण कर लेना चाहिए, अथवा आधा दिन दूधके आहारपर रहे और फिर इस क्रमके अनुसार पथ्य लिया करे—

१-सुबह उठते ही एक गिलास छाछ या मठा। दो घंटे बाद भाजी, प्याज, कच्ची पत्ता-गोभी, और पानीमें पतली पीसी हुई बदाम। उबाली हुई गोभी पचनेमें भारी होती है, इस लिए कच्ची ही खानी चाहिए। इसके तीन घंटे बाद पानीमें पीसी हुई बदाम और केला अथवा अंगूर, सन्तरे और अखरोट अथवा अंजीर और वाल्नट।

२-दोपहरके एक बजे तक दूध। ५—६ बजेके लगभग शाक-भाजी, कुछ कच्चा शाक, भुना हुआ एक आलू, भात, एक दो रोटियाँ और एक गिलास छाछ।

३-सवेरे १ गिलास छाछ, दो घंटे बाद अंगूर, पानीमें पतली पीसी हुई बदाम, दूसरे मीठे फल और तेलवाले मेवे। ये सब दूधके साथ लिये जा सकते हैं और जुदा भी। दो घंटे बाद शाक-भाजी, खीर, पनीर। तीन घंटे बाद हरे शाक, उबाले हुए या भूँजे हुए आलू, उबले हुए अंजीर, आलू बुखारा, मुनक्का और काफीके दाने।

४—कलेवामें खट्टे मीठे फल और दूध। दोपहरको गोभी, टमाटा (कच्चे) प्याज और उबले हुए काफीके दाने। शामको एक दो भाजियाँ, रोटी और दाल।

पथ्य आहारके साथ ही तरह तरहके व्यायाम—जो शक्तिसे ज्यादा न हों—स्वच्छ हवा और धूपकी भी बहुत आवश्यकता है। सदा भूखसे कम भोजन करो, चाहे फिर भूख लग जानेपर समयके पहले ही भोजन करना पड़े। दिनमें और खास तौरसे भोजनके समय पानी पीना आवश्यक है। क्योंकि इससे खून बढ़ता है और पतला होता है। दुर्बल और मन्दाग्निवालोंके लिए भले ही भोजनके बाद पानी न पीना ठीक हो; परन्तु सबके लिए तो बहुत ही आवश्यक है। यदि ठंडे पानीसे मन्दाग्नि होती हो, तो गुनगुना या गरम पानी पीना चाहिए। पानी अमृत है।

उपवासके अनुभव

खुराक या भोजनसम्बन्धी प्रश्नोंका उत्तर देनेमें सर हेनरी थाम्पसन सबसे बड़े प्रामाणिक विद्वान् गिने जाते हैं। उनका कथन है कि मनुष्य ज्यों ज्यों उम्रमें बढ़ता जाता है त्यों त्यों उसे भोजनकी कम आवश्यकता होती जाती है। जवानीमें जितना भोजन पचाया जा सकता है उतना बुढ़ापेमें नहीं पचाया जा सकता, यदि पचा लिया जाता है तो ग्रहण नहीं किया जा सकता और यदि ग्रहण कर लिया जाता है तो शरीर उसका कोई उपयोग नहीं कर सकता। इसका कारण यह है कि एक तो बुढ़ापे पाचक रस उतने अच्छे और ताकतवर नहीं रह जाते हैं, दूसरे जवानीमें शरीरकी बाढ़ होती है और उसमें सारे पोषक तत्त्व खप जाते हैं; परन्तु बुढ़ापेमें बाढ़ रुककर क्षीणता आरम्भ हो जाती है। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि शरीरमें संचित हुए निरुपयोगी पदार्थोंको कम करनेके लिए उतरती अवस्थामें उपवास बहुत उपयोगी है। इसके सिवाय बुढ़ापेमें ऐसी खुराककी जरूरत नहीं जिससे शरीरकी और स्नायुओंकी वृद्धि होती है, इसलिए प्रोटीन तत्त्ववाले दाल, आलू आदि पदार्थ बिल्कुल बन्द कर देने चाहिए, तथा चर्बीवाले पदार्थ कम कर देने चाहिए। बुढ़ापेमें तो जहाँतक बन सके शाक और भाजीकी ही खुराक लेनी चाहिए।

बच्चोंके लिए भी उपवास उपयोगी है, परन्तु लम्बे उपवास नहीं। क्यों कि उनकी पाचन शक्ति इतनी तीव्र होती है कि उपवास-कालमें वह शरीरके उपयोगी अंगोंको भी शीघ्र ही पचाना शुरू कर देती है। बच्चोंको अक्सर जरूरतसे ज्यादा खुराक दी जाती है, इस कारण उनका शरीर मोटा-गोलमटोल हो जाता है। मोटा बच्चा ताकतवर समझा जाता है, परन्तु वास्तवमें यह खयाल गलत है। डाक्टर पेजका कथन है कि मनुष्यको छोड़कर दुनियामें और किसी प्राणीके बच्चे मोटे नहीं होते। बच्चोंका पतला होना ही प्रा

तिका नियम है और इसमें यदि कोई व्यतिरेक है तो मनुष्यका। किसी अशमें चर्बीवाले स्नायु इस वातके द्योतक हो सकते हैं कि भोजन शरीरद्वारा ग्रहण किया जा रहा है, परन्तु साधारण नजरसे यदि बच्चेमें मोटापन मालूम पड़े तो वह बीमारीका चिह्न है। बच्चों-को परिमित खुराक ही दी जानी चाहिए।

गर्भवती स्त्रियोंके सम्बन्धमें यह कहा जाता है कि उन्हें दूनी खुराक खानी चाहिए, क्योंकि उनके पेटमें जो बच्चा रहता है उसका पोषण भी आवश्यक है। परन्तु यह खयाल गलत है। यदि बच्चेका वजन ९ पौण्ड मान लिया जाय, जो कि नौ महीनेमें होता है, तो एक पौण्ड महीनेकी औसत हुई। इस एक पौण्ड महीनेका अर्थ हुआ आधा औंस (सवा तोले) प्रतिदिन। परन्तु कैसा अन्धेर है कि इस आधे औंसको सप्लाई करनेके लिए माताओंको एक पौण्डसे लेकर दो पौण्ड तक ज्यादा खानेकी सलाह दी जाती है। इसीका यह फल होता है कि प्रसूतिके समय माताओंके स्नायु ओंकी जीवन शक्ति क्षीण हो जाती है और उन्हें बुखार रहने लगता है।

इधर जन्मते ही बेचारे बच्चेको अधिक खुराक दी जाने लगती है। डा० पेजने हिसाब लगाकर बतलाया है कि यदि शरीरके परिमा णमें जवान आदमीको उतना ही दूध पिलाया जाय जितना कि साधारणत बच्चोंको पिलाया जाता है, तो यह करीब एक मन होगा। यही कारण है जो बच्चोंको ऐसे बीसियों रोग होते हैं जिनके सम्बन्धमें यह मान लिया गया है कि वे उन्हें होने ही चाहिए।

आगे खास खास उपवास करनेवालोंके अनुभवोंका सार दिया जाता है—

कुमारी एल० एच०—दिसम्बर १९२० के 'फिजिकल कल्चर' में श्रीमती एमी रिले हेल्ने इस २२ वर्षकी युवतीके विषयमें लिखा है कि उसे सम्पूर्ण रूपसे फुफ्फुसका क्षय हो गया था। शुरूमें

बहुत दिनों तक यह तरल खुराक और बहुत पानीपर रक्खी गई। पहले कुछ दिनोंतक फुफ्फुसमेंसे मलयुक्त कचरा बहुत बड़ी मात्रामें निकलता रहा, जो धीरे धीरे शान्त हो गया। २२ वें दिनके पश्चात्, क्षयके कीटाणु बिल्कुल नहीं रहे। आगे दिनपर दिन अवस्था सुधरती गई और वह सर्वथा नीरोग हो गई।

सीनेटर एच० जे० रिले—इन महाशयने नवम्बर सन् १९२० के 'फिजिकल कल्चर'में लिखा है कि मैंने दमाके रोगपर २२ दिनका उपवास किया। मैं हररोज ५ मील पहाड़ी रास्तेपर घूमता था और अपने दैनिक कार्य भी बराबर करता था। मेरा वजन २३८ पौण्ड था। उपवासके बाद छाती और पीठके घेरे का १५ इंच माप कम हो गया और गर्दनके घेरेमें ३ इंचकी कमी हो गई। दमा बिल्कुल अच्छा हो गया।

मि० पी०—ये महाशय न्यूयार्कके कब्रस्तानमें काम करते हैं और अपने धंधेके कारण डाक्टरोंसे अधिक परिचित हैं। उनसे डाक्टरोंने कहा कि तुम्हारे जठरमें कैंसरका चकत्ता पड़ गया है जो बिना आपरेशनके अच्छा नहीं हो सकता। परन्तु ये आपरेशनके सैकड़ों मरीजोंको दफना चुके थे, इस कारण उससे डरते थे और किसी दूसरे प्रकारके इलाजकी खोजमें थे। पेटमें बहुत अधिक तकलीफ थी और उसके कारण वे दुहरे होकर चलते थे। तीन हफ्तेके उपवाससे उनकी कमर सीधी हो गई और चलते समय दर्द कम होने लगा। धीरे धीरे शरीरका रंग भी लौटने लगा। दो महीनेके भीतर डाक्टरोंने कह दिया कि अब तुम बिल्कुल अच्छे हो और तीसरे महीने वे यात्राके लिए चल दिये।

जोजफ थॉमस—(फिजिकल कल्चर, अप्रैल सन् १९२१)—यह अमेरिकाकी नौ-सेनामें २३ वर्षका सैनिक था। इसे सिफिलिस या गर्मीका भयंकर रोग हो गया, जो पहले तो स्पेसिफिक इलाज करनेसे दब गया। परन्तु २ महीने बाद फिर उठ खड़ा

हुआ। रोगके आक्रमणकी भयकरता इसीसे मालूम हो सकती है कि डा० वासरमेनद्वारा आविष्कृत यन्त्रसे रोगीके खूनके दबावका माप +४ अश हो गया था। तब डाक्टरोंने सालवरसन (६०६ का) इंजेक्शन, पारा और पोटाशियम आयोडाइडका ९ महीनेका कोर्स शुरू किया। इन दवाओंका परिणाम यह हुआ कि उसके पेटने पूरा विद्रोह कर दिया और शरीर रक्तहीन होने लगा; परन्तु खूनके दबावमें कोई अन्तर नहीं हुआ। इसपर नौसेनाके डाक्टरसे उसने कह दिया कि अब वह इलाज नहीं करवाना चाहता। डाक्टरने इसपर बुरे व्यवहारकी शिकायत करके उसे नौकरीसे बरतरफ करवा दिया। अधिक इलाज करवानेकी अपेक्षा उसने नौकरीसे अलग होना अधिक अच्छा समझा। आखिर उसे १९ दिनका उपवास करवाया गया। १३ वें दिन उसने एक सेव खा लिया। इसके बाद १३ हफ्ते उसे दूधपर रखा गया। परिणाम यह हुआ कि बीमारीके सब चिह्न लुप्त हो गये और वासरमेन-परीक्षाने भी उसे रोगशून्य बतला दिया।

जानी वेल्स केण्टुकी (चार वर्षका बच्चा)—इसे एक असाधारण प्रकारका न्यूमोनिया (सन्निपात-ज्वर) हो गया था। इसे ६ दिन तक कोरे पानीपर और नीबूकी हलकी खटाईवाले पानी पर रक्खा गया। चौथे दिन वह पलगपर और उसके पास जमीनपर खेलने लगा। परन्तु पाँचवे दिन बुखार फिर आ गया, इस लिए और भी कई उपवास कराये गये। आरम्भके तीन दिनोंमें छातीका दर्द जाता रहा और सिवाय बुखारके और कोई तकलीफ बाकी न रही। इस तरह एक हफ्तेमें यह बालक बिलकुल चंगा हो गया।

अम्ब्रोज टायलर—(फिजिकल कल्चर, सितम्बर १९२२) उम्र ६० वर्ष। बर्षोसे सधिवात (Rheumatism) से पीड़ित था। पिठौनेपर ही २३ दिनका उपवास कराया गया। उपवास-कालमें

लकवेके तीन हलके आक्रमण हुए, जो कि उपवास न कराये जाते तो भी होते और शायद उन्हींमें मृत्यु भी हो जाती। २३ वें दिनके पहले ही लकवा अच्छा हो गया और अन्तमें सधिवातकी पीड़ा भी चली गई।

एक स्त्री—(फिजिकल कल्चर, सितम्बर १९२२) इसे तीव्र अपच और मोटेपनकी बीमारी थी। ३५ उपवास किये, जिनमें करीब आधे दिनोंतक तो वह बिना पानीके रही। अपचके सब लक्षण तथा अन्य बीमारियाँ बिलकुल अच्छी हो गईं।

मि० सी० सी० एच० कोवन—(फिजिकल कल्चर, सितम्बर १९२२) घारेन्सवर्ग, इलिनॉइजके रहनेवाले। वर्षोंसे नाक और गलेके कफकी बीमारीसे दुखी थे। ४२ दिनका सजल उपवास किया। उपवासके समय ३० रतल वजन घट गया, फिर भी वे अपनी नौकरी करते ही रहे। उपवासके बाद रोग बिलकुल अच्छा हो गया और उन्हें ऐसा अनुभव होने लगा मानों उनका पेट बिलकुल नये सिरेसे फिरसे बनाया गया हो।

मि० मिल्टन रायबर्न, माउण्ट व्हर्नान, न्यूयार्क (फिजिकल कल्चर, सितम्बर १९२२)—शरीरका वजन अधिक था और डर था कि सिरमें अधिक खून चढ़ जानेकी बीमारी (Apoplexy) हो जायगी। उम्र ५५ वर्ष और धंधा अनाजका। २८ दिन तक पूरा उपवास किया और दो हफ्ते केवल शाक-भाजीका पानी लिया। इससे ४२ पौण्ड निरुपयोगी मांस घट गया और बीमारीका डर बिलकुल जाता रहा। उपवास-कालमें उसके नौकरोंने कुछ फल लाकर दिये और खानेके लिए अनुरोध किया, परन्तु उसने कह दिया कि यदि कोई मुझे १००० डालर भी दे, तो मैं इस समय फल नहीं खाऊँगा।

एच० एच० एच०—(सितम्बर १९२१, फिजिकल कल्चर) उम्र ३१ वर्ष। Catarrh of the Stomach (पेटका कफ) और

कब्जका रोग था। धीरे धीरे खुराक घटाकर शाक भाजीके सूप तक लाई गई। इसके बाद पहली जूनसे तीसरी जुलाई तक सजल उपवास कराये गये। ५ जूनसे १५ जून तक उसे ऐसा मालूम होता रहा कि मेरी आँतोंके किनारे छीले जा रहे हैं। तीसरी जुलाईके बाद प्रतिदिन आधा गिलास पानी और सतरेका रस लेना शुरू किया। उपवासके आरम्भमें उसका वजन १६० पौण्ड था, जो कम होते होते ११४ पौण्ड रह गया। परन्तु उपवास छोड़नेके बाद ही फिर बढ़ने लगा और ५ हफ्ते बाद १७४ पौण्ड हो गया और अब तो वह खूब ताकतवर हो गया है।

मि० विलियम्स एन० सी०—उम्र २५ वर्ष। सुजाक या गोनोरियासे उत्पन्न हुए अर्धांगवातके कारण यह रोगी बिछौनेपरसे भी मुश्किलसे हिल सकता था। उसने ५४ दिनका लम्बा उपवास किया। इसके पहले चार दिन तक और अन्तमें भी ४ दिन तक वह सतरेके रसपर रहा। उसका वजन १५५ पौण्ड था, जो उपवास कालमें ४० पौण्ड घट गया; परन्तु उपवास खतम होनेके पहले ही वह कमरेमें फिरने लगा और एक हफ्तेके बाद तो रास्ते पर भी एक लकड़ीके सहारे घूमने लगा। दो हफ्ते बाद लकड़ीके सहारेकी भी उसे जरूरत न रही। धीरे धीरे खोया हुआ सारा वजन उसने फिर प्राप्त कर लिया और पाँच हफ्ते बाद वह पहलेसे भी दस पौण्ड ज्यादा वजनदार हो गया।

मिलर (एक वर्षका बच्चा)—इसे कौटुम्बिक डाक्टरने एक असाधारण प्रकारका लाल बुखार बतलाया। तीन दिनका उपवास कराया गया, जिसमें पानीके साथ नारंगीका बहुत थोड़ा रस दिया जाता था। इससे बीमारीके सब लक्षण हवा हो गये और उसकी माताने तो यह माननेसे भी इन्कार कर दिया कि उसके बच्चेको कोई भयंकर बीमारी थी।

कुमारी ए० ए० कैनेटा—उम्र २८ वर्ष। इसे पेटकी एक भयंकर बीमारी (पेटके अंगोंके विचलित हो जानेकी) थी। आरम्भमें चार

दिन सन्तरेका रस दिया गया, फिर २५ सजल उपवास कराये गये और फिर तीन दिन सन्तरेका रस दिया गया। इसके बाद उसे ऐसी भूख लगी जैसी वर्षोंसे नहीं लगी थी। जो जीवन उसे भारभूत प्रतीत होता था, वही अब आनन्दमय हो गया। तीन महीनेके भतिर ही उसका शरीर सुन्दर और सुडौल हो गया और नौ वर्षसे रुका हुआ यौवन उभड़ आया। अब वह पूर्ण स्वस्थ युवती है।

एम० ए० एम०, दक्षिणी कैरोलीना—उम्र ६८ वर्ष। इन्हें आमाशयकी बीमारी Gastritis और कब्ज़ बधिरता थी। साथ ही जीभपर छाला था। शुरूमें सन्तरेका रस लेनेसे जीभका छाला बढ़ गया, तब ३ हफ्ते तक केवल पानी पीया। इसके बाद दस दिन तक दूध लिया। इससे जीभका छाला—जो उपवासमें अच्छा हो गया था—फिर लौट आया। तब दो हफ्ते तक फिर केवल पानी पीया। इसके बाद पाँच हफ्ते तक दूधकी खुराक ली, जो सन्तोषप्रद साबित हुई। दूध छोड़नेपर वे दो हफ्ते तक केवल सन्तरेके रसपर रहे। अब उनकी तबीयत बहुत शीघ्रतासे सुधरने लगी और वे बिलकुल अच्छे हो गये।

कुमारी टी० एल०—उम्र १६ वर्ष। शरीरकी ऊँचाई ५ फीट ७ इंच और वजन ११५ पौण्ड। इसे गलेके कोप और सतपथ या गलेके पिछेके हिस्से (larynx) का क्षय हो गया था। आरंभमें दो दिन केवल सन्तरेका रस दिया, फिर १५ सजल उपवास कराये गये और अन्तमें फिर दो दिन सन्तरेके रसपर रक्खा। इसके बाद दूधकी खुराक शुरू की और दो महीनेके लिए वायु परिवर्तनार्थ भेज दिया। बस, बीमारी बिल्कुल रफा हो गई और गलेकी आवाज गिरजेके घंटेके समान सुरीली हो गई।

मि० पी० मे, ओलाहोमा—उम्र ५४ वर्ष। इसे एक प्रकारके मधुमेह (Diabetes Mellitus) की तीन वर्षकी पुरानी बीमारी

थी। फोड़ोंके सिवाय उसके सब लक्षण मौजूद थे। इसे ३१ सजल उपवास कराये गये और आरंभ तथा अन्तमें चार चार दिन पानी मिलाये हुए अंगूरके रसपर रक्खा गया। हर रोज थोड़ासा बँधा दस्त प्राकृतिक रूपसे आता रहा, परन्तु १६ वें दिन नहीं आया, क्योंकि उसके पहलेके दिन दो दस्त हो गये थे। चौथे हफ्ते तक शक्ति घटनेके बदले बढ़ती गई, और फिर कम होने लगी; परन्तु दुर्बलता नहीं आई। इसके बाद बिना मलाईके दूधपर रक्खा गया। इनसे रोगके सब चिह्न लुप्त हो गये। आरंभमें वजन औसतसे कम था, उपवास-कालमें २१ पौण्ड और घट गया, परन्तु चार हफ्ते बाद औसत वजन हो गया।

ये सब उदाहरण हजारों केसोंकी सूचीमेंसे बिना विशेष सोच-विचारके छाँट लिये गये हैं। प्रदर्शनके लिए इनका चुनाव नहीं किया गया है। मैं जानता हूँ कि उपवास चिकित्साकी परीक्षाका इच्छुक प्रत्येक पाठक ऐसे उदाहरणकी खोजमें होगा जो उसके समान हों; परन्तु मुझे इससे अधिक उदाहरण देनेकी आवश्यकता नहीं मालूम होती।

इस पुस्तकको मैंने केवल इसी उद्देश्यसे लिखा है कि लोग इस बातको समझ जायँ कि उपवास यदि सर्वोत्तम नहीं तो सर्वोत्तमों मेंसे एक चिकित्सा पद्धति अवश्य है। मुझसे जहाँ तक बन सका है, मैंने इस बातको पूरी तरहसे सिद्ध करनेका प्रयत्न किया है, अब इसका उपयोग करना न करना पाठकोंके हाथमें है।

व्यायाम, विश्राम और स्नान

कुछ लोग व्यायामके संबंधमें इतने अधिक आशावादी देखे जाते हैं कि उनकी समझमें ऐसे रोगकी कल्पना ही नहीं हो सकती जो व्यायामसे अच्छा न हो सके और इस लिए वे कहते हैं कि चिकित्साके प्रत्येक क्रममें यह अवश्य होना चाहिए। उनका यह भी खयाल है, कि उपवास कालमें निर्बाध गतिसे अपने सब काम किये जा सकते हैं। परन्तु इस प्रकारके विचार गलत हैं और कभी कभी गंभीर संकटमें डाल देते हैं। आंशिक और छोटे उपवासोंमें शारीरिक श्रमको घटानेकी आवश्यकता नहीं होती, परन्तु लम्बे उपवासोंके संबंधमें ऐसा नहीं है। तीसरेसे पाँचवें दिनके बाद व्यायाम कम कर देनी चाहिए; बल्कि साधारण टहलने चलनेकी कसरतके सिवाय अन्य कोई कसरत करनी ही नहीं चाहिए।

हालमें ही मुझे एक सज्जनका पत्र मिला है जो उपवास कालमें नौ-नौ घंटे मनों बोझ उठानेका व्यायाम करते हैं। इससे यह तो मालूम होता है कि मनुष्य उपवास कालमें भी कठिन व्यायाम कर सकता है, परन्तु मेरा विश्वास है कि अधिकांश उपवास करनेवालोंके लिए यह बहुत हानिकारक और अनेक बार प्राणहर सिद्ध होता है और खास तौरसे तब जब कि उसे व्यायामका अभ्यास न हो। उपवासमें व्यायामकी मात्रा थकावट और स्नायुओंकी भूखपर अवलंबित है।

उपवास कालमें घूमने या चलनेकी कसरत सर्वोत्तम है। यदि चलनेकी अपेक्षा अधिक सर्वांगीण व्यायामकी आवश्यकता हो, तो अंगोंको ढीला करने, तानने, अँगड़ाई लेने आदिकी कसरतें करनी चाहिए। आलस्य और शैथिल्य मालूम होनेपर इनसे बहुत उपकार होता है।

क्रिया और प्रतिक्रिया सभी जगह देखी जाती है और चूँकि इस मानव-यन्त्रको भी अपने कार्यके परिमाणमें प्रतिक्रियाकी आवश्यकता होती है इस लिए यह आवश्यक है कि हम हर समय तथा खास तौरसे उपवासके समय अवस्थानुसार न्यूनाधिक परन्तु काफी विश्राम लें। क्रिया और प्रति क्रियाके बीचमें तथा व्यायाम और विश्रामके बीचमें एक प्रकारका अनुपात होना चाहिए। दिनमें कुछ काल विश्रामके लिए देना चाहिए और यदि विश्रामका काल घरके बाहर बिताना संभव हो, तो बहुत ही उत्तम है। अनुकूल मौसममें जमीनपर लेटकर वह वैद्युदिक शक्ति प्राप्त की जा सकती है जो पृथ्वी माता हर समय वितरित किया करती है। जहाँ खूब ताजी हवा मिलती हो और उसका झोका असह्य न हो, उस स्थानमें कुर्सीपर आरामसे बैठा जा सकता है।

प्रत्येक कार्य कालके बाद मनुष्यको विश्रांति प्राप्त करनी चाहिए। विश्रांतिके समय यह आवश्यक है कि शरीर ढीला छोड़ दिया जाय। शिथिलीकरणके इस कार्यको संपादित करनेके लिए यह आवश्यक है कि स्नायुओंके प्रत्येक यूथपर अच्छी तरह ध्यान दिया जाय। सच्चे विश्रामके लिए यह अत्यन्त आवश्यक है। बहुतसे मनुष्योंके स्नायु इतने खिंचे या तने हुए रहते हैं कि वे उस कालमें भी जिसे कि वे विश्रांति-काल कहते हैं विश्रांति या ताजगी प्राप्त करनेमें असफल होते हैं। दिनको दो बार आध आध घंटेका समय विश्रांतिके लिए काफी है। इतने समयमें शरीर इस तनावसे मुक्त हो सकता है।

जीवन और शक्ति देनेवाली सूर्यकी किरणोंका भी रोगीपर बड़ा ही विस्मित कर देनेवाला परिणाम होता है। धूपके दिनोंमें सूर्य-स्नान और वायु-स्नान दोनों ही कभी कभी लेने चाहिए। परन्तु इस बातका ध्यान रखना आवश्यक है कि सूर्यकी किरणोंमें कुछ रासायनिक किरणें विनाशक भी होती हैं, इस लिए धूपमें वस्त्र पहिनकर या नंगे बदन बहुत अधिक देर नहीं रहना चाहिए।

तुर्की स्नान (Turkish Bathe), जल चिकित्साके स्नान और भीगी चादर आदिके प्रयोग भी लाभकारक और शीघ्र फलदायक होते हैं। परंतु ये दोनों विधियुक्त होने चाहिए और रोगी इतना ताकतवर हो कि इनसे लाभ उठा सके।

परंतु यह आवश्यक नहीं कि उपवास-कालमें वायु, जल या धूपके स्नान कराये ही जावें। बहुत बार खासकर कमजोरीमें प्रकृतिके भरोसे छोड़ देना ही उत्तम होता है। उपवासमें बिना किसी बाहरी सहायताके स्वय ही रोग दूर करनेकी बड़ी भारी शक्ति है।

यहाँ इतना और जान लेना चाहिए कि रोगीके शरीरमें इतनी ताकत अवश्य हो कि वह ठंडे पानीके स्नानके बाद शीघ्र गरम हो सके। यदि ऐसा नहीं होगा, तो उससे लाभकी अपेक्षा हानिकी ही अधिक संभावना है। इससे तो यह अच्छा होगा कि कमजोर रोगीको गरम पानीका स्नान कराया जाय अथवा पहले गरम पानीका स्नान कराके तुरन्त ही ठंडे पानीका स्नान कराया जाय, जिससे गरमी शीघ्र आ जावे और जीवन क्रिया तीव्रतासे होने लगे।*

---

*इस विषयको अच्छी तरह समझनेके लिए हमारे यहाँसे प्रकाशित डॉ० लुईकूनेकी 'नवीन चिकित्सा-विज्ञान' और जलचिकित्सासम्बन्धी दूसरी पुस्तकें देखनी चाहिए। —प्रकाशक

दस वर्षमे ३८९ उपवास

मैं सन् १८९६ में बम्बई आया और चिकित्सा वृत्ति करने लगा। उस समय मेरे शरीरका वजन १३० पौण्ड था, जो बढते बढते सन् १९२१ में २६३ पौण्ड हो गया और इसका फल यह हुआ कि मुझे उठने बैठनेमें बहुत कष्ट होने लगा। मैं सोचने लगा कि रेचक प्रयोगसे शरीरको हलका करना चाहिए। सन् १९२२ के सितम्बरमें मेरा शिष्य चि० रामदत्त शर्मा बम्बई आया और तब मुझे रेचक प्रयोग शुरू करनेका सुभीता मिला। ता० १२ सितम्बरसे मैं जुलाब * लेने लगा और ता० ९ अक्टूबर तक बराबर लेता रहा। हररोज ११ से लेकर १३ तक दस्त आते थे। इससे शरीर बहुत शिथिल हो गया और वजन भी २२ पौण्ड घट गया। अब जुलाब लेनेका सामर्थ्य न रहा। ता० १० को जुलाबकी दवा नहीं ली, फिर भी ११ दस्त आये और ता० ११ को भी वे जारी रहे। इससे यह निश्चय करना पडा कि दूध भात और छाँछ-भातका आहार जो प्रतिदिन लिया जाता था वह बन्द कर दिया जाय और उपवास चिकित्सा शुरू की जाय। यह उपवास २१ दिनोंका हुआ और इससे मुझे अपूर्व लाभ हुआ। कहाँ तो मैं उठ बैठ भी न सकता था और कहाँ ता० ३१ अक्टूबरको जब कि २१ वाँ उपवास था, नौकरके चले जानेसे मुझे नलपरसे जलके छह घडे भरकर लाने पडे और इसमें कुछ भी कष्ट नहीं हुआ।

ता० १ नवम्बरको ६ सन्तरोंका रस लेकर मैंने उपवास छोड दिया। इसी दिन दस बजे रातको एक ऐसा जबदस्त दस्त आया जैसा कि २९ दिनोंके जुलाबमें भी कभी न आया था। इसमें काले रंगका बहुत ही सचिक्कण मल निकला और तबसे शरीर बहुत ही हलका प्रतीत होने लगा।

ता० २ को एक दर्जन सन्तरेका रस लिया, परन्तु उससे सन्तुष्टि न हुई—यही जी चाहता रहा कि कुछ और आहार मिलता। ता० ३ को छह बारमें २० तोले मोठा दूध और एक दर्जन सन्तरोंका रस लिया, फिर भी भूख न मिटी। ता० ४ को ४० तोले दूध और एक दजन सन्तरेका रस लिया। आगे ८ नवम्बर तक एक पौण्ड दूध हररोज बढाकर लेता रहा और साथमें ६ सन्तरोंका रस। ता० ९

* यह जुलाब सनाय, गुलाबके फूल और सोंठके काढेमें अमलतासका गूदा मिलाकर तैयार किया जाता था।

और ढाई तोले चावलोंका भात, ४ पौण्ड दूध और ६ सन्तरोंका रस लिया। ता० १० से दूध और रसके सिवाय दाल भात भी लेने लगा; परन्तु फिर भी भोजनकी इच्छा कम न हुई।

ता० १२ नवम्बरको शरीरका वजन किया तो १४२॥ पौण्ड निकला और यह निश्चय हो गया कि आहार लेनेसे चर्बी फिर बढ़ेगी। हुआ भी यही, ज्यों ज्यों भोजनकी मात्रा बढ़ती गई त्यों त्यों शरीर भारी होता गया।

जब चर्बी फिर बढ़ गई और उठने बैठनेमें कष्ट होने लगा, तब जनवरी १९२३ से फिर उपवास शुरू किये, जिन्हें ३४ दिन तक जारी रक्खा। इस वर्ष अबतक मैं नीचे लिखी हुई सूचीके अनुसार ग्यारह बार लम्बे लम्बे उपवास कर चुका हूँ। यद्यपि मुझे इनसे स्थायी लाभ नहीं होता है, फिर भी जो कुछ होता है और जितने समयके लिए होता है, वह भी इतना सुखप्रद है कि मैं उन्हें बराबर करता हूँ। नहीं जानता कि मेरे प्रयोगमें ऐसी कौनसी त्रुटि है जिससे मुझे स्थायी लाभ नहीं होता है और चर्बीका बनना बन्द नहीं होता है। संभव है कि मेरी दूधकी खुराक इसका कारण हो, जिसे कि मैं छोड़ नहीं सकता हूँ। यदि कोई अनुभवी सज्जन इस विषयमें मुझे कुछ परामर्श देंगे तो मैं उनका कृतज्ञ होऊँगा।

माहिमी, बम्बई }
१०-६-३२ }

निवेदक—
रामेश्वरानन्द

उपवास-सूची

(१) ११ अक्टूबर १९२२ से ता० ३१ तक २१ उपवास
(२) १२ जनवरी १९२३ से १४ फरवरी तक ३४ „
(३) २७-८-२३ से २५-९-२३ तक ३० „
(४) ११-१-२४ से १३-२-२४ तक ३४ „
(५) १-१-२५ से ३१-१-२५ तक ३१ „
(६) २५-६-२६ से २४-७-२६ तक ३० „
(७) १५-७-२७ से २३-८-२७ तक ४० „
(८) २८-७-२८ से १०-९-२८ तक ४० „
(९) १८-१-२९ से २६-२-२९ तक ४० „
(१०) २६-७-३० से ८-९-३० तक ४४ „
(११) ३०-६-३१ से १४-८-३१ तक ४५ „

३८९ उपवास

खाँसी और श्वासपर २५ उपवास

अगस्त सन् १९२३ की बात है। मुझे अपने एक रिश्तेदारको चर्नीरोड स्टेशनपर पहुँचानेके लिए जाना था। घनघोर वर्षा हो रही थी। ९ बजे रातका समय था, कोई किरायेकी गाड़ी न मिल सकी, इसी लिए पैदल ही जाना पड़ा। पानीके साथ ओलोंकी हवा भी थी। छातेने कोई काम न दिया, और पानीने अच्छी तरह सराबोर कर दिया। फल यह हुआ कि जुकाम हो गया और उसने धीरे धीरे उग्र खाँसीका रूप धारण कर लिया। पहले कुछ पेटेन्ट दवाइयोंका सेवन किया, फिर कुछ देशी वैद्योंकी सेवा की, परन्तु जब कुछ लाभ न हुआ तब बम्बईके नामी डाक्टर और वैद्य पोपट प्रभुराम वैद्य एल० एम० एण्ड एस० प्राणाचार्यका जो कि आयुर्वेदके भी विशेषज्ञ हैं और जिन्होंने एक बार मुझे डबल निमोनियाके नाग पाशसे मुक्त किया था—इलाज शुरू किया गया। उन्होंने २६ दिन तक बहुत सावधानीसे उपचार किया, परन्तु वह सब व्यर्थ हुआ। इसी समय अमरावतीके सिंघई पन्नालालजीने जो मुझपर विशेष कृपा रखते हैं और बहुत ही उदार हैं मुझे इलाजके लिए अपने यहाँ बुलाया और मैं ता० १७ नवम्बरको अमरावती पहुँचकर २३ दिसम्बर तक वहीं रहा। वहाँ भी कई नामी वैद्यों और डाक्टरोंका इलाज किया, होमियोपैथी चिकित्सा भी की, परन्तु कोई लाभ नहीं हुआ, बल्कि वहाँ खाँसीके साथ साथ श्वास भी हो गया। लाचार बम्बई लौट आया और अत्यन्त कष्टमय जीवन व्यतीत करने लगा।

इसके कुछ समय बाद मेरे स्नेही और कृपालु मित्र डा० व्रजलालजी मेघाणी, मुझे मराठा हास्पिटलमें ले गये और वहाँ उन्होंने लगभग एक महीने तक अपनी देख-रेखके बीच रखकर डा० पटेल एम० डी०, एफ० आर० सी० पी० की सम्मतिसे मेरा इलाज किया। बीसों इंजक्शनों और औषधियोंका प्रयोग किया गया; परन्तु वह भी सब व्यर्थ हुआ।

इसके बाद डा० प्राणजीवन मेहता एम० डी० ने मेरे शरीरकी परीक्षा की और बतलाया कि तुम्हें प्लूरिसी हो गई है और यह बहुत कष्टसाध्य है। मैं एक नुसखा लिख देता हूँ, उसका सेवन करो, लाभ होगा। उक्त नुसखा बाजारसे खरीदकर मँगवा लिया गया; परन्तु पीना नहीं पड़ा और ता० जनवरीसे मुझे ज्वर आने लगा। अब मैं और भी घबड़ाया।

दूसरे दिन पूज्य वैद्यराज पं० रामेश्वरलालजीको मैंने अपनी सारी कष्ट-कथा सुनाई और कहा कि अब तो मैं जीवनसे तंग आ गया हूँ, बतलाइए, क्या करूँ। उन्होंने सम्मति दी कि तुम एक लम्बा उपवास करो। मेरा खयाल है कि उससे अवश्य लाभ होगा। तुम्हारा यह ज्वर तो पुकार पुकारकर कह रहा है कि तुम्हारे शरीरको उपवासकी जरूरत है। उस समय तक वैद्यराजजी स्वयं तीन बार लम्बे उपवास कर चुके थे, और अपने कुछ रोगियोंको भी उपवास चिकित्सासे अच्छा कर चुके थे। इसके सिवाय उनकी चिकित्सासे मैं कई बार लाभ उठा चुका था, मुझे उनपर विशेष श्रद्धा थी, इसलिए मैं उनकी आज्ञाको शिरोधार्य करके ता० २१ जनवरी १९२४ से उपवास करने लगा।

उपवासके पहले यह हालत थी कि सारी रात औंधा पड़ा रहता था, श्वास वेगके कारण किसीसे बात भी न कर सकता था। निरन्तर यही सोचा करता था कि किसी तरह मौत हो जाय, तो इस असह्य वेदनासे छुट्टी मिल जाय। पहले ही उपवाससे यह लाभ हुआ कि उस रातको पहले जितनी बेचैनी नहीं रही और कुछ समयके लिए निद्रा भी आ गई। दूसरी रातको अधिक आराम मिला और तीसरी रातको तो श्वास बिलकुल बैठ गया, रातभर मजेसे सोता रहा।

उस समय चार पाँच महीनेकी बीमारीके कारण शरीर बिलकुल क्षीण हो गया था और तापमान (टेम्परेचर) ९५ के लगभग आ गया था, इस कारण मेरे हितचिन्तक मित्र—जिनमें एक डाक्टर भी थे—उपवास करनेके विरुद्ध थे। मेरे पास उनकी बहुतसी दलीलोंका कोई उत्तर नहीं था, परन्तु उक्त तीन उपवासोंका फल देखकर तो मैंने यह कहना शुरू कर दिया कि उपवासोंसे भले ही मैं मर जाऊँ, परन्तु यह निश्चय है कि जितने दिन जीऊँगा, चैनसे जीऊँगा और श्वासके भयंकर कष्टसे बचा रहूँगा।

दुर्बलताके कारण यद्यपि मैं परिश्रम नहीं कर सकता था; फिर भी कमरेमें बराबर टहलता रहता था और पुस्तकें भी अकसर पढ़ा करता था। मेरे ऊपरसे एक बड़ा भारी बोझसा हट गया था, जिससे विचारोंका प्रवाह अच्छी गतिसे चलता था। प्यास बिलकुल नहीं लगती थी, फिर भी नियमसे कुछ ठंडा पानी दिन रातमें कई बार पीता था और तीसरे चौथे दिन एनीमा लेता था जिससे थोड़ा थोड़ा मल निकला करता था। नींद खूब आती थी और रातमें ६–७ घण्टेसे कम कभी न सोता था।

ज्यों ज्यों दिन जाने लगे त्यों त्यों शान्ति मिलने लगी। ऐसा मालूम होता था कि हररोज जो खुराक ली जाती थी, उसके पचानेमें ही शरीर अपनी सारी शक्ति लगा देता था, रोगको पचानेका उसे अवकाश ही नहीं था, परन्तु खुराक बन्द हो जानेसे वह शक्ति रोगको पचानेमें लग गई।

यद्यपि वैद्यराजजीकी इच्छा थी कि मैं पूरे ३० उपवास करूं, परन्तु मेरे टेम्परेचरकी हालत देखकर लोग चिन्तित हो रहे थे और मेरा शरीर भी बिल्कुल हड्डियोंका ढाँचा रह गया था, इस कारण उन्होंने २५ दिनोंके बाद ता० १५ फरवरी १९२४ को ही उपवास तुड़वा दिया। उस दिन मुझे ७ तोले अंगूरोंका रस दो तीन बारमें दिया गया। यह रस कितना सुस्वादु था, उसका वर्णन नहीं हो सकता। जीवनमें शायद पहली ही बार इस स्वादका अनुभव हुआ था। दूसरे दिन चौदह तोले अंगूरोंका रस दो दो घंटेके अन्तरसे पिलाया गया। तीसरे दिन रसके साथ थोड़ा थोड़ा दूध मिलाकर दिया गया। इसके बाद सूखे मुनक्का उबालकर उनका रस दूधके साथ दिया गया। फिर चावलोंका माँड और दूध, फिर चावलोंको भूनकर उनका जूस और दूध, उसके बाद मूँगका पानी, फिर मूँगकी दाल और भात फिर रोटी और परवलका शाक इस तरह धीरे १५ दिनके बाद मुझे मामूली भोजनपर लाया गया। दूधकी मात्रा हररोज थोड़ी थोड़ी बढ़ाई जाती रही। धीरे धीरे शरीरका वजन बढ़ने लगा और उसके साथ शक्ति भी। इस तरह विधिपूर्वक २५ उपवास करके मैंने एक भयंकर बीमारीसे छुटकारा पाया।

१४ वर्षके लड़केके २६ उपवास

विपत्ति कभी अकेली नहीं आती। जिन दिनों मैं खाँसी और श्वास कष्ट पा रहा था, उसी समय मेरे एक मात्र पुत्र चि० हेमचन्द्रको टाइफाइड या मोतीझरा हो गया और बड़ी मुश्किल यह हुई कि इसमें ही एक अनुभवहीन वैद्यने उसे एरण्डीके तेलका जुलाब दिला दिया जिससे यह और भी बिगड़ गया। तब पूज्य रत्नेश्वरानन्दजीकी सम्मतिसे उसके लिए भी लम्बे उपवासकी व्यवस्था करनी पड़ी। ता० १८ जनवरी सन् १९२४ से २ फरवरी तक १६ उपवास कराए गए, इसके बाद

ता० ३ से १५ तक थोड़ा थोड़ा दूध दिया गया, परन्तु जब देखा कि ज्वर निःशेष नहीं होता है तब ता० १६ से २५ फरवरी तक फिर उपवास कराये गये, परन्तु इतने पर भी जब ज्वर निःशेष नहीं हुआ और शरीर बहुत क्षीण हो गया, तब फिर दूध देना शुरू कर दिया गया, जो ता० १९ मार्च तक जारी रक्खा गया। ज्वर चला गया और ता० २० मार्चको पहले पहल दूध भात दिया गया। इस तरह एक १४ वर्षके लड़केने बिना किसी तरहकी विशेष कठिनाईके २६ पूरे उपवास किये और ३६ दिन तक वह केवल दूधपर रहा। इस प्रयोगसे पाठक समझ सकते हैं कि लम्बे उपवास करना उतना कठिन नहीं है जितना कि समझा जाता है और बिगड़े हुए टाइफाइडमें भी इससे लाभ होता है।

निवेदक—

नाथूराम प्रेमी

---

४६ दिनका उपवास

अभी हाल ही ता० २० जून १९२२ के दैनिक अर्जुनमें प्रकाशित हुआ है कि विलायतके मि० अलबर्ट बीट नामक एक सज्जन एक बार बीमार पड़े और किसी भी तरहकी चिकित्सासे अच्छे नहीं हुए। वे लगातार २८ वर्ष तक बिछौने पड़ रहे। डाक्टरोंने जवाब दे दिया। आखिर उन्होंने खाना छोड़ दिया और केवल पानीपर गुजर करने लगे। चार सप्ताहके बाद वे इतने कमजोर हो गये कि बिस्तरसे उठ नहीं सकते थे और उनका शरीर केवल हड्डियोंका ढाँचा रह गया। ४६ उपवास पूरे हो चुकनेपर उनकी बीमारी बिलकुल दूर हो गई और फिर उनका स्वास्थ्य इतना अच्छा हो गया कि वे अच्छे खासे पहलवान प्रतीत होने लगे। स्वस्थ होनेके उपरान्त वे कहते थे कि मैं कमसे कम १२० वर्ष तक जीवित रहूँगा, किन्तु ६ सालके बाद वे एक मोटरसे टकराकर मर गये। उनके लेखक कहते हैं कि यदि इस दुर्घटनासे उनकी मृत्यु न होती तो उनकी बात सच पूरी होती।

हिन्दीकी सर्वोत्तम और सुप्रसिद्ध ग्रन्थमाला
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकरका
संक्षिप्त सूचीपत्र।
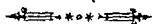
यह ग्रन्थमाला सन् १९१२ से निकल रही है। हिन्दी संसारमें यह सबसे पहली सबसे अच्छी और सबसे सुन्दर ग्रन्थमाला है। हिन्दीके प्रायः सभी साहित्यसेवियों, कवियों और सम्पादकोंने इसकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा की है। उपन्यास, नाटक काव्य जीवनचरित, समालोचना, राजनीति इतिहास विज्ञान सदाचार, आरोग्य आदि विविध विषयोंके कोई ७० ग्रन्थ इसमें निकल चुके हैं जिनका हिन्दीप्रेमी पाठकोंने खूब ही आदर किया है। इन ग्रन्थोंमेंसे अनेक ग्रन्थोंके चार चार और पाँच पाँच संस्करण हो चुके हैं और बराबर होते जाते हैं। ग्रन्थमालाका एक सेट मँगा लेनेसे एक छोटासा गृहपुस्तकालय (घरू लायब्रेरी) बन सकता है जो कुटुम्बके लिए सब तरहसे शान्ति और सुखका कारण होगा। आगे सब ग्रन्थोंका संक्षिप्त परिचय दिया जाता है —

१ **स्वाधीनता**। जान स्टुअर्ट मिलकी लिबर्टी का सुबोध और सरल अनुवाद। अनु० पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी। मू० १॥) सजिल्द २)

२ **जॉन स्टुअर्ट मिल**। स्वाधीनताके मूल लेखकका शिक्षाप्रद जीवनचरित विद्यार्थियोंके लिए अतिशय उपयोगी। मूल्य ॥), सजिल्द ॥।)

३ **प्रतिभा**। अतिशय सुरुचिसम्पन्न भावपूर्ण, मनोरंजक और शिक्षाप्रद उपन्यास। बालक युवा स्त्री और पुरुष सबके हाथमें देने योग्य। मू० १), १।=)

४ **फूलोंका गुच्छा**। अनेक भाषाओंसे अनुवादित बहुत ही उत्कृष्ट सुन्दर और शिक्षापूर्ण तेरह गल्पोंका संग्रह। मू० १) सजिल्द १॥)

५ **आँखकी किरकिरी**। महाकवि रवीन्द्रनाथ टागोरके सबसे और बहुत ही मनोरंजक उपन्यासका अनुवाद। मू० [illegible] २॥)

६ **चौबेका चिट्ठा**। स्वर्गीय बंकिम बाबूका सुप्रसिद्ध ग्रन्थ। हँसी मजाकके भीतर राजनीति समाजनीति, देशप्रेम आदिसे भरा हुआ। मू० ॥=) १।=)

७ **मितव्ययता** (गृह प्रबन्ध शास्त्र)। डॉक्टर स्माइल्सके 'थ्रिफ्ट' का भावानुवाद। शिक्षादायी और सदाचार सिखानेवाली पुस्तक। मू० ॥७)

२३ शाहजहाँ । यह भी द्विजेन्द्रबाबूका प्रसिद्ध और ऐतिहासिक नाटक है । मुगल बादशाह शाहजहाँ इसके प्रधान नायक हैं । मू० १) १॥)

२४ मानव जीवन । चरित्रकी शिक्षा देनेवाला श्रेष्ठ ग्रंथ । १॥) २)

२५ उस पार । द्विजेंद्र बाबूका सामाजिक नाटक । मू० १=), १॥=)

२६ ताराबाई । द्विजेन्द्रबाबूका राजपूतानेकी एक ऐतिहासिक घटनाके आधारसे लिखा हुआ पद्य-नाटक । मू० १), १॥)

२७ देश-दर्शन । हमारे देशकी दुर्दशाका जीता जागता चित्र आँखोंके सामने खड़ा कर देनेवाला अपूर्व ग्रन्थ । सचित्र । मू० २), स० ३)

२९ नवनिधि । सुप्रसिद्ध उपन्यासलेखक प्रेमचन्दजीकी चुनी हुई नौ गल्पोंका संग्रह । सभी गल्पें पवित्र और शिक्षाप्रद हैं । मू० ॥), १)

३० नूरजहाँ । द्विजेंद्रबाबूका ऐतिहासिक नाटक । मुगल बादशाह जहाँगीर और उनकी बेगम नूरजहाँके चरित्रोंके आधारसे लिखित । मू सजि-द १॥=)

३१ आयर्लैण्डका इतिहास । केसरी-सम्पादक श्रीयुत केलकरका लिखा हुआ उत्कृष्ट इतिहास-ग्रन्थ । भारतवासियोंके लिए अतिशय उपयोगी । मू० २)

३२ शिक्षा । साहित्यसम्राट् रवीन्द्रबाबूके शिक्षासम्बन्धी पाँच निबन्धोंका अनुवाद । सभी निबन्ध पढ़ने ही योग्य हैं । मू० ॥)

३३ भीष्म । द्विजेन्द्रबाबूका पौराणिक नाटक । ब्रह्मचर्य, पितृभक्ति और स्वार्थत्यागका जीता जागता चित्र । बहुत ही शिक्षाप्रद । मू (सजिल्द) १॥)

३४ कावूर । इटालीको आस्ट्रियाके चुंगलसे मुक्त करनेवाले महान् देशभक्त और राजनीतिज्ञका जीवनचरित । मू० १)

३५ चन्द्रगुप्त । द्विजेन्द्रबाबूका हिन्दू राजत्वके समयका ऐतिहासिक नाटक । मौर्यवंशी सम्राट् चन्द्रगुप्तके चरित्रको लेकर यह लिखा गया है । मू० १) १॥)

३६ सीता । द्विजेन्द्रबाबूका पौराणिक नाटक । महासती सीताका पवित्र कोमल और दिव्य-पूर्ण चरित्र-चित्रण । मू० ॥~)

३८ राजा और प्रजा । जगत्प्रसिद्ध विद्वान् रवीन्द्रबाबूके राजनीतिसम्बन्धी ११ निबन्धोंका अनुवाद । प्रत्येक देशभक्तके अध्ययनयोग्य । मू० १), १॥)

३९ गोबर-गणेश संहिता । व्यंग और वक्रोक्तियोंसे भरी हुई बहुत ही दिलचस्प चीज । आप हँसेंगे और साथ साथ ज्ञान भी प्राप्त करेंगे । मू० ॥)

४१ पुष्पलता । अतिशय मनोहर, हृदयग्राहक और अनुकरणीय कहानियोंका गुच्छा । गल्पें सबकी सब मौलिक हैं । लेखक श्रीयुत सुदर्शन । मू०), १!)

गंगा पुस्तकमाला का इकहत्तरवाँ पुष्प
तात्कालिक चिकित्सा
लालबहादुरलाल

७१

तात्कालिक चिकित्सा

संपादक
श्रीदुलारेलाल भार्गव
(सुधा-संपादक)

नर-कंकाल

तात्कालिक चिकित्सा

पहला व्याख्यान

मनुष्य शरीर की स्थूल रचना

मनुष्य शरीर के मुख्य तीन भाग हैं—(१) सिर (Head), (२) धड़ (Trunk) और (३) ऊपर तथा नीचे की शाखाएँ (Upper and Lower Limbs)। वास्तव में यह मनुष्य शरीर हड्डियों का एक ढाँचा है, जिसके अंदर शरीर को जीवित रखनेवाले मुख्य मुख्य अंग अपना अपना कार्य करते रहते हैं। इस अस्थि पंजर के ऊपर मांस, और मांस के ऊपर त्वचा की खोल चढ़ी हुई है।

समस्त शरीर में कुल २४६ भिन्न भिन्न हड्डियाँ हैं, जिनमें दाँतों की हड्डियाँ भी सम्मिलित हैं। ये हड्डियाँ भिन्न भिन्न कार्यों के लिये भिन्न भिन्न आकार की हैं। सब हड्डियों से संगठित ढाँचे का ही नाम अस्थि पंजर (Skeleton) है।

इस अस्थि पंजर के तीन मुख्य कार्य हैं—(१) यह शरीर को एक मुख्य आकार में बनाए रखता है, (२)

शरीर के भीतरी आवश्यक कोमल अंगों की रक्षा करता है, और (३) शरीर में गति उत्पन्न करता है।

सारे शरीर का राजा मस्तिष्क (Brain), खोपड़ (Skull) के मज़बूत क़िले में सुरक्षित राज्य करता है। यह खोपड़ा आठ चिपटा एवं मजबूत हड्डियों से बना हुआ एक सन्दूक़ है।

सिर के नीचे के भाग (धड़) में दो कोठरियाँ हैं। ऊपर की कोठरी का नाम वक्षस्थल (Chest or Thorax) और नीचे की कोठरी का नाम पेट (Abdomen) है। वक्ष का निर्माण बारह जोड़ी पसलियों (Ribs), वक्ष की हड्डी (Breast bone or Sternum) तथा रीढ़ की हड्डी (Spine) द्वारा हुआ है। धड़ के निम्न भाग अर्थात् पेट में विशेष हड्डियाँ नहीं हैं। उसके पिछले भाग से केवल रीढ़ का सिलसिला चला गया है। यह रीढ़ की हड्डी अर्थात् मेरु दण्ड खोपड़े से प्रारम्भ होकर जाँघों की हड्डी (Pelvis or Hipbone) से जुड़ा हुआ है। यह रीढ़ ही शरीर का स्तम्भ है, जो प्राय २४ या २६ छोटी-छोटी कशेरुकों (Vertebra) से मिलकर निर्मित है। इन कशेरुकों के बीच में कार्टिलेज (Cartilage) की एक मुलायम एवं लचीली गद्दी दी हुई है जिसमें होकर शरीर में विचरनेवाली नसें और रगें निकली हुई हैं। इस प्रकार रीढ़ एक ठोस और लगातार हड्डी न होकर यानी कई

रिंग्रगदार दंड है, जो उछलने कूदने के समय धक्का खाकर, रेल-गाड़ियों के बट्ट (Butt) के समान, धक्के के असर को मस्तिष्क आदि तक नहीं पहुँचने देता। दूसरी खूबी इस मेरु दंड की यह है कि इसकी शक्ल बिलकुल सीधी नहीं है। इस कारण भी धक्के का प्रभाव मस्तिष्क तक नहीं पहुँच पाता।

मेरुदंड

धड़ के ऊपरी भाग अर्थात् वक्षस्थल-गह्वर के अंदर शरीर के चालक अंग, हृदय (Heart) और फुप्फुस यानी फेफड़े (Lungs) हैं, जिनकी रक्षा पसलियों द्वारा निर्मित कवच करता रहता है। धड़ के निम्न भाग उदर में शरीर के पोषक अंग, आमाशय (Stomach), छोटी और बड़ी अँतड़ियाँ (Small and Large Intestines), क्लोम (Pancreas), प्लीहा (Spleen), वृक्क (kidneys), यकृत (Liver) और मूत्राशय (Bladder) हैं।

शरीर के तीसरे मुख्य भाग के अंतर्गत दो ऊर्ध्व एवं दो

निम्न शाखाएँ (The Upper & Lower limbs) हैं।
ऊर्ध्व शाखाएँ कंधे की हड्डियों द्वारा धड़ से जुड़ी हुई हैं। प्रत्येक ऊर्ध्व शाखा के तीन भाग हैं—(१) कुहनी के ऊपर का भाग (The upper Arm), (२) कुहनी और हाथ के बीच का भाग (The forearm) और (३) हाथ (The hand)।

प्रत्येक ऊर्ध्व शाखा में नीचे लिखी अस्थियाँ हैं—

(१) कुहनी के ऊपर के भाग में ३	१ स्कन्धास्थि (Scapula o Shoulder-blad
	२. अक्षक (Clavicle o Collar bone
	३ प्रगंडास्थि (Humerus)
(२) कुहनी और हाथ के बीच के भाग में २	१ अन्त प्रकोष्ठास्थि (Ulna)
	२ बहि प्रकोष्ठास्थि (Radius
(३) हाथ में २७	८ कलाई की हड्डियाँ (Carpu
	५ करभास्थि (Meta Carpus
	१४ पर्वें (Phalanges of th Fingers)

हाथ के तीन भाग हैं—(१) कलाई, (२) हथेली और (३) उँगलियाँ तथा अँगूठा। शरीर की निम्न शाखाएँ भी ऊर्ध्व शाखाओं की भाँति प्रत्येक तीन भागों में विभाजित

हैं—जाँघ, नीचे की टाँग और पैर । प्रत्येक निम्न शाखा में निम्न लिखित अस्थियाँ हैं—

(१) जाँघ में २
- १ नितंबास्थि (Hip bone)
- २ उर्वस्थि (Femur)

(२) नीचे की टाँग में ३
- १ घुटने की हड्डी (Knee Cap)
- २ जंघास्थि (Tibia or Shinbone)
- ३ अनुजंघास्थि (Fibula or Splint bone)

(३) पैर में २६
- ७ टखने की अस्थियाँ अथवा कूर्चास्थियाँ (Tarsal bones)
- ५ प्रपाद की अस्थियाँ (Meta-Tarsal bones)
- १४ पोरें (Phalanges of the toes)

शरीर में उर्वस्थि के सदृश बड़ी एवं मजबूत और कठोर हड्डी नहीं है ।

शरीर में कुल तीन प्रकार की हड्डियाँ हैं—(१) लंबी और पोली, (२) चिपटी और (३) अनियमित आकार की (Irregular) । लंबी और पोली हड्डियाँ ऊर्ध्व एवं निम्न शाखाओं में हैं ।

खास-खास चिपटी हड्डियाँ खोपड़ी में हैं, और अनियमित आकार की हड्डियाँ रीढ़ की गुरियाँ (Vertebrae of the Spine) हैं ।

'भावप्रकाश' के अनुसार मनुष्य शरीर के अन्तर्गत कुल ३०० हड्डियाँ हैं—हाथ और पैरों में सब मिलाकर १२०, पसलियों, नितयों, छाती, पीठ और उदर में सब मिलाकर ११७ और गर्दन के ऊपर भाग अर्थात् सिर में ६३।

ये शरीर की भिन्न भिन्न हड्डियाँ जहाँ पर एक दूसरे से जुड़ी हुई हैं, उन स्थानों को जोड़ (Joints) कहते हैं। ये जोड़ दो या दो से अधिक हड्डियों के एक स्थान पर मिलने से बने हैं। इन मिलनेवाली हड्डियों के सिरों पर चिकनी कार्टिलेज लगी रहती है, और ये सिरे एक दूसरे पर लिगामेंट्स (Ligaments) या सौत्रिक तन्तुओं द्वारा बँधे होते हैं, जो हड्डियों को किसी विशेष दिशा में घूमने देते हैं। ये जोड़ विशेषकर दो प्रकार के हैं—(१) घुंडीदार (Ball and socket Joints) और (२) साँकलदार (Hinge Joints)।

घुंडीदार जोड में, एक हड्डी दूसरी [illegible] में बने हुए छल्ले में होकर, स्वतन्त्रता पूर्वक प्रत्येक दिशा में घूमती है। जैसे जोड कंधे और कमर के जोड हैं। दूसरे प्रकार के साँकल सदृश जोड केवल ऊपर-नीचे अथवा दाएँ-बाएँ ही घूम सकते हैं, जैसा कुहनी और घुटने के जोड़ों में देखा जाता है। इनके अतिरिक्त शरीर में अचल सन्धियाँ (Fixed Joints) भी हैं। इस प्रकार की सन्धियाँ विशेषतः खोपड़ी में मिलती हैं। सुश्रुत और भावप्रकाश में कुल २१० सन्धियाँ लिखी हैं। डॉक्टरी मत के अनुसार सारे शरीर में २११

तो केवल चेष्टावाली (चल) सन्धियाँ हैं। हाथ, पैर, जबड़े तथा कमर में चेष्टा-युक्त और शेष स्थानों में स्थिर या अचल सन्धियाँ हैं। हाथ पैरों में मिलाकर ६८, कोष्ठ में ५६ और ग्रीवा तथा ग्रीवा के ऊर्ध्व भाग अर्थात् सिर में सब मिलकर ८३ सन्धियाँ हैं। कोष्ठ की सन्धियों में से कमर में ३ पीठ की रीढ़ में २४, दोनों पसलियों में २४ और वक्ष में ८ हैं।

पुट्ठे अथवा मांस पेशियाँ (Muscles)

शरीर में मांस हर जगह रहता है, कहीं थोड़ा और कहीं अधिक। जितनी गतियाँ शरीर की होती हैं, वे सब इसी मांस द्वारा होती हैं। चलना फिरना, हाथ उठाना, मुँह खोलना, बोलना, साँस लेना, शरीर में रक्त का दौड़ना—ये सब कार्य मांस द्वारा ही होते हैं। कंकाल से लगा हुआ मांस बहुत से छोटे छोटे गट्ठों से बना है। इन पृथक् पृथक् गट्ठों को पुट्ठे या पेशियाँ कहते हैं। ये पुट्ठे या पेशियाँ आपस में सौत्रिक तन्तुओं द्वारा जुड़ी
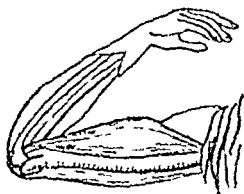
मांस-पेशियाँ

रहती हैं। किन्तु जो मांस पेशियाँ आशयों, नलियों, मार्गों और हृदय आदि अंगों में हैं, वे पृथक् पृथक् पेशियाँ

में विभक्त नहीं हैं। इन मांस-पेशियों में यह गुण है कि ये सिकुड़कर मोटी तथा छोटी हो सकती हैं, और फिर फैलकर पहले-सी हो जाती हैं।

मांस पेशियों के सिरे अस्थियों, कार्टिलेजों, त्वचा या झिल्लियों से जुड़े रहते हैं। इस कारण जब कोई मांस पेशी सिकुड़कर छोटी होती है, तो उस चीज़ को, जिससे वह जुड़ी रहती है, अपने साथ खींचती है। इस प्रकार अंगों में गति उत्पन्न होती है। शरीर में प्राय ५१९ मांस-पेशियाँ हैं। इनमें से ४५ अस्थियों की गति के काम में आती हैं। भाव प्रकाश के मत से मनुष्य शरीर में कुल ५०० मांस पेशियाँ हैं, जिनमें ४०० शाखाओं में, ६६ कोष्ठ में और ३४ ग्रीवा के ऊर्ध्व भाग में हैं।

ये मांस-पेशियाँ दो प्रकार की हैं—(१) ऐच्छिक (Vol untary) और (२) अनैच्छिक (Involuntary)। शाखाओं की मांस पेशियाँ ऐच्छिक हैं। उन्हें हम जब चाहें काम में ला सकते हैं, और जब चाहें, रोक सकते हैं। किन्तु हृदय, आँख की पलक आदि की मांस पेशियाँ अनैच्छिक हैं। ये बिना हमारे ध्यान दिए अपना काम स्वयं करती रहती हैं।

दूसरा व्याख्यान

शरीर के भीतरी अङ्ग (The Internal Organs)

सिर के मजबूत खोपड़े (Cranium or Skull) के अन्दर शरीर का शासनकर्ता मस्तिष्क (Brain) निवास करता है। यह मस्तिष्क कुछ-कुछ अण्डाकार होता है। इसका पिछला भाग अगले भाग की अपेक्षा अधिक चौड़ा और मोटा होता है। लंबाई इसकी प्राय (सामने से पीछे तक) ६ से ६½ इंच, चौडाई (एक कान से दूसरे कान तक) प्राय ५½ इंच और मोटाई प्राय ५ इंच होती
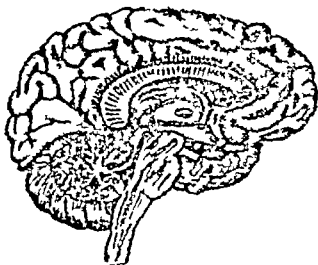
मस्तिष्क

है। वास्तव में मस्तिष्क के तीन भाग हैं—वृहत् मस्तिष्क (Cerebrum), लघु मस्तिष्क (Cerebellum) और सुषुम्ना शीर्षक (Medulla oblongata)। मस्तिष्क का जो भाग ऊपर होता है, वह वृहत् मस्तिष्क है। इस वृहत् मस्तिष्क के दो टुकड़े होते हैं। इन दोनों टुकड़ों के बीच में एक दरार रहती है। यह वृहत् मस्तिष्क आँखों की भौंहों के ऊपर से प्रारम्भ होकर सिर के पीछे जहाँ बालों का निकलना समाप्त होता है उससे १२ इंच ऊपर तक, फैला हुआ है।

लघु मस्तिष्क वृहत् मस्तिष्क के नीचे रहता है। और, उसके नीचे सुषुम्ना शीर्षक होता है।

कपाल की तली के पिछले भाग में एक बड़ा छेद है, जिससे कशेरुका-नली मिली होती है। कशेरुका-नली में जो अंग रहता है, उसे सुषुम्ना कहते हैं। यह मस्तिष्क के निचले भाग सुषुम्ना शीर्षक से निकलता है।

वृहत् मस्तिष्क के तीन बड़े कार्य हैं—बुद्धि, मनन और स्मरण शक्ति। इसकी अनुपस्थिति या क्षति में हम लोग न तो कुछ सोच सकते हैं, और न कुछ स्मरण ही कर सकते हैं। यही नहीं, वृहत् मस्तिष्क के बिना न तो हम कुछ देख सकते, सुन सकते, सूँघ सकते, चख सकते और न स्पर्श ही कर सकते हैं। इसके बिना हम अपनी मांस पेशियों को भी इच्छानुसार नहीं चला सकते।

लघु मस्तिष्क का कार्य विशेषकर ऊर्ध्व और निम्न शाखाओं पर शासन करना है। बिना लघु मस्तिष्क की आज्ञा न तो निम्न शाखाएँ हमारे शरीर को खड़ा ही रख सकते और न हम अपने हाथ पैरों को इच्छानुसार चला ही सकते हैं । सुषुम्ना शीर्षक, मस्तिष्क का सबसे निचला भाग है, और यह मस्तिष्क का सबसे अधिक आवश्यक अग है। क्योंकि यदि सुषुम्ना शीर्षक घायल हो जाय, तो तुरत मौत हो जाती है । यह प्राय डेढ़ इच तथा और आधा इच मोटा होता है । यह सुषुम्ना शीर्षक फेफड़ों, हृदय और भोजन मार्ग की मास पेशियों पर शासन करता है । इसका कुछ शासन जिह्वा, नेत्र और कानों पर भी है । गर्दन के पिछले भाग में भारी चोट का लग जाना प्राणात कर देता है। क्योंकि वहीं पर सुषुम्ना शीर्षक
ब्रह्मदेश में मृत्यु की सजा गर्दन के पिछले भाग में एक भारी चोट पहुँचाकर दी जाती है। सुषुम्ना शीर्षक फेफड़ों की गति पर भी शासन करता है। अत सुषुम्ना शीर्षक के घायल होते ही फफड़े अपना काय करना बद कर देते हैं, और साँस रुक जाती अर्थात् मृत्यु आ जाती है।

सुषुम्ना शीर्षक से चलकर सुषुम्ना (Spinal Cord) कारोरुक नली (Spine) में दौड़ता है, और अपने पास सूत्रों (Nerves) को कारोरुक की गुठलियों के बीच-बीच

से निकालकर सारे शरीर के अंग-प्रत्यंगों में भेजता है। ये वात-सूत्र बिजली के तारों की भाँति काम करते हैं। ये मस्तिष्क की आज्ञा भिन्न भिन्न अंगों को, और उनकी सूचनाएँ मस्तिष्क को ले जाते और ले आते रहते हैं। इन सूत्रों का रंग सफेद होता है, और ये बहुत ही सूक्ष्म होते हैं। ये वात-सूत्र दो प्रकार के होते हैं—एक वे, जो शरीर के भिन्न भिन्न अंग प्रत्यंगों से मस्तिष्क तक सूचनाएँ लाते हैं। और दूसरे वे, जो मस्तिष्क से, उन सूचनाओं के उत्तर में, आज्ञा पहुँचाते हैं। किंतु अधिकांश ऐसे वात-सूत्र हैं, जो दोनों कार्य संपन्न करते हैं।

उदाहरण-स्वरूप, यदि मेरा पैर किसी दूसरे के जूते के अंदर दब जाता है, तो वहाँ का सूचक वात-सूत्र उस कार्य की सूचना तुरंत मस्तिष्क को देता है, और मस्तिष्क तुरंत उस पर विचार कर दूसरे या उसी वात-सूत्र द्वारा (आज्ञा-वाहक सूत्र) उचित आज्ञा भेजता है। उस स्थान की मांस-पेशियाँ सिकुड़कर और फैलकर तुरंत पैर का हटा
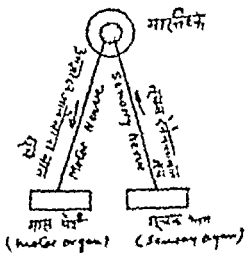
लेती हैं। तत्पश्चात् मस्तिष्क शरीर के अन्य अंगों को आज्ञा देता है—जैसे मुख को कि वह उक्त मनुष्य को चैतन्य कर दे। और, यदि मस्तिष्क की यह धारणा होती है कि उसने जान बूझकर शरारतन् ऐसा किया है, तो वह हाथ को आज्ञा देता है कि वह उसे पकड़े या थप्पड़ लगावे। ये सब कार्य थोड़े ही समय के अंदर हो जाते हैं। कारण, वात-सूत्रों में होकर सूचना या आज्ञा एक सेकंड में १४० फीट की गति से चलती है।
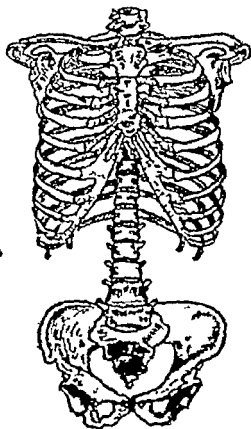
धड़ का अस्थि-पंजर

सिर के गह्वर के बाद शरीर के मध्य भाग, धड़ में, दो गह्वर हैं—वक्षस्थल और उदर। धड़ का ऊर्ध्व भाग, १२ जोड़ी पसलियों तथा उरोस्थि और कशेरुदंड (Spine) से घिरा हुआ एक मज़बूत संदूक है, जिसमें शरीर के सबसे आवश्यक अं।

हृदय, रक्त की बड़ी बड़ी और प्रधान नलियाँ, फेफड़े और उनसे जुटी हुई सुषुम्ना या वायु-नलियाँ और अन्न प्रणाली (Gullet or Food pipe) हैं। पसलियों में भी केवल ऊपर की सात जोड़ी, कार्टिलेज से निकलकर वक्षोऽस्थि (Sternum) से जुटी हुई हैं। आठवीं, नवीं और दसवीं वक्षोऽस्थि तक नहीं पहुँचतीं। आठवीं पसली ऊपरवाली सातवीं से, नवीं आठवीं से और दसवीं नवीं से बँधी रहती है।

सबसे नीचे की ११वीं और १२वीं पसली छोटी होती है, और वक्षोऽस्थि से नहीं मिलतीं। इन्हें तैरती हुई पसलियाँ (Floating Ribs) कहते हैं, तथा ८, ९, १०, ११ और १२वीं जोड़ी पसलियों को झूठी पसलियाँ (False Ribs) भी कहते हैं।

धड़ के निम्न भाग उदर में आमाशय, छोटी-बड़ी आँतड़ियाँ, यकृत (Liver), प्लीहा (Spleen) वृक्क और मूत्राशय (Bladder) हैं।

हृदय—यह अनैच्छिक मांस-पेशियों द्वारा बना हुआ एक मजबूत, बँधी मुट्ठी के बराबर, साधारण सेब जैसा एक थैला है, जिसमें चार खाने हैं। दाहने दो खाने, बाँयें दोनों खानों से एक मजबूत पर्दे द्वारा पृथक् किए हुए हैं। दाहनी ओर के दोनों खाने आपस में खुले हुए हैं, और बाईं ओर के दोनों खाने आपस में बन्द। हृदय के दाहने कोठों में सारे शरीर से रक्त इकट्ठा होता रहता और बाँये कोठों से सारे शरीर में

हृदय
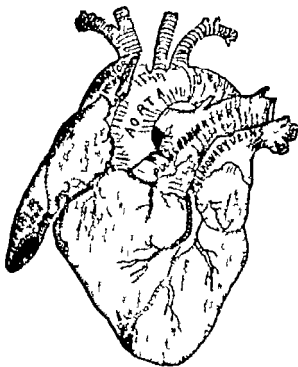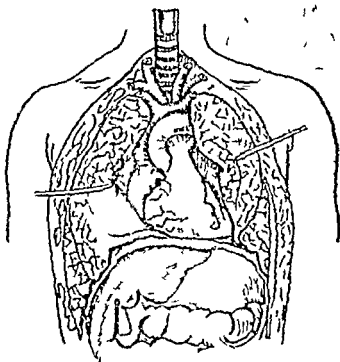
वक्ष-स्थल के भीतरी अंग और उदर

भेजा जाता है। हृदय का अधिकांश वक्ष स्थल की बाईं ओर रहता है। इसी कारण बालचर लोग जब एक दूसरे से मिलते हैं, तब आपस में बायाँ हाथ मिलाते हैं, जिसका तात्पर्य होता है कि "आपको हृदय के पास रखता हूँ।"

यह हृदय दोनों फेफड़ों के बीच, वक्ष के भीतर, सुरक्षित रहता है। जैसा कि ऊपर कहा गया है, हृदय-कोष भीतर से एक खड़े मांस के पर्दे से दाहने और बायें पक्ष में विभाजित है, जिनमें आपस का कोई संपर्क नहीं होता। प्रत्येक पक्ष में दो-दो मंज़िलें होती हैं। ऊपर की मंज़िलों को माहक

कोष्ठ (Auricles) और नीचे की मंजिलों को क्षेपक कोष्ठ (Ventricles) कहते हैं।

इस प्रकार हृदय में ४ कोठरियाँ हैं—

(१) दाहना ग्राहक-कोष्ठ

(२) दाहना क्षेपक-कोष्ठ

(३) बायाँ ग्राहक कोष्ठ

(४) बायाँ क्षेपक कोष्ठ

हृदय का संक्षिप्त चित्र
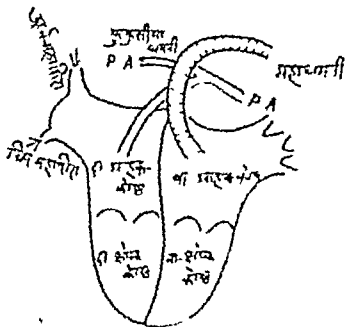
हृदय के दाहने ग्राहक-कोष्ठ में जो दो ग्राहक नलियाँ लगी हुई हैं। ये दोनों महाशिराएँ हैं। ऊपरवाली ऊर्ध्व महाशिरा (Upper or Superior Vena Cava) और

नीचेवाली निम्न महाशिरा (Lower or Inferior Vena Cava) कहलाती है। ऊर्ध्व महाशिरा अशुद्ध रक्त को सिर, ऊर्ध्व शाखाओं और वक्ष से दाहने ग्राहक कोष्ठ में ले आती है, और निम्न महाशिरा शरीर के शेष निम्न भागों से अशुद्ध एवं विकारीरक्त को उक्त ग्राहक-कोष्ठ में ला उँडेलती है। इस प्रकार विकारी अशुद्ध रक्त से परिपूर्ण हो जाने पर दाहने ग्राहक-कोष्ठ की दीवालें सकुचित होती हैं, और चूँकि महाशिराओं के कपाट बंद हो जाते हैं, अतः रक्त दाहने ग्राहक-कोष्ठ से दाहने क्षेपक-कोष्ठ में भरता है। इस दाहने क्षेपक कोष्ठ से एक नली निकलती है, जिसकी आगे चलकर दो शाखाएँ हो जाती हैं। इनमें से एक दाहने और दूसरी बाएँ फेफड़े को जाती है। इन्हें फुप्फुसीय धमनियाँ (Pulmonary Arteries) कहते हैं। इन फुप्फुसीय धमनियों द्वारा अशुद्ध रक्त फेफड़े में पहुँचता है, जहाँ वह फुप्फुसों में आई हुई ऑक्सिजन (Oxygen) से मिलकर फिर शुद्ध होता है, और तत्पश्चात् चार नलियों द्वारा हृदय के बाएँ ग्राहक कोष्ठ को लौट पड़ता है। इन लानेवाली नलियों में से दो दाहने और दो बाएँ फुप्फुस से आती हैं। इन्हें फुप्फुसीय शिराएँ (Veins) कहते हैं।

स्मरण रहे, शुद्ध रक्त-वाहक नलियों को धमनियाँ और अशुद्ध रक्त-वाहक नलियों को शिराएँ कहते हैं। किंतु फुप्फुसीय धमनियाँ ही केवल अशुद्ध रक्त को हृदय से

फुफ्फुसों में से आती हैं। वास्तव में शरीर के भिन्न भिन्न देशों से हृदय की ओर रक्त को ले आनेवाली नलियों को शिराएं* (Arteries) और हृदय से शरीर के भिन्न भिन्न देशों और भागों की ओर रक्त को ले जानेवाली नलियों को धमनियाँ कहते हैं।

हृदय का जब बायाँ ग्राहक कोष्ठ शुद्ध रक्त से परिपूर्ण हो जाता है, तब उसकी दीवालों की मांस पेशियाँ सिकुड़ती हैं, और रक्त नीचे की ओर बाएँ क्षेपक-कोष्ठ में प्रवेश करता है। इस बाएँ क्षेपक-कोष्ठ के पिछले भाग से एक बड़ी मोटी नली निकलती है, जिसे महाधमनी कहते हैं। फुफ्फुसीय धमनियों को छोड़कर शरीर में जितनी धमनियाँ हैं, वे सब इसी महाधमनी से निकलती हैं।

इस प्रकार शुद्ध रक्त हृदय से महाधमनी द्वारा निकल कर, उसकी शाखाओं और केशिकाओं (Capillaries) में भ्रमण करता हुआ शरीर के सब अंगों और भागों को आवश्यक पदार्थ देकर, फिर दो महाशिराओं द्वारा दाहिने ग्राहक कोष्ठ में, शरीर की अशुद्धियाँ लेकर, स्वयं अशुद्ध होकर लौटता है।

हृदय के ऊपरी दो कमरे, दाहिने और बाएँ ग्राहक-कोष्ठ एक साथ संकुचित तथा विस्तृत होते रहते हैं, और निम्न दो क्षेपक-कोष्ठ एक साथ। अर्थात् जब ऊपर के दोनों ग्राहक-कोष्ठ संकुचित होते रहते हैं, उस समय नीचे के

दोनों क्षेपक-कोष्ठ एक साथ विस्तृत होते रहते हैं, और जब नीचे के दोनों क्षेपक-कोष्ठ एक साथ संकुचित होते हैं, उस समय ऊपर के दोनों ग्राहक-कोष्ठ एक साथ विस्तृत हो जाते हैं। इन्हीं ग्राहक और क्षेपक-कोष्ठों के विस्तृत एवं संकुचित होने के कारण हृदय में हर समय धड़कन होती है। प्राय एक मिनट में हृदय ७२ बार रक्त ग्रहण करता और इतनी ही बार उसे आगे को ढकेलता है।

धमनीय शुद्ध रक्त का रंग सुर्ख होता है। किंतु जब वह केशिकाओं में बहता है, तब उसमें जो ऑक्सिजन रहता है, वह शरीर के सेलों (Cells) में पहुँच जाता है, और उस रक्त में कार्बनद्विओषित गैस (Carbon dioxide gas) या कार्बोनिक एसिड गैस मिल जाती है। इसलिये इन केशिकाओं के रक्त का रंग स्याही लिए रहता है। इन केशिकाओं के आपस में जुटने से रक्त की मोटी-मोटी नलियाँ बन जाती हैं। जिनमें वही दूषित स्याही मायल रक्त हृदय की ओर बहता है। ये रक्त की नलियाँ आगे बढ़कर हृदय के पास दो महा-शिराएँ बन जाती हैं, जिनमें होकर वह अशुद्ध रक्त फिर दाहने ग्राहक-कोष्ठ में एकत्रित होता है। इस प्रकार हृदय से चला हुआ शुद्ध रक्त शरीर की रग-रग में भ्रमण करता हुआ, अधिकांश गर्द होकर और शेष शरीर की अशुद्धियाँ को लेता हुआ, फिर हृदय में प्रवेश करता है। रक्त की

फुप्फुसा में ले आती हैं। वास्तव में शरीर के भिन्न भिन्न देशों से हृदय की ओर रक्त को ले आनेवाली नलियों को शिराएँ (Arteries) और हृदय से शरीर के भिन्न भिन्न देशों और भागों की ओर रक्त को ले जानेवाली नलियों को धमनियाँ कहते हैं।

हृदय का जब बायाँ ग्राहक-कोष्ठ शुद्ध रक्त से परिपूर्ण हो जाता है, तब उसकी दीवालों की मांस पेशियाँ सिकुड़ती हैं, और रक्त नीचे की ओर बायें क्षेपक-कोष्ठ में प्रवेश करता है। इस बाएँ क्षेपक-कोष्ठ के पिछले भाग से एक बड़ी मोटी नली निकलती है, जिसे महाधमनी कहते हैं। फुप्फुसीय धमनियों को छोड़कर शरीर में जितनी धमनियाँ हैं, वे सब इसी महाधमनी से निकलती हैं।

इस प्रकार शुद्ध रक्त हृदय से महाधमनी द्वारा निकल कर, उसकी शाखाओं और केशिकाओं (Capillaries) में भ्रमण करता हुआ शरीर के सब अंगों और भागों को आवश्यक पदार्थ देकर, फिर दो महाशिराओं द्वारा दाहने ग्राहक कोष्ठ में, शरीर की अशुद्धियाँ लेकर, स्वयं अशुद्ध होकर लौटता है।

हृदय के ऊपरी दो कमरे, दाहने और बाएँ ग्राहक-कोष्ठ, एक साथ संकुचित तथा विस्तृत होते रहते हैं, और निम्न दो क्षेपक-कोष्ठ एक साथ। अर्थात् जब ऊपर के दोनों ग्राहक-कोष्ठ संकुचित होते रहते हैं, उस समय नीचे के -

दोनों क्षेपक कोष्ठ एक साथ विस्तृत होते रहते हैं, और जब नीचे के दोनों क्षेपक-कोष्ठ एक साथ संकुचित होते हैं, उस समय ऊपर के दोनों ग्राहक कोष्ठ एक साथ विस्तृत हो जाते हैं। इन्हीं ग्राहक और क्षेपक कोष्ठों के विस्तृत एवं संकुचित होने के कारण हृदय में हर समय धड़कन होती है। प्राय एक मिनट में हृदय ७२ बार रक्त ग्रहण करता और इतनी ही बार उसे आगे को ढकेलता है।

धमनीय शुद्ध रक्त का रंग सुर्ख होता है। किन्तु जब वह केशिकाओं में बहता है, तब उसमें जो ऑक्सिजन रहता है, वह शरीर के सेलों (Cells) में पहुँच जाता है, और उस रक्त में कार्बनद्विओषित गैस (Carbon dioxide gas) या कार्बोनिक एसिड गैस मिल जाती है। इसलिये इन केशिकाओं के रक्त का रंग स्याही लिए रहता है। इन केशिकाओं के आपस में जुटने से रक्त की मोटी-मोटी नलियाँ बन जाती हैं। जिनमें वही दूषित स्याही मायल रक्त हृदय की ओर बहता है। ये रक्त की नलियाँ आगे बढ़कर हृदय के पास दो महाशिराएँ बन जाती हैं, जिनमें होकर वह अशुद्ध रक्त फिर दाहने ग्राहक-कोष्ठ में एकत्रित होता है। इस प्रकार हृदय से चला हुआ शुद्ध रक्त शरीर की रग-रग में भ्रमण करता हुआ, अधिकांश गर्म होकर और शेष शरीर की अशुद्धियों को लेता हुआ, फिर हृदय में प्रवेश करता है। रक्त की

इस गति को रक्तपरिभ्रमण (Blood Circulation) कहते हैं।

फुप्फुस या फेफड़े—ये दो होते हैं, और हृदय के दाहिनी ओर बाईं ओर रहते हैं। ये हृदय, अन्न प्रणाली (Gullet) और रक्त की नलियों से घिरे हुए स्थान

फुप्फुस
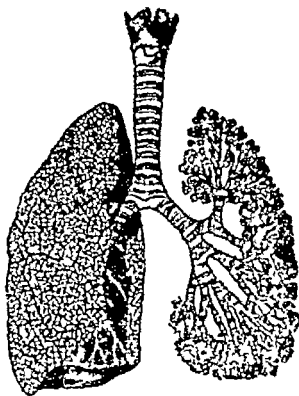
को छोड़ बाकी वक्ष के अन्दर का भरे हुए हैं। ये वायु-वाहक और रक्तवाहक छोटी छोटी और पतली
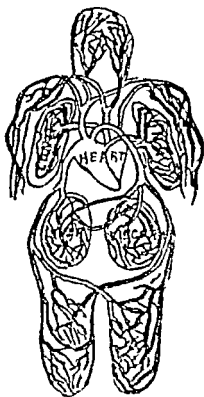
रक्त-परिभ्रमण

नलियों से बुने हुए जाल से बने हुए हैं, जिन पर एक पतला सौत्रिक ततु से निर्मित वेष्ट चढ़ा हुआ है। नथुनों से लेकर फुप्फुस तक जो वायु-मार्ग है, उसे श्वास-मार्ग (Wind Pipe or Trachea) कहते हैं। आगे चल-कर इस श्वास मार्ग की दो शाखाएँ हो जाती हैं। एक दाहने फुप्फुस की ओर जाती है, और दूसरी बाएँ फुप्फुस की ओर। फुप्फुसों में पहुँचकर इन नलियों की अनेक सूक्ष्म शाखाएँ हो जाती हैं, जो फुप्फुसों के प्रत्येक भाग में व्याप्त हैं। इस प्रकार साँस ली हुई वायु समस्त फुप्फुसों में पहुँचती है, और उनमें भ्रमण करके, फिर श्वास-मार्ग से बाहर आती है। गहरी साँस लेने पर ही वायु फुप्फुसों के सब भागों में दौड़ सकती है, अत प्रत्येक प्राणी को गहरी साँस लेनी चाहिए। दिन में और विशेषकर प्रात काल कोई समय निर्द्धारित कर रक्खे, जब ८-१० मिनट तक निश्चिंत बैठकर गहरी साँस लेना चाहिए, ताकि फेफड़ों के अदर की कलुषित वायु निकल जाय, और उनमें आए हुए अशुद्ध रक्त की शुद्धि पूर्णरूप से हो जाय। सबसे बड़ी बात इस अभ्यास से यह होगी कि फेफड़े कमज़ोर न पड़ने पावेंगे। आजकल प्राय नवयुवकों के फेफड़े कमज़ोर और रोगी हो जाया करते हैं। राजयक्ष्मा के रोगियों की संख्या दिन दिन बढ़ती जा रही है। यह एक भयकर रोग है, इसके शिकार बहुत कम बचते हैं। इस रोग की वृद्धि

के कारण आजकल के नवयुवकों की अस्वस्थ अवस्था, व्यायाम से उदासीनता और फेफड़ों को निर्बल बनानेवाले पदार्थों का सेवन इत्यादि हैं। नवयुवकों को चाहिए कि थोडा बहुत व्यायाम नित्य अवश्य करें, और कुछ समय स्वच्छ वायु में अवश्य टहलें। टहलते समय गहरी साँस अवश्य लें। साँस सोते और जागते हर समय नाक से लेनी चाहिए। नाक के अंदर किसी रोग के हो जाने, डॉक्टर के मना करने अथवा नाक के अंदर से रक्त निकलने के समय को छोड़कर प्राय सदा नाक से ही साँस लेना हितकर है। कारण, नाक साँस ही लेने के लिये बनाई गई है। नथुनों के द्वार पर बहुत-से बाल होते हैं, जो अंदर प्रवेश करती हुई वायु पर ग्रह का काम करते हैं। ये वायु के धूल के कण आदि को भीतर फेफड़ों तक पहुँचने से रोक रखते हैं। आगे बढ़ने पर नाक के अंदर एक ऐसा तरल एवं लसीला पदार्थ है, जिसे बलगम (Mucus) कहते हैं। यह पदार्थ अंदर आनेवाली वायु में मिले हुए सूक्ष्म धूल के कण तथा कीटाणुओं को फेफड़ों तक पहुँचने के पहले रोक लेता है। इससे आप समझ सकते हैं कि नाक द्वारा साँस लेकर आप अपने फेफड़ों को कितना स्वच्छ एवं नीरोग रख सकते हैं। गहरी साँस लेते समय साँस को मुँह से बाहर निकालना चाहिए। किन्तु और समय में मुँह से साँस लेने का काम न लेना

चाहिए। साधारणत मनुष्य को एक मिनट में १६ से २० बार साँस लेनी चाहिए।

हमारे शरीर में सेलों के टूटने फूटने और भाँति भाँति की रासायनिक क्रियाओं के होने से कार्बन द्विओषित जहरीली गैस बनती रहती है। जिस रक्त में यह रहती है, उसका रग स्याही मायल होता है। यही अशुद्ध, जहरीला रक्त हृदय के दाहने भाग से फुप्फुसीय धमनियों द्वारा फुप्फुसों तक पहुँचता है, और वहाँ पहुँचकर सूक्ष्म से-सूक्ष्म रक्त-केशिकाओं में बँट जाता है जो फुप्फुसों की सूक्ष्म से सूक्ष्म वायु नलियों और वायु-कोष्ठों को घेरे रहती हैं। यहाँ वायु कोष्ठों की ऑक्सिजन वायु कोष्ठों की दीवालों से निकलकर, रक्त-वाहक केशिकाओं की दीवालों को पारकर, उनके रक्त में प्रवेश कर जाती है, और रक्त की कार्बन द्विओषित रक्त से निकलकर वायु-कोष्ठों में पहुँच जाती है। इस प्रथा को विज्ञान में आसमोसिस (Osmosis) कहते हैं। इस प्रकार फुप्फुसों में भली भाँति भ्रमण करने के बाद अशुद्ध स्याही मायल रक्त फिर ऑक्सिजन प्राप्त करके शुद्ध एव सुर्ख होकर फुप्फुसीय शिराओं द्वारा हृदय में लौटता है, और वायु कोष्ठों की वायु, ऑक्सिजन को देकर तथा कार्बन द्विओषित को लेकर, अशुद्ध बन जाती और बहिर्श्वास द्वारा बाहर आती है। इस वायु में रक्त से शुद्ध जल की भाप और शुद्ध उड़नशील विषैले पदार्थ भी

बाहर निकलते रहते हैं। अतः रक्त की शुद्धि के लिये सदा गहरी साँस लेनी चाहिए। साथ ही ध्यान रखना चाहिए कि जिस वायु में हम साँस लेते हों, वह ऑक्सिजन से परिपूर्ण तथा रोग के कीटाणुओं से सुरक्षित हो।

तीसरा व्याख्यान

धड़ का उदर गह्वर (Abdomen)

जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है, इस उदर-गह्वर में शरीर के पोषक यन्त्र आमाशय, छोटी बड़ी अँतड़ियाँ, यकृत, प्लीहा, वृक्क और मूत्राशय हैं।

जो कुछ हम खाते पीते हैं, यह सब एक नली द्वारा, जिसे अन्न-प्रणाली कहते हैं, नीचे उतरता है। यह अन्न प्रणाली श्वास प्रणाली के पीछे होती है। अन्न प्रणाली वक्ष में होती हुई उदर में उतरती है, जहाँ वह एक थैली में, जिसे आमाशय या पाक स्थली कहते हैं, खुलती है। इस पाक स्थली में खाए हुए दृढ़ और द्रव, दोनों प्रकार के पदार्थ इकट्ठे होते हैं। आमाशय से अन्न या अँतड़ियों का आरम्भ होता है।

अन्न प्रणाली
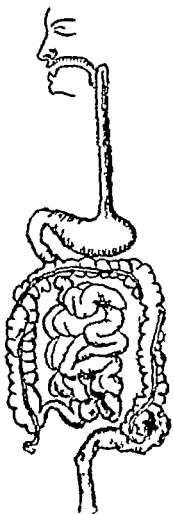
अँतड़ियाँ उदर में गेंडुली मारे हुए पड़ी रहती हैं। उदर का अधिकांश इन्हीं से घिरा हुआ रहता है। छोटी अँतड़ी की लंबाई प्राय २६ या २७ फीट होती है। इसी से जुड़ी हुई प्रायः ५ फीट लंबी एक दूसरी अँतड़ी है जिसे बड़ी या बृहत् अँतड़ी कहते हैं। इस अन्न-मार्ग (Alimentary Canal) का ऊपर का सिरा मुख है, और नीचे का सिरा मल द्वार। जो भोजन हम मुँह में रखते हैं, उसे—यदि वह बड़े टुकड़ों में हुआ—काटनेवाले सामने के दाँत छोटे-छोटे टुकड़ों में कतरते हैं। फिर पीसनेवाले दाँत उसे पीसकर पतला बनाते हैं। जब यह क्रिया होती रहती है, उसी समय मुँह के भीतर रहनेवाली लार की ६ ग्रंथियाँ (Salivary glands) लार पसीजती जाती हैं, जो भोजन के साथ सनती रहती है। इस लार से दो लाभ हैं। एक तो भोजन सनकर निगलने योग्य बन जाता है, और दूसरे उस पर लार द्वारा एक रासायनिक क्रिया होती है, जिससे भोजन शीघ्रता-पूर्वक पच जाता है। वास्तव में भोजन पचाने के लिये कई रसों की आवश्यकता पड़ती है। जिन अंगों से ये रस आते हैं, उन्हें पाचक ग्रंथियाँ कहते हैं। कुछ ग्रंथियाँ अति सूक्ष्म होती हैं। ये अन्न मार्ग की दीवालों में होती हैं। अन्न मार्ग के बाहर उदर में ऐसी दो बड़ी ग्रंथियाँ हैं, जो पाचक रस बनाती हैं। उनमें से एक यकृत या जिगर (Liver) और दूसरी क्लोम (Pancreas) है। ये

ग्रन्थियों से रस नलियों द्वारा छोटी अँतड़ी में पहुँचता है। ६ ग्रन्थियाँ मुँह में हैं, जिनमें लार (Saliva) बनती है। जो भोजन मुख में भली भाँति चबाया जाता है, उसमें लार अच्छी तरह मिलकर उसे घुलनशील बना देती है, अर्थात् यह भोजन के श्वेतसार (Starch) को शक्कर (Sugar) में बदल देती है। आमाशय अथवा पाक-स्थली का अधिकांश भाग उदर में बाईं ओर को झुका होता है। इस पाक-स्थली में भी भोजन के पाचक रस उसकी दीवालों की ग्रन्थियों से निकल-निकलकर मिलते रहते हैं। पाक-स्थली की दीवालों की मांस पेशियाँ इस प्रकार सिकुड़ती रहती हैं कि पाक स्थली में आया हुआ भोजन उक्त रसों से भली भाँति सन जाता है। ये मांस पेशियाँ भोजन को दबा-दबाकर थोड़ा थोड़ा छोटी अँतड़ी में भी भेजती रहती हैं। जैसे-जैसे आहार-रस इस अँतड़ी में नीचे उतरता रहता है, पाचक रसों की क्रिया उस पर होती रहती है। इस प्रकार पचने-योग्य पदार्थ पच जाते हैं, और छोटी अँतड़ियों की दीवालों से छनकर रक्त या लिंफ में पहुँच जाते हैं। छोटी अँतड़ी के अंत तक पहुँचने के पहले आहार-रस में से बहुत-से पदार्थ रक्त और लिंफ में सम्मिलित हो जाते हैं, और आहार का शेष भाग बड़ी अँतड़ी में प्रवेश करता है ज्यों ज्यों यह बड़ी अँतड़ी में नीचे को उतरता है, उसमें से जल का परिमाण कम होता जाता है। अत यह

गाढ़ा होता जाता है, और अंत में उसमें कृमि (Bacterias) उत्पन्न हो जाते हैं, जो उसे सड़ाकर धीरे धीरे मलाशय में भेज देते हैं।

यकृत—यह शरीर में सबसे बड़ी ग्रंथि है, और उदर के ऊपरी भाग में, दाहनी ओर वक्ष उदर-मध्यस्थ पेशी (Diaphram) के नीचे, पसलियों की आड़ में रहती है। यकृत में जो पाचक रस बनता है, उसे पित्त (Bile) कहते हैं। जब भोजन पचाने के लिये पित्त की आवश्यकता नहीं रहती, तब वह पित्ताशय में एकत्र होता रहता है।

प्लीहा—यह आमाशय के नीचे उदर में बाईं तरफ होती है।

वृक्क—ये दो ग्रंथियाँ हैं। इनका कार्य रक्त को शुद्ध करना है। ये रक्त से ज़हरीला तरल पदार्थ ले लेती हैं। यही तरल पदार्थ मूत्र (Urine) है। ये वृक्क अँतड़ियों के पीछे होती हैं। रक्त से जो वृक्क द्वारा मूत्र निकाला जाता है, वह एक थैले में, जिसे मूत्राशय कहते हैं, इकट्ठा होता रहता है। यह मूत्राशय उदर के पेड़ू प्रदेश में होता है।

वृक्क
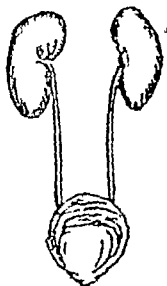
पाक कर्म—मुख में दाँत एक मिल के सदृश हैं, जो आए हुए आहार को काट पीसकर बिलकुल पिसे हुए आटे के सदृश कर देते हैं। साथ ही साथ मुख के अंदर की ग्रंथियों से निकलकर लार उससे सनती रहती है, जिससे आहार गीला, नर्म, घुलनशील एवं निगलने योग्य बनता है। अब यहाँ से आहार अन्न-प्रणाली में होता हुआ आमाशय में पहुँचता है। आमाशय में भोजन खूब मथा जाता है। और, जैसा पहले बतलाया जा चुका है, इस क्रिया के अंतर्गत, आमाशय की दीवालों की ग्रंथियों से निकलकर, एक पाचक रस आहार को और भी अधिक घुलनशील बना देता है। इस मथे हुए अन्न जल को आहार-रस कहते हैं। यह आहार रस फिर धीरे धीरे, थोड़ा थोड़ा करके, छोटी अँतड़ी में उतरता है। यहाँ पित्त, क्षुद्राशीय रस और श्लोम-रस उसमें आकर मिलते हैं, और अपनी पाचन क्रिया प्रारंभ करते हैं। इस पचीकरण के पूर्ण होते ही आहार रस में से आवश्यक रस रक्त और लसीका में पहुँचता है। आहार-रस का जल या आत्मीकरण अधिकतर बड़ी अँतड़ी में होता है, और आहार का शेष भाग गाढ़ा होकर विष्ठा बन जाता है, तथा नियत समय पर, मल द्वार द्वारा, बहिष्कृत किया जाता है।

इस प्रकार भोजन आत्मरक्षा का प्रथम और अंतिम

साधन है। अच्छा और शीघ्र पचनेवाला पौष्टिक भोजन ठीक समय पर खूब चबा-चबाकर करना चाहिए। स्वच्छ स्थान में बैठकर स्वच्छ पात्रों में और स्वच्छ हाथों से तैयार किया हुआ भोजन, प्रसन्न चित्त होकर खाना चाहिए। भोजन को कभी खुला न छोड़ रखना चाहिए, ताकि उस पर मक्खियाँ न बैठें। सदा स्वच्छ ताज़ा और गर्म ही भोजन खाना चाहिए। भोजन करने के घंटे आधा घंटे बाद तक कोई मानसिक या शारीरिक परिश्रम भी न करना चाहिए। भोजन प्रिय और शीघ्र पचनेवाला होना चाहिए, और उसमें वे पदार्थ विद्यमान होने चाहिए, जो शरीर के लिये आवश्यक हैं। क्योंकि रक्त से शरीर के सेलों को वे पदार्थ मिलते हैं, जो उनके बढ़ने और काम करने के लिये आवश्यक हैं।

चौथा व्याख्यान

रक्त संचालक रगों से रक्त का बाहर निकलना

(Haemorrhage) और उसका उपचार

पिछले तीन व्याख्यानों से ज्ञात हुआ होगा कि मनुष्य-शरीर की रचना कैसी जटिल है। अतएव इस शरीर की रक्षा किस प्रकार करनी चाहिए? हम प्राय देखते हैं कि चोट आदि अथवा अस्त्र शस्त्र द्वारा घाव लग जाने पर शरीर से रक्त की धारा बह निकलती है, और थोड़ी ही देर में मनुष्य का शरीर शिथिल होने लगता है। यदि रक्त का बहाव वेग से रहा, और उसका बाहर निकलना न रुक सका, तो यह प्राणी मानों काल के चंगुल में फँस गया। कारण, रक्त ही मनुष्य-जीवन की नदी है। इस नदी की शाखाएँ हमारे शरीर के प्रत्येक भाग में फैली हुई हैं, जो उन स्थानों को आवश्यक पदार्थ पहुँचाया करतीं और वहाँ से अनावश्यक पदार्थों को हटाया करती हैं। इस प्रकार हमारे शरीर में रक्त-संचालन करनेवाली रगों का एक जाल-सा बिछा हुआ है। ये रक्त की रगें तीन प्रकार की हैं— धमनियाँ, शिराएँ और केशिकाएँ। हृदय से रक्त धमनियों द्वारा सारे शरीर में संचार करता है, और शिराओं द्वारा यह शरीर के भिन्न भिन्न भागों से लौटकर हृदय

शिका द्वारा रक्त बाहर निकलता है, तो उसका रंग भी लाल होता है, किंतु वह बहुत धीरे धीरे, नन्हीं-नन्हीं बूँदों, बाहर आता है। अत रक्त क्षति को रोकने के पहले स्थान की पहचान कर लेना आवश्यक है कि किस प्रकार रक्त क्षति हो रही है। तत्पश्चात् निम्न उपाय करने चाहिए—

(१) यदि धमनीय रक्त क्षति हो रही हो, तो रक्त देनेवाले अंग को ऊँचा करके रखना चाहिए, और, शिरा मे रक्त-प्रवाह हो रहा हो, तो उस अंग को करके। कारण, धमनीय रक्त-क्षति में रक्त हृदय ओर से आता है। इसलिये यदि घायल अंग हृदय करके रक्खा जायगा, तो रक्त को ऊपर चढ़ने नाई होगी। इसके प्रतिकूल शिरा-संबंधी रक्त- रक्त हृदय की ओर जाता है, इसलिये घायल अंग करके रखने में रक्त को ऊपर चढ़ने में बड़ी कठि प्राय शीघ्र होती है।

ढा जल अथवा बर्फ रक्त निकलनेवाली नलों प केरे पर रखना चाहिए। इससे यह नली सिकुड हो जाती है, और फलत रक्त पहले की अपेक्षा थोड़ा बाहर निकलता है।

य पर पट्टी बाँधने और घाव के समीप उपयुक्त रक्त निकलनेवाली रग पर, दबाव डालने से

रक्त का बहना रुक जाता है। इस प्रकार का दबाव कई प्रकार से डाला जाता है। जैसे, अँगूठों, पट्टियों इत्यादि से।

धमनियों तथा शिराओं में रक्त प्रवाह को रोकने के लिये इस बात का जान लेना आवश्यक है कि उक्त रक्त-वाहक रगों पर कहाँ और घाव के किस ओर दबाव डाला जाय। धमनियाँ और शिराएँ प्राय मांस के अंदर होती हैं, इस लिये उनका हर जगह पता लगाना और उन पर दबाव डालना कठिन है। जहाँ पर ये शरीर के ऊपरी भाग में आ जाती हैं, और जहाँ पर उनके ठीक नीचे या बगल में कोई हड्डी होती है, वहाँ उन पर भली भाँति दबाव डाला जा सकता है। शरीर में ऐसे स्थानों को दबाव के स्थान (Pressure Points) कहते हैं। इसलिये इन दबाव के स्थानों का ज्ञान रखना परम आवश्यक है। मनुष्य शरीर में रक्त वाहक नलियों पर ये दबाव के स्थान रहते हैं। स्मरण रहे, जो रक्त धमनियों में बहता है, वह हृदय की ओर से शरीर के भिन्न भिन्न भागों की ओर बहता है, और जो रक्त शिराओं में बहता है, वह अंगों से हृदय की ओर। अत धमनीय रक्त-क्षति को रोकने के लिये, हृदय और क्षति के स्थान के बीच, क्षति के समीप के दबाव-स्थान पर दबाव डालना चाहिए। शिराओं से रक्त क्षति को रोकने के लिये, घाव के दूसरी

ओर, हृदय से दूर या घाव के समीप के स्थान पर दबाव डालना चाहिए। यदि समीप ही कोई दबाव स्थान न हो, तो घाव पर ही पट्टी बाँध देनी चाहिए। और यदि रक्त क्षति भयङ्कर हो, तो टुर्निकट (Tourniquet) द्वारा उक्त नली पर दबाव डालना चाहिए।

शरीर में दबाव के स्थान—साधारणतः हड्डी के ऊपर जहाँ नाड़ी की गति मालूम हो, वहीं ये दबाव के स्थान उस स्थान की धमनी के लिये होते हैं। (चित्र न० १ में ध्यान से देखिए)। जैसे, कानों के सम्मुख, दो अंगुल कानों के पीछे, निम्न हनु की दाईं और बाईं ओर, गर्दन के ऊपरी भाग में हँसली की हड्डी के ऊपर मध्यभाग के गड्ढों में, ऊर्ध्वबाहु के कोटरों (Arm Pits) में और उनके मध्य में, कुहनियों के अन्दर, कलाइयों में अँगूठा और छिंगनी की ओर, पुट्ठे के नीचे जाँघ के मध्य और भीतरी भाग में, टिहुनी के जोड़ के भीतरी भाग में और गड़हरों (Ankles) के ऊपरी और भीतरी प्रदेश में।

धमनीय रक्त-क्षति का रोकना

(१) जब तक गद्दी या बंधन तैयार किए जायँ अँगूठों और उँगलियों द्वारा उपयुक्त दबाव स्थान पर दबाव डाले रहना चाहिए।

(२) रक्त-क्षति के स्थान पर पट्टी रखकर, उसे कस कर बाँध देना चाहिए।

(३) यदि इससे सफलता प्राप्त न हो, तो रक्त क्षति स्थान के ऊपर के जोड़ में एक गद्दी रखकर, जोड़ को मोड़कर बाँध दे।

(४) यदि ये सब उपाय असफल होते देख पड़े, तो घाव से हटकर, उपयुक्त दबाव के स्थान पर टुनिकेट कसकर बाँध दे।

शिराओं से रक्त क्षति का रोकना

(१) रक्त-क्षति के पास उपयुक्त दबाव के स्थान पर अँगूठों से दबाव डाले।

(२) एक साफ कपड़े की गद्दी ठंडे जल में भिगोकर घाव पर रखकर अच्छी तरह बाँध दे।

(३) यदि इस पर भी रक्त क्षति न रुकती हो तो एक दूसरी पतली पट्टी हृदय से दूर, घाव के दूसरी ओर, कस कर बाँध दे।

(४) घायल अंग को ऊँचा करके रक्खे।

केशिकाओं से रक्त क्षति को रोकने के उपाय

(१) घाव पर साफ उँगलियों या डीबरे से दबाव डाले।

(२) घाव को साफ करके, उसके ऊपर एक हलकी पट्टी बाँध दे।

नासिका से रक्त क्षति का रोकना

(१) स्वच्छ वायु के स्थान में मरीज़ को एक कुरसी पर,

यदि वहाँ हो, बिठला दे, और उसके सिर को पीछे की ओर लटका दे।

(२) बाहुओं को सिर के ऊपर सीधा उठावे, और उन्हें किसी दूसरे को पकड़ा दे।

(३) गले और वक्ष पर के सब कसे कपड़ों को ढीला कर दे।

(४) नाक और गर्दन के ऊपर बर्फ या ठंढा जल रक्खे।

(५) मरीज़ से कहे कि वह मुँह का खुला रक्खे, और उसी से साँस ले।

(६) मरीज के पैरों को गर्म पानी में रक्खे, ताकि रक्त सिर की ओर जाने की अपेक्षा पैरों की ही ओर अधिक दौड़े।

पट्टी बाँधना (Bandaging)

पहले तिकोनी पट्टी बाँधना प्रत्येक तात्कालिक चिकित्सक को जानना चाहिए। उक्त पट्टी का सबसे अधिक लंबा किनारा पट्टी का आधार, दो बगल के किनारे आधार की भुजाएँ तथा आधार के सम्मुख के सिर को पट्टी का शीर्ष कहते हैं। इस तिकोनी पट्टी को तीन प्रकार से काम में लाते हैं—

(१) पूरी पट्टी को बिना मोड़े हुए

(२) चौड़ी तहवाली पट्टी

(३) सँकरी तहवाली पट्टी

चौड़ी तहवाली पट्टी—

शीर्ष को आधार के मध्य तक लाकर, पट्टी को बीच में दूसरी ओर को मोड़ देते हैं।

सँकरी तहवाली पट्टी—

यह चौड़ी तहवाली पट्टी को बीच में एक बार और मोड़ने से बनती है। पट्टियों के सिरे रीफ गाँठ द्वारा बाँधने चाहिए, ग्रेनी द्वारा नहीं।

१ रीफ गाँठ २ ग्रेनी गाँठ
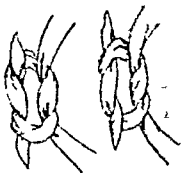
पूरी पट्टी
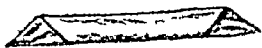
चौड़ी तहवाली पट्टी
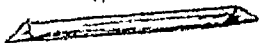
सँकरी पट्टी

गले की चौड़ी झोल—घायल के सामने खड़े हो जाओ, और खुली तिकोनी पट्टी के एक छोर को अच्छे कंधे पर रक्खो। तत्पश्चात् अग्रबाहु को इस प्रकार मोड़ लो कि वह कुहनी से ऊपर उठा रहे। फिर उसका दूसरा सिरा घायल अंग के कंधे पर ले जाकर पहले सिरे से बाँध दो।

गले की चौड़ी झोल

बाद को पट्टी के शीर्ष को कुहनी के ऊपर से मोड़कर आलपीन या सुई से अँटका दो, ताकि गिर न सके।

गले की सँकरी झोल—तिकोनी पट्टी की चौड़ी तह कर लो, और तब एक सिरे को अच्छे कंधे (जिसमें चोट नहीं है) पर रक्खो, और उसे गर्दन के ऊपर से घुमाकर घायल अंग की ओर के कंधे पर लाओ। दूसरे सिरे को समकोण पर मुड़ी हुई अग्रबाहु की कलाई और हाथ पर, पट्टी को मोड़ते हुए, घायल अंग के कंधे पर लाओ, और सामने की ओर पहले सिरे से गाँठ लगा दो।

गले की सँकरी झोल

शरीर के भिन्न-भिन्न अंगों से रक्तस्राव का रोकना

नं०	(अ) घायल अंग	(ब) दबाव के स्थान (चित्र नं० १ देखिए)	(स) दबाव का ढंग
१	सिर के सामने या ऊपर	आंख कान के सम्मुख	ठीक हड्डी के ऊपर
२	सिर के पिछले भाग में	कान के दो अंगुल पीछे	"
३	गर्दन में	गले के नरखरे की हड्डी के पास	गले की हड्डी के साथ हाथ लपेटकर बांधो, किंतु श्वास मार्ग पर दबाव न पड़े।
४	बगल में	हंसली के मध्य के ऊपर गढ्ढे में	ऊपर की पसलियों के साथ बांध दो।
५	ऊर्ध्वबाहु में कुहनी के ऊपर	ऊर्ध्वबाहु के मध्य में भीतरी ओर	बाहु की हड्डी पर
६	अग्रबाहु में	कुहनी के मोड़ में भीतरी तरफ	हड्डी पर नीचे को दबाकर
७	करतल में	आधा इंच कलाई के ऊपर दोनों तरफ	बाहु को ऊपर उठाओ, और हाथ को कलाई के सहारे पीछे मोड़ो।
८	जांघ के ऊपरी भाग में	पुट्ठे के नीचे	घुटने को मोड़ो, और जांघ को आगे करके उसकी हड्डी पर दबाव डालो।
९	टांग में	घुटने के मोड़ के गढ्ढे में	हड्डी पर दबाकर टांग को ऊपर रक्खो, और हड्डी पर दबाओ,
१०	पैर में	(१) टखनों के पीछे के गढ्ढों में (२) टखनों के सामने ठीक बीच में	

दबाव डालने का ढंग	पट्टी बाँधने की विधि
१ अँगूठे द्वारा या उक्त धमनी पर एक पट्टा रखकर तिकोनी पट्टी बाँध दे।	सँकरी गद्दवाली पट्टी मोड़कर बाँधी जाय, ताकि खूब दबाव पड़े।
२ "	सँकरी पट्टी का मध्यभाग गद्दी पर हो, और पट्टी माथे के ऊपर से घुमाकर, गद्दी पर गाँठ दी जाय।
३ उँगलियों द्वारा सिर को आगे झुकाओ, और तब एक पट्टी द्वारा उसे इस दशा में रक्खो।	स्वयं दबाव डालो या किसी सहायक द्वारा, जब तक डॉक्टर न आ जाय।
४ पहले अँगूठों द्वारा और बाद को गद्दी रखकर पट्टी से बाँध दो।	गद्दी को बगल में रखकर, सँकरी पट्टी द्वारा, कंधे के ऊपर से बाँध दो, और उसकी गाँठ दूसरी बगल के नीचे दो, और बड़ी कंधे की झोल लगाओ।
५ (१) बाजू के पीछे खड़े हो (२) बाहु को उँगलियों से दबाकर रक्खो, और (३) उसे आगे-पीछे घुमाते रहो।	उक्त धमनी पर गद्दी रखकर एक सँकरी पट्टी बाँध दो, और बाहु को एक बड़ी कंधे की झोल में डाल दो।
६ कुहनी के गड्ढे में गद्दी रक्खो, और ऊर्ध्वबाहु के साथ बाँध दो।	एक सँकरी पट्टी अग्रबाहु में, कलाई के पास लपेटकर, फिर उसके सिरों को ऊर्ध्वबाहु से और फिर अग्रबाहु में लपेटकर, कलाई पर गाँठ दे दो।
७ पहले अँगूठों द्वारा और फिर गद्दा रखकर पट्टी बाँध दो।	एक मोटी गोल पट्टी हथेली पर रखकर, उँगलियों को मोड़कर दबाओ, और ऊपर से कसकर पट्टी बाँधो।

पाँचवाँ व्याख्यान

हड्डियों का टूटना

(Fractures)

जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है, मनुष्य का अस्थि पंजर २४६ भिन्न भिन्न हड्डियों से मिलकर बना है। ये हड्डियाँ बचपन में मुलायम तथा लचीली रहती हैं; किंतु ज्यों-ज्यों अवस्था बढ़ती जाती है, ये प्रौढ़ एवं दृढ़ होती जाती हैं। इसीलिये बचपन में चोट इत्यादि लगने से प्राय हड्डियाँ टूटती नहीं, बल्कि लच जाती हैं। वृद्धावस्था में, इसके विपरीत, थोड़ी सी चोट हड्डियों के तोड़ने के लिये काफी होती है। कारण, बाल्यावस्था में हड्डियों में किंचित् या विशेषांश में अधातु-तत्त्व (Animal Matter) होता है, जिसके कारण हड्डियाँ लचीली रहती हैं। किंतु ज्यों-ज्यों अवस्था बढ़ती जाती है, मनुष्य को बाहरी पदार्थों से धातु-तत्त्व (Mineral Matter) मिलते जाते हैं, जिससे उसकी अस्थियों में धातु-तत्त्व अधिक हो जाते हैं। फलत अस्थियाँ सख्त और कड़ी हो जाती हैं। यदि हम किसी हड्डी के टुकड़े को आग में जलायें, तो उसका अधातु तत्त्व तो जल जायगा और बाकी धातु-तत्त्व बच रहेगा। अब यदि हम उस टुकड़े को लचायें, तो वह शीघ्र टूट जायगा।

इसके विपरीत यदि हम एक हड्डी के टुकड़े को अम्ल (Hydrochloric Acid) में रक्खें, तो उसका धातु तत्त्व अम्ल द्वारा घुल कर निकल जायेगा, और हड्डी का शेष भाग बहुछिद्र धारी अधातु-तत्त्व का बना रह जायगा। अब यदि आप इसे लचायें, तो यह प्रायः रबर की भाँति इच्छानुसार अनेक दिशाओं में मोड़ा जा सकता है यहाँ तक कि उसके दोनों सिरों को मोड़कर रस्सी की भाँति गाँठ दी जा सकती है। इससे ज्ञात पड़ता है कि अवस्था पाकर हड्डियाँ सख्त और टूटने लायक हो जाती हैं। इसलिए जब उन पर कभी अधिक मार पड़ता या धक्का लगता है, तो वे प्रायः टूट जाया करती हैं। घोड़े, बाइसिकल इत्यादि की सवारियों पर से गिरने या किसी ऊँचे स्थान से कूदने अथवा गिरने से ज्यादातर हड्डियाँ टूटा करती हैं। जैसा कि ऊपर बतलाया जा चुका है, बचपन में हड्डियाँ लचीली रहती हैं, क्योंकि वे पूर्णरूप से ठोस नहीं हो पाती हैं। अतः बचपन में वे प्रायः कम टूटती हैं। अधिकतर ये जरा सी चटककर मुड़ जाती हैं। हड्डी के इस चटकने को कच्चा टूटना (Green Fracture) कहते हैं।

हड्डियों की टूट दो प्रकार की होती है—

(१) साधारण (Simple Fracture) और (२) असाधारण (Compound Fracture)

जब शरीर में किसी स्थान की हड्डी टूटी रहती

किंतु उसकी टूटी हुई नोक, मांस और चमडे को फाडकर बाहर नहीं निकली रहती है, तब ऐसी हड्डी के टूटने को साधारण टूटना कहते हैं। किंतु जब टूटी हुई हड्डियों के किनारे चमडे को चीरकर बाहर निकल आते हैं, तब उसे असाधारण टूटना कहते हैं। प्राय असावधानी ही के कारण साधारण हड्डी का टूटना असाधारण रूप धारण कर लेता है। अत तात्कालिक चिकित्सकों को चाहिए कि वे ऐसे घायलों को छूने, उठाने या उनकी मरहम पट्टी करने में बहुत ही अधिक सावधानी रक्खें। नहीं तो घायल को सुख पहुँचाने की जगह वे उसको दु ख पहुँचाने के कारण होंगे। कारण, जब तक टूटी हड्डी की नोकें चमडे के भीतर रहती हैं, उनका जुडना बहुत आसान होता है। किंतु जब वे चमडे को फाडकर बाहर आ जाती हैं, तब जटिल समस्या हो जाती है। किनारों के बाहर निकल आने से घाव का स्पर्श बाहर की वायु से हो जाता है। और, चूँकि वायु में नाना प्रकार के रोग उत्पादक कीटाणु होते हैं, अत घाव पक जाने और हड्डियों के सडने का डर हो जाता है। ऐसी अवस्था में यदि हड्डियाँ जुड भी जायँ, और घाव पूरा भी हो जाय, तो समय पहले की अपेक्षा बहुत ही अधिक लगेगा।

इन दो प्रकार से टूटने के अतिरिक्त हड्डियाँ और भी दो प्रकार से टूटती हैं—

(१) कभी-कभी हड्डियाँ कई जगह पर टुकडे टुकडे हो

सिर की पट्टी

उपचार—घायल को सिर ऊँचा करके लिटा दो, और उसकी गर्दन और छाती के वस्त्र ढीले कर दो। घायल को कोई उन्मादक पदार्थ Stimulant न दो। उसे खूब शांत और गर्म रक्खो। उसके सिर में, चित्र में बतलाए हुए ढंग से पट्टी बाँधो।

निम्न हनु (ठुड्डी) का टूटना—यह हड्डी प्राय: टूटा करती है। चोट से अथवा सीधे गिरने से, मुँह के बल गिरने से, यह हड्डी टूटा करती है।

निम्न हनु की पट्टी

पहचान—दाँतों की कतार का टेढ़ा पड़ जाना, मसूड़ों से रक्तपात होना। निम्न हनु की समान हड्डियों का टूटना निश्चित प्रकार का होता है।

उपचार—निम्न हनु को ऊर्ध्व हनु के साथ हथेली से दबाओ, और उसके ऊपर पट्टी बाँधो, जैसा कि चित्र में बताया गया है।

हँसली या अक्षक (Collar bone) का टूटना—

मुख्य चिह्न—यह हड्डी भी प्राय टूटा करती है। जिस ओर की हँसली टूट जाती है, उस ओर की भुजा निराधार हो जाती है, और घायल उस ओर के कंधे को झुका देता तथा दूसरे हाथ से हँसली की ओर की भुजा की कुहनी को पकड़ रखता है।

उपचार—घायल का कोट और कुरता उतार दो। कुहनी को मोड़कर छाती पर रक्खो, और उसे कुहनी की झोल में डाल दो। एक पट्टी कुहनी से लाकर कमर में दो। यदि दोनों ओर की हड्डी टूट गई हो, तो बाँध दोनों कुहनियों को मोड़कर, अग्रबाहुओं को छाती पर रखकर, उन्हें छाती से कसकर बाँध दो, ताकि वे हिल-डुल न सकें।

प्रारंभिक चिकित्सक को अपनी बुद्धि से भी काम लेना और ऐसा उपाय निकालते रहना चाहिए, जिससे घायल को और अधिक कष्ट न होने पावे। उसे ध्यान रखना चाहिए कि स्प्लिंट्स के नीचे कपड़े की गद्दी अवश्य हो। टूटी हुई हड्डी के ऊपर और नीचे के जोड़ों को स्प्लिंट्स द्वारा कसा ता रक्खे, किंतु कभी घाव के ठीक ऊपर इन्हें न बाँधे।

ऊर्ध्वबाहु की हड्डी का टूटना—इस अवस्था में हड्डी या तो कंधे के समीप मध्यभाग पर अथवा

कुहनी के समीप टूटती है। कंधे के समीप हड्डी के टूटने की अवस्था में चौड़ी तिकोनी पट्टी को इस प्रकार रखते हैं कि पट्टी का मध्य-भाग कंधे के ऊपर पड़े। फिर पट्टा को बगल में घुमाकर दूसरे वाले कंधे के ऊपर गाँठ दे देते हैं और तत्पश्चात् अग्रबाहु को छोटी झोल में डाल देते हैं। जब ऊर्ध्व भाग की हड्डी मध्य भाग में टूट जाती है, तब अग्रबाहु को ऊर्ध्वबाहु के साथ समकोण बनाते हुए मोड़ देते हैं, और चार स्प्लिंट्स (पट्टियाँ) अगल-बगल रखकर बाँध देते हैं, जैसा कि चित्र में बताया गया है। एक ऊर्ध्वबाहु की हड्डी का टूटा बँधाव हाथ के ऊपर होता है, और दूसरा नीचे। यदि चार स्प्लिंट्स न प्राप्त हों, तो दो ही से काम निकालना चाहिए। इनके भी न होने पर [illegible] जूता या पुस्तकें अथवा लपेटे हुए अखबार द्वारा काम निकाला जा सकता है। स्प्लिंट्स लगाने के बाद अग्रबाहु को छोटी झोल में डाल देते हैं।

तीसरी अवस्था में जब हड्डी कुहनी के समीप टूटी हो और घायल स्थान पर ही हो, डॉक्टर को बुलाने भेजना और घायल को लिटाकर टूटी हुई भुजा को तकिए का सहारा देना। जहाँ चोट लगी हो, उस स्थान पर बर्फ का

ठंढा जल रखकर आराम पहुँचाओ। यदि घायल मकान से दूर हो, तो लकड़ी के चिकने टुकड़े—एक ऊर्ध्वबाहु के बराबर और दूसरा अग्रबाहु और हाथ के बराबर—लो, और उन्हें चित्र की भाँति एक दूसरे के साथ समकोण बनाते हुए बाँध लो। फिर उनके नीचे भली भाँति गद्दी लगा लो, और कुहनी को आराम के साथ, सावधानी से मोड़कर, इस स्प्लिंट को भीतरी ओर रखकर, चार पतले बंधन लगा दो। फिर अग्रबाहु को गले की झोल में डाल दो। घायल को आराम के साथ घर लाकर स्प्लिंट हटा दो, और पहले की भाँति घाव पर बर्फ या ठंढे जल से आराम पहुँचाओ।
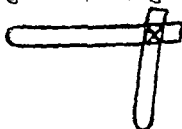
लकड़ी के दो चिकने टुकड़े सम कोण बनाते हुए

अग्रबाहु की हड्डियों का टूटना—इस अवस्था में कुहनी को मोड़कर, ऊर्ध्वबाहु के साथ समकोण बनाते हुए, अग्रबाहु और हाथ का इस प्रकार रक्खो कि हथेली भीतर की ओर हो, और अँगूठे ऊपर की ओर। हाथ को इस अवस्था में रखकर किसी से कहो कि वह इसे इसी तरह पकड़े रहे। फिर स्वयं दो खपाचियाँ लो, और उन पर अच्छी तरह गद्दी लगाकर उन्हें—एक को भीतर की ओर से और दूसरी को बाहर की ओर से—बाँध दो, और तत्पश्चात् गले की बड़ी झोल में चोट खाए हुए भाग को डाले।

जाँघ की हड्डी का टूटना—इस अवस्था में टूटी हुई टाँग को सावधानी के साथ खींचकर अच्छी टाँग के साथ एक सीध में लाओ, और तब उसे अपने साथी को इसी अवस्था में पकड़ रखने के लिये कह दो। तत्पश्चात् एक पट्टी (स्प्लिंट) तैयार करो। यदि विलम्ब हो, तो दोनों टाँगों को एक दूसरी के साथ, टखनों के पास, बाँध दो। फिर एक लाठी या अन्य कोई सीधा एवं चिकना लकड़ी का टुकड़ा लो, और उस पर अच्छी तरह कपड़ा लपेट लो। यह लाठी या लकड़ी का टुकड़ा इतना लंबा होना चाहिए कि कंधे की बगल से पैर के तलुए तक पहुँच सके। इस लाठी या टुकड़े को घायल अंग की ओर रक्खो, और एक दूसरा स्प्लिंट, जो पुट्ठे से घुटने तक पहुँच सके, उसके भीतरी ओर रक्खो। फिर इन स्प्लिंटों को सात चौड़ी और चार सँकरी पट्टियों द्वारा जैसा चित्र में दिखाया गया है उसी भाँति दृढ़ कर दो। पहली चौड़ी पट्टी दोनों टखनों के बीच में, पैर पर, बाँधो। दूसरी चौड़ी पट्टी कमर पर बाँधो, और तत्पश्चात् दो चौड़ी पट्टियाँ जाँघ में—एक घाव के ऊपर और दूसरी नीचे—बाँधो। पाँचवीं चौड़ी पट्टी घुटने

जाँघ की हड्डी का टूटना

और टखने के बीच में बाँधो। चौथी सँकरी पट्टी, बड़ी स्प्लिंट के नीचे के सिरे को दृढ़ करने के लिये, दोनों टखनों पर, दोनों पैरों के साथ बाँधो। तीसरी चौड़ी पट्टी दोनों घुटनों पर बाँधी जाय।

पैर की हड्डियों का टूटना—प्राय पैरों पर भारी बोझ गिरने के कारण ऐसी अवस्था प्राप्त होती है। पैर में सूजन और दर्द पैदा हो जाता है, और घायल पैर उस समय बेकाम हो जाता है। इस अवस्था में पैर के नीचे एक गद्दीदार स्प्लिंट रक्खो, और अँगरेज़ी आठ 8 की शक्ल में पट्टी बाँध दो, जैसा चित्र में बताया गया है। घायल पैर को ऊँचा करके रक्खो।

पैर की हड्डी का टूटना

(अग्र भाग) (पृष्ठ भाग)
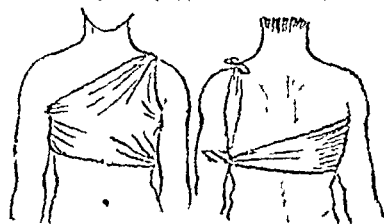
पाला की हड्डी का टूटना

छाती की हड्डियों का टूटना—यह चोट बड़ी ही भयानक होती है। क्योंकि इसके नीचे शरीर के आवश्यक अंग हृदय और फुप्फुस होते हैं। तिकोनी पट्टी के आधार को घायल अंग के नीचे रक्खो, और सिरे को घायल भाग की ओर, कंधे पर, ले जाओ। तत्पश्चात् सिरों को पीठ से जाकर दूसरे चित्र में जैसा बाँधा गया है, वैसा ही बाँध दो।

जोड़ों का उतरना, मोच और चटख—(Dislocation of the Joints, Sprains and Strains)

जब कभी झटके से या भारी बोझा उठाने से किसी जोड़ की हड्डियाँ अपने स्थान से हट जाती हैं, तो उसे जोड़ का उतरना कहते हैं। घुण्डी अथवा प्यालेदार जोड़ (Ball & Socket Joints) अधिक घेरे में घूमने के कारण प्रायः उतर आया करते हैं। कब्जेदार जोड़ (Hinge Joints) भी कभी कभी भारी दबाव या खिंचाव के कारण उतर जाते हैं।

जोड़ों के उतरने के चिह्न तथा पहचान—

(१) जोड़ में तथा जोड़ के समीप के स्थान में दर्द हो जाता है।

(२) जोड़ के आकार में परिवर्तन हो जाता है।

(३) जोड़ के ऊपर सूजन आ जाती है।

(४) जोड़ की गति रुक जाती है।

(५) उससे जुड़े हुए अंगों की लंबाई में न्यूनता तथा अधिकता आ जाती है।

उपचार--(१) घायल अंग को आराम की अवस्था में सहारा देकर रक्खो।

(२) उस अंग से कपड़ा उतार दो, अथवा ढीला कर दो।

(३) चोट खाए हुए स्थान पर बर्फ या ठंढा पानी रक्खो।

(४) यदि ठंढक से आराम न पहुँचे, तो गरमी पहुँचाओ।

(५) घायल को गरमी पहुँचाकर दर्द कम करो।

जोड़ों की चटख—किसी विशेष अंग के जोड़ पर विशेष दबाव पड़ने या झटके से उसके बंधन (Ligaments) टूट जाते हैं, जिसके कारण नीचे लिखी बातें उत्पन्न होती हैं—(१) जोड़ में दर्द (२) उस जोड़ का हिल डुल न सकना, और (३) उस स्थान पर सूजन आ जाना।

टखने की चटख--यह चटख प्राय हुआ करती है।

उपचार—बूट को उतारने की कोशिश न करो, बल्कि उसी के ऊपर एक मज़बूत पट्टी बाँध दो। पट्टी बाँधने के बाद उसे भिगो दो, ताकि वह और मज़बूती के साथ जकड़ ले। चटखे हुए जोड़ को ठंढ पानी, बर्फ अथवा गर्म पानी से धोने से दर्द और सूजन नहीं रहती। ठंढ या गरमी पहुँचाने के बाद जोड़ पर सावधानी के

साथ पट्टी बाँधनी चाहिए, ताकि जोड़ की हड्डियाँ अपने स्थान से हटने न पायें।

मोच—इसमें केवल मांस-पेशियाँ अधिक खिंच जाती हैं। प्रायः पैरों में असमतल ज़मीन पर पैर पड़ जाने से, मोच आ जाया करती है, अथवा हाथों के दब जाने से उनमें कभी मोच आ जाती है। इसका उपचार केवल इतना ही है कि घायल अंग को आराम की अवस्था में रक्खें, और उसको गरमी पहुँचायें।

छठा व्याख्यान

घाव, जानवरों का काटना तथा डङ्क

घाव प्राय किसी अस्त्र शस्त्र द्वारा या किसी चोट के कारण चमड़े के फट जाने या छिल जाने अथवा मास पेशियों के फट जाने से होता है। घाव का खुला रहना ही सबसे अधिक खतरनाक है क्योंकि उसमें रोग के कीटाणु आ घुसते हैं। इसलिये घाव को अच्छा करने का सबसे बढ़कर उपचार पहले उसे इन कीटाणुओं से बचाए रखना है। अतएव घाव को कभी खुला न रखना चाहिए।

घाव के उपचार—(१) रक्त-क्षति को तुरत बद करो, (२) घाव को धूल इत्यादि से साफ करो, (३) उसे जहरीले कीटाणुओं से सुरक्षित रक्खो, (४) यदि सभव हो, तो गले [illegible] घायल अग को आराम पहुँचाओ, और [illegible]ओं से [illegible] कभी न छुओ।

[illegible] टिंक्चर ऑफ् आयोडिन [illegible] घाव में पीड़े जीने ही [illegible], तो यह स्वय [illegible] घाव में पहले [illegible]ऑफ् आया [illegible] फिर ऊपर

से बाँध दो। यदि घाव में ज़हरीले कीड़ों के प्रवेश हो जाने की संभावना हो, तो उसे कार्बोलिक लोशन द्वारा अथवा टिंक्चर ऑफ़ आयोडिन से, और आधा पाइंट पानी में एक चम्मच हो, धोओ। और तब उस पर साफ़ पट्टी बाँधो। कार्बोलिक लोशन चालीस बूँद पानी में एक बूँद कार्बोलिक एसिड डालने से बनता है।

यदि घाव साफ़ है, अर्थात् उसमें धूल आदि कुछ नहीं है, तो उस पर बोरिक एसिड बुरबुराकर, ऊपर से पट्टी बाँध दो। यदि वह अस्वच्छ है, तो उसे पहले साफ़ पानी और साबुन से धो डालो। फिर उस पर बोरिक एसिड छिड़को। अथवा वैसलिन और बोरिक एसिड मिला कर लगा दो और ऊपर से एक कपड़े की पट्टी बाँध दो।

साँप का काटना—साँप दो प्रकार के होते हैं—एक विषधर और दूसरे विषरहित। सौभाग्य वश विषधर साँपों की संख्या बहुत कम है। विषधर साँपों में काले और गेहुँवर अथवा कोबरा बड़े भयंकर होते हैं। विषैले साँपों की ख़ास पहचान यह है कि उनका फन होता है। जब ये साँप क्रोध में होते या किसी पर धावा करने को होते हैं तो अपने फन को फैला देते हैं। ज़हरीले साँपों के ऊपरी जबड़े में दो बड़े-बड़े पैने दाँत होते हैं जो प्रायः आधा इंच से लेकर १ इंच के फ़ासले पर रहते हैं।

साँप जब किसी को काटता है, तब वे तीक्ष्ण ज़हरीले दाँत

चमड़े और मांस को छेदकर प्रायः रक्त की-नलियों में घुस जाते हैं। इन जहरीले दाँतों की जड़ में दो थैलियाँ होती हैं, जिनमें विष इकट्ठा रहता है। साँप किसी को काटते ही फौरन् उलट जाता है, ताकि इन थैलियों से विष निकल-कर, उन जहरीले दाँतों में होकर, घाव में चला जाय। ये जहरीले दाँत भीतर से पोले होते हैं, जिनमें होकर विष घाव में एक छिद्र द्वारा प्रवेश करता है। ज्यों ही विष रक्त की नलियों में प्रवेश कर पाता है, वह रक्त के साथ सारे शरीर में फैल जाता है और इस प्रकार थोड़ी ही देर में यह विष सारे शरीर के रक्त में व्याप्त होकर प्राणघातक हो जाता है। किंतु यदि किसी प्रकार यह विष रक्त द्वारा शरीर में व्याप्त होने से रोक रक्खा जाय, और हृदय तक न पहुँचने पावे, तो प्राणी बच सकता है। अतः जो मनुष्य किसी साँप के काटे हुए की रक्षा करना चाहता हो, उसका प्रथम कर्तव्य यह है कि वह विष से व्याप्त रक्त को शिराओं द्वारा हृदय तक न पहुँचने दे। अतएव उक्त रक्तवाहक शिराओं पर ही दबाव डालना चाहिए। पहले अँगूठों से दबाव डाले, और बाद को, इसके छोड़ने के पहले दो या तीन टूर्निकट बाँधे जो घाव के ऊपर के अंग में हों, अर्थात् घाव और हृदय के

जहरीला दाँत

इसके अतिरिक्त हिम्मत दिलाने के लिये घायल से यह भी कहते रहो कि साँप बिलकुल जहरीला न था। इस अवस्था में मरीज़ को शराब भी पिलाने में कोई हर्ज नहीं। यदि शराब न मिले, तो गर्म चा और गर्म कहवा देना चाहिए। और, यदि कोई दवाखाना नज़दीक हो, तो एक ड्राम 'साल वालेटाइल' देना चाहिए। यदि पैर या टाँग में साँप ने काटा हो, तो घुटने के ऊपर दिए हुए चित्र की भाँति टुर्निकेट लगाओ, और घाव को तेज चाकू से पहले समानांतर चार रेखाओं में और फिर बेंड़ा चार दो। यदि बहुत बड़े और जहरीले साँप ने काटा हो, तो चाकू से घाव को करीब चौथाई इंच गहरा कर दो। यदि घाव कलाई में या पैर पर, टखने और अंगूठों के बीच में हो, तो बेंड़ा न चीरो। क्योंकि
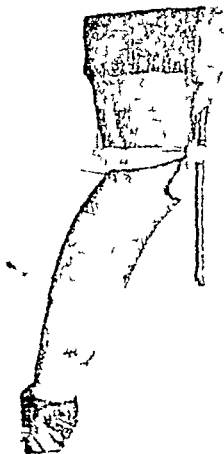
पैर या टाँग में साँप का काटना

ऐसा करने से उन स्थानों पर स्नायुओं के कट जाने का भय रहता है। इन अवस्थाओं में केवल लंबाई में और उन खास खास स्नायुओं के समानान्तर, जो वहाँ पर हों, चीरना चाहिए। यदि साँप ने हाथ में या अग्रबाहु में काटा हो, तो टुर्निकेट कुहनी के ऊपर दिए हुए चित्र की भाँति लगाना चाहिए। अग्रबाहु या नीचे टाँग में टुर्निकेट नहीं लगाए जाते। क्योंकि इनमें दो दो हड्डियाँ

कुहनी के ऊपर टुर्निकेट

होती हैं, जिनके कारण उन स्थानों की रक्त वाहक नलियों पर अच्छी भाँति दबाव नहीं डाला जा सकता।

घायल को चाहिए कि कोई उत्तेजक दवाई या दूध इत्यादि लेता रहे। यदि घायल बेहोश हो गया हो, अथवा उसकी
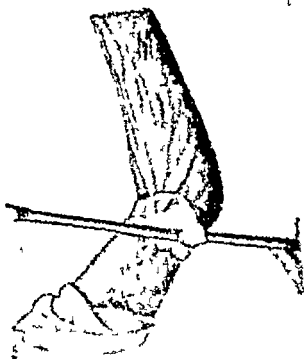
हृदय की गति मंद पड़ गई हो, तो उसे बाह्य क्रियाओं द्वारा साँस (Artificial Respiration) दिलाना चाहिए। यदि दाँतों के निशान न मालूम पड़ें, तो साँप के काटे की पहचान नीम की पत्तियाँ खिलाकर करो ; क्योंकि साँप के काटे हुए प्राणी को नीम की पत्तियाँ कड़वी नहीं मालूम होतीं। दूसरे इसके खाने से लाभ भी होता है।

पागल कुत्ते का काटना—हमारे देश में कुत्ते इतने अधिक हैं, और इतनी ज्यादा लापरवाही से रक्खे जाते हैं कि कौन सा कुत्ता पागल है और कौन-सा नहीं, यह कहना आज कल बड़ा मुश्किल हो जाता है। कारण, गलियों में और इधर-उधर मारे मारे फिरनेवाले कुत्ते की सूरत प्राय पागल कुत्तों की तरह रहा करती है। किंतु पागल कुत्तों में एक विशेषता यह होती है कि वे अपनी जीभ प्राय बाहर ही निकाले रहते हैं, और उससे लार टपका करती है। यदि कुत्ता किसी को काट खाय, तो उसे मार नहीं डालना चाहिए, बल्कि उसे कम से कम १० दिन तक बाँध रखना चाहिए, ताकि इस बात की भली भाँति परीक्षा कर ली जाय कि वह पागल है, या नहीं। यदि कुत्ते ने कपड़े के ऊपर से काटा है—जैसे पैर में मोज़े के ऊपर—तो ऐसी अवस्था में घबड़ाने की आवश्यकता नहीं। कारण, इस अवस्था में कुत्ते की लार घाव में बिलकुल ही नहीं या बहुत ही कम पहुँच पाई होगी। किंतु अपने उपचार से न चूकना चाहिए।

जिस स्थान पर बिच्छू डंक मारे, उसके थोड़ा ऊपर पहले कसकर बाँध दो, और फिर हरा प्याज काटकर या तमाकू का रस अथवा पोटेशियम परमगनेट को घाव पर रगड़ो। कानों में सेंधा नमक का पानी छोड़ो, और पट्टी छोर दो। पिसे हुए जीरे को घी और सेंधा-नमक के साथ फेंटकर, कुछ गर्म करके और शहद में मिलाकर, घाव पर लेप करने से बिच्छू का विष उतर जाता है।

भीतरी घाव, जलन और किसी गर्म तरल से जलना— भीतरी घाव (Bruise) किसी गहरी चोट के कारण, अंग के भीतर केशिकाओं के टूट जाने से, होता है। घाव पहले लाल हो जाता है, फिर काला पड़ जाता है।

उपचार—घाव पर ठंढक पहुँचाओ, और उस पर टिंक्चर ऑफ् आर्निका या मेथलेटेड स्पिरिट और पानी मिलाकर मलो।

अग्नि से जलना—जब हम दियासलाई जलाते हैं, और उसे नीचे की ओर लटकाकर रखते हैं, तो वह बहुत जल्द जल जाती है। किंतु यदि हम जलते हुए हिस्से को ऊपर रक्खें, तो वह देर में और धीरे धीरे जलती है, *हालाँकि जलने और जलानेवाली वही चीज़ है। कारण* स्पष्ट है। पहली अवस्था में अग्नि की लपट ऊपर उठकर, शेष लकड़ी को गर्म कर जला डालती है। किंतु दूसरी

उपचार—(१) घायल अंग में दो जगह पट्टियाँ बाँधो, जैसा साँप के काटने पर करते हैं, (२) घाव को गर्म जल से खूब धोओ, ताकि रक्त अच्छी तरह बाहर निकले, और विष घुल जाय। तत्पश्चात् घाव पर अमिश्रित कार्बोलिक एसिड या नाइट्रिक एसिड लगाओ। यदि पागल कुत्ते ने काटा है, तो घायल को डॉक्टर से जाँच कराकर कसौली भेजो। वहाँ इसके इलाज के लिये खास तौर से अस्पताल खुला है। यदि ये एसिड न मिलें, तो पोटेशियम परमैंगनेट को ही घाव में भर दो।

जानवरों के डंक—पहले घायल स्थल के अन्दर से टूटे हुए डंक को निकालो, और फिर घाव को अमोनिया या स्पिरिट से धोकर उसमें पोटेशियम परमैंगनेट रगड़ो। टिंक्चर ऑफ् आयोडिन हर प्रकार के डंक के लिये रामबाण है। घायल को गरमी पहुँचाते रहो, ताकि दर्द कम मालूम हो। डंक मारनेवाले जानवरों में बिच्छू बड़ा ही भयंकर है। इसके डंक से कभी-कभी प्राणांत भी हो जाता है, नहीं तो असह्य वेदना तो अवश्य ही होती है। किंतु ऐसे भी प्राणी देखे जाते हैं, जिन पर बिच्छू के डंक का कुछ भी असर नहीं होता। लोकोक्ति है कि जिस बच्चे को प्रसूतिका-गृह में बिच्छू के डंक का धुआँ दिया जाता है, उस पर आगे चलकर बिच्छू के डंक का कुछ असर नहीं होता। अतः प्रायः औरतें ऐसा किया करती हैं। संभव है, इसमें कुछ वैज्ञानिक तथ्य भी हो।

जिस स्थान पर बिच्छू डंक मारे, उसके थोड़ा ऊपर फीते कसकर बाँध दो, और फिर हरा प्याज काटकर या तमाकू का रस अथवा पोटेशियम परमैंगनेट को घाव पर लगादो। कानों में सेंधा नमक का पानी छोड़ो, और पट्टी छोड़ दो। पिसे हुए ज़ीरे को घी और सेंधा-नमक के साथ फेंटकर, कुछ गर्म करके और शहद में मिलाकर, घाव पर लेप करने से बिच्छू का विष उतर जाता है।

भीतरी घाव, जलन और किसी गर्म तरल से जलना— भीतरी घाव (Bruise) किसी गहरी चोट के कारण, अंग के भीतर केशिकाओं के टूट जाने से, होता है। घाव पहले लाल हो जाता है, फिर काला पड़ जाता है।

उपचार—घाव पर ठंडक पहुँचाओ, और उस पर टिंक्चर ऑफ़ आर्निका या मेथलेटेड स्पिरिट और पानी मिलाकर मलो।

अग्नि से जलना—जब हम दियासलाई जलाते हैं, और उसे नीचे की ओर लटकाकर रखते हैं, तो वह बहुत जल्द जल जाती है। किंतु यदि हम जलते हुए हिस्से को ऊपर रक्खें, तो वह देर में और धीरे धीरे जलती है, हालाँकि जलने और जलानेवाली वही चीज़ है। कारण साफ है। पहली अवस्था में अग्नि की लपट ऊपर उठकर, शेष लकड़ी को गर्म कर जला डालती है। किंतु दूसरी

अवस्था में लपटें ऊपर उठती हैं, और इस कारण लकड़ी धीरे धीरे जलती है। इसी प्रकार जब किसी के कपड़ों में आग लग जाय, और वह खड़ा रहे, तो आग की लपटें ऊपर उठेंगी, तथा थोड़ी ही देर में उसके कपड़ों और शरीर को जला डालेंगी। किन्तु यदि वह आग लगते ही लेट जाय, तो उसके कपड़े इतनी जल्द न जल सकेंगे और न उसका शरीर एवं मुँह झुलसेगा। कपड़ों में आग लगने पर फौरन कम्बल आदि से अपने को ढक लेना चाहिए, ताकि जलते हुए स्थान पर वायु न लगने पावे। इस प्रकार आग आप से आप बुझ जायगी। यदि कम्बल आदि कोई लपेटने योग्य वस्तु पास न हो, तो ज़मीन पर ही धूल में लेट जाय, या जलते हुए स्थान पर धूल डाल दे। किंतु कभी भूलकर भी आग लगने पर दौड़े नहीं और न खड़ा ही रहे। यदि आग थोड़ी ही दूर तक लगी हो, तो हाथ से दबाकर उसे बुझा दे। जले हुए अंग से कपड़े को उतारते समय बड़ी सावधानी से काम लेना चाहिए। क्योंकि प्रायः कपड़ा जले हुए अंग से चिपक जाता है। और यदि वह खींचकर निकाला जायगा, तो साथ ही चमड़े को भी छीलता आवेगा। जहाँ पर कपड़ा चिपक गया हो, वहाँ पर उसके इर्द गिर्द से कैंची से काटकर छोड़ देना और उस पर ज़ैतून का तेल लगा देना चाहिए। फिर सूख जाने के बाद सावधानी से अलग करना चाहिए। यदि जले हुए अंग

पर फफोले पड़ गए हों तो उन्हें फोड़ना न चाहिए; क्योंकि नीचे के हिस्से की रक्षा के लिये फफोले ही उपयुक्त रक्षक हैं।

जले हुए स्थान पर तीसी का तेल और चूने का पानी बराबर-बराबर भागों में मिला हुआ लगाना बड़ा ही लाभकारी है। इसी में कपड़े को भिगोकर जले हुए स्थान पर रखना चाहिए। इसके अतिरिक्त किसी वनस्पति का तेल, घी, मक्खन आदि भी रक्खा जा सकता है। किंतु कभी भूल कर भी कोई खनिज तेल—जैसे मिट्टी का तेल पेट्रोलियम या स्पिरिट—न रक्खें। जले हुए स्थान पर आटे की एक मोटी तह रखने से भी बड़ा आराम पहुँचता है। यदि दिमाग, फेफड़े और दिल आदि भीतरी अंगों पर जलन का असर पहुँचा हो, तो डॉक्टर को तुरत बुला भेजो। गले के ऊपर का जलना बहुत ही भयानक होता है। जले हुए अंग को ढककर रखना बहुत ही ज़रूरी है, ताकि हवा उसे स्पर्श न कर सके। कच्चा आलू पीसकर, कपड़े पर पोतकर, घाव पर रखने से बड़ा आराम मिलता है। यदि स्कूल के साइन्स क्लास में कोई लड़का किसी एसिड से जल जाय, तो जले हुए अंग को पतले क्षार से धोना चाहिए। यदि वह किसी तेज़ क्षार से जल गया हो, उसे पतले एसिड से धोना चाहिए।

यदि आग से सिर हाथ जल गया हो, तो उसे गर्म जल

में रक्खो। उसमें थोड़ा सा सोडा-बाइ-कार्बोनेट भी पड़ा हो, अथवा उसे कार्बोलिक लोशन में—४० भाग पानी में एक भाग कार्बोलिक एसिड—रक्खो। यदि मुँह झुलस गया हो, तो कपड़े का एक टुकड़ा लो, और उसमें मुँह, नाक और आँखों के लिये जगह बनाकर, उस पर वेसलीन लगाओ। वेसलीन में आधा ड्राम यूक्लिपटस तेल मिला हो। इस भिगोए हुए कपड़े को मुँह पर रखकर बाँध दो। और अंगों के लिये ताज़ा नारियल का तेल भी बड़ा लाभकारी है।

यदि कार्बोलिक एसिड और ग्लिसरिन प्राप्त हों, तो एक चम्मच कार्बोलिक एसिड और एक चम्मच ग्लिसरिन एक पाइंट नारियल के तेल में मिलाकर, जले हुए स्थान पर लेपकर ऊपर से साफ़ कपड़े से बाँध दो। इस बँधे हुए कपड़े के ऊपर दिन में दो तीन बार कार्बोलिक एसिड का पानी भी छिड़कते रहो, ताकि कीटाणु घाव में प्रवेश न करने पावें। यदि घाव रक्तवर्ण हो जाय, और उसमें सूजन अथवा सफ़ेद पीब दिखलाई दे तो पट्टी को प्रतिदिन हटाकर, उस पर बोरिक एसिड छिड़ककर नई पट्टी बाँधा करे।

यदि घायल बहुत ज़्यादा जल गया हो, और उसे असह्य पीड़ा हो रही हो, तो उसे गर्म कम्बल में लपेट दो, और उसकी बगलों में और बिस्तर में गर्म पानी की बोतलें रक्खो, उसे गर्म दूध या चाय पीने को दो।

यदि किसी मकान में आग लग गई हो, तो पहले

घरवालों को इत्तिला दो, और फिर तुरत समीप के फायरब्रिगेड या पुलीस को सूचित करो, और तब आग के बुझाने की तदबीर करो। पड़ोसियों का दरी और सीढ़ियाँ आदि लेकर आने को पुकारो, और कम्बल तथा दरियाँ तानकर उन पर छत वाले आदमियों को कुदाओ। घर के अन्दर से धुएँ या लपक के कारण जो प्राणी बाहर न आ सकते हों, उन्हें बचाने के लिये गीला कंबल अपने चारों तरफ लपेटकर, और मुँह और नाक पर गीला रूमाल लगा कर अन्दर जाओ। कंबल के बीच में सिर जाने के लिये छेद कर लो, तो बहुत सहूलियत होगी। कारण, इस अवस्था में दोनों हाथ स्वतन्त्र रहेंगे। यदि घर में धुआँ बुरी तरह भर गया हो, तो सतह पर लेटकर अन्दर जाओ, और घर

धुएँ से घसीटकर बाहर लाना

के अन्दर के जो लोग बेहोश हो गए हों, उन्हें जैसा चित्र में दिया है, बाँधकर बाहर घसीट लाओ। धुआं गर्म होने के कारण सतह से ऊपर होता है। आग-लगे घरों के अन्दर लोग घबड़ाकर चारपाइयों, बिस्तरों और टेबुलों के नीचे छिपते हैं। अतः इन जगहों में उन्हें अवश्य खोजना चाहिए। बेहोश प्राणियों को बाहर निकालकर उन्हें उसी प्रकार बाह्य उपायों द्वारा साँस लिवानी तथा मरहम-पट्टी करनी चाहिए।

प्राणी मनुष्य, जो सर्वश्रेष्ठ बनने का दम भरता है, ऐसे अपनाता है ! इन पदार्थों का उपयोग विचारशील मनुष्य केवल ओषधि-रूप में करते हैं ।

विषों की संख्या गिनाना कठिन है। कारण—"होहिं सुवस्तु कुवस्तु जग, पाइ सुयोग कुयोग।" जो पदार्थ साधारण रूप से हमारी रुचि के प्रतिकूल हैं, या जिनका प्रयोग हमारे शरीर को हानि पहुँचाता है, वे सभी विष हैं। यों तो भोजन भी अरुचि में विष तुल्य अपना प्रभाव प्रकट करता है, और लाभदायक पदार्थ भी अधिक परिमाण में हानिकारक होते हैं।

भिन्न भिन्न विषों के उपचार के लिये भिन्न भिन्न ओषधियाँ एवं उपाय हैं। जब कभी कोई बेहोश आदमी कहीं पड़ा मिले, तो तात्कालिक चिकित्सक को चाहिए कि (१) वह उक्त प्राणी के आसपास चारों तरफ ध्यानपूर्वक देखे कि कोई विषैला पदार्थ तो नहीं है (२) वहाँ पर जो कुछ मिले, जिससे किसी विष का संदेह हो, तो उसे हिफाजत के साथ रख ले; फेंके नहीं, (३) ध्यान पूर्वक देखे कि बेहोश प्राणी के शरीर पर, कहीं—विशेषकर हाथों और पैरों पर—साँप के ज़हरीले दाँतों के निशान तो नहीं हैं, (४) बेहोश प्राणी के होठों या कपड़ों पर किसी प्रकार के दाग तो नहीं हैं, (५) उसके मुँह से किसी प्रकार की दुर्गंध तो नहीं निकल रही है, (६) उसकी आँखों के तिल अपनी हालत में

हैं, या बढ़ घट गए हैं? इत्यादि। स्मरण रहे, ये धतूरे के विष में लम्बे और पतले पड़ जाते हैं, पर अफीम के विष में छोटे।

उपचार के कुछ साधारण नियम

(१) डॉक्टर या वैद्य को बुला भेजें, और यह भी यथासाध्य ठीक-ठीक जाँचकर कहलाने की कोशिश करें कि उक्त प्राणी ने किस प्रकार का विष खाया है?

(२) विष को नाश तथा पतला करने का उपाय करो।

(३) आमाशय की दीवालों की रक्षा, मरीज को मीठा तेल, दूध, चा या घुला आटा पिलाकर करो।

(४) जब मुँह और होठों पर किसी प्रकार के छाले न देख पड़ें, तभी मरीज़ को उलटी करानेवाले पदार्थ दो। उलटी कराने के लिये, दो चम्मच मीठा तेल तथा एक चम्मच नमक गर्म पानी में घोलकर देना चाहिए।

गले में उँगलियाँ या किसी चिड़िया का पर डालने से भी उलटी होने लगती है।

वास्तव में विषैले पदार्थ दो प्रकार के होते हैं। एक वे, जो मुँह, गले और पेट आदि में जलन पैदा कर देते और जला देते हैं। दूसरे वे जो चुपचाप अपना काम करते हैं। पहले प्रकार के विष पान में कै न करानी चाहिए, क्योंकि इससे अधिक हानि होने की सम्भावना है।

खालिस अम्ल और क्षार जलन पैदा करनेवाले विष हैं। अतः इनके पान किए हुए प्राणी को कै न करानी

चाहिए। इनका नाश एक दूसरे से होता है, जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है। अर्थात् क्षारिक विष पान में पतला अम्ल पिलाना चाहिए, और अम्ल विष पान में पतला क्षार। इसके बाद मरीज़ को ऐसा पदार्थ पिलावे, जिससे गले और पेट में ठंढक तथा आराम पहुँचे।

कै करानेवाले पदार्थों में हराकसीस (Zinc Sulphate) भी है। चा के चम्मच का चौथाई, आधा ग्लास पानी में घोलकर पिलाने से तुरत कै होती है। अफीम के विष में तूतिया, आधे ग्लास पानी में दुअन्नी भर, मिलाकर देने से कै हो जाती है।

विष की विशेष किस्में

(१) निद्रा-उत्पादक विष

(२) उत्तेजक विष—जैसे धातुएँ—आरसेनिक, पारा, शीशे का चूर्ण और मिट्टी का तेल इत्यादि

(३) जलानेवाले विष—जैसे क्षार और अम्ल। ये पदार्थ वस्तुओं को नष्ट कर डालते हैं।

(४) स्नायु-नाशक विष—ये नाड़ी मण्डल को नष्ट कर डालते हैं, जिसके कारण थकना झरना शुरू हो जाता है। जैसे शराब, गाँजा, चरस, और विशेष प्रकार के कुकुरमुत्ते।

विष पान का उपचार प्रारम्भ करने के पहले इस बात का ठीक-ठीक पता लगा लेना आवश्यक है कि विष किस प्रकार का है?

साधारण विष, उनकी पहचान तथा उपचार

नं०	विष	पहचान	उपचार
१	अम्ल	(१) होंठ और मुँह पर छाले पड़ जाना। ये छाले Nitric acid से पीले और Sulphuric acid से काले पड़ते हैं। (२) मुख, गले और पेट में दर्द (३) अधिक प्यास मालूम होना (४) लाल रंग की उलटी होना (५) बातचीत करने में कठिनाई मालूम होना (६) बेहोशी प्रायः रहना	(१) उलटी करानेवाले पदार्थ न दो। (२) आधा पाइंट पानी में एक घमचा Bicarbonate of soda या chalk मिला कर दो। (३) ½ पाइंट अंडी का तेल, एक पाइंट पानी में मिला कर दो। (४) दूध ख़ूब दो। (५) पानी में आटा मोटा या तेल खूब घोलकर पिलाओ।

नं०	विष	पहचान	उपचार
२	कार्बोलिक एसिड	(१) होंठ और मुँह पर सफ़ेद छाले पड़ जाना (२) मांस-पेशियों का ढीला पड़ जाना एवं स्पर्श-सा हो जाना (३) अचैतन्य उत्पन्न होना (४) साँस से कार्बोलिक एसिड की बू आना	(१) ½ औंस सोडियम सल्फेट, ½ पाइंट गर्म पानी में मिलाकर दो। (२) ¼ पाइंट अंडी का तेल, एक पाइंट पानी में मिला कर दो। (३) दूध गूब पिलाओ। (४) पैरों में गरमी पहुँचाओ। (५) बाह्य उपायों द्वारा साँस उत्पन्न करो
३	तीव्र क्षार— जैसे अमोनिया, कास्टिक सोडा और पोटाश	(१) कै और दस्त जारी रहना (२) दर्द होना क्षार छाले पड़ना (३) अचैतन्य उत्पन्न हो जाना	(१) कै कराने वाले पदार्थ न दो। (२) नींबू या सतरे का शरबत दो (३) दूध गूब पिलाओ। (४) अंडी का तेल ½ पाइंट एकाई पानी में मिलाकर दे

न०	विष	पहचान	उपचार
४	शीशा का चूर्ण	(१) पेट में कठिन पीड़ा होना (२) खूब पेट फड़ना (३) मल के साथ खून के कतरे भी गिरना, कभी-कभी कै भी होना, जिसमें शीशे के चूर्ण हों।	(१) पहले खूब खाना खिलाओ, ताकि शीशे का चूर्ण भोजन के साथ सनकर कम हानि पहुँचावे। (२) फिर कै कराओ।
५	मिट्टी का तेल	(१) मुँह और गले में अत्यंत जलन तथा दर्द होना (२) कै में तेल की बूँदें देख पड़ना (३) साँस से भी तेल की बदबू आना (४) कड़ी प्यास लगना (५) अचेतना उत्पन्न होना	(१) कै कराने वाले पदार्थ दो। (२) पैरों में गरमी पहुँचाओ। (३) माठा दो।
६	पारा	(१) कै और दस्त होना (२) जीभ का सफेद दाग पड़ना (३) अचेतना उत्पन्न होना	(१) पानी में आटा घोलकर दो। (२) गर्म पानी में नमक घोलकर पिलाओ। (३) लेमनेड पिलाओ।

नं०	विष	पहचान	उपचार
७	तारपीन का तेल	(१) साँस में घुरघुराहट होना (२) आँख की पुतलियाँ छोटी दिख पड़ना (३) मांस पेशियाँ सख्त हो जाना (४) साँस से तेल की बू आना	(१) कै कराने वाले पदार्थ दो। (२) दस्त लाने वाली चीजें दो। (३) दूध या पानी में आटा घोल कर पिलाओ।
८	अफ़ीम अथवा मरफ़िया	(१) जम्हाई आना (२) आँख की पुतलियाँ बहुत ही छोटी पड़ जाना (३) थोड़ी-थोड़ी बेहोशी रहना (४) साँस का धीरे धीरे किंतु गहरा चलना (५) शरीर में पसीना आना (६) साँस से अफ़ीम की बू आना	(१) गर्म पानी में नमक मिलाकर दो। (२) गर्म [illegible] पिलाओ। (३) एक पाइंट पानी में, दस ग्रेन पोटैशियम परमैंगनेट घोलकर दो। (४) [illegible] पानी के छींटे मारकर चैतन्य रक्खो। (५) [illegible] जब [illegible] आने लगे।

नं०	विष	पहचान	उपचार
६	धतूरा	(१) गला सूख आना (२) निगलने में रुकावट होना या प्यास लगना (३) झाई आना और लड़खड़ाना। (४) चेहरा लाल हो आना (५) पुतलियाँ लम्बी व पतली पड़ जाना (६) मरीज इधर उधर अनाप-शनाप बकता फिर, ख्याली चीजों को पकड़ने के लिये हाथ उठाये, फिर बेहोश होकर गिर जाय।	(१) गर्म पानी में नमक घोलकर पिलाओ। (२) गर्म चा पीने को दो। (३) बाह्य उपायों द्वारा साँस लेने दो। (४) गर्म पानी की बोतलें बगल में दो। अंगों को रगड़ो।
	शराब	(१) चेहरा और आँखें सुर्ख हो जाना (२) होंठ नीले पड़ जाना (३) झाई आना, पैर लड़खड़ाना (४) साँस से शराब की बू आना (५) बेहोश होना	(१) आँखों में ठंडा पानी के छींटे दो। (२) बेहोश होने पर कै कराओ। (३) गर्म चा या सूप पिलाओ। (४) नथुनों में नौसादर और चूना रगड़ कर सुँघाओ। (५) बाह्य उपाय द्वारा साँस चलने दो।

नं०	विष	पहचान	उपचार
११	भाँग, गाँजा और चरस	(१) पहले मरीज़ का खूब खुश मालूम होना, फिर जम्हाइयाँ लेने लगना और बाद को बेहोश हो जाना (२) आँख की पुतलियाँ बड़ी हो जाना	(१) क़ै करानेवाली चीज़ें दो। (२) गर्म चा पिलाओ। (३) पैरों में गरमी पहुँचाओ। (४) बाह्य उपायों द्वारा साँस लेने दो।
१२	कुचला आदि (यह ज़हर, जो ज़हरीले कीड़ों के मारने में काम आता है)	(१) पीठ टेढ़ी पड़ जाना (२) जबड़े बैठना (दाँत बैठना) (३) आँखों की टकटकी लगना और पुतलियों का फैलना (४) साँस लेने में कठिनाई मालूम पड़ना (५) नाड़ी का निर्बल। किन्तु तेज़ चलना	(१) क़ै करानेवाली चीज़ें दो। (२) एक पाइंट गर्म पानी में, १० ग्रेन पोटाशियम परमैंगनेट मिलाकर दो। (३) गर्म चा दो। (४) बाह्य उपायों द्वारा साँस लेने दो। (५) आँखों पर ठंडे पानी के छींटे दो। (६) १२ बूँद अमोनिया पानी में मिलाकर पिलाओ।

घायलों और मरीजों का स्थानांतर करना

घायलों और मरीज़ों को किसी स्थान से दूसरे सुरक्षित एव उपयुक्त स्थान में ले आनेवालों को यह ध्यान रखना आवश्यक है कि वे उन्हें इस प्रकार सावधानी और सहूलियत से ले आयँ कि घायल या मरीज़ के शरीर को किसी प्रकार कष्ट न होने पावे। घायल को यदि कोई ऐसी हड्डी टूट गई हो कि उसे ले जाने में किसी विशेष क्षति के हो जाने की सम्भावना हो, तो डॉक्टर को वहीं बुला भेजना चाहिए। इस बीच में उसे वहीं रखकर यथासाध्य आराम पहुँचाना तात्कालिक चिकित्सकों का कर्तव्य है।

यदि किसी आदमी के पैर में मोच आ गई हो, या पैर कुचल गया हो, तो उसे एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाने का सरल उपाय यह है कि उसके घायल पैर की ओर खड़ा हो जाय, और उसके उसी ओर की भुजा को अपनी गर्दन पर से घुमाकर, अपने दूसरी ओर के हाथ से पकड़ ले, और उसकी तरफ़वाले हाथ से उसकी कमर को सहारा देते हुए धीरे धीरे चले। घायल प्राणी को चाहिए कि अपने घायल पैर को ज़मीन से उठाए हुए, ले जानेवाले की सहायता से चल, उसी के साथ-साथ, एक पैर उठाकर चले। जब कभी किसी बेहोश प्राणी को अकेले उठाकर ले जाना हो, तो दिए हुए चित्र की भाँति उठावे। यह ढंग प्राय उन लोगों को काम में लाना पड़ता है, जो किसी आग लगे हुए

मकान से बेहोश प्राणियों को बाहर निकालते हैं। इसमें दाहना हाथ स्वतन्त्र रहता है, जिससे धुएं वगैरह में रास्ता और दरवाजा टटोलने में बड़ी सहायता मिलती है।

बेहोश आदमी को आग लगे हुए घर से निकालकर बाहर लाना

जब बेहोश घायल या मरीज को ले जाने के लिये एक से अधिक प्राणी हों, और ले जाना भी दूर तक हो अथवा मरीज की कोई हड्डी टूट गई हो, तो उसे ऊपर बतलाए हुए ढंग से न ले जाना चाहिए। इस अवस्था में किसी अच्छी कसी हुई चारपाई को उलटकर, उस पर उसे ले जाना चाहिए। यदि चारपाई न मिले, तो दो लाठियां लो, और दो कोटों की आस्तीनें उलटकर भीतर की ओर कर दो। फिर उनके अन्दर से लाठियों को निकालकर बटन को भीतर की ओर या दूसरी ओर लगा दो। बस, एक अच्छी डोली तैयार हो गई। इस डोली को ले जाने के लिये चार आदमियों की आवश्यकता होगी। एक-एक आदमी डाली के चारों सिरों पर अगल बगल रहेंगे, ताकि मरीज किसी प्रकार गिरने न पाये, डोली अधिक हिलने डुले नहीं, और न लाठियां ही अधिक लगें।

इस प्रकार की डोलियों में मरीज़, घायल या मूर्च्छित प्राणी को ले जाने में इस बात का पूरा ध्यान रखना चाहिए कि ले जाने वालों के क़दम बराबर और एकसाथ उठें, और उस पर लेटे हुए प्राणी का सिरहाना हमेशा पैर की अपेक्षा थोड़ा सा उठा रहे, जिससे उसे किसी प्रकार कष्ट न पहुंचे। मरीज या घायल को ज़मीन से उठाकर डोली पर रखते समय भी इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि उसके सब अंग एकसाथ उठ, और एकसाथ डोली पर रक्खे जाय, ताकि उसके और विशेषत घायल के घायल अंग पर ज़रा सा भी जोर न पड़े।

बालक अपने कुर्तों और साफ़ों के द्वारा कई प्रकार की डोलियाँ बनाते हैं। इन डोलियों की बनावट बहुत कुछ ऐसी ही होती है, जैसी चित्रों में दी है।

कोटों से बनी हुई डोली।
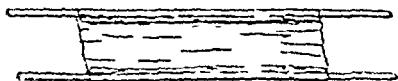
साफ़ों द्वारा बनाई हुई डोली।

बालचरों द्वारा बनाई हुई एक दूसरे प्रकार की डोली

आठवाँ व्याख्यान

श्वास-क्रिया तथा वाह्य उपायों द्वारा श्वास लेना

Artificial Respiration

पहले बतलाया जा चुका है कि श्वास क्रिया फुफ्फुसों द्वारा होती रहती है। उसका उद्देश्य रक्त की विकारी दूषित कार्बोनिक एसिड गेस को बाहर निकालना और बाहर की स्वच्छ एव लाभकारी ओषजन (Oxygen)-वायु को अन्दर लेकर रक्त को शुद्ध करते रहना है। श्वास क्रिया में नाक, श्वास-मार्ग और फुफ्फुस काम करते हैं। इस क्रिया के दो भाग हैं—(१) वायु नाक से होकर, श्वास-मार्ग से होती हुई फुफ्फुसों के भीतर चक्कर खाती है। इस क्रिया को उच्छ्वासन (Inspiration) कहते हैं। जब वही वायु ओषजन को देकर और कार्बोनिक एसिड गैस को लेकर फिर नथुनों से बाहर आती है, तब उसकी इस क्रिया को प्रश्वासन (Expiration) कहते हैं। एक उच्छ्वास और एक प्रश्वास से एक बार की श्वास-क्रिया (Respiration) पूरी होती है।

प्रौढ़ मनुष्य साधारण अवस्था में, एक मिनट में, प्राय १६ १७ बार साँस लेता है। बुढ़ापे में साँस की संख्या घट जाती है। साँस जहाँ तक हो, गहरी लेनी चाहिए,

नाकि वायु फुप्फुसों में, उनके कोनों-कोनों में, भली भाँति भ्रमण कर सके। उच्छ्वास-वायु में ओषजन का अधिक और कार्बनद्विओषित-वायु या कार्बोनिक एसिड गैस का केवल अल्प भाग होता है। प्रश्वास वायु में इनका अनुपात इसके बिलकुल विपरीत होता है।

ओषजन जीवन के लिये एक परमावश्यक पदार्थ है। इसके बिना कोई भी प्राणी जीवित नहीं रह सकता। इसके विपरीत कार्बनद्विओषित-वायु प्राणियों के लिये विष तुल्य है। हमारे शरीर में शरीर-कणों (Cells) के टूटने-फूटने या भाँति भाँति की रासायनिक क्रियाओं के होते रहने से यह दूषित कार्बनद्विओषित वायु बनती रहती है। जिस रक्त में यह गैस अधिक परिमाण में होती है, उसका रंग स्याही लिए हो जाता है। यह दूषित रक्त फुप्फुसों में ओषजन द्वारा शुद्ध होकर फिर लाल रंग का हो जाता है। इससे प्रकट है कि रक्त की शुद्धि और उससे जीवन-निर्वाह के लिए श्वास क्रिया का उचित रूप से होता रहना बहुत आवश्यक है। श्वास क्रिया का रुक जाना जीवघात ही है।

यह श्वास क्रिया कभी-कभी अप्राकृतिक एवं आकस्मिक विघ्नों के उपस्थित हो जाने से बंद हो जाती है, जैसा पानी में डूबने पर, धुएँ से गला घुटने पर, गले में फाँसी लगने अथवा बिजली के प्रवाह में पड़ जाने पर, आग से झुलस जाने या लू लग जाने पर होता है।

इन अस्वाभाविक विघ्नों से उत्पन्न श्वास क्रिया की रुकावट को हम बाह्य उपायों द्वारा श्वास क्रिया (Artificial Respiration) से नाश कर सकते हैं। ध्यान रहे, लोगों की अनभिज्ञता के कारण इन अस्वाभाविक विपत्तियों से अनेकों प्राणी मृत्यु के ग्रास बनते रहते हैं।

बाह्य उपायों द्वारा श्वास क्रिया के तीन ढंग—

(१) शेफर साहब का ढंग (Schafer's Method)—कपड़े निकाल डालो, वक्ष स्थल अथवा गले के कपड़ों को खोल दो या ढीला कर दो। मरीज़ को तुरंत पेट के बल लिटा दो, और बाहुओं को आगे की ओर फैला दो। फिर मरीज के सिर की ओर मुँह करके, उसकी बगल में घुटने टेककर बैठ जाओ, और मरीज़ के गले मुँह तथा नथुनों को

शेफर साहब के ढंग से बाह्य उपायों द्वारा श्वास-क्रिया

भली भाँति साफ़ करो। इसके बाद अपने हाथों की उंगलियों को मरीज़ की पीठ पर, कमर के पास रखकर, का

को गर्दन की ओर दबाते हुए सरकाओ, और ज्यों-ज्यों छाती की ओर पहुँचते जाओ, त्यों-त्यों अधिक दबाव करते जाओ। फिर कंधों की सीध में पहुँचने के बाद दबाव को बिलकुल कम कर दो, और हाथों को बिना उठाए हुए फ़ौरन् अपनी पहले की जगह पर ले आओ, तथा पहले की भाँति फिर करो, जैसा कि चित्र में बताया गया है। इस प्रकार एक मिनट में १५ से लेकर १८ बार करते रहो। क्योंकि मनुष्य प्रायः एक मिनट में इतनी ही बार साँस लेता है। यदि मरीज़ शीघ्र चैतन्य न हो, और साँस लेना प्रारंभ न करे, तो दो-एक घंटे तक बदलते रहकर ऐसा करते रहो, जब तक कि कोई वैद्य या डॉक्टर आकर यह न कह दे कि इसके बचने की अब कोई आशा नहीं है। मरीज़ को बीच बीच में अमोनिया सुँघाते रहना चाहिए। जब मरीज़ की साँस आप-से-आप चलने लगे, तब उसके शरीर में गरमी पहुँचानी चाहिए।

(२) सिल्वेस्टर साहब का ढंग (Sylvester's Method)—कपड़े ढीले कर दो अथवा शीघ्रतापूर्वक उतार डालो। मरीज़ को चित लिटा दो। उसके कंधों के नीचे तकिया या दूसरा कोई मुलायम कपड़ा रख दो, ताकि उसका सिर थोड़ा सा नीचे को लटकता रहे। फिर मरीज़ के मुँह, गले और नथुने आदि साफ कर लो, और तब उसकी भुजाओं को कुहनी के नीचे की ओर से पकड़कर ऊपर को

उठाओ। इसके बाद उन्हें अपनी ओर यहाँ तक खींचो,

सिलवेस्टर साहब के ढंग से बाह्य उपायों द्वारा साँस लेन देना

और फैलाओ कि उन भुजाओं की कुहनियाँ तुम्हारी तरफ़ ज़मीन को छू लें। इस क्रिया से मरीज़ का वक्ष स्थल फैलेगा, और वायु को अंदर प्रवेश करने का अवसर मिलेगा। फिर भुजाओं को उठाकर छाती के पास लाओ, और उन्हें कुह नियों पर मोड़कर, छाती पर रखकर, इस प्रकार दबाओ कि फेफड़ों की वायु बाहर निकले। इस ढंग को भी शीफर साहब के बतलाए हुए नियमानुसार काम में लाओ। डूबे हुओं को इसी तरह साँस ले देना चाहिए। यदि पास हो कोई दूसरा सहायक हो, तो उससे कहो कि वह मरीज़ के सामने घुटने टेककर, झुककर उसके मुख को साफ करे, और उसकी जीभ को रूमाल से पकड़ रक्खे। फिर अमोनिया सुँघावे।

डूबे हुए प्राणी में बाह्य उपायों द्वारा साँस उत्पन्न करने के लिये, लिटाने से पूर्व, पेट को दोनों बाहों के बीच पकड़ो, और उसे दो तीन झटके दे दो, ताकि उससे पेट और फेफड़ों में भरा हुआ पानी बाहर निकल जाय। फिर बाह्य उपायों द्वारा श्वास लाने के लिये तुरन्त लिटा दो, और ऊपर बतलाए हुए ढंग से काम लो।

डूबे हुए प्राणी के पेट से पानी निकालना

(३) लेबार्ड साहब का बाह्य उपायों द्वारा श्वास उत्पन्न करने का ढंग (Laborde's Method of Artificial Respiration)—इस ढंग से उस अवस्था में काम लिया जाता है, जब पसली की कोई हड्डी टूट गई हो। पहले कपड़े उतारते या गले और छाती के ऊपर के कपड़ों को ढीला कर देते हैं, और मरीज़ को चित लिटा देते हैं। फिर रूमाल से मरीज़ की जीभ को पकड़कर बाहर खींचते और दो सेकण्ड तक उसे बाहर रखकर फिर छोड़ देते हैं। ऐसा एक मिनट में १५ से १८ बार करते रहते हैं। जब स्वाभाविक रूप से श्वास कार्य प्रारम्भ हो जाता है, तो मरीज़ के शरीर को गर्मी पहुँचाई जाती है, और शरीर में रक्त संचार बढ़ाने का ढंग काम में लाया जाता है।

अचैतन्य के कारण, पहचान तथा उपचार

कारण (Cause)	पहचान (Symptoms)	उपचार (Treatment)
१ सिर में गहरी चोट का लगना	चेहरा पीला पड़ जाता है, आँखें बन्द हो जाती हैं, और कभी-कभी कै आती है	सिर पर बर्फ रक्खो, मरीज़ को आराम पहुँचाओ और शांत रक्खो, तथा पैर में गरमी पहुँचाओ
२ मृगी	घुरघुराहट के साथ श्वास का आना, आँख की पुतलियों का छोटी या बड़ी हो जाना, चेहरे का सुर्ख पड़ जाना	सिर को ठंडक पहुँचाओ, सिर को थोड़ा ऊँचा करके रक्खो कपड़े ढील कर दो और पैरों में गरमी पहुँचाओ तथा अमोनिया सुँघाओ
३ लू लग जाना	चेहरे का पीला पड़ना, नाड़ी का मंद होना, सिर में दर्द और तेज़ ज्वर आ जाना	सिर को ठंडक पहुँचाओ, शरीर को ढककर गर्म रक्खो, और होश आने पर बर्फ चूसने को दो या आम का पना पिलाओ
४ ज़हरीला तरल पीना	चेहरे का सुर्ख होना, और पसीना आना, पुतलियों का बढ़ जाना, घुरघुराहट भरी साँस लेना और उग्र विष की बू मुँह से आना	गले में उँगलियाँ डालकर या पर से गुदगुदाकर बेहोशी की अवस्था में कै कराओ, और चैतन्य होने पर मीठा तेल या गर्म पानी में नमक मिलाकर पिलाओ
५ अफ़ीम खा लेना	चेहरे का पीला पड़ना, पुतलियों का छोटी हो जाना, मुँह से अफ़ीम की बू आना	कै कराकर काफ़ी पिलाओ। मरीज़ को जगाए रखो
६ मूर्छा	चेहरे का पीला पड़ना, नाड़ी का मंद होना	मरीज़ को नीचा सिर करके लिटा दो और उसे हवा और स्वच्छ वायु का सेवन करने दो। मरीज़ के इर्द-गिर्द भीड़ न इकट्ठी होने दो
७ हानिकारक गैसों के उच्छ्वासन से	चेहरे का स्याह पड़ना घुरघुराहट भरी श्वास आना	स्वच्छ वायु और बाह्य उपायों से श्वास जारी करो

सूचना—जब तक मरीज़ बेहोश रहे, तब तक उसे कोई चीज़ न खिलानी-पिलानी चाहिए।

विन पदार्थ खाया करते हैं। ये पदार्थ विशेषकर शरीर के लिये हानिकारक ही होते हैं। भोजन के साथ चटनी, अचार और नमकीन चीजें खाना निर्दोष नहीं कहा जा सकता। कारण, इन सब पदार्थों का भोजन करनेवाला प्राणी प्राय आवश्यकता से अधिक भोजन कर जाता है। अधिक भोजन शरीर में भार रूप होता है, और कभी कभी तो विष तुल्य हो जाता है। अँगरेजी में एक बहुत अच्छी कहावत है—"Do not live to eat, but eat to live" अर्थात् खाने के लिये न जीवन धारण करो, बल्कि जीवन धारण करने के लिये खाओ। इस कहावत में कितना सार है, इसकी व्याख्या करने की आवश्यकता नहीं।

अच्छे भोजन के लक्षण—(१) अच्छे भोजन में मूल तत्व उतने होने हैं, जितने शरीर के लिये आवश्यक होते हैं। (२) भोजन उम्र आयु और मनुष्य के स्वभाव तथा प्रकृति के अनुकूल होना चाहिए। आयु, ऋतु, मनुष्य का भार, शारीरिक तथा मानसिक परिश्रम, स्वास्थ्य और निर्बलता, इन सब बातों से भी भोजन का सबन्ध होता है। (३) भोजन ऐसा होना चाहिए कि जो अच्छी तरह और आसानी से पच सके। वह स्थूल और अधिक परिमाण में न किया जाय।

भोजन के उत्तम होने के ... भोजन पान के नियमों का जानना तथा उनका पालन करना आवश्यक है। अच्छा

भोजन भी यदि उचित रूप से न खाया जाय, तो उसका अधिक भाग पेट में केवल भार होने के सिवा और कुछ लाभ नहीं पहुँचा सकता, उलटे हानि ही करेगा।

भोजन करने के लाभकारी नियम

(१) भोजन धीरे धीरे शान्त चित्त से खूब चबा-चबाकर करना चाहिए।

(२) भोजन उतना ही करना चाहिए, जो उपयुक्त समय में पच सके।

(३) एक ही प्रकार का भोजन एक बार या सदा न करना चाहिए।

(४) नित्य ठीक और उचित समय पर ही भोजन करना चाहिए। बार बार मुँह जुठारते रहना हानिकारक है। इससे मदाग्नि रोग की उत्पत्ति होती है। दो बार नियमित भोजन के बीच में कुछ न खाना चाहिए, और दिन का भोजन अधिक तथा शाम का अल्प एवं हलका होना चाहिए।

(५) भोजन करने के उपरान्त लगभग एक घंटे तक कोई शारीरिक या मानसिक परिश्रम न करना चाहिए। शाम को सोने के समय करीब एक घंटा-पूर्व भोजन कर लेना चाहिए।

(६) भोजन के साथ साथ तथा भोजन के [illegible] में [illegible]

पानी को साफ करने का साफ और सस्ता ढंग

एक पतला सूराख होता है, जिसमें होकर पानी धीरे धीरे बीच के घड़े में आता है। इस बीच के घड़े में सबसे नीचे एक तिहाई कंकड़ रहते हैं, और उस के ऊपर एक पर्त, जो घड़े का एक तिहाई होती है लकड़ी के कोयले की होती है। शेष ऊपरी एक तिहाई भाग में रेत रक्खी रहती है। जो पानी ऊपर के घड़े से धीरे धीरे इस घड़े में उतरता है, वह पहले रेत में होकर छनता है जिससे तैरते हुए कण रेत में रह जाते हैं, और कण रहित जल कोयलों की तह पर पहुँचता है। अभी उस पानी में घुली हुई गैसें बनी होंगी। किंतु अब यह पानी कोयले में होकर उतरने लगता है तो घुली हुई गैसों को कोयला सोख लेता है। और, तब शुद्ध होकर पानी लकड़ी की पर्त पर पहुँचता है। यह लकड़ी की पर्त पानी के बचे खुचे रेत आदि के कणों को
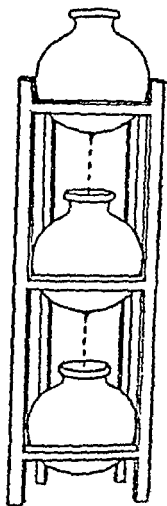
रोक लेती है, और तब यह उक्त घड़े के पेंदे के छोटे-से छिद्र में होकर तीसरे घड़े में आता है। अत इस नीचेवाले तीसरे घड़े का जल साधारण रूप से स्वच्छ हो जाता है। कुओं के जल को सदा स्वच्छ रखने के लिये आवश्यक है कि निम्न बातों पर ध्यान दिया जाय—

(१) कुओं की जगत ऐसी बनानी चाहिए कि उनमें आसपास का बरसात का पानी बहकर न जा सके, और न पत्तियाँ वग़ैरह उड़कर उनमें गिर कर सड़ने ही पावें।

(२) जगत पर कभी किसी को स्नान न करने देना चाहिए। नहीं तो स्नान करनेवाले के शरीर और कपड़ों की गंदगी और उनमें रहनेवाले रोग के कीटाणु पानी के छींटों के साथ कुए में जाकर तमाम पानी को अशुद्ध एवं दूषित कर देंगे।

(३) कुओं के आसपास कूड़ा-करकट न सड़ने पाय, और न चौपायों के अड्डे हों। नहीं तो बरसात में उनकी सब गंदगी पानी के साथ ज़मीन में धँस कर उन कुओं में पहुँचेगी, और जल को अपवित्र एवं दूषित करेगी।

(४) कुए ऐसे स्थानों पर हों, जहाँ छनकर आनेवाला जल किसी स्वच्छ ज़मीन से आय। नालियों और गन्दियों के समीप कुए खुदाना व्यर्थ है। कारण,

उनसे और उन तालाब और गड़हियों के जल में बहुत थोड़ा अंतर होता है। क्योंकि उन तालाबों और गड़हियों का जल स्रोतों के द्वारा उन कुओं में पहुँचता है।

(५) कुओं में गंदे बर्तन न डालने देना चाहिए। देहातों में प्रायः पशुओं को पानी पिलाने के जो गंदे घड़े होते हैं, उन्हीं को लोग कुओं में डाल देते हैं। मिट्टी के घड़े तो किसी भी हालत में कुओं में न डालने देना चाहिए। सबसे उत्तम उपाय कुओं के पानी को स्वच्छ रखने का यह है कि कुए पर एक डोर और एक लोहे या पीतल का घड़ा हर समय रक्खा रहे, और जिस किसी को जल लेना हो, वह उक्त घड़े से पानी निकालकर अपने घड़े में उड़ेल लेवे।

(६) कुओं के ऊपर टिन आदि का ढक्कन होना भी आवश्यक है, ताकि उनमें हवा से उड़कर धूल आदि न गिरा करे, और न दरख्तों की पत्तियाँ ही गिरकर उनमें सड़ें।

(७) कुए, जहाँ तक सम्भव हो, पक्के कर दिए जायें। कच्चे और पुराने कुओं में एक प्रकार का दूषित गैस इकट्ठा होती रहती है, जो बड़ी हानिकारक होती है। दूसरे, कच्चे कुओं की दरारों और गड्ढों में

जंगली कबूतर आदि घर बनाते और कुए के जल में बीट किया करते हैं।

(८) कुओं का जल कभी-कभी कुल निकलवाकर साफ कराते रहना चाहिए। जिन कुओं पर पुर चलते रहते हैं, उनका जल निर्मल बना रहता है। इसके अतिरिक्त जब कभी आसपास में हैज़ा फैले, तो कुओं में पोटैशियम परमैंगनेट छोड़ते रहना चाहिए। कारण, यह बीमारी प्राय खाने-पीने के पदार्थों द्वारा फैला करती है। इसलिये कुओं के पानी के अंदर के उक्त प्रकार के कीटाणुओं को मारते रहना चाहिए।

वायु—वायु की शुद्धता तो मानव-जीवन के लिये सर्व प्रथम आवश्यक है। कारण, वायु में धूल के कण, बीमारियों के कीटाणु तथा अनकों ज़हरीली और हानिकारक गैसें मिली रहती हैं। अत वायु की शुद्धता और स्वच्छता पर ध्यान रखना आवश्यक है। कमरे, जिनमें हम रहते हैं, ऐसे बने होने चाहिए कि जिनमें स्वच्छ वायु और सूर्य का प्रकाश अच्छी तरह आता रहे। कमरे की वायु को शुद्ध रखने के लिये उसमें कईएक दरवाज़े और खिड़कियाँ होनी चाहिए, ताकि उसमें एक तरफ़ से वायु आती रहे, और तमाम कमरे में चक्कर लगाने के बाद दूसरे दरवाज़ों और खिड़कियों से बाहर निकलती रहे। जिन कमरों में सिर्फ़ एक दरवाज़ा

जलन, चेहरे का उतर जाना, शरीर का काँपना, हृदय में पीड़ा आदि लक्षण दिखाई देते हैं।

उपचार—(१) मदार की जड़ की छाल को दूने अदरक के रस में घोटकर उड़द बराबर गोलियाँ बनावे। इन गोलियों को घंटे, आधा-आधा घंटे पर सौंफ के अर्क अथवा गुनगुने पानी के साथ देता जाय।

(२) सुहागे का लावा १० माशे, कालीमिर्च १२ माशे, सींगिया विष १ माशा, इन सबको घोटकर रख दे, और घंटे घंटे पर अदरक के रस में या गुनगुने जल के साथ दे। खुराक १ से २ चावल तक। पानी की जगह पीने के लिये सौंफ का अर्क और जल मिलाकर देना चाहिए। रोगी को खाने के लिये कुछ न दे। डॉक्टर और वैद्य के बतलाने पर परवल का जूस या मूँग की दाल का जूस देवे। [illegible] प्राणी को अर्क-कपूर, बताशे के साथ १० बूँद डालकर, भोजनोपरान्त खाना चाहिए।

जूड़ी-बुखार के कीटाणु (Malaria Germs) मच्छरों द्वारा शरीर में प्रवेश करते हैं। अतः मच्छरों का नाश करना आवश्यक है। मच्छड़ गंदे पानी में, जो रुका हुआ हो और जो प्रायः चार फ़ीट से अधिक गहरा न हो, पैदा होते हैं। इसलिये मकान में या उसके आसपास बर्तनों या गड्ढों में रुका हुआ पानी न रहने देना चाहिए। प्रायः बरसात के दिनों में मलेरिया ज्वर फैलता है। कारण उस

दिनों मच्छड़ बहुत हो जाते हैं। मच्छड़ों से बचने के लिये मकान के आस-पास के पानी के गड्ढों को पटा देना और मोरियों को नित्य धुलवाते रहना चाहिए। यदि किसी कमरे में अधिक मच्छड़ लगते हों, तो उसमें कई दिनों तक, सोने के दो एक घंटे पहले, रात के समय दरवाज़ों और खिड़कियों को बंद करके, गंधक का धुआँ देना चाहिए। इससे मच्छड़ मर जायँगे। मसहरियों के अंदर सोने से भी मच्छड़ों से रक्षा होती है। किंतु सभी मसहरी नहीं लगा सकते। मकानों के आसपास, क़रीब २०० गज़ के इर्द गिर्द, काई घास फ़ूस या पौदे इत्यादि न हों। कारण, इनमें मच्छड़ दिन के समय शरण लेते हैं। मादा-मच्छड़ एक बार में १०० से लेकर २०० अंडे तक देती है। सभी मच्छड़ मलेरिया के कीटाणु नहीं फैलाते। मलेरिया फैलानेवाले मच्छड़ों की एक विशेष जाति है, जिन्हें अँगरेज़ी में एनोफिलीज़ (Anopheles) कहते हैं। ये
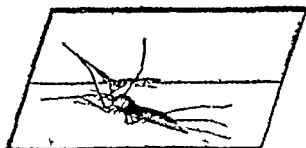
एनोफिलीज़
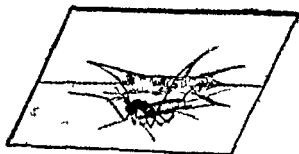
क्यूलेक्स (साधारण मच्छड़)

एनोफिलीज़ मच्छड़ ही मलेरिया फैलाते हैं। परमात्मा की कृपा से ये अधिक नहीं पाए जाते। इन एनोफ़िलीज़ और साधारण मच्छड़ (Oulex) में अंतर यह है कि पहला जब कभी कहीं धरातल पर बैठता है, तो सिर को नीचा, धरातल के समीप, रखता है, और शेष शरीर को ऊपर उठाए रहता है। किंतु साधारण मच्छड़ जहाँ कहीं बैठता है, अपने शरीर को बैठने के धरातल के समानांतर रखता है। दूसरा अंतर यह कि एनोफ़िलीज़ के डैनों पर चित्तियाँ (धब्बे) होती हैं, जो साधारण मच्छड़ों के डैनों पर नहीं होतीं। जब एनोफ़िलीज़ किसी के शरीर में अपनी सूँड़ को चुभोता है, तब वह उसके द्वारा उसके शरीर के अंदर से रक्त को चूसता है। यदि कहीं वह प्राणी मलेरिया ज्वर से पीड़ित हुआ, तो उसके रक्त में मलेरिया के कीटाणु अवश्य होंगे। बस, अनेक कीटाणु रक्त के साथ उस मच्छड़ के पेट में पहुँच जायँगे। वहाँ पर अवसर पाकर वे वृद्धि को प्राप्त

होंगे, और आपस में बँटकर एक से अनेक हो जायँगे। उनमें से कुछ तो मच्छड़ की लार में प्रवेश कर जायँगे। और जब यह मच्छड़ किसी दूसरे स्वस्थ प्राणी को काटेगा, तो उसकी लार के साथ ये उक्त प्राणी के रक्त में प्रवेश कर जायँगे। फिर क़रीब एक हफ़्ते में उक्त प्राणी को जाड़ा देकर बुख़ार आवेगा। तब कहीं उसे पता चलेगा कि उसे मलेरिया हो गया है।

मच्छड़

जब कोई मलेरिया का कीटाणु रक्त-बिंदु में प्रवेश कर जाता है, तब वह वहाँ पर बढ़ता है, और एक से अनेक होता है। इस प्रकार एक कीटाणु बढ़कर और बीच से टूटकर दो, २ से ४, और ४ से ८—इसी प्रकार वृद्धि को प्राप्त होता है। जब ये कीटाणु टूटकर एक से दो बनते हैं, तब
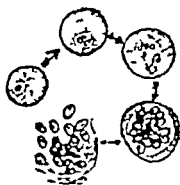
मलेरिया के कीटाणुओं की वृद्धि

रक्त में एक प्रकार का ज़हर उत्पन्न होता है। यही ज़हर जूड़ी उत्पन्न करता है। उधर चित्र में दिखाया गया है कि मलेरिया का कीटाणु किस प्रकार रक्त में बढ़कर एक से अनेक हो जाता है। फिर नए कीटाणु रक्त-बिंदुओं पर धावा करते हैं।

मलेरिया के कीटाणुओं को नष्ट करने के लिये कुनैन एक अक्सीर दवा है। यह दक्षिणी अमरिका के एक विशेष प्रकार के पौदे की छाल से तैयार की जाती है। यदि किसी प्राणी को मलेरिया ज्वर हो गया हो, तो उसे कुनैन का सेवन कराना चाहिए, और अन्य लोगों की रक्षा के लिये मरीज़ को मसहरी के अंदर सुलाना चाहिए। क्योंकि यदि उसे मच्छड़ काटेंगे, तो उनके शरीर में मलेरिया के कीटाणु प्रवेश कर जाँयगे, बढ़ेंगे, और जब ये मच्छड़ घर के दूसरे प्राणियों को काटेंगे, तो उन्हें भी मलेरिया-ज्वर हो जायगा। यही बात है कि मलेरिया के दिनों में घर के प्रायः सभी प्राणियों को साथ ही-साथ या एक के बाद दूसरे को मलेरिया घेरता है। मच्छड़, ये बेचारे अपने दुश्मन को पहचान नहीं पाते, या एक के बाद दूसरे के साथ शरारत करता रहता है। अतः मच्छड़ों को नाश करना ही मलेरिया से बचने का उपाय हो सकता है।

इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये आसपास के पानी के छोटे छोटे गड्ढों को तो मिट्टी डालकर पटवा देना चाहिए,
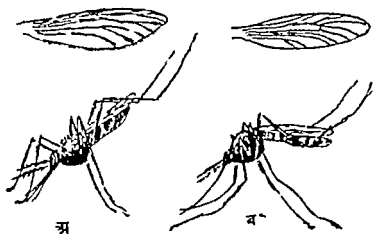
मलेरिया फैलानेवाले मच्छड़

और बड़े-बड़े गड्ढों के पानी को या तो उलिचवाकर निकाल देना या उन पर मिट्टी का तेल छिड़कवा देना चाहिए। मिट्टी का थोड़ा-सा तेल फैलकर पानी के बड़े गड्ढे को ऊपर से ढक लेगा; फिर उनमें मच्छड़ अंडे न दे सकेंगे, और न मच्छड़ों के बच्चे श्वास ले सकेंगे। फलतः वे मर जायँगे।

प्लेग की बीमारी बड़ी ही भयंकर एवं संहारक है। यह पहले पहल चीन-देश में सन् १८९१ ई० में हुई थी। यह ठंडे देश में तो बहुत समय तक नहीं रह पाती। कारण, जाड़े की ठंडक इसके कीटाणुओं को मार डालती है। किंतु शीतोष्ण देशों में यह साल-भर बनी रहती है। भारत में इसका प्रचंड राज्य है। प्लेग के कीड़े मनुष्य के शरीर में दो प्रकार से प्रवेश करते हैं—(१) या तो श्वास के साथ चले आते हैं, या (२) प्लेग की पिस्सू द्वारा शरीर में किए गए घाव

में होकर । प्रायः दूसरे ही तरीक़ों से प्लेग के कीटाणु मनुष्य के शरीर में प्रवेश करते हैं ।

चूहे ज़मीन के अन्दर बिल बनाकर रहते हैं । प्लेग के कीड़े पहले उन्हीं को पकड़ते हैं । प्लेग से पीड़ित चूहे के एक बूँद रक्त में असंख्य प्लेग के कीटाणु हो सकते हैं । इस चूहे को जब पिस्सू काटती है, तो वह रक्त के साथ उन कीड़ों को भी चूस लेती है, और जब वह पिस्सू किसी स्वस्थ मनुष्य को काटता है, तो इनमें से कुछ कीटाणु उस घाव में प्रवेश कर जाते और उस मनुष्य के रक्त में वृद्धि पाकर उसे अपना शिकार बना लेते हैं । ऐसे प्राणी को तुरंत अन्य लोगों से दूर रखना और उसको प्लेग का टीका लगवाना चाहिए । उसके उतारे हुए कपड़े-लत्ते, बिछौना आदि को जला डालना चाहिए ।

घर में चूहों के अनायास मरने से पता चलता है कि प्लेग के कीड़े बहुतायत से हैं । चूहों के मरते ही उन पर की पिस्सू उनके शरीर को छोड़ देती हैं, और घर के लोगों को पकड़ती और काटती हैं । ये पिस्सू एक चूहे से दूसरे चूहों के शरीर पर जाती रहती हैं, और चूहे एक घर से दूसरे घर को जाया करते हैं, अतः चूहे ही घर भर में महामारी फैलाते हैं । अतएव उन्हें घर के अंदर न रहने देना चाहिए, बल्कि मार डालना चाहिए ।

पिस्सू अँधेरे और धूल से भरे कमरों में पैदा होती हैं

(२) (३) (४)

प्लेग की अवस्थाएँ

इनके जीवन में भी चार दशाएँ होती हैं। चित्र में उनकी दूसरी, तीसरी और चौथी अवस्था दिखलाई गई है। प्लेग से चूहों के मरने पर फ्लीज कुत्ते, बिल्ली और मनुष्य आदि के शरीर पर आती हैं। अतः चूहों के मरते ही मकान को तुरत छोड़ देना चाहिए, और मरे हुए चूहों को मिट्टी का तेल डालकर जला देना चाहिए। फिर मकान को कीटाणुओं और फ्लीज के मारनेवाले पदार्थों(Disinfectants)से धुलवा देना चाहिए, और कुछ दिनों के लिये उसे छोड़ देना चाहिए। प्लेग के दिनों में प्लेग का टीका भी लगवा लेना चाहिए।

कृमि-नाशक पदार्थ—कार्बोलिक एसिड से प्रायः हरएक चीज़ धोई जा सकती है। विशेषकर मरीज़ के गृह में इसे छोड़ना चाहिए। ताज़े चूने को पानी में घोलकर

में होकर। प्राय दूसरे ही तरीक़े से प्लेग के कीटाणु मनुष्य के शरीर में प्रवेश करते हैं।

चूहे ज़मीन के अन्दर बिल बनाकर रहते हैं। प्लेग के कीड़े पहले उन्हीं को पकडते हैं। प्लेग से पीड़ित चूहे के एक बूँद रक्त में असख्य प्लेग के कीटाणु हो सकते हैं। इस चूहे को जब पिस्सी काटती है, तो वह रक्त के साथ उन कीड़ों को भी चूस लेती है, और जब यह पिस्सी किसी स्वस्थ मनुष्य को काटती है, तो इनमें से कुछ कीटाणु उक्त घाव में प्रवेश कर जाते और उक्त मनुष्य के रक्त में वृद्धि पाकर उसे अपना शिकार बना लेते हैं। ऐसे प्राणी को तुरत अन्य लोगों से दूर रखना और उसको प्लेग का टीका लगवाना चाहिए। उसके उतारे हुए कपड़े-लत्ते, विष्ठा आदि को जला डालना चाहिए।

घर में चूहों के अनायास मरने से पता चलता है कि प्लेग के कीड़े बहुतायत से हैं। चूहों के मरते ही उन पर की पिस्सीज़ उनके शरीर को छोड़ देती हैं, और घर के लोगों को पकड़ती और काटती हैं। ये पिस्सीज़ एक चूहे से दूसरे चूहों के शरीर पर जाती रहती हैं, और चूहे एक घर से दूसरे घर को जाया करते हैं, अत चूहे ही यह भ कर महामारी फैलाते हैं। अतएव उन्हें घर के अन्दर न रहने देना चाहिए, बल्कि मार डालना चाहिए।

पिस्सीज़ अँधेरे और धूल से भरे कमरों में पैदा होती है

(२) (३) (४)

प्लीज़ की अवस्थाएँ

इनके जीवन में भी चार दशाएँ होती हैं। चित्र में उनकी दूसरी, तीसरी और चौथी अवस्था दिखलाई गई है। प्लेग से चूहों के मरने पर प्लीज कुत्ते, बिल्ली और मनुष्य आदि के शरीर पर आती हैं। अतः चूहों के मरते ही मकान को तुरत छोड़ देना चाहिए और मरे हुए चूहों को मिट्टी का तेल डालकर जला देना चाहिए। फिर मकान को कीटाणुओं और प्लीज़ के मारनेवाले पदार्थों (Disinfectants) से धुलवा देना चाहिए, और कुछ दिनों के लिये उसे छोड़ देना चाहिए। प्लेग के दिनों में प्लेग का टीका भी लगवा लेना चाहिए।

कृमि-नाशक पदार्थ—कार्बोलिक एसिड से प्रायः हरएक चीज़ धोई जा सकती है। डिजेन्फर मरीज़ के थूक में इसे छोड़ना चाहिए। ताज़े चूने को पानी में घोलकर

विष्ठा आदि में छोड़ने से उसके कीड़े मर जाते हैं । कड़ी धूप भी कपड़े आदि के कीड़ों को मार डालती है। अत किसी छूतवाले मरीज़ के पास से लौटने पर, कपड़ों को घर के बाहर, कड़ी धूप में फैला देना चाहिए, और हाथ पैर भी धो डालना चाहिए। मरीज़ के कपड़ों को पानी में उबालकर भी साफ कर सकते ह। जो वस्तुएँ अधिक मूल्य की न हों, उन्हें जला डालना चाहिए। विष्ठा आदि को तुरत जमीन के अंदर गहराई पर गाड़ देना चाहिए। गर्म पानी में साबुन खूब घोल लेने से एक अच्छा और सस्ता कृमि-नाशक पदार्थ बनता है। इससे फ़र्श, कुरसी, चारपाई और क़ीमती कपड़े, जो जलाए नहीं जा सकते, धोए जाते हैं।

चेचक या शीतला के कीटाणु स्पर्श और वायु द्वारा उक्त रोग के मरीज के पास से दूसरों तक पहुँचते हैं। मरीज के चमड़े के ऊपर फफोलों के सूखने पर, उनकी झुर्रियों में, अनेक चेचक के कीटाणु होते हैं। ये कीटाणु हवा में उड़ कर दूसरों तक पहुँच सकते हैं। चेचक के कीटाणु बड़े प्रबल होते हैं। इनका असर सबल और निर्बल, दोनों पर बराबर होता है। इनसे बचने का उपाय केवल टीका लगवाना है। क़रीब एक सौ वर्ष हुए, जेनर साहब ने टीके का अन्वेषण किया, जिससे आज लाखों प्राणी चेचक से रक्षा पाते हैं।

दसवाँ व्याख्यान

स्वच्छता और स्वास्थ्य

स्वास्थ्य के लिये स्वच्छता की परम आवश्यकता है। क्योंकि रोगों के कीटाणु चारों तरफ विद्यमान हैं, जो शरीर के अस्वच्छ एव अरक्षित रहने पर उसे क्षति पहुँचा सकते हैं। इसके सिवा अस्वच्छता के कारण स्वय शरीर में ही विकार उत्पन्न हो जाता है, और अनेक रोग पकड लेते हैं। अत स्वास्थ्य के लिये शरीर, घर तथा नगर और गाँवों की स्वच्छता पर विचार करना आवश्यक है।

शरीर की स्वच्छता—शरीर को स्वच्छ रखने के लिये नित्यप्रति स्नान करना, नित्य धुले हुए स्वच्छ वस्त्र पहनना, हाथ पैर के नाखून काटना और उन्हें बड़े-बड़े न रहने देना सिर के बालों को छोटे रखना और उन्हें साफ करना आदि विषयों पर ध्यान रखना परम आवश्यक है। जिस प्रकार फेफड़े रक्त-विकार को दूर करने के लिये हैं, उसी तरह शरीर का चमड़ा भी रक्त विकार को पसीने के रूप में साफ़ करता है।

शरीर पर दो त्वचाएँ चढ़ी हुई हैं। ऊपर की पतली चर्म या उपचर्म (Fpidermis) कहलाती है, और उसके नीचे का मोटा भाग यथार्थ चर्म (Dermis) । प्रतिदिन उप

चर्म की सेलें घिस घिसकर गिरतीं रहती हैं, और उनकी जगह नीचे की सेलें आती रहती हैं। उपचर्म में रक्त-केशिकाएँ या स्नायु नहीं होतीं। नीचे के चर्म में सेलों के अतिरिक्त दोनों होती हैं। इसके सिवा इसमें दो प्रकार की ग्रंथियाँ, उनकी प्रणालियाँ तथा बालों की जड़ें भी होती हैं। इन ग्रंथियों में से एक में तेल जैसी चिकनी वस्तु बनती रहती है, जो उपचर्म के ऊपर आकर उसे चिकना, और मुलायम बनाती रहती है, नहीं तो वह रूखा और शुष्क होने के कारण शीघ्रता पूर्वक घिसता रहता। इन ग्रंथियों को चर्बी की ग्रंथियाँ (Fat glands) कहते हैं।

दूसरे प्रकार की वे ग्रंथियाँ हैं, जो रक्त की केशिकाओं से एक ऐसा तरल खींचती हैं, जिसे पसीना कहते हैं। इन्हें स्वेद-ग्रंथियाँ (Sweat glands) कहते हैं। स्वेद ग्रंथियों की सेलें रक्त में से कुछ जल, यूरिया और कई प्रकार के लवण मिश्रित पदार्थ ले लेती हैं, और उक्त मिश्रित पदार्थ को पसीने की नली (रोम कूप) द्वारा उपचर्म के ऊपरी धरातल पर भेजती हैं। पसीना उक्त नलियों द्वारा बहता हुआ इन रोम कूपों से बाहर आता है। यहाँ पर बाहर की शुष्क वायु उसके जल भाग को भाप बनाकर ले लेती है। शेष उसमें घुले हुए पदार्थ उपचर्म पर छूट जाते हैं। पसीने की बूँदों के वाष्प रूप में परिवर्तित होने में शरीर की उष्णता का कुछ भाग निकल

जाता है। इससे शरीर की उष्णता अधिक नहीं बढ़ने पाती।

पसीने और चर्बी की ग्रंथियाँ

इस प्रकार ये ग्रंथियाँ रक्त को साफ करने के अतिरिक्त शरीर को मुलायम और साधारण रूप से गर्म भी रखती हैं। संपूर्ण शरीर में प्राय २४ लाख स्वेद-ग्रंथियाँ हैं।

त्वचा के कार्य—(१) यह रोग के कीटाणुओं तथा विषों को शरीर के भीतर घुसने से रोकती है। जब त्वचा कहीं से फट जाती है, तब ये कीटाणु सुगमता-पूर्वक शरीर में घुस जाते हैं। (२) स्पर्शेन्द्रिय है। इसके द्वारा हमें शीत, उष्णता, पीड़ा और दबाव का ज्ञान होता रहता है।

(३) त्वचा से पसीने द्वारा रक्त के विकारी पदार्थ निकलते हैं। (४) इसके द्वारा थोड़ी सी कार्बन द्विओषित वायु भी बाहर निकलती है। (५) यह शरीर के ताप क्रम को उपयुक्त सीमा में रखने में सहायता देती है।

जैसा पहले बतलाया जा चुका है, पसीना सूखने के बाद, त्वचा के ऊपर और रोम-कूपों के मुखों पर वे पदार्थ छूट जाते हैं, जो उसमें मिश्रित रहते हैं। अब यदि ये छूट गए पदार्थ स्नान करके धोए जायँ, तो ये उन रोम कूपों को बंद कर देंगे; और फिर उन स्वेद-ग्रंथियों द्वारा विकारी पसीने का निकलना बंद हो जायगा। फलत रक्त की शुद्धि में विघ्न खड़ा होगा, और शरीर में कोई चर्म-रोग अवश्य उत्पन्न हो जायगा।

त्वचा के ऊपर जब पसीने की बूँदें पड़ी रहती हैं, उस समय वायु से उड़कर धूल के कण भी उनके ऊपर पड़कर रोम-कूपों को बंद करते जाते हैं। इससे शरीर को नित्य प्रति मल मलकर धोना और कभी-कभी साबुन या उबटन भी लगाकर स्नान करना नीरोग रहने के लिये परम आवश्यक है। मल मलकर स्नान करने से रोम-कूपों के मुखों पर जमे हुए पदार्थ और धूल कण धुलकर साफ हो जाते हैं, और पसीना निकलने के लिये रास्ता साफ़ हो जाता है। इससे यह भी एक बड़ा लाभ होता है कि शरीर से दुर्गंध नहीं निकलती, और चित्त बहुत प्रफुल्लित रहता है।

वस्त्रों की स्वच्छता—जो वस्त्र पहने जाते हैं, वे धूल के कणों से मिलकर, शरीर के पसीने से सनकर, मैले होते रहते हैं। जितना ही अधिक कोई वस्त्र श्वेत होता है, उतनी ही अधिक शीघ्रता से उस पर मैल दिखलाई देने लगता है। फलत कपड़ों की सफाई की आवश्यकता को न समझनेवाले प्राय ऐसे कपड़े पहनना अधिक पसद करते हैं, जो गर्दखोर काले या मटमैले रग के होते हैं। कारण, उन पर मैल शीघ्र दिखलाई नहीं देता। अत उनकी मैली अवस्था में भी वे उन्हें बहुत समय तक पहन सकते हैं। बहुत-से ऐसे भी प्राणी होते हैं, जो भीतर तो बहुत ही गन्दे और बदबूदार, महीनों के धुले हुए, कपड़े पहनते हैं, और ऊपर से एक साफ धुला हुआ कोट या कुरता पहनकर जेंटिलमैन बन जाते हैं। किन्तु दोनों ही गलती पर हैं। पहली श्रेणी के लोगों को तो यह उचित है कि चाहे वे कम कीमती ही कपड़े क्यों न पहनें, किन्तु पहनें सदा साफ। वे हम लोगों की आँख में धूल भले ही झोंक दें, किन्तु प्रकृति की आँख में धूल झोंकना असभव है। यदि आप स्वच्छता के नियम को भग करते हैं तो प्रकृति आपको दण्ड दिए बिना न मानेगी। धोबियों की धुलाई बचाकर शायद आप उसे डॉक्टरों और वैद्यों को देंगे, और ब्याज सहित। दूसरी श्रेणी के लोगों से यह कहना आवश्यक है कि बाहरी वस्त्रों की अपेक्षा शरीर की त्वचा से सटे हुए कपड़ों की सफाई

और स्वच्छता अधिक काम की है। भीतरी कपड़ों को सदा धोबी से धुलाने की आवश्यकता नहीं, बल्कि उन्हें उसी प्रकार स्नान करते समय नित्य धो लेना चाहिए, जैसे निन्य की पहनी धोतियाँ धोई जाती हैं। जो कपड़ा दिन को पहने, उसीको रात्रि को पहनकर न सोना चाहिए। और जो कपड़ा रात्रि के समय पहनकर सोवे, उसे दिन को कदापि न पहने। जो ऐसा नहीं करते और एक ही कपड़ा हफ्तों तक पहने रहते हैं, उनके कपड़ों से दुर्गंध निकलती है, उनका शरीर स्वच्छ नहीं रहता। बहुतेरे तो इतने गन्दे होते हैं कि एक ही कपड़े को महीनों पहना करते हैं, जिसके कारण उसमें जुए पड़ जाते हैं। ये जुए शरीर के स्वास्थ्य को बहुत क्षति पहुँचाते हैं। कभी कभी तो ये चेचक, खुजली, खसरा आदि चर्मरोगों के कीटाणुओं को एक प्राणी से दूसरे प्राणी तक पहुँचा देते हैं। शरीर को मैला रखकर ऊपर से स्वच्छ कपड़े पहन लेना भी नितांत अज्ञानता है। कारण, बाहरी स्वच्छता की अपेक्षा भीतरी स्वच्छता अधिक आवश्यक है।

इसी प्रकार केशों, नाखूनों तथा दाँतों की स्वच्छता स्वास्थ्य के लिये परम आवश्यक है। केशों को सदा छोटे रखना चाहिए, ताकि उनकी सफ़ाई आसानी से हो सके। बड़े-बड़े केश केवल जनानी सूरत बनाने के सिवा और किसी विशेष प्रयोजन के नहीं। यदि धूप आदि से बचना हो, तो

साफ़ा या टोप इस्तेमाल करे; किंतु बाल बड़े बड़े न रक्खे। नखों की सफाई के विषय में केवल इतना कहना है कि वे कम से-कम हफ़्ते में एक बार अवश्य काटे जायँ। कारण, यदि वे बड़े-बड़े रहेंगे, तो उनके अंदर खाने पीने के पदार्थ फँसकर सड़ेंगे, और विष उत्पन्न करेंगे, जो भोजन आदि के साथ शरीर में जाकर हानि उत्पन्न करेगा। दूसरे, संभव है, किसी रोग के कीड़े इन नाख़ूनों की दराज़ में छिपे हों, जो हमारे भोजन के साथ शरीर में प्रवेश कर जायँ, या घाव आदि को छूते, धोते या मरहम-पट्टी करते समय, उसमें मिलकर, घाव को और भी अधिक ख़राब कर दें; अथवा किसी रोगी का मल मूत्र साफ़ करते समय उसके रोग के कीटाणु इनकी दराज़ों में घुस जायँ, और अवसर पाकर खाने पीने के पदार्थों के साथ हमारे शरीर में प्रवेश कर हमें भी उक्त रोग का शिकार बना लें। अतः नखों की सफाई और उन्हें सदा छोटा रखना परम आवश्यक है।

दाँतों की स्वच्छता भी बहुत ज़रूरी है। दाँतों की स्वच्छता का स्वास्थ्य से बहुत घनिष्ट संबंध है। भोजन करने के उपरांत मुँह को भली भाँति धोने और कुल्ली करने के बाद भी दाँतों की दराज़ों में भोज्य पदार्थ के छोटे-छोटे टुकड़े फँसे रह जाते हैं, जो समय पाकर सड़ने लगते हैं, और एक प्रकार का तेज़ाब उत्पन्न करते हैं, जो दाँतों की जड़ों का नाश करता रहता है। इससे यदि नित्यप्रति दातून या ब्रश

मजन से दाँत भली भाँति न साफ किए जायँ, तो वे बहुत थोड़े समय में जड़ से कमजोर होकर गिर जायँगे। दाँतों का शीघ्र गिरना वृद्धावस्था के आगमन का सूचक है। कारण, भोजन को पचने-योग्य बनाने के लिये, दाँत उन्हें पीसकर छोटे-छोटे कणों में काट देते हैं। यदि दाँत ही न रहेंगे, तो कड़े पदार्थ का भोजन करना असभव हो जायगा, और नरम पदार्थ भी अच्छी तरह छोटे-छोटे टुकड़ों में न हो सकेंगे। फलत भोजन न पच सकेगा, अर्थात् पाचन शक्ति निर्बल पड़ जायगी; और पाचन शक्ति के निबल पड़ते ही स्वास्थ्य गिरने लगेगा। फल-स्वरूप वृद्धावस्था शीघ्र आ उपस्थित होगी, अत दीर्घजीवी बनने के लिये आवश्यक है कि दाँतों को नित्यप्रति मजन या दातून से भली भाँति साफ करे, और जब कभी कुछ खाये पीये, तो दाँतों को खब धो डाले, और कुल्ली करे। सोने के पहले मुख और दाँतों को खब साफ़ करे; क्योंकि यदि मुख और दाँतों में भोजन के कण रह जायँगे, तो वे रात को सड़ेंगे, और विष उत्पन्न करेंगे। अत रात को सोते समय पान खाना या अन्य पदार्थ मुख में रखना बड़ा हानिकारक है। सोकर उठने के उपरान्त दातून या मजन करना चाहिए। कारण, सोई हुई अवस्था में मुख के अंदर पदार्थ कणों के सड़ने से दुर्गंध उत्पन्न हो जाती है, और दाँत अस्वच्छ हो जाते हैं।

सिर के बालों के गंदे रहने से उनमें जुएं पड़ जाते हैं, जो स्वास्थ्य को खराब करते हैं। कभी-कभी तो ये बीमारियों के कीटाणुओं को अस्वस्थ प्राणी के शरीर से स्वस्थ प्राणी के शरीर तक पहुँचाते रहते हैं। अतः बालों में कघी करते रहना और उन्हें छोटा रखकर साफ करते रहना आवश्यक है। बड़े बाल रखकर, आप उन्हें धोकर आसानी से सुखा भी नहीं सकते। इसी कारण स्त्रियाँ अपने बालों को नित्य प्रति नहीं धोतीं। कारण, उन्हें सुखाने में बहुत समय लगता है। किंतु जब कभी वे बालों को धोती हैं, तब वे उन्हें लकड़ियों से झटक झटककर खूब सुखा लेती हैं, ताकि बालों की जड़ों में पानी लेश मात्र न रह जाय। किसी डॉक्टर का मत है कि बालों की जड़ में पानी के धँसने से बाल सफेद हो जाते हैं। यदि इसमें कोई रासायनिक सत्य है, तो उन शौकीन नवयुवकों के विषय में क्या कहा जाय, जो बालों को सँवारने और तरह तरह से मोड़ने के लिये, तेल न मिलने के कारण, उन्हें गीले रखते हैं।

घर की सफाई—घर के कमरे ऐसे बने हों, जिनमें प्रकाश और वायु भली भाँति आ-जा सके। यह सत्य है कि जिस घर में सूर्य का प्रकाश नहीं प्रवेश कर पाता, वहाँ डॉक्टर और वैद्य अवश्य प्रवेश करते हैं। अर्थात् जिस घर में भली भाँति धूप नहीं पहुँचती, और स्वच्छ वायु प्रवेश नहीं कर पाती, वह घर स्वास्थ्य के लिये नितांत अयोग्य है।

कारण, अँधेरे और सीडवाले मकानों में रोगों के कीटाणु पलते हैं। अत ऐसे घरों में रहना खतरनाक है। इसलिए मकान ऐसी जमीन पर बनाना चाहिए, जहाँ नमी न हो। वे एक दूसरे से सटाकर इस प्रकार न बनाए जाँय कि उनमें प्रकाश और पवन क सचार में किसी प्रकार की बाधा पड़े। अच्छा तो यह होगा कि प्रत्येक मकान के साथ उसके चारों तरफ, एक छोटी सी पुष्प-वाटिका या खुला मैदान हो, जैसा प्राय जापान में होता है। प्रत्येक कमरे में एक स अधिक दरवाजे और खिड़कियाँ होनी चाहिए, जिनसे वायु हर समय आकर कमरे को शुद्ध करती रहे।

इसके अतिरिक्त कमरों के अदर हर एक चीज अपने उचित स्थान पर रक्खी होनी चाहिए। साने के कमरे और बैठक में खाने-पीने के पदार्थ न रखने चाहिए। खाने पीने की चीजें एक कमरे में ढककर रखनी चाहिए। घर में जहाँ तक सभव हो, मक्खियाँ न रहने पावें।

कमरों का फर्श नित्य बुहारा जाना चाहिए। दीवालों या छत पर मकड़ियाँ जाले न तनने पावें। घर का कूड़ा-करकट, घर से दूर, जमीन के अदर गड्ढे में डालकर, ऊपर से मिट्टी चला देनी चाहिए। ओढ़ने बिछाने के कपड़ों को मैला रखने से खटमल उत्पन्न हो जाते है, जो हमारे शरीर से रक्त को चूस-चूसकर हमें दुर्बल कर देते हैं। ये खटमल छूत की बीमारियों में रोग क कीटाणुओं के वाहक भी हो जाते है।

यदि ये उत्पन्न हो गए हों, तो चारपाइयों और कुरसियों की दराजों में मिट्टी या तारपीन का तेल छोड़कर उन्हें धूप में रख छोड़ना चाहिए।

नगर और ग्राम की स्वच्छता—शरीर और गृह की स्वच्छता के पश्चात् नगर और ग्राम की स्वच्छता पर ध्यान देना प्रत्येक नागरिक तथा ग्रामीण का कर्तव्य है। नगर में सड़कों पर कूड़ा करकट और सड़ी-गली चीजें न पड़ी रहने पावें; नालियाँ नित्यप्रति अच्छी तरह धोई जायँ। नगर और ग्राम के भीतर या समीप में दुर्गंध उत्पन्न करनेवाली कोई वस्तु न हो। नगर में प्रकाश का उचित प्रबंध हो, और वायु को स्वच्छ रखने के लिये कहीं-कहीं पर, घनी बस्तियों के बीच, पुष्प वाटिकाएँ हों। सड़कों पर पानी का छिड़काव उचित रूप से हो, ताकि धूल उड़कर नागरिकों के फेफड़ों में श्वास मार्ग से न प्रवेश करे, और न उनके मकान के अंदर के कपड़े-लत्ते तथा सामान को खराब करे। नगरों में पुष्प वाटिकाओं से नगर की वायु की शुद्धता में बड़ी सहायता मिलती है। दूसरे, नगर वासियों के लिये दिल-बहलाव का एक स्थान मिल जाता है, जहाँ सांसारिक झंझटों को थोड़ी देर के लिये स्थगित कर के अपने इष्टमित्रों से वार्तालाप और मनोविनोद कर सकते हैं। सड़कों पर वृक्षों की कतार लगवानी चाहिए, इससे पथिकों को छाया मिलती है; साथ-ही-साथ नगर की वायु की स्वच्छता में भी सहायता पहुँचती है। कारण, पौद

धूप में, वायु में से कार्बनडाइऑक्साइड् वायु लेते हैं, जो चीज़ों के जलने और प्राणियों के श्वास लेने से बनती है। इस कार्बनडाइऑक्साइड् वायु को, वे कार्बन और ऑक्सिजन में विभाजित कर, कार्बन को तो अपने लिये रख छोड़ते हैं, और ऑक्सिजन को बाहर निकाल देते हैं। यही ऑक्सिजन मनुष्य की जीवन-वायु है। इस प्रकार पौदे और वृक्षों द्वारा, प्राणियों और अग्नि से दूषित की हुई वायु शुद्ध होती रहती है। अतः पौदे और वृक्ष प्राणी मात्र के बड़े उपकारी हैं।

नगर-निवासियों का यह भी कर्तव्य है कि उनके नगर में सड़ी-गली चीज़ें न बिकने पावें, दूकानों पर मिठाइयाँ इत्यादि खुली न बेची जावें। ग्राम निवासियों का कर्तव्य है कि उन तालाबों में, जहाँ लोग स्नान करते और कभी कभी जल भी पीते हैं, कोई आबदस्त (शौच) न ले, और न मरीज़ों के गन्दे कपड़े धोये। इसके अतिरिक्त तालाबों के जल को शुद्ध रखने के लिये उनमें मछलियाँ रखनी चाहिए। खुले मैदानों में पाखाना न बैठना चाहिए। अच्छा हो, यदि ज़मीन में गढ्ढा खोदकर यह कार्य किया जाय, और बाद को ऊपर से मिट्टी से भली भाँति ढक दिया जाय, जिससे बदबू न फैले, और न उनमें मक्खियाँ आदि अंडे दे सकें। पाठक इस बात को पढ़कर हँसेंगे; किंतु यदि वे इसकी उपयोगिता पर ध्यान दें, तो हँसने की कोई बात नहीं। हमें तो कुत्ते और बिल्लियों आदि से इस विषय की शिक्षा लेनी चाहिए। वे

पाखाना फिरने के बाद उस पर धूल डाल देते हैं, क्योंकि उनमें यह स्वाभाविक बुद्धि उत्पन्न की गई है। किंतु मनुष्य के लिये क्या कहा जाय। हर काम करने में वह आज़ाद है!

नगरों के बाहर १० फीट लंबी, १ फुट चौड़ी और १॥ फीट गहरी खाइयाँ खुदवानी चाहिए, जहाँ लोग मल त्याग करें। इन खाइयों को काम में लाकर १ फुट गहरी मिट्टी से ढक देना चाहिए, जिससे उसमें न तो मक्खियाँ ही अंडे दे सकें, और न बदबू ही निकल सके।

सबसे अच्छा ढंग ऐसी लैट्रिनों का रखना है, जिनमें पानी के पाइप लगे हों, और वे मल मूत्र को जमीन के अंदर ही अंदर बहाकर शहर के बाहर ले जायँ। इसके बाद दूसरा तरीका मेहतरों द्वारा मल और मूत्र की अलग-अलग गाड़ियों को बंद कराकर शहर के बाहर गड्ढों में ढकवाना है। पाखाना और पेशाब का एक ही बाल्टी में इकट्ठा करना अच्छा नहीं। आखिरी दोनों तरीके नतरनाक और बदबूदार हैं। इनसे भी खराब मद्रास रखने की प्रथा है। इससे दुर्गंध निकलती रहती है, जिसका असर घर में रहनेवाले प्राणियों के स्वास्थ्य पर बहुत बुरा पड़ता है, और इसके पास के कुओं का जल खराब हो जाता है।

अतः प्रत्येक लैट्रिन के साथ एक पाइप लगाया, और पाखाना पेशाब को ज़मीन के अंदर अंदर, बड़ी-बड़ी नालियों द्वारा, शहर के बाहर ले जाय और उसे किसी नदी में गिरान

के बजाय एक तालाब बनाकर उसमें इकट्ठा करे। नदियों में उसे गिराने से एक तो नदी का जल अशुद्ध हो जाता है; दूसरे एक प्रकार की क्षति भी होती है। सेप्टिक टैंक की विधि से उक्त तालाब या टैंक में पाखाने का वजनी हिस्सा बैठ जाता है, और तरल साफ होकर, एक दूसरी नाली द्वारा निकालकर, खेतों की सिंचाई के काम में लाया जाता है। तालाब में बैठे हुए स्थूल पदार्थ को खाद में परिणत कर खेतों में डाला जाता है, जिससे कृषि की खूब उन्नति होती है। प्रयाग की म्युनिसिपैलिटी ने ऐसा ही किया है। इस तरीके से शहर के मल मूत्र की सफाई बिना दुर्गंध फैले, सरलता-पूर्वक, हो जाती है, और साथ-ही-साथ उसका सदुपयोग भी हो जाता है। आम के आम और गुठली के भी दाम वसूल हो जाते हैं।

मवेशियों के मल मूत्र की सफाई पर भी ध्यान रखना आवश्यक है क्योंकि इनमें मक्खियाँ अंडे दिया करती हैं, जो बढ़कर हैजा, क्षय, संग्रहणी आदि भयंकर एवं प्राणघातक रोगों को फैलानेवाले होते हैं।

छूतवाले रोगों से बचने के उपाय

(१) पृथक्करण (Isolation)—छूत की बीमारी के रोगी को सबसे अलग एक कमरे में रक्खे, और इस बात का ध्यान रहे कि उक्त रोगी के कमरे में केवल डॉक्टर या वही प्राणी जाय, जिस रोगी की सेवा करनी है। इस प्रकार रोग का दूसरों तक पहुँचना बहुत अंशों में रुक जाता है।

क्योंकि ये लोग स्वयं अपने शरीर और कपड़ों को रोग के कीटाणुओं से सुरक्षित रखने का पूरा प्रयत्न रखते हैं। इसके विपरीत, रोगी के पास बहुत से लोगों—एक के बाद दूसरे—के पहुँचने से उसके मस्तिष्क पर बहुत बुरा असर पड़ता है। कारण, उसकी शांति भंग होती रहती है, और फलतः वह शीघ्र कमजोर हो जाता है। रोगी को शांत चित्त रखना सबसे बड़ा और आवश्यक पथ्य है।

(२) कृमि-नाश (Disinfection)—इस उपाय से मरीज का कमरा, कपड़े, हाथ, कुरसी, मेज, चारपाई आदि धोए जाकर कृमि-रहित किए जाते हैं। मरीज के मल मूत्र, कै, थूक में कृमि-नाशक पदार्थ छोड़कर रोग के कीटाणु मारे जाते हैं।

(अ) साबुन और पानी—ये बहुत सस्ते और उपयोगी हैं। कारण, इनसे सभी वस्तुएँ धोई जा सकती हैं, और उनके खराब होने या उन पर धब्बे पड़ने का कोई डर नहीं रहता।

(ब) कार्बोलिक एसिड—यह एक ऐसा कृमि-नाशक पदार्थ है, जिससे हर एक वस्तु के कीटाणु मारे जा सकते हैं। विशेषकर यह रोगी के बलगम और पाखाने में डालने के काम में आता है। इसको इन सब कार्यों में इस्तेमाल करते वक्त, एसिड का एक भाग पानी के बीस भाग में मिला लेना चाहिए।

(स) चूने का पानी (Milk of Lime)—यह एक बहुत सस्ता कृमि-नाशक पदार्थ है और रोगी के मल-मूत्र के

कृमियों का नाश करने के काम में लाया जा सकता है। किंतु ऐसा करने के लिये ताजा चूना लेना चाहिए—चूना एक भाग और पानी चार भाग।

(द) लाल बुझनी (Potassium Permanganate)—यह स्वयं एक विष है, जो और विषों तथा रोग के कीटाणुओं को नाश कर डालता है।

(इ) सूर्य का प्रकाश—सूर्य का तीक्ष्ण प्रकाश हर प्रकार के रोग के कीटाणुओं को मार डालता है। अत जिन पदार्थों का हम अन्य प्रकार से कृमि रहित नहीं कर सकते या वैसा करना सुगम नहीं, उन्हें हम सूर्य की तीक्ष्ण धूप में रखकर स्वयं सुखा लेते हैं।

(फ) गर्म पानी और आग—छूत के रोगी के जिन कपड़ों को हम उबाल सकें, उन्हें उबाल डालना चाहिए; जो कपड़े कीमती न हों, उन्हें जला डालना चाहिए।

(३) अस्पताल (Hospitals)—यदि समय हो, तो रोगी को पास के अस्पताल में पहुँचाना चाहिए; क्योंकि वहाँ अच्छे डॉक्टर, कंपाउंडर तथा नर्सें मरीज़ के रोग की चिकित्सा और देखभाल कर सकती और उसके रोग-कीटाणुओं को अन्य प्राणियों तक पहुँचने से रोक सकती हैं।

विसूचिका (हैजे) से बचने के उपाय

इस विषय में बहुत कुछ कहा जा चुका है। यहाँ केवल उस सम्बन्ध की मोटी मोटी बातों का वर्णन किया जायगा।

विसूचिका एक अँतड़ी की बीमारी (Intestinal Disease) है। अत इसके कीटाणु भोजन और जल के साथ हमारे शरीर में प्रवेश करते हैं, और क-दस्त के साथ बेशुमार बाहर आते हैं, जिन्हें मक्खियाँ अपनी टाँगों पर चिपकाकर इधर-उधर फैलाती हैं। अँतड़ियों के रोगों में विसूचिका एक प्रबल और भयानक रोग है। प्राय इस रोग के तीन चौथाई रोगी मृत्यु के शिकार हुआ करते हैं। यह एक ऐसा रोग है, जिसका विष शीघ्रता-पूर्वक शरीर में व्याप्त हो जाता है। इस रोग के कीटाणुओं के शरीर में प्रवेश होने के ४८ घंटे के अंदर-ही अंदर रोग अपना प्रभाव प्रकट करता है। ये हैज़े के कीटाणु नम जमीन और पानी में बहुत कालतक जीते रहते हैं। पके चॉवल में ये कीटाणु बढ़ते और उन्नति को प्राप्त होते हैं। सूर्य का तीव्र प्रकाश और शुष्कता इनका नाश कर डालती है। यदि हम निम्न लिखित नियमों का पालन करें, तो हैज़े तथा अन्य अँतड़ियों संबधी रोगों के कीटाणुओं से रक्षा पा सकते हैं—

(१) सदा स्वच्छ जल पिए। यदि जल की स्वच्छता में कुछ भी संदेह हो, तो उसे उबाल ले, और ठंडा कर छान ले।

(२) खाने पीने के पदार्थों को कभी खुला न रख छोड़, और न उनमें किसी को हाथ डालने दे।

(३) भोजन करने या अन्य खाद्य पदार्थ खाने के पहले हाथ और मुँह, दोनों अवश्य ही धो ले।

(४) रसोई घर की सफाई पर सदा ध्यान रक्खे। उसमें कभी जूठन इधर-उधर न पड़ा हो, नहीं तो मक्खियाँ आवेंगी। भोजन के पदार्थों को हर समय ढककर रक्खे।

(५) पाखाने की सफाई रसोई घर से किसी प्रकार कम न होनी चाहिए। पाखाने को नित्य साफ कराकर धुला देना चाहिए और दूसरे-तीसरे फिनाइल के पानी से भी धुला देना आवश्यक है, ताकि पाखाने से बदबू न निकले, और न मक्खियाँ ही भिनभिनावें।

जब कहीं हैजा फैला हो, तो वहाँ के रहनेवालों को निम्न लिखित बातें करनी चाहिए—

(१) पीने का पानी सदा उबाला हुआ हो, और वह सदा ढककर रक्खा जाय। यदि पास में लाल बुकनी हो, तो उसे भी थोड़ा-थोड़ा डाल देना चाहिए ताकि पानी का रंग गुलाबी बना रहे। कुओं में भी यह लाल बुकनी दूसरे-तीसरे दिन डालते रहना चाहिए, ताकि उनके जल का रंग भी गुलाबी बना रहे।

(२) पका और गर्म भोजन ही करना चाहिए। कोई भी फल या तरकारी कच्ची अवस्था में न खानी चाहिए। यदि खाना ही हो, तो उसे दो-एक मिनट तक उबलते जल में रख कर या पोटैशियम परमैंगनेट के जल में धोकर खाय। पकाए हुए भोजन के पदार्थों को ढककर रक्खे, और बासी ठंडा अथवा बासी भोजन भूलकर भी न करे।

(३) कभी ठंढा और कच्चा दूध न पिए। दूध को खूब उबालकर, गर्म अवस्था में ही पिए।

(४) भोजन और पानी के बर्तन को गर्म जल में धोकर ही काम में लावे।

(५) हैज़े के मरीज को एक अलग कमरे में अकेला रक्खे उसके कपड़े-लत्ते भी साफ रक्खे, और उन्हें किसी को न छूने दे।

(६) मरीज के कपड़ों और उसके कै-दस्त के कृमियों का नाश बड़ी सावधानी से करे।

तात्कालिक चिकित्सकों के लिये कुछ निचोड़ बातें

(१) डॉक्टर की सहायता, घायल या मरीज की सुविधा के अनुसार, प्राप्त करना।

(२) डॉक्टर की सहायता प्राप्त करने के पूर्व घायल या मरीज़ को यथाशक्ति आराम पहुँचाना, और उसकी योग्य चिकित्सा करना।

(३) यदि रक्त-स्रुति हो तो उसको तुरत रोकना।

(४) घायल को हिलाने डुलाने के पूर्व टूटी हड्डियों की मरहम पट्टी करना।

(५) दर्द का कम करने का उपाय करना।

(६) खपाच्चियों पर गाँठ लगाना, और पट्टियाँ इस प्रकार बाँधना कि अनुचित दबाव के कारण दर्द न हो।

(७) साधारणतः अपने को शांत रखना, और मरीज को गर्म। मरीज के लिये इस बात में कहीं-कहीं मतभेद है, किंतु चिकित्सक के लिये तो सदा शांत चित्त रहना ही आवश्यक है।

(८) उचित सामान की प्रतीक्षा न करके, समीप के पदार्थों का यथासाध्य उपयोग करना।

(९) अपना कार्य शांति और शीघ्रता-पूर्वक करना, उतावलेपन से नहीं।

(१०) भीड़ तात्कालिक चिकित्सक के कार्य में बाधक और घायल को व्याकुल करनेवाली होती है। अतः घायल के चारों तरफ भीड़ कदापि न लगने पावे।

(११) घायल और मरीज को स्वच्छ वायु की अत्यंत आवश्यकता होती है, अतः इसका उचित ध्यान रहे।

(१२) सदा सचेत रहे, और अवकाश और सुयोग को व्यर्थ हाथ से न जाने दे।

(१३) मरीज के साथ मधुर भाषण करे, और उसे धैर्य दिलावे।

(१४) अपने में और अपने कार्य की सचाई में विश्वास रक्खे।

(१५) अपनी दृष्टि घायल या मरीज़ पर रक्खे, और अपना ध्यान अपने कार्य के उत्तरदायित्व पर।

(१६) सदा इस बात का ध्यान रहे कि मेरा कार्य केवल तात्कालिक सहायता पहुँचाना है, अतः योग्य डॉक्टर और वैद्य की सहायता प्राप्त करने का प्रयत्न करता रहे।

सुगम चिकित्सा

अनुवादकर्त्ता—

प्रेमशङ्कर ।

प्रकीर्णक-पुस्तकमाला नं० २१

सुगम चिकित्सा

अर्थात

स्वस्थ रहनेके प्राकृतिक सरल उपाय

अनुवादकर्ता—
श्रीयुत पं० प्रेमशंकर शिवशंकर पण्ड्या

प्रकाशक—
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, बम्बई

श्रावण १९८७।

तृतीयावृत्ति।] जुलाई १९३०। [मूल्य दो आने।

निवेदन।

यह छोटीसी पुस्तक डा० सामलदास नानजीकी ' सम्पूर्ण तन्दुरुस्ती ' नामक गुजराती-पुस्तकका हिन्दी अनुवाद है। उक्त डाक्टर साहबने इसे अमेरिकाके सुप्रसिद्ध डाक्टर एडवर्ड ड्युई एम० डी० की एक अँगरेजी पुस्तकके आधारसे लिखा था।

संसारमें आधेसे ज्यादा रोग, खान पीनेमें प्राकृतिक नियमोंका उल्लंघन करनेसे होते हैं, इसलिए हमें यह बात स्मरण रखनी चाहिए कि सिवाय प्राकृतिक चिकित्साके संसारमें और कोई चिकित्सा या औषधि नहीं है, जो उन रोगोंका समूल नाश कर सके। इसलिए हमारा कर्तव्य है कि हम प्रकृतिके नियमोंके अनुसार चलें जिससे कि हम सम्पूर्ण स्वास्थ्यका उपभोग कर सकें।

इस पुस्तकमें डा० ड्युईके मनुष्य-जातिको दिये हुए प्राकृतिक उपाय बतलाये गये हैं, जो कि प्रकृतिके यथार्थ नियमोंसे बिलकुल मिलते जुलते हैं।

हिन्दीमें इस विषयसे सम्बन्ध रखनेवाली बहुत कम पुस्तकें हैं, इसलिए मैंने—यह सोचकर कि कदाचित् प्रस्तुत पुस्तक इस कमीको कुछ अंशतक पूरी कर सके—इसका भाषान्तर किया है।

एक तो मेरा यह प्रथम प्रयास है और दूसरे मेरी मातृभाषा हिन्दी नहीं है, इससे इस अनुवादमें बहुतसी त्रुटियाँ होंगी, परन्तु आशा है कि पाठक उपर्युक्त कथनको ध्यानमें रखते हुए, उन्हें क्षमा करेंगे। यदि इस पुस्तकसे पाठकोंने कुछ भी लाभ उठाया, तो मैं अपने परिश्रमको सफल समझूँगा।

इस अनुवादके लिखनेमें मेरे परम मित्र श्रीयुत दशरथलालजी शेठने मुझे बहुत सहायता दी है, इसलिए मैं उन्हें हार्दिक धन्यवाद देता हूँ।

हिरनी
भा०, शुक्ल प्रतिपदा
१९७८

विनीत
प्रेमशंकर शिवशंकर पंड्या।

सुगम चिकित्सा।

डाक्टर एडवर्ड डयुई, एम० डी० अमेरिकाके एक प्रख्यात डाक्टर हैं। वे अपने धंधेमें, यदि चाहते तो अन्य डाक्टरोंकी भाँति, बहुत द्रव्य इकट्ठा कर लेते, परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। वे मनुष्य-जातिको रोगोंसे बचानेके लिए सदैव उपाय सोचते तथा आजमाते रहे और उन्होंने इसमें सफलता भी प्राप्त की।

आपकी नई विधियाँ नीचे लिखे अनुसार हैं—

१ प्रातःकाल, जल्दी भोजन न करना।

२ स्वाभाविक भूख लगे बिना भोजन कभी न करना।

३ भोजनका प्रत्येक ग्रास, जब तक उसमें स्वाद रहे, चबा चबा-कर खाना।

४ भोजन करते समय, जल तथा अन्य प्रवाही पदार्थ न पीना।

अमेरिकाके परोपकारी सज्जन मि० चार्ल्स हस्केल, जिन्होंने अपना स्वास्थ्य ठीक न रहनेके कारण डा० डयुईकी स्वाभाविक और सची चिकित्सासे लाभ उठाया, तथा सम्पूर्ण स्वास्थ्य प्राप्त कर लिया, लिखते हैं—"किसी खाद्य पदार्थकी पुष्टि और शक्ति उसे खाकर जानी जाती है, इस कहावतके अनुसार मैं डा० डयुईका सिद्धान्त आजमानेके लिए तत्पर हुआ। दूसरे दिन प्रातःकाल मैंने अपना प्रातःकालका भोजन (ब्रेकफास्ट) बन्द रक्खा। आज पहले ही मैं खाली पेट ऑफिस चला गया। उस दिन मैंने दो पहरको एक बार भोजन किया, परन्तु

मुझे स्वाभाविक भूख न लगी थी, इस लिए मैंने भोजन करके भूख की ओर इसी कारण सन्ध्या तक मेरा सिर-दर्द बना रहा। परन्तु दूसरे दिन प्रातःकाल मुझे मालूम पड़ा कि अब सिरदर्द पहलेसे कम है, रात्रिको नींद भी और दिनोंकी अपेक्षा अच्छी आई। वर्षोंसे मैं रात्रिको सोनेके समयकी अपेक्षा प्रातःकाल उठनेके समय अधिक थकावट अनुभव करता था। परन्तु आज ही प्रथम दिन था कि रात्रिको मुझे पहलेसे अच्छी निद्रा आई और इससे आज मुझे अपने शरीरमें विशेष शक्ति मालूम पड़ी। इसी रीतिको दूसरे दिन फिर आजमानेका निश्चय करके मैं नियमपूर्वक आचरण करने लगा और तबसे मेरे सिरका कष्ट समूल जाता रहा। आठ वर्षमें आज ही मुझे दो पहरको स्वाभाविक भूख लगी। इस प्रकार प्रातःकालका भोजन दो बार ही—जैसा ऊपर कह आये हैं—न करनेसे, जो फायदा डाक्टर लोग अपनी सारी बुद्धिमानी खर्च करके न कर सके थे वह, प्रकृतिने मुझे पहुँचाया और मैंने भोजन भी बड़े स्वादके साथ किया। मेरी उन्नति जारी रही और जैसे जैसे सप्ताह, मास और वर्ष व्यतीत होते गये, वैसे ही वैसे आज पर्यंत, मेरे शरीरमें शक्ति, दृढ़ता और जवानीकी वृद्धि होती ही गई। यह फेरफार इतना अधिक सुखकर तथा आश्चर्यजनक था कि मैंने इस विषयका सम्पूर्णतया नियमपूर्वक अध्ययन करना आरम्भ कर दिया और इसका परिणाम मुझे ऐसा भासने लगा कि डा० ड्युईने खाने पीनेका बहुत सच्चा और स्वाभाविक नियम ढूँढ निकाला है, जिसके अनुसार चलनेसे हम लोग सब रोगोंसे सर्वथा मुक्त हो सकते हैं।" डा० ड्युईने स्वस्थ रहनेके लिए 'सच्चा नियम अथवा सच्चा शास्त्र' नामक पुस्तककी रचना की है। उसमें वे लिखते

है कि " प्रत्येक रोग जो मनुष्यजातिको कष्ट देता तथा व्यथित कर देता है, उसकी जड शारीरिक भूल है, जो कि रोगके भीतर समा जाती है। यह भूल जठराग्नि और जठर रसके प्रमाणसे कहीं अधिक खा लेना है और इसीसे रोग उत्पन्न होते हैं। "

मिसेज हस्केल पन्द्रहसे अधिक वर्षोंसे खाँसी और दमेके रोगसे व्यथित थीं। वे बहुत निर्बल थीं। ऊपरसे ठंडी वायु लग जानेपर दम उठ आनेसे, उनको कई सप्ताह तक बहुत कष्ट उठाना पडता था। कई प्रकारकी औषधियोंका सेवन किया गया, परन्तु उनसे रोग थोडे ही समयके लिये रुक जाता था। वे भी मि० हस्केलकी नाँई, ऊपर बताया हुआ डा० ड्युईका खाने पीनेका सच्चा नियम सात वर्षों तक पालन करती रहीं और इस अरसेमें उन्हें एक बार भी दम न उठी। उन्हें बिलकुल आराम हो गया था, इस लिये जीवनपर्यंत उन्हें दम कभी न उठी और उन्होंने अपना जीवन सुखसे काटा। जैसे जैसे मिस्टर और मिसेज हस्केलको स्वास्थ्य प्राप्त करनेका यह सच्चा सिद्धान्त, आशीर्वादरूप दिखने लगा, तैसे तैसे वे अन्यान्य रोगी मनुष्योंको उसके गुण दर्शाने लगे और उन रोगियोंने भी यही नियम स्वीकार करके कई प्रकारके ऐसे असाध्य रोगोंसे, जिनमें डाक्टरोंने जवाब दे दिया था, छुटकारा पाया। मि० डब्ल्यू० टी० टेननें, जिन्हें उनके जीवन भर सिरदर्द नियमित समय पर हुआ करता था, उससे मुक्ति पाई। उनके भ्राता मि० एच० सी० टेनको भी, जो गठियेसे जकडे हुए थे, आराम हो गया। इनके सिवाय और भी कई मनुष्योंको इस सच्चे नियमको स्वीकार कर उसके अनुसार चलनेसे, भाँति भाँतिके रोगोंसे पूरा पूरा छुटकारा मिला है।

रोग केवल एक ही है, और भाँति भाँतिके रोग इस एक ही रोगमेंसे उत्पन्न होते हैं। शास्त्र कहता है कि शरीरका तत्त्व रक्तके भीतर रहता है। रोग केवल एक ही वस्तु है और वह रक्तमें मिला हुआ विष अथवा अस्वाभाविक हानिकारक तत्त्व है। यह विष या हानिकारक तत्त्व, अस्वच्छ या बिगडा हुआ रक्त है। जो भोजन हम करते हैं और जिस प्रकार हम करते हैं उसका पचनक्रियासे रक्त बनता है। हमें ऐसा भोजन करना चाहिये कि जिससे पचनक्रिया भली भाँति हो जाय और हमारे शरीरमें स्वच्छ रक्त उत्पन्न होने लगे। इस स्वच्छ रक्तहीको सम्पूर्ण स्वास्थ्यका मूल समझना चाहिये। इसके विरुद्ध, अपूर्ण पचनक्रियासे खराब रक्त उत्पन्न होता है और यह खराब रक्त ही रोगोंकी जड है। यह खराब रक्त सब शरीरमें दौडता है, तथा प्रत्येक रज कण और सूक्ष्मतम स्थानमें पहुँचकर भाँति भाँतिके रोगोंको उत्पन्न करता है। रोगरूपी वृक्षकी अनेक शाखाएँ होती हैं, परन्तु इन सबकी जड अपूर्ण पचनक्रियासे बना हुआ खराब रक्त है।

सम्पूर्ण स्वास्थ्य उपभोग करनेके लिये दो वस्तुएँ अत्यंत आवश्यक हैं, और वे ये हैं—बहुतसी स्वच्छ वायु, और बहुतसा प्रकाश। भोजनके बिना तो मनुष्य कई दिनों तक जी सकता है, परन्तु वायुके बिना पाँच मिनट भी जीना कठिन है, और प्रकाशके बिना तो वह शीघ्र ही रोगी और निर्बल होकर मरने जैसा हो जाता है। इनके सिवाय तीन शारीरिक नियम हैं, जिनका अनुसरण करनेसे स्वास्थ्य प्राप्त किया जा सकता है। वे हैं—निद्रा, क्षुधा और प्यास। इन तीन नियमोंके सहारे हम प्रतिदिन अपनी शक्ति भोजनसे प्राप्त कर सके

हैं। कई मनुष्योंके मतानुसार हम अपनी शक्ति भोजनसे प्राप्त नहीं करते, परन्तु विलक्षण और आशीर्वादरूप निद्राके नियमोंसे सञ्चय करते हैं। हम शक्ति प्राप्त करनेके लिये सोते हैं। शारीरिक परिश्रम करनेसे शरीरके छोटे छोटे रज कण घिस जाते हैं, और केवल उन्हें ही ठीक करनेके लिये हम भोजन करते हैं। उचित रीतिसे खाने पीनेके नियमोंका पालन करनेसे, भली और पूरी निद्रा आती है। पहले हम यह बतायेंगे कि भोजन करनेकी बुरी आदतोंके कारण हम सब, स्वाभाविक भूखका लगना खो बैठे हैं और हमे अस्वाभाविक और झूठी भूख लगने लगी है, जिसे हम भोजन करनेकी इच्छा या रुचि कहते हैं। जितना अन्तर प्रकाश और अन्धकारके बीचमें है, उतना ही अन्तर स्वाभाविक और अस्वाभाविक भूख या खानेकी रुचिमें है। सम्पूर्ण स्वास्थ्य प्राप्त करनेके लिये हमारा प्रथम कर्तव्य, इस अस्वाभाविक भूखका नाश करके उसके स्थानमें स्वाभाविक भूखके सत्य नियमको ग्रहण करना है। ऐसा करनेके लिये हमें स्वाभाविक भूख और अस्वाभाविक भूख अथवा खानेकी रुचिके बीचमें जो अन्तर है, उसे भली भाँति समझ लेना चाहिये। स्वाभाविक भूखका लगना कैसा होता है, यह बहुत ही थोड़े मनुष्य बता सकते हैं। पेटके खाली मालूम होने, जी मिचलाने लगने, या चक्कर आने लगनेहीको, लोग स्वाभाविक भूखके चिह्न मानते हैं। परन्तु ये सब चिह्न अस्वाभाविक भूख या खानेकी रुचिके हैं—स्वाभाविक भूखके नहीं। हम खाने पीनेकी खोटी आदतोंके कारण ऐसे चिह्नोंको स्वाभाविक भूख समझ लेते हैं। अस्वाभाविक भूख पेटके भीतर मालूम होती है और सच्ची भूख होठोंमें जान पड़ती है। बहुधा मनुष्य पेटकी अस्वाभाविक भूख या रुचिके वश होते हैं, और ये मानों उसके एक प्रकारसे गुलाम हो जाते हैं।

स्वाभाविक प्यासका लगना कैसा होता है—यह हम जानते हैं। हमें उसका ज्ञान मुख और गलेमें होता है, और जब प्यास लगती है तब मनुष्य दूसरे प्रवाही पदार्थोंकी अपेक्षा ठंडे जलको ही अधिक चाहता है। जब मनुष्यको स्वाभाविक प्यास लगती है, तब उस ठंडा जल बहुत ही स्वादिष्ट और शान्तिप्रद मालूम होता है। पीनेमें, यदि मनुष्य इस नियमके अनुसार चले, तो उसे मूत्रपिंडके तथा इस प्रकारके और और रोग कभी न होवें। नशा उत्पन्न करनेवाले प्रवाही पदार्थ पीनेकी प्यास अस्वाभाविक होती है और वह पेटमें उत्पन्न होती है, तथा खानेकी रुचिके समान होती है। स्वाभाविक प्यासके समान स्वाभाविक भूख मुख तथा गलेमें उत्पन्न होती है, और उस समय भोजन स्वादिष्ट लगेगा ऐसी भावना होती है। अस्वाभाविक भूख या खानेकी रुचिका अनुभव ऐसा होता है कि जब मनुष्य भूखा होता है, तब यदि भोजन मिलनेमें थोडा भी विलम्ब हो जाय तो वह खिन्न तथा बेचैन हो जाता है, परन्तु स्वाभाविक भूख लगने पर, वह समय पडे घण्टों तक शान्तिके साथ भोजनकी राह देख सकता है। मदिराने तो महस्रोंको ही यम पुर भेजा है, परन्तु यह अस्वाभाविक भूख या रुचि लाखोंका नाश कर चुकी है और करती जाती है।

उत्तम स्वास्थ्य प्राप्त करनेके लिये यह बात अत्यन्त आवश्यक है कि कोई मनुष्य बिना स्वाभाविक भूख लगे भोजन कभी न करे। जीवनका यह नियम सदैव एकसा होना चाहिये। अन्य सब नियमोंकी अपेक्षा इस नियमके ऊपर जीवन अधिकतर अवलम्बित है। कोई मनुष्य कितना भी शारीरिक या मानसिक परिश्रम क्यों न करे, उसे स्वाभाविक भूख दिनमें दो बारसे अधिक कभी नहीं लगती चाहिये-ऐसा

डा० डयुई और उनके रोगियोंने सिद्ध कर दिया है। प्रत्येक देशमें, प्रत्येक प्रकारके जलवायुमें और प्रत्येक प्रकारके काम करनेवाले मनुष्योंमें—क्या पुरुष, क्या स्त्री, क्या निर्धन, क्या धनवान्, सभीके सम्बन्धमें—यह बात साबित हो चुकी है। जहाँ जहाँ इस बातकी परीक्षा हुई है, वहाँ वहाँ यह निस्सन्देह साबित हो गया है कि किसी भी मनुष्यको स्वाभाविक भूख, दिनमें दो बारसे अधिक नहीं लग सकती। यह नियम प्राकृतिक होनेसे हमें इसे तुरन्त स्वीकार कर लेना चाहिये, और जब स्वाभाविक भूख लगे केवल तब ही, भोजन करना चाहिये। यदि स्वाभाविक भूख दिनमें दो बार लगे तो दो बार और यदि एक बार लगे तो एक ही बार खाना चाहिये और कदाचित् कोई दिन स्वाभाविक भूख बिल्कुल न लगे, तो यह समझ लेना चाहिये कि बिना सची भूख लगे अन्न नहीं पचेगा और शरीरको उससे पोषण नहीं मिलेगा, इस लिये उस दिन उपवास करना चाहिये। उस प्रकृति यह सङ्केत करती है कि, "तुम आज भोजन मत करो।" प्रकृतिके आदेशानुसार उसकी आज्ञाका पालन करनेसे, वह स्वयं स्वाभाविक भूख न लगनेका कारण दूर करके स्वाभाविक भूख लगावेगी, और वैसी भूखका बोध मुख तथा गलेमें होवेगा। यहाँ पाठक सहज ही यह प्रश्न करेंगे कि स्वाभाविक भूख क्यों लगती है, और यह कब उत्पन्न होती है? हम ऊपर लिख चुके हैं कि हमें निद्रासे शक्ति मिलती है और उससे शरीरका स्नायुसमूह ताजा और बलवान् हो जाता है। जैसी अधिक शान्ति और आरामकी निद्रा आती है, वैसी ही अधिक शक्ति मालूम पड़ती है। सोनेमें स्नायुसमूह और आशय काम करना बन्द कर देते हैं, और इससे उनमें नई शक्तिका सञ्चार हो जाता है, जो कि उन्हें

अधिक काम करनेके योग्य बना देती है। जिगर (दिल), गुरदा और फेफड़ोंके सिवाय, सर्वाङ्गके लिये यह बात सत्य है। जिगर, गुरदा और फेफड़ोंका काम चालू रहनेसे, हमारे ज्ञानतन्तुओंके ऊपर धक्का अथवा चोट नहीं पहुँचती। आमाशयके स्नायु और जठररस बनानेवाली गोलियों (ग्लैंड्ज) का, जो भोजन पचानेके लिये जठराग्नि और जठररस उत्पन्न करती हैं, शरीरके सब स्नायुसमूहकी अपेक्षा अधिक परिश्रम करना पड़ता है। भोजन पचानेमें आमाशयके स्नायुसमूह और जठर रसकी गोलियोंको जितना परिश्रम करना पड़ता है, उतना लुहारको निहाईपर और कृषकको खेतमें अपने हाथोंसे नहीं करना पड़ता। रोगके कारण आवश्यकता पड़ने पर भी, हम आमाशयको एक दिनके लिये भी विश्राम नहीं लेने देते। बीमारीकी दशामें भी डाक्टर शक्ति स्थापित रखनेके बहाने साधारण रीतिसे थोड़ासा खा लेनेका आदेश करते हैं—यद्यपि श्रेष्ठ बुद्धि या साधारण मतिके लोग ऐसा कहते हैं कि स्वाभाविक भूख लगे बिना पचनक्रिया नहीं हो सकेगी, और उसके न होनेसे, उदरस्थ भोजनमेंसे किसी भी प्रकारका पोषण, शरीरको न मिल सकेगा। आमाशय दिनमें कठोर परिश्रम करके, सोनेके समय यदि वह खाली होवे तो, विश्राम लेता है जिससे उस समय उसकी गोलियाँ जठररस उत्पन्न नहीं करतीं, परन्तु प्रकृति विश्राम देकर उन्हें दूसरे दिनके काम करनेके योग्य सशक्त बना देती है। मनुष्य जब प्रातःकाल नींदसे उठता है तब यदि आमाशय खाली भी होवे, तो भी वह ऊपर कहे हुए कारणोंसे भोजन पचानेके योग्य नहीं रहता। निद्रामें शरीरको परिश्रम नहीं करना पड़ता, और रज कणों (टेश्युस या टिश्यूज) का व्यय नहीं होता, इसलिये उसे (व्ययको) जिससे पूरा

करनेकी प्राय कोई आवश्यकता नहीं होती । इस कारण प्रात काल भोजन करनेकी भी कोई आवश्यकता नहीं होती, क्योंकि जैसा ऊपर कह आये हैं हम परिश्रम करनेसे जो रज कण खो देते अथवा व्यय कर डालते हैं, उनको फिरसे पूरा (रिप्लेस) करनेके लिये ही, भोजन करते हैं। जब हम निद्रा पूरी कर उठनेके पश्चात् दिनका कार्य आरम्भ करते हैं तब प्रकृति पचनक्रिया ठीक ठीक करनेका कार्य हाथमें लेती है, अर्थात् भोजन पचानेके लिये पेटके अवयवोंको उत्साही और तैयार करती है, और ऐसा करनेमें उसे चारसे छह घण्टे लगते हैं। जब यह तैयारी पूरी हो जाती है तब आमाशयके स्नायु और जठररसकी गोलियाँ अपना कार्य भली भाँति करनेको तत्पर हो जाती हैं, और वे स्वाभाविक भूख गलेके भीतर उत्पन्न करती हैं। यही स्वाभाविक भूख है और यह प्राकृतिक नियमोंके अनुसार ही उत्पन्न होती है। जब इस प्रकार उत्पन्न हुई स्वाभाविक भूखके निमन्त्रणको स्वीकार कर हम भोजन करते हैं तब उस समय भोजनका स्वाद कुछ और ही प्रकारका आता है। भोजन कितना ही सादा या सूखा क्यों नहीं होवे, वह सदैव स्वादिष्ट लगता तथा पूर्ण सन्तोष देता है। इस प्रकार प्राकृतिक नियमके अधीन होकर दूसरी बार खानेके पहले, हमें स्वाभाविक भूखकी राह देखना उचित है, और इस नियमको पालन करना हमें अपने जीवनके प्रतिदिनका कर्तव्य बना लेना चाहिये। परमेश्वरने मनुष्यजातिको आरोग्य रहनेके लिये रचा है, न कि रोगी रहनेके लिये। आरोग्यता और जीवन मनुष्य जातिकी स्वाभाविक और रोग और मरण अस्वाभाविक दशाएँ हैं। स्वाभाविक भूखके नियमोंके अधीन रहकर, हम सम्पूर्ण पाचनशक्तिका उपभोग कर सकते हैं। यह सम्पूर्ण पचनक्रिया स्वच्छ और ताजा रक्त बनाती है तथा स्वच्छ रक्त ही सम्पूर्ण स्वास्थ्य है।

अधिक काम करनेके योग्य बना देती है। जिगर (दिल), गुरदा और फेफडोंके सिवाय, सर्वाङ्गके लिये यह बात सत्य है। जिगर, गुरदा और फेफडोंका काम चालू रहनेसे, हमारे ज्ञानतन्तुओंके ऊपर धक्का अथवा चोट नहीं पहुँचती। आमाशयके स्नायु, और जठररस बनानेवाली गोलियाँ (ग्लेंड्ज) को, जो भोजन पचानेके लिये जठराग्नि और जठररस उत्पन्न करती हैं, शरीरके सब स्नायुसमूहकी अपेक्षा अधिक परिश्रम करना पडता है। भोजन पचानेमें आमाशयके स्नायुसमूह और जठर रसकी गोलियोंको जितना परिश्रम करना पडता है, उतना लुहारको निहाईपर और कृषकको खेतमें अपने हाथोंसे नहीं करना पडता। रोगके कारण आवश्यकता पडने पर भी, हम आमाशयको एक दिनके लिये भी विश्राम नहीं लेने देते। बीमारीकी दशामें भी डाक्टर शक्ति स्थापित रखनेके बहाने साधारण रीतिसे थोडासा खा लेनेका आदेश करते हैं—यद्यपि श्रेष्ठ बुद्धि या साधारण मतिके लोग ऐसा कहते हैं कि स्वाभाविक भूख लगे विना पचनक्रिया नहीं हो सकेगी, और उसके न होनेसे, उदरस्थ भोजनमेंसे किसी भी प्रकारका पोषण, शरीरको न मिल सकेगा। आमाशय दिनमे कठोर परिश्रम करके, सोनेके समय यदि वह खाली होवे तो, विश्राम लेता है जिससे उस समय उसकी गोलियाँ जठररस उत्पन्न नहीं करतीं, परन्तु प्रकृति विश्राम देकर उन्हें दूसरे दिनके काम करनेके योग्य सशक्त बना देती है। मनुष्य जब प्रात काल नींदसे उठता है, तब यदि आमाशय खाली भी होवे, तो भी वह ऊपर कहे हुए कारणोंसे भोजन पचानेके योग्य नहीं रहता। निद्रामें शरीरको परिश्रम नहीं करना पडता, और रज कणों (ऐटमस ऑफ टिस्यूज) का व्यय नहीं होता, इसलिये उसे (व्ययको) फिरसे पूर्ण

करनेकी प्राय कोई आवश्यकता नहीं होती । इस कारण प्रात काल भोजन करनेकी भी कोई आवश्यकता नही होती, क्योंकि जैसा ऊपर कह आये हैं हम परिश्रम करनेसे जो रज कण खो देते अथवा व्यय कर डालते हैं, उनको फिरसे पूरा (रिप्लेस) करनेके लिये ही, भोजन करते हैं। जब हम निद्रा पूरी कर उठनेके पश्चात् दिनका कार्य आरम्भ करते हैं तब प्रकृति पचनक्रिया ठीक ठीक करनेका कार्य हाथमें लेती है, अर्थात् भोजन पचानेके लिये पेटके अवयवोंको उत्साही और तैयार करती है, और ऐसा करनेमें उसे चारसे छह घण्टे लगते हैं। जब यह तैयारी पूरी हो जाती है तब आमाशयके स्नायु और जठररसकी गालियाँ अपना कार्य भली भाँति करनेको तत्पर हो जाती हैं, और वे स्वाभाविक भूख गलेके भीतर उत्पन्न करती हैं। यही स्वाभाविक भूख है और यह प्राकृतिक नियमोंके अनुसार ही उत्पन्न होती है। जब इस प्रकार उत्पन्न हुई स्वाभाविक भूखके निमन्त्रणको स्वीकार कर हम भोजन करते हैं तब उस समय भोजनका स्वाद कुछ और ही प्रकारका आता है। भोजन कितना ही सादा या मूखा क्यों नहीं होवे, यह सदैव स्वादिष्ट लगता तथा पूर्ण सन्तोष देता है। इस प्रकार प्राकृतिक नियमके अधीन होकर दूसरी बार खानेके पहले, हमें स्वाभाविक भूखकी राह देखना उचित है, और इस नियमको पालन करना हमें अपने जीवनका प्रतिदिनका कर्तव्य बना लेना चाहिये। परमेश्वरने मनुष्यजातिको आरोग्य रहनेके लिये रचा है, न कि रोगी रहनेके लिये। आरोग्यता और जीवन मनुष्य जातिकी स्वाभाविक और रोग और मरण अस्वाभाविक दशाएँ हैं। स्वाभाविक भूखके नियमोंके अधीन रहकर, हम सम्पूर्ण पाचनशक्तिका उपभोग कर सकते हैं। यह सम्पूर्ण पचनक्रिया स्वच्छ और ताजा रक्त बनाती है तथा स्वच्छ रक्त ही सम्पूर्ण स्वास्थ्य है।

अब हम यह विचारें कि जब कोई मनुष्य शीघ्र अर्थात् प्रात काल भोजन करता है तब क्या होता है । उसे अस्वाभाविक भूख अथवा खानेकी रुचि लगती है और उसे ऐसी भूख तथा चक्करोंको—जो प्राय बहुत ठासकर खा लेनेसे आमाशयके ऊपर, उसकी शक्तिसे अधिक दबाव पडनेके कारण उत्पन्न होते हैं—रोकनेके लिये खाना पडता है। रुचि या अस्वाभाविक इच्छा प्रबल होती है, और इस कारण मनुष्य यह सोचकर कि आमाशय खाली न होने पेट भरकर खा लेता है, आर आधेसे कम चबाया हुआ अन्न, खाते समय जल या अन्य कोई प्रवाही पदार्थ पीकर, जैसे तैसे गलेके नीचे उतार लेता है ।

अब पेटके भीतर अन्नको मथन करके पचानेका कार्य आरम्भ होता है, परन्तु इस समय जठर रसकी गोलियाँ, भोजनको यथोचित रीतिसे पचानेके लिये जठराग्नि उत्पन्न नहीं करती । इसका परिणाम यह होता है कि भोजन मथन करनेकी क्रिया (चर्निंग) दिनमें दो वार होती है और कठिन परिश्रमके कारण आमाशयके स्नायुओंको धक्का डालती है । इसके पश्चात् इस अन्नका सडना और बिगडना आरम्भ होता है । अब इस मथन किये हुए (डिकेड) भोजनको ठीक करनेके लिये आमाशयके स्नायुओं और ज्ञानतन्तुओंको कठोर परिश्रम करना पडता है, और यह विषरूप बना हुआ भोजन आमाशयमेंसे अँतडियोंमें नीचे उतरकर, फिर रक्तके भीतर मिल जाता है, और उसे अस्वच्छ या विकारी बनाता है, तथा यह अस्वच्छ रक्त सब शरीरमें दौडता है । केवल यही रक्त मनुष्यजातिका सबसे बडा रोग है और विषरूप भोजनका हलाकारी हालाहल है ।

जब ग्रीसनिवासी पृथ्वीपर राज्य करते थे, तब उनके शरीर पूर्ण रूपसे स्वस्थ और आदर्शरूप थे, क्योंकि वे लोग दिनमें केवल दो बार ही भोजन करते थे--पहली बार दोपहरको, और दूसरी बार रात्रिको।

ईरानके लोग, जब उनका राज्य और उनकी सुख्याति उन्नतिके शिखरपर पहुँची हुई थी तब, दिनमें एक ही बार दोपहरके समय भोजन करते थे।

जब ग्रीक और ईरानी लोगोंने अपने रहन-सहनका सादापन छोड़कर आलस्य ग्रहण कर लिया, तब उनका पतन आरम्भ हुआ। लगभग १००० वर्ष तक सबसे स्वस्थ, बुद्धिशाली और श्रीमत प्राय आठ करोड मनुष्य दिनमें दोपहरको एक ही बार भोजन करते थे, और वे इस विधिको सफलताके साथ व्यवहारमें लाते थे। पन्द्रहवीं शताब्दिमें एक बुद्धिमान् मनुष्यने कहा था कि, "दिनमें एक बारके भोजनपर निर्वाह करना स्वर्गदूतका जीवन, दिनमें दो बार खाकर रहना मनुष्य जातिका जीवन और तीन बार खाकर रहना हैवानका जीवन है।"

कब खाना, क्या खाना और किस प्रकारसे खाना—अब हम इन पर विचार करें। ये तीन बातें खानेके विषयमें बहुत ही महत्त्वकी हैं। शास्त्रानुसार, कब खाना—यह हम ऊपर बता चुके हैं। जब आमाशय भोजनका यथोचित पाचन नहीं कर सकता तब भोजन करनेसे कब्ज पैदा होता है, और ऐसे भोजनसे उत्पन्न हुआ रक्त खराब या विकारी होता है। पचनक्रिया मुखके भीतरसे ही आरम्भ होती है, इस लिये यह आवश्यक है कि भोजनका प्रत्येक ग्रास मुखमें खूब चबाकर गलेके नीचे उतारना चाहिये और जब तक भोजनमें स्वाद रहे तब

तक उसे धीरे धीरे भली भाँति चवाकर खाना चाहिये । यदि भोजन खूब चवाकर मक्खनके समान नरम नहीं वना लिया जायगा, तो जठराग्नि उसे वरावर नहीं पचा सकेगी, जिससे वदहजमी (अजीर्ण) होकर रक्तका विगाड होगा । यदि भोजन मुखमेंसे पचनक्रियाके लिये वरावर तैयार होकर आमाशयमें उतरे, और जिस समय जठराग्नि अपना कार्य ठीक रूपसे करनेकी स्थितिमें हो उसी समय भोजन किया जावे, तो पचनक्रिया पूरी तरह पर होकर भोजनका स्वच्छ या स्वास्थ्यप्रद रक्त वनेगा, और स्वच्छ रक्तहीको सम्पूर्ण स्वास्थ्य समझना चाहिये । क्या खाना, यह सवसे छोटी वात है, परन्तु लोगोंने इसे सवसे वडी वात वना रक्खा है । हमें ऐसा भोजन खाना चाहिये, जिसमें पोषण करनेके विशेष तत्त्व हों, और जिससे भोजन पचानेवाले अवयवोंपर आवश्यकतासे अधिक परिश्रम न पडे । प्रकृतिने मनुष्य जातिके लिये स्वाभाविक भोजन वनाया है, और वह वनस्पति-ससार (वजिटेवल किङ्गडम) है । ससारमें तीन विभाग (किङ्गडम्स) हैं—ऐनीमल (प्राणी), वेजीटेवल (वनस्पति) और मिनरल (खनिज)। वायु और सूर्यके प्रकाशके अतिरिक्त, प्रत्येक वर्ग नीचेकी श्रेणीके वर्गसे, अपना पोषण करता है । वेजीटेवल किङ्गडम (वनस्पति वर्ग), मिनरल किङ्गडम (खनिज) से और एनीमल किङ्गडम (प्राणिवर्ग) वेजीटेवल किङ्गडमसे अपना पोषण करता है, और ऐसा करना ठीक ही है । यह प्रकृतिका शास्त्रीय नियम है और यदि इस नियमका अनुसरण किया जावे और इसके साथ साथ कव और किस रीतिसे खाना—इन दो नियमोंका पालन किया जावे, तो सवसे श्रेष्ठ और स्वच्छ रक्त उत्पन्न हो । हाथी, ऊँट, वैल, और घोड जैसे प्राणी, जो वनस्पतिपर अपना

निर्वाह करते हैं, बहुत अधिक सहनशक्ति धारण करते हैं, और सबसे उत्तम स्वभाव रखते हैं। यही नियम मनुष्यजातिके लिये भी घटित होता है। परमेश्वरने निर्माण किया है कि मनुष्यजातिका भोजन वनस्पति वर्गमेंसे होना चाहिए और इसीसे उसने इस वर्गमें मनुष्यजातिके भोजनकी तरह तरहकी वस्तुएँ, बहुत बडे परिमाणमें उत्पन्न की है, जिससे उसके भोजनमें किसी प्रकारके आनन्दकी कमी न रह।

पशुओंका मास (ऐनीमल फूड) मनुष्यजातिका स्वाभाविक या श्रेष्ठ भोजन नहीं है। परमेश्वरकी असीम बुद्धिमानीका भाण्डार मनुष्यजाति है। परमेश्वरका मुकुट और कीर्ति तथा उसकी महती शक्ति और प्यारकी वस्तु मनुष्यजाति है। मनुष्यका शरीर एक मन्दिररूप है, जिसमें परमेश्वर स्वय विराजमान है। तब यह अत्यत आवश्यक है कि हम इस मन्दिररूपी शरीरको स्वच्छ, सुन्दर, मजबूत और स्वस्थ रक्खें। यदि हम केवल फल, मेवा, अनाज, वनस्पति आदि स्वाभाविक खाद्यसे ही जिसको परमेश्वरने मनुष्यजातिके उपभोगके लिये आश्चर्यजनक परिमाणमें उत्पन्न किया है, निर्वाह न करें, तो हम अपना मन्दिररूपी शरीर स्वच्छ, मजबूत और पवित्र स्थितिमें कदापि नहीं रख सकते।

मांसका भोजन शास्त्रविरुद्ध और अस्वाभाविक है, क्योंकि पशुओंका भोजन वनस्पति है और वे उसमेंसे अपने शरीरके पोषणके लिए अच्छे तत्त्व खींच लेते हैं, और थोडे तत्त्ववाला कचरा पीछे छोड़ जाते हैं, जिससे कि मास खानेसे, मांसाहारियोंको, ऐसा कहिये कि एक तरहसे बासी या (सेकण्डहेण्ड) वनस्पति मिलती है। वनस्पतियोंको यदि हम ताजी और रस, गूदे तथा स्वादसे परिपूर्ण स्थितिमें, जैसा कि परमेश्वरने उन्हें हमारे लिये अपने शरीरका पोषण करनेके लिये

निर्माण किया है, खावें, तो कितना अधिक लाभ न होवे' मांस खाना, नये कपडे मोल लेनेके बराबर है और उन कपडोंसे हम नयेकी अपेक्षा अधिक लाभ उठानेकी आशा करते हैं। यह ठीक नहीं है, तथा शास्त्रविरुद्ध है। ऐसा करना प्रकृतिके नियमोंके भी विरुद्ध है। वेजिटेबल-किङ्गडम (वनस्पति-वर्ग) मनुष्यजातिके लिए, वास्तविक और स्वाभाविक भोजन अधिक परिमाणमें देता है, जिसमे कि मनुष्यजातिका मन्दिररूपी शरीर स्वच्छ और पूर्णरूपसे स्वस्थ रह सके। परमेश्वरकी आज्ञा है कि, " तू अपने आपको पवित्र और स्वच्छ रख।"

मास मनुष्यजातिका स्वाभाविक भोजन नहीं है, इसके अन्य भी कई कारण हैं। प्राणी (ऐनिमल) का शरीर एक प्रकारके सूक्ष्म परमाणुओं (सेल्स) से—जिनमें कि जीव चला करते हैं—बना हुआ है। यह रचनाका कार्य रोक-टोक या रुकावटके बिना, निरन्तर चला करता है। ये परमाणु, शरीरके भीतर अपना चैतन्य (प्रोटोप्लाजम) डालकर, अन्य नये परमाणुओंको अपना चैतन्य लानेके लिये स्थान देते हैं, अर्थात पुराने परमाणु शरीरमेंसे घिसकर निकल जाते हैं और उनके स्थानमें नये परमाणु सदैव उत्पन्न होते रहते हैं। यह फेरफार जीवनभर निरन्तर हुआ करता है। ज्यों ही प्राणीका वध किया जाता है, त्यों ही इन परमाणुओंका फेरफार होना रुक जाता है और मांसका अधिक भाग अचैतन्य परमाणुओं (डेड सेल्स) से भरा हुआ हो जाता है और इससे, जैसे ही जीव शरीरको छोडता है, वैसे ही शरीरका बिगाड या सडना आरम्भ हो जाता है। प्राणीका मास खानेसे, हम अपने शरीरके भीतर यह अचैतन्य पदार्थ प्रवेश कर लेते हैं, और उसे ठीक करनेके लिये, पचानेवाले अवयवोंपर भारी बोझ डालते

हैं। हमें ध्यानमें रखना चाहिए कि मारे हुए प्राणियोंका अधिक भाग विकारी होता है। हिसाब लगानेसे माळूम पडा है कि जो पशु मारे जाते हैं, उनका लगभग तीन चतुर्थांशसे अधिक भाग विकारी होता है। मास-भोजनके विरुद्ध दूसरा विचार यह करनेका है कि जो मनुष्य पशुकी हत्या करता है, उसे अपने हृदयको कठोर बनाना पडता है और इससे नैतिक स्वभावमें हानि पहुँचती है, और वह मनुष्यजीवनकी पवित्रताके सूक्ष्म भावोंको खो बैठता है। सम्पूर्ण स्वास्थ्यके लिये, हमारे शरीरके बारेमें दूसरी आवश्यक बात है—कब और क्या पीना। भोजन करते समय, हमें जल या अन्य कोई प्रवाही पदार्थ नहीं पीना चाहिए, क्यों कि प्रवाही पदार्थके आमाशयमें जानेसे जठराग्नि मन्द पड जाती है और वह पचनशक्तिको हीन या कमजोर बनाता है। किसीको भी, भोजन करनेके आधा घण्टा पहलेसे और खानेके पश्चात् एकसे दो घण्टे तक कुछ न पीना चाहिये। स्वाभाविक प्यासको जो सदैव मुखमें लगती है, जल पीनेके लिये प्रकृतिका निमंत्रण समझना चाहिये और दूसरे किसी समय कभी कुछ न पीना चाहिये। जब मनुष्यको प्यास लगती है, तब स्वच्छ ठंडे जलके सदृश स्वादिष्ट अन्य कोई प्रवाही पदार्थ नहीं लगता। जल प्राकृतिक पेय है और यह बिना कुछ हानि पहुँचाये मनमाना पिया जा सकता है। कब पीना और क्या पीना, इस विषयका यह स्वाभाविक नियम बतलाया जा चुका।

भोजन करते समय आनन्दचित्त रहनेसे, और हँसी विनोदकी बातचीत करनेसे पचनक्रियाको बहुत लाभ पहुँचता है।

सम्पूर्ण स्वास्थ्यके लिये यह बात आवश्यक है कि समय-समयपर स्नान कर शरीरको स्वच्छ रखना चाहिए। प्रतिदिन ठंडे जलसे स्नान करनेसे शरीरको स्वच्छता और उतनी ही शक्ति भी मिलती है। प्रातःकाल उठनेके पश्चात्, शीघ्र ठंडे जलसे नहानेका नियम उत्तम है। वनस्पतिके तेलसे बनाया हुआ साबुन नहानेके काममें लाना चाहिये। जो मनुष्य गर्मीकी ऋतुमें भी ठंडे जलसे नहानेका अभ्यास डालेगा वह धीरे धीरे शरद ऋतुमें भी ठंडा जल सहन कर सकेगा।

उचित रीतिसे श्वास लेनेका कार्य शरीरके लिये बहुत आवश्यक है और इस ओर हमें विशेष ध्यान देना चाहिए। हमें प्रतिदिन अपने शरीरमें फेफड़ोंके द्वारा १५००० घन इंच और त्वचाके द्वारा ३००० घन इंच स्वच्छ वायु लेनी चाहिये। यदि चर्म आरोग्य स्थितिमें नहीं रक्खा जावेगा, तो वह शरीरमें भली भाँति स्वच्छ वायु न पहुँचा सकेगा, जिससे हमारे सम्पूर्ण स्वास्थ्यमें बिगाड़ होगा। स्नान करनेके पश्चात् और वस्त्र पहरनेके पूर्व प्रत्येक मनुष्यको दस या पन्द्रह मिनिट तक श्वासोच्छ्वास (खींचकर श्वास लेने और छोड़ने) का व्यायाम करना चाहिये। सीधे खड़े रहना, सिर ऊँचा रखना, कंधे पीछेको तने हुए, और हाथ ऊँचे करके श्वास खींचना, और हाथ नीचे बाजूपर लाकर वायुको धीरे धीरे फिरसे छोड़ना। इसके पश्चात् शरीरका बोझ दाहिने पैरपर डालकर, बायाँ पैर आगे करना। इस स्थितिमें पचीस बार श्वास लेनेका व्यायाम करो। फिर शरीरका बोझ बायें पैरपर डालकर दाहिना पैर आगे करके फिरसे श्वास लेनेका ऊपर कहे अनुसार व्यायाम करो। आरम्भमें दस बार श्वास लेना और फिर धीरे धीरे बढ़ाकर पचीस बार तक लेना चाहिये। इस व्यायामको करते समय मनमें यह ध्यान करना कि "प्रत्येक

श्वासके साथ हम स्वास्थ्य और जीवन खींच रहे हैं । ” कई मनुष्य बहुत भारी (वजनी) कपडे पहिनते हैं। त्वचाको हवा लेनेका काम भलीभाँति करनेके लिये, त्वचा और उसके आसपासकी वायुके बीचमें जितने थोडे बन सकें उतने थोडे कपडे होने चाहिये । साथ ही साथ इसका भी ध्यान रहे कि उन कपडोंसे शरीरकी गर्मी जितनी चाहिये उतनी बनी रहे । कपडे पतले और ढीले पहनना चाहिये, परन्तु जिगर, गुर्दे और फेफडोंके पासका कपडा जरा अधिक मोटा और मजबूत होवे, तो अच्छा । जब मनुष्यको स्वास्थ्यकी रुचि होती है, और वह उसका मूल्य जानने लगता है, तब ही वह उसको पूर्ण रूपसे प्राप्त कर सकता है ।

जब तक स्वस्थ शरीरके भीतर स्वस्थ मन न होवे, तब तक सम्पूर्ण स्वास्थ्य नहीं हो सकता, इस लिये जहां तक बन सके, हमें आनन्दचित्त और संसारकी झंझटों और आफतोंमें घबरा न जाकर, सतोष धारण करके रहना चाहिये। स्वभावको प्रफुल्लित और सन्तोषी रखना चाहिये, क्योंकि संसारमें सुख दुःख रागी बागीमें सभी मनुष्यों-पर पडते हैं । सन्तोष रखने और मनको वशमें रखनेमें स्वास्थ्यकी हानि नहीं पहुँचती । भोजनकी पचनक्रियाके लिये प्रफुल्ल मन होना अत्यंत आवश्यक है । शोक और उदासीसे पचनक्रियामें धक्का पहुँचकर स्वास्थ्य बिगडनेकी बहुत सम्भावना रहती है ।

यदि इस पुस्तकके पढनेवाले पाठकवृन्द तथा सद्गृहस्थ स्वास्थ्य और सुखी बननेके उपाय देखकर तदनुकूल चलेंगे, तो मुझे बहुत ही प्रसन्नता होगी ।

ऊपरके प्राकृतिक नियम अवश्य स्मरण रखिये, ये बहुत आवश्यक और स्पष्ट हैं ।

१—प्रातःकाल, शीघ्र भोजन करनेकी अस्वाभानिक और रोग उत्पन्न करनेवाली आदत सदैवके लिये छोड देना। ऐसा करनेसे स्वाभाविक भूख लगेगी।

२—कोई दिन कैसा भी कारण क्यों न आ पडे, बिना स्वाभाविक भूख लगे भोजन कभी न करना।

३—जबतक स्वाद आता रहे, तबतक भोजनका प्रत्येक ग्रास चबा-चबाकर खाना।

४—भोजनके साथ कोई भी प्रवाही पदार्थ न पीना।

जीवन व्यतीत करनेके ये सत्य और शास्त्रीय नियम हैं। शरीर और मनको सम्पूर्ण स्वास्थ्यमें लानेके लिये, तुम्हारे ये पहले कर्तव्य हैं। इन कर्तव्योंके करने और स्वास्थ्य तथा जीवनके मार्गपर चल निकलनेके पश्चात्, तुममें नया प्रकाश उत्पन्न होगा, और जैसे जैसे तुम आगे चलोगे, तैसे तैसे शरीर और मन पुष्ट तथा मजबूत बनते जायँगे, और वे यहाँतक पुष्ट होते जायँगे कि तुम आप ही कहने लगोगे कि, "मैं अब सम्पूर्ण स्वास्थ्यका उपभोग करता हूँ।"

खाने पीनेके सत्य और शास्त्रीय नियम स्वीकार करनेसे अमेरिकामें और संसारके अन्यान्य देशोंमें महिलाओं तथा सद्गृहस्थोंके क्रमानुसार नीचे लिखे हुए रोग अच्छे हो गये हैं। प्रकृतिके नियमानुसार स्वाभाविक भूख लगनेपर ही, दिनमें एक या दो बार खानेसे और कितने ही कठिन रोगोंमें कई दिनोंतक—जबतक कि स्वाभाविक भूख न लगे—उपवास करनेमे उन्होंने सम्पूर्ण स्वास्थ्य प्राप्त किया है।

	रोग ग्रसितोंके नाम	निवासस्थान	रोगका नाम
१	मि० जाज, एम	ब्रिस्टल	पित्त-विकार और सिर-दर्द
२	रेवेरेण्ड मि० आर बी जान्स	हडली	कंठमाल
३	मि० डब्ल्यू ए मक्फल्ग	मिडवीली	तास बयकी पुरानी बदहजमी
४	मिसेज मेरी	ग्लेन्सी मेडवीली	गठिया
५	मि० जान कल्वीन मार्निंग स्टारके सम्पादक	मीडवीली	कमजोरी व अशक्ति
६	मि० आर्डटा, वी क्लार्क	मीडवीली	क्षयरोग

मि० चार्ल्स सी हस्केल्के नाम आये हुए पत्र—

७ मि० हेनरी रीटरका पत्र— फिलाडेल्फिया

"यही जलोदर, गठिया सिरदर्द पेट और अंतड़ियोंके दर्द दमा और कम जोरीके पांच रोगी ४५–४–१८ और इनसे भी कम दिनोंका उपवास करनेसे अच्छे हो गये हैं।"

८ मि० लियोनार्ड प्रेमका पत्र— फिलाडेल्फिया

'मेरे जलोदर और दमाके रोग पचास दिन तक उपवास करनेसे बिल्कुल अच्छे हो गये हैं। मुझे किसी प्रकारकी औषधि नहीं खाना पड़ी। पहले औषधियोंसे मुझे कुछ लाभ न हुआ था।"

९ मि० ए स्टला एफ. कुनजेल्का पत्र— फिलाडेल्फिया

'मेरे दाहिने अंगका लकवा मार गया था। बहुत औषधोपचारसे अच्छा न हुआ तथा मेरा स्वास्थ्य बिगड़ गया। परन्तु डा० ड्यूके प्राकृतिक और

सत्य नियम स्वीकार करनेस, और पैंतालीस दिना तक उपवास करनसे, विना किसी ओषधिके मेरा असाध्य रोग अच्छा हो गया।"

१० मि० एस टी पोटरका पत्र— नारविच

"मुझे पचीस वर्षकी उमरमे दमका रोग शुरू हुआ था। मैंने भूखे रहकर चालीस दिन तक उपवास किया और मेरा रोग अच्छा हो गया। मै बहुत खाने वाला था, परन्तु जबसे मैंने प्रात कालका भोजन (ब्रेकफास्ट) बन्द कर दिया और स्वाभाविक भूख लगनेका प्राकृतिक नियम स्वीकार किया, तबसे मेरा स्वास्थ्य बहुत सुधर गया है और दमा बिलकुल छूट गया है।"

११ मि० आर्लीनर एन एण्डर्सनका पत्र— लैंकेस्टर

'मुझे गले फफड़े और छाती तथा मूत्रपिंडके रोग सब एक ही साथ थे। जीवनकी आशा नहीं थी। बहुत दिना तक ओषधोपचार करनेपर डाक्टरोंने मेरी आशा छोड़ दी थी। परन्तु डा० ड्युईके सत्य और प्राकृतिक नियमोंका पालन करनेसे, मुझे आराम हो गया।"

१२ मिसेज मेडीन्टा एल एम्रीका पत्र— ब्रुएनाविस्टा

'मेरी पाँच वर्षकी पुत्री बहुत ही चिड़चिड़े स्वभावकी थी। डा० ड्युईके प्राकृतिक नियमोंका अनुसरण करनेसे वह अच्छी हो गई है और हम छह मनुष्योंका स्वास्थ्य भी उन्हीं नियमोंका पालन करनेसे अच्छा हो गया है।"

१३ मिसेज एस आर हार्मनका पत्र— कोर्टलैंड

'मेरे जिगर, गुरदे और आमाशयमें रोग था। मैंने प्राकृतिक नियम स्वीकार किये। मैंने प्रात कालका भोजन 'ब्रेक-फास्ट' छोड़ दिया तथा

केवल दो पहरका स्वाभाविक भूख लगनेपर, भोजनकी आदत डाली । उससे मैं विना ओषधिके अच्छा हो गया हूं । मेरी उमर लगभग सड़सठ वर्षकी है, परन्तु अब मैं दस वर्ष पहलेसे अधिक स्वस्थ हूं । '

१४ मिसेज आईडा जे काल्कीन्सका पत्र— लाइम्न

" मि० काल्कीन्स बदहजमी और जिगर तथा गुरदेके रोगसे बहुत कष्ट पाते थे, तथा डाक्टरोंकी ओषधियोंका सेवन करते थे । वे स्वास्थ्यके सत्य नियमोंके अनुसार चलनेसे अच्छे हो गये । मुझे भी बीस वर्षका पुराना कब्ज रोग था वह अच्छा हो गया है । "

१५ मि० सी सी शोन्टरका पत्र— न्यूयर्ग

मेरा शरीर बहुत भद्दा था । मेरा वजन सात मन चौबीस पौण्ड था परन्तु जबसे मैंने स्वास्थ्यके नये और सत्य नियम पाले तबसे दो वर्षोंमें मेरा वजन छह मन उतर गया है, और पहलेकी अपेक्षा मेरी तबीयत अब बहुत अच्छी रहती है । '

१६ रेवरेन्ट सी जी जोमर्लीका पत्र— नारविच

जबसे मैंने प्रकृतिके सत्य नियमोंका अनुसरण किया है, तबसे मेरा स्वास्थ्य बहुत अच्छा है । मिसेज जामर्लीका दाहना सिरदर्द रहता था । वह भी अच्छा हो गया है और उनका स्वास्थ्य अब ठीक है तथा वे परका कामकाज आसानीसे करती हैं । '

१७ मि० एनड ईस्टनका पत्र— न्यूयार्क

मुझे एक वर्षसे भी अधिक समयसे चक्कर आते थे और मुझे मूत्ररोग हुआ था । मैं इतना कमजोर हो गया था कि मुझे मृत्यु अधिक पसन्द थी । परन्तु स्वास्थ्यके नये और सत्य नियम स्वीकार करनेसे मुझमें बहुत अन्तर आ गया है और मुझे विशेष लाभ हुआ है ।

सत्य नियम स्वीकार करनेसे, और पैंतालीस दिना तक उपवास करनेसे बिना किसी औषधिके मेरा असाध्य रोग अच्छा हो गया । "

१० मि० एस टी पोटरका पत्र— नारविच

" मुझे पचीस वर्षकी उमरमे, दमका रोग शुरू हुआ था । मैंने भूखे रहकर चालीस दिन तक उपवास किया और मेरा रोग अच्छा हो गया । मैं बहुत खाने वाला था परन्तु अबसे मैंने प्रात:कालका भोजन (ब्रेकफास्ट) बन्द कर दिया और स्वाभाविक भूख लगनेका प्राकृतिक नियम स्वीकार किया, तबसे मेरा स्वास्थ्य बहुत सुधर गया है और दमा बिलकुल हट गया है । "

११ मि० आलीवर एन एण्डर्सनका पत्र— लैकेस्टर

मुझे गले फफड़ और छाती तथा मूत्रपिंडके रोग सब एक ही साथ थे । जीवनकी आशा नहीं थी । बहुत दिनों तक औषधोपचार करनेपर डाक्टरोंने मेरी आशा छोड़ दी थी । परन्तु डा० ड्युइके सत्य और प्राकृतिक नियमोंका पालन करनेसे, मुझे आराम हो गया । '

१२ मिसेज मेडीन्टा एल एम्मीका पत्र— युप्सीलेन्टी

' मेरी पांच वर्षकी पुत्री बहुत ही चिड़चिड़े स्वभावकी थी । डा० ड्युइके प्राकृतिक नियमोंका अनुसरण करनेसे वह अच्छी हो गई है और हम छह मनुष्योंका स्वास्थ्य भी उन्हीं नियमोंका पालन करनेसे अच्छा हो गया है । "

१३ मिसेज एस आर हार्मेनका पत्र— कोर्टलैंड

' मेरे जिगर, गुर्दे और आमाशयमें रोग था । मैंने प्राकृतिक नियम स्वीकार किये । मैंने प्रात:कालका भोजन ' ब्रेक-फास्ट ' छोड़ दिया तथा

केवल दो पहरको स्वाभाविक भूख लगनेपर, भोजनकी आदत डाली। उससे मैं बिना औषधिके अच्छा हो गया हूं। मेरी उमर लगभग सड़सठ वर्षकी है, परन्तु अब मैं दस वर्ष पहलेसे अधिक स्वस्थ हूं।"

१४ मिसेज आईडा जे काल्कीन्सका पत्र— लाइम्स

"मि० काल्कीन्स बदहजमी और जिगर तथा गुरदेके रोगोंसे बहुत कष्ट पाते थे, तथा डाक्टरोंकी औषधियोंका सेवन करते थे। वे स्वास्थ्यके सत्य नियमोंके अनुसार चलनेसे अच्छे हो गये। मुझे भी बीस वर्षका पुराना कब्ज रोग था वह अच्छा हो गया है।"

१५ मि० सी सी शोल्टरका पत्र— न्यूबर्ग

"मेरा शरीर बहुत भद्दा था। मेरा वजन सात मन चौबीस पौण्ड था परन्तु जबसे मैंने स्वास्थ्यके नये और सत्य नियम पाले, तबसे दो वर्षोंमें मेरा वजन डेढ़ मन उतर गया है, और पहलेकी अपेक्षा मेरी तबीयत अब बहुत अच्छी रहती है।"

१६ रेवरेन्ड सी जी नोमल्टीका पत्र— नारविच

जबसे मैंने प्रकृतिके सत्य नियमोंका अनुसरण किया है, तबसे मेरा स्वास्थ्य बहुत अच्छा है। मिसेज नोमल्टीको दारुण सिरदर्द रहता था। वह भी अच्छा हो गया है और उनका स्वास्थ्य अब ठीक है तथा वे घरका कामकाज आसानीसे करती हैं।'

१७ मि० एबेल ईस्टनका पत्र— न्यूयार्क

'मुझे एक वर्षसे भी अधिक समयसे चक्कर आते थे और मुझे मूत्राशयका रोग हुआ था। मैं इतना बीमार हो गया था कि मुझे मृत्यु अनिवार्य दिखती थी। परन्तु स्वास्थ्यके नये और सत्य नियम स्वीकार करनेसे मुझे बहुत आराम हो गया है और मुझे विशेष लाभ हुआ है।'

१८ रेवरेंड मि० डब्ल्यू ई रेम्नोल्का पत्र— हीराम

"हिन्दुस्थानके मध्यप्रान्तका मैं पादरी था। उस समय १८९६ ईस्वीके जुलाई मासमें, मुझे 'टाइफाइड बुखार' (मातीझरा) का कठिन रोग हुआ था। मैंने सब मिलाकर सात डाक्टरोंका इलाज किया, परन्तु उससे मुझसे कुछ लाभ न हुआ और मैं प्रतिदिन दुर्बल ही होता गया। ईश्वरकी कृपासे मेरा ध्यान डा० डयूइके स्वास्थ्य प्राप्त करनेके प्राकृतिक नियमोंपर गया और उनके अनुसार चलनेसे मेरा रोग दबा और मैं अच्छा होने लगा। यह देख मुझे बहुत आश्चर्य हुआ। दो मासमें मेरे शरीरमें तीस पाउण्ड वजन बढ़ गया।"

इन पत्रोंके समान और भी कई पत्र मि० हम्फ्रेके पास अन्यान्य सद्गृहस्थोंके आये हैं और वे इस बातके साक्षी हैं कि डा० डयूईके प्राकृतिक सत्य नियम स्वास्थ्य प्राप्त करने, और उसे स्थिर रखनेके लिए मनुष्य-जातिको आशीर्वादरूप हैं।
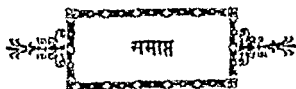
निष्फल हो जानेसे योगविद्याका कट्टर शत्रु बन जाता है—उसे ढोंग या इन्द्रजाल समझने लगता है।

पहली सीढ़ी।

उपरिलिखित रीत्यनुसार यदि तुम अधिकारी हो, तो दृढ़ता, आत्मश्रद्धा और मनोबलको अपना साथी बनाकर मेरे साथ किसी एकान्त स्थानमें चलो और कमरेका दरवाजा बन्द कर लो। यदि तुम्हारे हृदयमें व्यग्रता, तर्क वितर्क आदि हों तो उन्हें बाहरके कमरेमें रख आओ और प्रसन्न चित्तसे मेरे सम्मुख आसन पर बैठ जाओ। मनमें किसी प्रकारका संशय मत रक्खो। कहा है कि—'संशयात्मा विनश्यति'। इस क्रियामें कुछ भी कठिनाई नहीं है। यदि तुम पद्मासनसे बैठ सकते हो तो ठीक है, नहीं तो एक आरामकुर्सी पर सो जाओ। यदि आरामकुर्सी भी न हो तो दरी पर सिर और पैरके नीचे तकिया रखकर लेट जाओ। अब तुम अपने हाथों, पैरों और गर्दनकी स्नायुओंको शिथिल कर दो। शिथिल करनेकी क्रिया बहुत ही आवश्यक है। यदि तुम प्रतिदिन एक या दो बार पाँच या दस मिनिटतक शरीरको शिथिल करके निश्चेष्ट होकर पड़े रहनेका अभ्यास कर लोगे तो तुम्हारी सारी थकावट उतर जाया करेगी और नई शक्ति आ जाया करेगी। इससे तुम्हारी आयुकी वृद्धि [illegible] शिथिल होना सीखो। हाथ पैरोंको बिलकुल ढीले कर[illegible] समान हो जाओ, मानों शरीरमें बिलकुल शक्ति ह[illegible] काम एक[illegible] सिद्ध नहीं होगा। [illegible] जारी रक्खोगे तो अ[illegible] गी [illegible] तुम [illegible] बड़ीसे बड़ी [illegible] घंटेकी निद्रा लेनेसे [illegible] इस शिथिल करनेकी [illegible]

थिल हो चुकने पर अब एक लम्बी श्वास लो। फेफड़ोंमें एक साथ सब वायु मत भरो, और ठहरकर अटक अटक कर भी श्वास मत लो। धीरेसे गहरी श्वास लो, फेफड़ों और छातीको वायुसे भर डालो और वायुको नाभिपर्यन्त जाने दो। यदि तुम्हें अभ्यास न हो तो कुंभककी अर्थात् श्वासको अन्दर रोकनेकी क्रिया मत करो। जैसे धीरे धीरे श्वास ली थी उसी प्रकार उसे धीरे धीरे छोड़ दो। फिर जितने क्षणतक बिना श्वासको सुखपूर्वक रह सको उतने समयतक श्वास मत लो। यही उत्तम कुम्भक है। इसके पश्चात् फिर धीरे धीरे गहरी श्वास लो और धीरे धीरे बाहर निकालो। इस क्रियाको सुख शान्ति पूर्वक करना चाहिए। फेफड़ों और हृदयको श्रमित मत होने दो। बीच बीचमें हो सके तो 'ओम्'का उच्चारण करो। यदि इस बतलाई हुई प्रक्रियाके अनुसार अभ्यास करोगे तो तुम्हारा बाह्य मन स्थिर हो जायगा और आन्तरिक मन तुम्हारी आज्ञायें ग्रहण करनेको सदैव तत्पर रहेगा।

सामान्य आदेश।

जब तुम इस स्थिति तक पहुँचोगे तब, तुम्हारी श्वास बहुत कुछ स्थिर हो जायगी, तुम्हारा मन विचार करना या भटकना छोड़ देगा और तुमको ऐसा भासने लगेगा कि सारे संसारमें मेरे सिवा और कोई नहीं है। ऐसी स्थिति प्राप्त करनेके लिए तुम्हें धैर्यके साथ प्रयत्न करना चाहिए। चाहे थोड़े दिन लगें चाहे अधिक, परन्तु इस स्थिति तक पहुँच सब सकते हैं। जब तुम ऐसी स्थितिमें प्रवेश करोगे तब तुम्हें समझना चाहिए कि तुम्हारा आंतरिक मन तुम्हारा आदर्श ग्रहण करनेके योग्य हो गया है। इतना हो चुकने पर निम्नलिखित महामंत्रको मनन करते हुए उच्चार करो। याद रखना चाहिए कि इन मंत्रके शब्दोंको केवल मुँहसे जपने या रट जानेसे कुछ लाभ नहीं होता। इसके अर्थको समझकर और निश्चलके

साथ विचार करके इसके भावको हृदयङ्गम करना चाहिए। प्रत्येक वाक्य कहते समय उसका जो भाव हो, तुम यथार्थमें वैसे ही हो ऐसी दृढ़ धारणा करनी चाहिए। कल्पना मिथ्या नहीं होती है। स्मरण रक्खो, तुम जैसी कल्पना करोगे वैसे ही हो जाओगे। जब तुम श्रद्धापूर्वक यह मान लेते हो कि मैं बलवान् हूँ तब तुम सचमुचमें ही बलवान् हो। अत एव ऐसी कल्पना करो कि हमारे हाथ, पाँव, पीठ, छाती आदि सब स्नायु बद्ध और रुधिरसे परिपूर्ण हैं। थोड़े समयके बाद तुम्हें इस क्रियाका चमत्कार दिखाई देगा।

महामंत्र—" ॐ मैं अपने शरीरका स्वामी हूँ। मैं सुखरूप हूँ। मैं बलवान् हूँ। मेरा रुधिर सब नाड़ियोंमें निरामय वेगसे भ्रमण करता है, मेरे फेंफड़े और हृदय अपना कार्य नियमित रीतिसे करते हैं। मेरी जठराग्नि उत्तम रीतिसे अन्नको पचाती है। उससे शुद्ध रुधिर उत्पन्न होता है। आँतें निरुपयोगी मलको बाहर निकालती हैं।"

मैं फिर कहे देता हूँ कि इसका प्रत्येक वाक्य उच्चारण करते समय ऐसी दृढ़ कल्पना करनी चाहिए कि मैं जो कह रहा हूँ उसके अनुसार शरीरमें क्रियायें हो रही हैं, अथवा उन क्रियाओंकी मूर्तिको अपने हृदयमें बनाना चाहिए। तुम्हारी कल्पना जितनी दृढ़, श्रद्धायुक्त और तेज होगी उतना ही अधिक तुमको लाभ होगा। आरम्भमें पूरा मन्त्र उच्चारण करनेके लिए तुम्हें पाँचसे दस मिनिट लगेंगे, बादमें जब तुम्हारा अभ्यास बढ़ जायगा, तब तुम अधिक समयतक एक ही विचारमें मग्न रहना सीखोगे और वैसे ही अधिकाधिक बल और आरोग्यता प्राप्त करोगे।

प्रातःकालकी क्रिया।

ऊपर बतलाई हुई क्रियाको दिनमें जब कभी दस दस पाँच पाँच मिनिटका अवकाश मिले तभी करने लगना चाहिए और इनके

अभ्यासको बढ़ाना चाहिए। पहले थोड़े दिनतक मनको याद दिलानी पड़ेगी, परन्तु कुछ दिनोंके बाद अभ्यास बढ़ जाने पर मन आप ही-आप स्वाभाविक रीतिसे ध्यानस्थ हो जायगा। परन्तु जो साधक पूर्ण आरोग्य और बल प्राप्त करनेकी इच्छा रखते हों, उन्हें प्रतिदिन प्रात काल मनको स्थिर करके एक क्रिया करनी चाहिए। पहले तो ऊपर कहे अनुसार शिथिल होकर बाह्य मनको स्थिर करो, फिर अपने सामने हनुमान्, भीष्म, राममूर्ति अथवा और किसी महान‍ल्वान् पुरुषका चित्र रक्खो। उसके शरीरके प्रत्येक अगको प्रेमपूर्वक देखो और फिर नेत्र बद करके नीचे लिखे अनुसार कल्पना करो—" मेरा शरीर वज्रके समान दृढ़ और शक्तिमान् है। मेरे हाथ पैर और सब शरीरके स्नायु कठिन, मोटे और सशक्त हैं। मेरे शरीरके किसी भागमें भी रोग नहीं है। सम्पूर्ण शरीर अलौकिक चेतनशक्तिसे परिपूर्ण है। " इस विचारको मनमें खूब स्थिर करो। ऐसी कल्पना करके कि हम स्वत वैसे हैं अपने हाथ, पाँव और छाती पर हाथ फेरो। बारबार नाभिपर्यन्त दीर्घ श्वास लो। इस क्रियाको प्रतिदिन १० से १५ मिनिटतक करो।

उपयोगी कसरत।

सदैव बिस्तरोंसे उठकर छत पर जाओ। यदि छत न हो तो कमरेकी सब खिड़कियाँ खोलकर एक खिड़कीके सामने खड़े हो जाओ। फिर अमृतमय वायुसे फेफड़ोंको भरो और तुरत ही खाली करो। इस प्रकार दीर्घ श्वास प्रश्वासकी क्रिया जबतक बन सके, करो। जब फेफड़े श्रमित हुए मालूम पड़ने लगें, हृदय जोरसे धड़कने लगे, और रक्त खूब तेजीसे दौड़ने लगे तब इस क्रियाको बद कर दो और आराम करो। इस प्रकार नित्य सबेरे और शामके समय खुली हवामें दीर्घ श्वास प्रश्वास लेनेकी कसरत किया करो।

दूसरी कसरत।

सीधे खड़े हो जाओ। पैरों और जंघाओंके स्नायुओंको कड़े कर दो। एक दीर्घ श्वास लो और वायुको फेंफड़ोंमें रोक रक्खो। ऐड़ियोंको ऊँचा उठाकर अँगूठे और उँगलियों पर शरीरका सारा भार रखकर खड़े हो जाओ। फिर धीरे धीरे पैरोंको नीचे आन दो और साथ-ही साथ फेंफड़ेमें रोकी हुई श्वासको धीरे धीरे नाकके नथनों द्वारा बाहर निकालते जाओ। फिर एक शोधक प्राणायाम करो। शोधक प्राणायामकी क्रिया इस प्रकार है—धीरे धीरे नाकके नथुनोंद्वारा एक श्वास लो और जबतक सरलतापूर्वक उसे फेंफड़ोंमें रोक सको रोको। फिर जैसे सीटी बजाते हैं इस प्रकार जोरसे मुखद्वारा श्वासको बाहर निकाल दो *। ये कसरतें और क्रियायें यथाशक्ति करनी चाहिए।

तीसरी कसरत।

बिल्कुल सीधे खड़े हो जाओ, छाती आगे निकालो, गर्दन जरा पीछे करो और कंधोंको भी कुछ पीछेकी ओर हटाओ। मतलब यह कि बिल्कुल फौजी ढंगसे खड़े हो जाओ। फिर एक दीर्घ श्वास लो। साथ ही दोनों हाथ आगे ले जाओ और मुट्ठी बाँधकर जोरसे कंधोंके पास ले आओ। इस प्रकार कई बार करो। ऐसा करते समय हाथोंमें खूब ताकत रक्खो, यहाँ तक कि ये सहज ही काँपते हुए मालूम पड़ें। फिर हाथोंको जैसे थे वैसे करके बिल्कुल ढीले कर दो। फिर फेंफ-ड़ोंमें रोकी हुई हवाको मुखद्वारा जोरसे बाहर [illegible] और एक शोधक प्राणायाम करो। ये कसरतें शरीरके [illegible] [illegible] बनाती हैं। ये [illegible] बहुत ही आव[illegible]

* आज पाश्चात्य [illegible] द्वारा निक[illegible] [illegible] पहले उसे किसी प्रक[illegible] हुआ।

हैं। बाह्यदृष्टिसे देखनेवालेको शायद मालूम हो कि ये कसरतें मामूली हैं, परन्तु अनुभव करने पर ये बहुत लाभकारी सिद्ध होती हैं। कसरत, प्राणायाम और इच्छाशक्ति इन तीनोंका एकत्र उपयोग करके जो बल उत्पन्न होता है वह अन्य किसी तरहकी कसरतसे प्राप्त नहीं हो सकता।

अमृत ।

अब मैं तुम्हें एक अद्भुत चमत्कारिक और बलवर्द्धक प्रयोग सिखाता हूँ। सैकड़ों वर्षोंसे जिस अमृतको खोजनेके लिए लोग प्रयत्नशील थे और उसे प्राप्त नहीं कर सके थे, उसे मैं आज तुम्हें बतलाता हूँ। यह सच्चा अमृत कोई पेटेंट दवा या पौष्टिक वस्तु नहीं है, यह मन्त्रित तावीज या डोरा भी नहीं है, परन्तु यह योगकी एक क्रिया है। यह क्रिया इतनी सरल है कि इसे हर कोई कर सकता है। तुम इसे आज ही प्रयोगमें लाओ। तुम अपने कमरेमें प्रवेश करो और अपने मनकी व्यग्रता, चिन्ता, तर्क वितर्क आदि सबको दूर कर डालो। फिर प्रसन्न चित्तसे एक आसन या आराम कुर्सी पर बैठ जाओ और कुछ समयतक दीर्घ श्वास प्रश्वास लो, दश पाँच बार जोरसे ओंकारका उच्चारण करो और फिर ऊपर बतलाई हुई रीतिके अनुसार शिथिल हो जाओ। मैं पहले भी कई बार कह चुका हूँ कि शिथिल होनेकी क्रिया बहुत ही आवश्यक और महत्त्वपूर्ण है। इस प्रवृत्तिके समय साधकके ज्ञानतंतुओंको इतना श्रम पड़ता है कि यदि दिवसमें १० मिनिट भी शिथिल होनेका अभ्यास न रक्खा जाय तो उसका जीवनतत्त्व अल्प समयमें ही क्षीण हो जाय। वर्तमान समयमें आयुष्यके घट जानेका यह भी एक कारण है। अच्छा, शिथिल हो जाने पर तुम अपने मन और शरीरकी परीक्षा करो। नेत्र बन्द करके ऐसी कल्पना करो कि "मेरे आसपासका समस्त वातावरण एक परम चेतन शक्ति (Energy) से भरपूर है। यह चेतन विश्वव्यापी है।

इस अनन्त चेतनसमुद्रके मध्य हम अकेले बैठे हुए हैं। सारे संसारमें हम और चेतन शक्तिके सिवा और कुछ नहीं है।" तुम अन्य सब मनुष्योंको—सब पदार्थोंको—थोड़ी देरके लिए भूल जाओ। फिर कल्पना करो कि "मैं इस चेतन सागरमें गोता लगा रहा हूँ—चेतनसे व्याप्त हो रहा हूँ।" इस समय तुम अपने शरीर और मनको कपड़ेके समान ढीला कर दो, कल्पनाको खूब तेज करो। तुम अपने नेत्रोंके सन्मुख इस क्रियाको जितनी उत्तमताके साथ चित्रित करोगे, उसी परिमाणमें तुम इस चेतनरूपी अमृतको प्राप्त कर सकोगे। अब कल्पना करो कि चेतनकी लहरें एकके बाद एक चारों ओरसे तुम्हारे शरीरमें प्रवेश कर रही हैं, ये तुम्हारे शरीरकी प्रत्येक रग और परमाणुको नया बनाती हैं। इस समय ऐसा विचार करो कि तुम प्रत्येक श्वासद्वारा जगतमेंसे शक्तिका आकर्षण करते हो और उसके द्वारा तुम्हारा शरीर बलवान् और तेजस्वी बनता है। यह सच्चा अमृत है। इसके द्वारा ऋषिलोग दीर्घजीवी होते थे और तुम भी हो सकते हो। यह क्रिया देखनेमें बहुत सरल मालूम होती है, परन्तु इससे इसका मूल्य कम मत समझना। देखो, गुरुत्वाकर्षणका नियम कितना सरल है, परन्तु उसका प्रभाव विश्वव्यापी है। संसारके सब बड़े बड़े नियम ऐसे ही हैं। उनका महत्त्व उनके उपयोगसे प्रकट होता है।

सूर्यकिरणोंका आकर्षण।

ऊपर बताई हुई रीतिसे ही सूर्यकिरणोंमें व्याप्त, प्राणोंका पोषण करनेवाली महती शक्तिका आकर्षण किया जा सकता है। प्राचीन ऋषि लोग सूर्यका पूजन करते थे, सूर्यको अर्घ्य देते थे, सूर्यका आवाहन करते थे, सूर्यकवच पढ़ते थे और सूर्यके प्रकाशमें बैठकर संध्या वंदन करते थे। इसका मतलब यह है कि वे उपरिलिखित क्रियाओं द्वारा सूर्यमेंसे 'रेडियम' और ऐसे दूसरे आयुष्यवर्धक तत्त्वोंको शरीरमें खींचते थे। यदि तुम

चाहो, सकल्प करो तो तुम भी वैसा करनेमें समर्थ हो सकते हो। प्रात कालके पहले प्रहरमें जब सूर्यकी धूप तेज नहीं होती, एक वस्त्र पहनकर और बाकी शरीर खुला रखकर और यदि आवश्यकता जान पड़े तो एक कपड़े द्वारा सिर ढँककर सूर्य्यके प्रकाशमें बैठ जाओ और नेत्र बद करके ऐसी कल्पना करो कि "जो सूर्य्य किरणें हमारे शरीर पर पड़ रही हैं और जो हमारे चारों ओर फैल रही हैं, उन सबमें रहनेवाली शक्ति (Energy) हमारे शरीरमें प्रवेश कर रही है।" थोड़ी देर बाद तुम्हारा सारा शरीर किसी अलौकिक बिजली जैसी शक्तिसे चमक उठेगा और तुमको नवजीवन प्राप्त होगा। तुम जीवनके सच्चे आनन्दका अनुभव करने लगोगे। इस नुसखेको आजमाओ और इस नवविज्ञानके पक्षपाती बनो।

सोनेके पहले क्या करना चाहिए ?

सोनेके पहले निम्नलिखित क्रियाके करनेका अभ्यास डालो। बिस्तरों पर चित्त लेट जाओ। पैरोंके नीचे भी एक तकिया रक्खो, अर्थात् सिरके समान पैरोंको भी कुछ ऊँचाई पर रक्खो। कुछ दीर्घ श्वास लो और शिथिल हो जाओ। फिर सिर, नेत्र, गर्दन, छाती, पैर आदि एकके बाद एक अवयव पर जहाँ तक तुम्हारा हाथ पहुँचे थोड़ी देर तक हाथ रखकर ऐसी दृढ भावना करो कि प्रत्येक अवयव अपना कार्य नियमित रूपसे कर रहा है। यदि तुम्हारे किसी अवयवमें कोई व्याधि है तो उस अवयव पर अधिक समय तक हाथ रक्खो और ऐसी भावना करो कि व्याधि निर्मूल हो रही है। तुम अपनी भावना शक्तिको कम मत समझो। तुम्हारा भावनाके द्वारा केवल तुम्हारे शरीर रक्षा ही नहीं, वरन् सारे ससारका परिवर्तन हो सकता है। ईसा मसी हने एक प्रसंग पर कहा था—"यदि तुम आज्ञा करोगे तो ये पहाड़ उड़कर समुद्रमें जा गिरेंगे।" मनुष्यकी भावनाका बल बहुत

tual science)। मान लो कि तुम्हें कब्जियतकी बीमारी है। अब तुम सोते समय पेट पर हाथ रखकर आज्ञा करो कि सब मल प्रातःकाल निकलनेके लिए तैयार हो जाय। फिर कल्पना करो कि जठराग्नि, छोटी आँतें इत्यादि सब काम कर रहे हैं और मल पृथक् हो रहा है। दो चार दिन ऐसा करो और फिर देखो कि उसका क्या परिणाम होता है। हम समझते हैं कि कदाचित् दूसरे दिन ही तुमको लाभ दिखाई देगा, परन्तु यदि तत्काल लाभ न दिखाई दे तो भी उसे सहसा मत छोड़ो। क्यों कि फलप्राप्तिमें विलम्ब होनेका एक मात्र कारण क्रियामें शिथिलताका होना है। क्रियाओंमें दृढ श्रद्धा और पूर्णता होने ही फल अवश्य मिलता है—यह आध्यात्मिक तत्त्वका अटल नियम है। इस रीतिके द्वारा तुम हर तरहकी व्याधियोंको दूर कर सकते हो।

सामान्य सूचनायें।

जब तुम जल पिओ, तब एकदम शीघ्रतासे मत पी जाओ, जिस प्रकार गरम चाय या दूध पीते हो उसी प्रकार धीरे धीरे एक एक घूँट करके पिओ। पानी पीते समय ऐसी भावना करो कि पानीमें जीवन तत्त्व है और वह हमारे भीतर प्रवेश कर रहा है। प्रत्येक घूँट लेते समय मनमें 'ओम्' का उच्चार करो। भोजन करते समय भी तुम ऐसी ही कल्पना करो कि मैं प्रत्येक चीजमेंसे पोषक तत्त्वका ग्रहण कर रहा हूँ। बारबार ओंकारका उच्चारण करो। हमेशा प्रसन्न रहो। चिन्ता और व्यग्रताको कभी मनमें न आने दो। बीमारीकी बातें न कभी करो और न कभी सुनो। तुम्हारे शरीर और मन पर तुम्हारा ही पूरा अधिकार है और किसीका नहीं। किसीको कभी मत भूलो। तुम्हारा इस भावनामें परमानन्द मल है, इसको स्मरण रक्खो। सर्वे [illegible]।

समाप्त

नवीन चिकित्सा-प्रणालीकी पुस्तकें।

१-उपवास-चिकित्सा।

इस ग्रन्थमें बतलाया है कि भयंकरसे भयंकर और दुःसाध्यसे दुःसाध्य बीमारियाँ उपवास-चिकित्सासे आराम हो सकती हैं। क्यों हो सकती हैं, और कैसे हो सकती हैं, इन प्रश्नोंका उत्तर इसमें खूब विस्तारसे दिया गया है। इसमें ४० अध्याय हैं। कुछके नाम ये हैं —हमारे शरीरका संगठन, नियमोंका उल्लंघन, अधिक भोजनसे हानियाँ, चिकित्साके दोष, रोगोंकी एकता, औषधियोंका प्रभाव, औषधोंपर कुछ सम्मतियाँ, धर्मग्रन्थ, इतिहास और उपवास, पशु और उपवास, आयुर्वेद और उपवास, छोटे बच्चोंके लिए उपवास, जलपान त्याग, जल और वायु, व्यायाम। तृतीयावृत्ति। मूल्य ॥।)

२-प्राकृतिक चिकित्सा।

जो लोग देशी और विदेशी सब प्रकारके इलाज करते करते थक गए हों और फिर भी नीरोग न रहते हों उन्हें इस पुस्तकसे बहुत लाभ होगा। इसमें रोग होनेके वास्तविक कारणोंका और उन कारणोंके दूर करनेवाले बिना कौड़ी पैसेके उपायोंका बड़ी सरलतासे वर्णन किया है। इसमें बतलाये हुए उपाय— जैसे टबमें बैठकर ठंडे पानीका कटिस्नान, भापका स्नान (बफारा), कोयलोंकी आँचसे पसीना लेना, स्वच्छ जलको अधिक परिमाणमें पीना, व्यायाम, दीर्घ श्वासोच्छ्वास लेना, सादा भोजन आदि बहुत ही सरल और सबके आजमाने योग्य हैं। इनसे बड़े बड़े रोग आराम हो जाते हैं। मूल्य ८ आने।

३—दुग्ध चिकित्सा।

अमेरिकामें दुग्ध-चिकित्साका भी आविष्कार हुआ है। वहाँ केवल दुग्ध सेवनसे ही सब प्रकारके रोग दूर किये जाने लगे हैं। इस छोटीसी पुस्तकमें उसी पद्धतिके अनुसार दूधके सेवनकी विधि लिखी गई है। मू० ≈)

४-सुगम चिकित्सा।

एक पाश्चात्य विद्वानकी अँगरेजी पुस्तकके आधारसे यह लिखी गई है। इसमें केवल खानेपीनेके नियमोंमें और दिनचर्यामें सावधानी तथा संयम रखनेसे अनेक बड़े बड़े रोग आराम हो जाते हैं, इस बातको अच्छी तरहसे समझाया है और सदा नीरोग रहनेके सहज उपाय बतलाये हैं। मूल्य ≈)

प्राकृतिक चिकित्सा ।

[विना किसी प्रकारकी ओषधिके समस्त रोगोंको
आराम करने और नीरोग रहनेके
सहज उपाय ।]

लेखक—
श्रीवेंकटेश्वर-समाचारके सहकारी सम्पादक
पण्डित रामनारायण शर्मा ।

प्रकाशक—
हिन्दी ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय
हीराबाग, बम्बई ।

फाल्गुन, १९८१ विक्रम ।
फरवरी सन् १९२५ ।

द्वितीयावृत्ति ।] [मूल्य छह आने ।

प्रकाशक—
नाथूराम प्रेमी,
हिन्दी-ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, गिरगाँव, बम्बई ।

मुद्रक—
मंगेश नारायण कुलकर्णी,
कर्नाटक प्रेस, ३१८ ए,
ठाकुरद्वार, मुंबई

निवेदन ।

स्वर्गीय शाह छोटालाल जीवनलाल गुजरातीके सुप्रसिद्ध लेखक थे । उन्होंने गुजरातीमें कई अच्छी अच्छी पुस्तकें लिखी हैं । गुजरातमें उनकी पुस्तकोंका बहुत आदर है । यह छोटीसी पुस्तक उन्हींकी 'रोगने टाळवाना अने नीरोग रहेवाना उपायो' नामक पुस्तकका अनुवाद है । हमें आशा है कि हिन्दीमें भी यह पुस्तक आदरकी दृष्टिसे देखी जायगी और इसमें बतलाये हुए उपायोंसे हिन्दी भाषा-भाषी भाई अपने खोये हुए स्वास्थ्यको प्राप्त करनेमें समर्थ हो सकेंगे ।

—प्रकाशक ।

—"औषधियाँ किसी एक रोगको दूर करके भी अपने बहुतसे प्रभाव और असर छोड़ जाती हैं, पर प्राकृतिक चिकित्साकी औषधियाँ—व्यायाम, शुद्ध वायु, हलका और सुपाच्य भोजन आदि—रोगोंको अच्छा करनेके अतिरिक्त शरीरके और दूसरे बहुतसे विकारोंको भी नष्ट कर देती हैं। इस प्रणालीमें रोगको बलपूर्वक जहाँका तहाँ दबाया नहीं जाता बल्कि उसका कारण दूर किया जाता है।"

—उपवास-चिकित्सा।

* * * *

—"औषधियोंसे और नये रोग उत्पन्न होते हैं, इस लिए औषधि देना मानों एक और रोग उत्पन्न करना है। औषधियोंसे एक रोग तो अवश्य दब जाता है पर और अनेक रोग उत्पन्न भी हो जाते हैं। क्या कारणोंसे कारण दूर हो सकते हैं? क्या विष निकालनेमें विष सहायक हो सकता है? क्या विकारोंसे विकार नष्ट हो सकते हैं? क्या प्रकृति एककी अपेक्षा दो दोषोंको सहजमें दूर कर सकती है? कदापि नहीं।"

—डा० ट्राल।

* * * *

—"रोगी औषधोंसे कभी अच्छे नहीं होते, उन्हें स्वयं प्रकृति अच्छा करती है।"

—प्रो० स्मिथ।

* * * *

"मैंने कई रोगोंमें औषधियोंका प्रयोग नहीं किया, जिसका फल बहुत ही अच्छा हुआ। अब मुझे निश्चय हो गया है कि औषधियोंकी अपेक्षा प्रकृतिसे मनुष्यके निरोग होनेमें बहुत सहायता मिलती है।

—प्रो० पार्कर।

* * * *

—"प्रकृतिकी पुकार पर जो लोग ध्यान नहीं देते उन्हें तरह तरहके रोग और दुःख घेरे रहते हैं, परन्तु पवित्र प्राकृतिक जीवन बितानेवाले जगतके प्राणी रोग मुक्त रहते हैं और मनुष्यके दुर्गुणों और पापाचारोंसे भी बचे रहते हैं।

—रिटर्न टु नेचर।

* * * *

—"हम यह नहीं जानते कि रोगी हमारी औषधियोंसे अच्छे होते हैं या प्रकृतिकी कृपासे। सम्भवतः उन्हें रोटी-रूपी गोलियाँ ही अच्छा करती हैं।

—प्रो० फार्मर।

प्राकृतिक चिकित्सा।

प्रस्तावना।

इस संसारमें करोड़ों प्राणी और जीव-जन्तु ऐसे हैं जो बिना दवा खाये ही अपने रोग मेट सकते हैं और अपनी जातिके खाने योग्य भोजन खाकर निरोग रहते हैं। वे केवल निरोग ही नहीं रहते बल्कि अपने शरीरमें उत्तम बल और शक्ति भी पैदा कर लेते हैं। इस लिए अपनेको बुद्धिमान् समझनेवाला और सृष्टिके सब प्राणियोंसे अपनेको श्रेष्ठ माननेवाला मनुष्य यदि जन्मसे यही समझता है कि औषधियोंके खाये बिना रोग मिटते ही नहीं, तथा गोलियाँ, पाक या ताँबा आदि धातुओंकी भस्म खाये बिना शरीरमें शक्ति बढ़ती ही नहीं, तो यह बड़े ही खेदका विषय है। मृत्युपर्यन्त मनुष्य इसी भ्रममें पड़ा रहता है। जहाँ किसीको कुछ शारीरिक व्याधि हुई अथवा ज्यों ही बीमार होकर कोई खाटपर पड़ा, त्यों ही उसकी अवस्था देखनेके प्रयोजनसे आनेवाले स्नेही तथा सबधी लोग सबसे पहले यही प्रश्न किया करते हैं कि 'कोई दवा दी जाती है या नहीं?' 'किसकी दवा दी जाती है?' 'क्या दवा दी जाती है?' इत्यादि। केवल इतना ही नहीं, बल्कि जो दवा चलती होती है उसमे यदि कुछ लाभ नहीं मालूम पड़ा हो तो सर्वज्ञकी नाई कोई नई दवा भी बतलाने लगते हैं। प्रायः मनुष्योंकी ऐसी ही प्रवृत्ति देखनेसे मालूम होता है अधिकांश व्यक्तियोंकी यही दृढ धारणा है कि औषधि खाये बिना रोग दूर ही नहीं होते। मंदाग्निसे, भारी परिश्रमसे, चिन्तासे, दुराचारसे अथवा ऐसे ही अन्य किसी कारणसे जिन लोगोंका शरीर निर्बल और क्षीण होगया है वे यही समझ लेते हैं कि कोई बल बढ़ानेवाली दवा खाये बिना ताकत नहीं आनेकी। लोगोंके मनमें दृढ़ताके साथ समाये हुए इस विचारके परिणाममें प्रतिदिन हजारों और लाखों नई नई दवाइयाँ निकलती रहती हैं। सवेरा हुआ नहीं कि एक न एक नई

दवाका विज्ञापन हाथमें आ ही जाता है। समाचारपत्र हाथमें लीजिए तो आगे पीछे और बीचमें दवाओंके विज्ञापन दृष्टिके सामने आही जाते हैं। घरमेंसे बाहर निकलिए तो दरवाजेपर अथवा गलीमें, मकानोंकी दीवारोंपर, मोटे मोटे अक्षरोंमें छपे हुए दवाओंके नोटिसोंपर नजर पड़ ही जाती है। कोई नई पुस्तक लेकर देखिए तो उसमें भी ये ही विज्ञापन सर्वव्यापी ईश्वरकी नाईं मौजूद रहते हैं। और कहाँ तक कहा जाय, यदि आप कोई साहित्यसम्बंधी मासिक-पत्र हाथमें लें, व्यवहारनीति आदिका उपदेश देने वाला कोई पत्र या पत्रिका पढ़ने बैठें, अथवा धर्म, तत्वज्ञान और वेदांत जैसे गहन विषयोंकी आलोचना करनेवाले मासिकपत्रोंको हाथमें लें, तो उनमें भी लज्जा-जनक शब्दोंमें लिखे हुए दवाओंके विज्ञापन दिखाई पड़े बिना न रहेंगे। बात क्या है? बात यह है कि आजकल पैसा पैदा करनेके बहुतसे मार्ग तो हो गये हैं बंद इसलिए जहाँ तहाँसे दस पाँच वनस्पतियाँ इकट्ठी करके और उन्हें कूट-छानकर उनकी गोलियाँ तैयार करके भोले लोगोंके हाथ बेचकर पैसा खींचनेका धन्धा अनेक लोग ले बैठे हैं। "बिना दवाओंके रोग दूर नहीं होते" ऐसा विश्वास करनेवाले असंख्य प्रजाजन इन दवाई बेचने वालोंसे दवाइयाँ खरीदते और उनका घर भरते हैं। पिछले बीस पचीस वर्षोंमें हजारों नई दवाइयाँ निकली हैं। कोई तो खानेके साथ ही पेटमें पहुँचकर तुरत नया खून तैयार कर देती है, कोई ऐसी है जिसकी एक ही शीशी पीने पर बुड्ढा जवान हो जाता है, कोई ऐसी लाजवाब है कि उसके खानेसे एक साथ ही वे सब रोग चले जाते हैं जिनकी संख्या वैद्यकशास्त्रमें गिनाई गई है और फिर शरीरका रंग तांबेकी नाईं सुर्ख हो जाता है। कोई ऐसी है जिसका एक ही बूँद पीनेसे अति चमत्कारपूर्ण लाभ होता है और शरीरके सभी अंग खूब पुष्ट हो जाते हैं। कोई कोई दवाइयाँ ऐसी हैं जो इस देशमें तथा परदेशमें भी गाँव गाँव तथा नगर नगरमें कोने कोनसे रोगरूपी शत्रुओंका खींचखींच कर उन्हें तोपके गोलोंसे उड़ाकर दसों दिशाओंमें अपनी विजयका झंडा इस प्रकार फहराने लगी हैं कि रोगोंको संसारमें टिकनेके लिए कोई जगह ही नहीं सूझती। और भी; बहुतसी दवाइयोंके विषयमें यह कहा जाता है कि ये हिमालय या सुमेरुपर्वतकी गुफाओंमें रहनेवाले कोई एक हजार या एक लाख वर्षकी आयु तक पहुँचे हुए किसी बूढ़े योगिराजने संसारके कल्याणके निमित्त बताई हैं और उनसे लंबवातीत रोगियोंको लाभ पहुँच चुका

है। कुछ दवाइयाँ ऐसी बताई जाती हैं जो अनेक जगह पहाड़ोंमें घूमने फिरने, अपार दुःख उठाने और अपरिमित धन खर्च करनेसे तैयार हुई हैं। फिर कुछ दवाइयाँ ऐसी भी हैं जो संसारभरमें कहीं पर भी न मिलनेवाली पुस्तकोंमेंसे देखकर तथा देश देशांतरोंमें घूम घूम कर दुर्लभ वनस्पतियोंका संग्रह करके किसी अवधूत सन्यासीकी भाँति भाँतिकी सेवा द्वारा जानी गई विधिसे तैयार की गई हैं, और भारतके तीस करोड़ मनुष्योंपर आजमाकर देख लेनेके बाद लोगोंके लाभके लिए बिल्कुल सस्ते दामोंमें बेची जाती हैं। सारांश यह कि अनेक दवायें आविष्कृत हो चुकी हैं और उनके विज्ञापन ऐसी ओजपूर्ण और सजीव भाषामें निकलते हैं कि उन्हें पढ़कर लोगोंको यही विश्वास हो जाता है कि उनके सेवनसे कोई न कोई लोकोत्तर लाभ प्राप्त हुए बिना न रहेगा। यदि इन दवाओंके सम्पूर्ण विज्ञापनोंका संग्रह करके कोई व्यक्ति इस दुनियासे किसी दूसरी दुनियामें चला जाय और वहाँके लोगोंको इन विज्ञापनोंका आशय समझावे तो वे लोग यही समझेंगे कि मर्त्यलोकमें इस समय रोगोंका नाम निशान भी नहीं होगा वहाँके तमाम मनुष्य अत्यंत हृष्टपुष्ट होंगे, वृद्धावस्थाका वहाँ कुछ भी दुःख न होता होगा, अकालमृत्यु किसीकी भी नहीं होती होगी, हैजा, प्लेग, आदि जनपदनाशिनी बीमारियाँ न होती होंगी, आरोग्यसंबंधी नियमोंके भंग करने पर भी किसीको कोई दुःख न होता होगा और रोगोंका बिल्कुल भी भय न होनेके कारण लोग इच्छानुसार भोग भोगते हुए मौज उड़ाते होंगे। परन्तु हम यह खूब जानते हैं कि इतनी अधिक रामबाण दवाओंके निकलते हुए भी, महल्ले महल्ले तथा गली गलीमें डाक्टरों और वैद्योंके रोगोंको मार भगानेके लिए तैयार बैठे रहने पर भी, और लोगोंके प्रत्येक वर्ष अपनी शक्तिके अनुसार सैकड़ों तथा हजारों रुपया खर्च करते रहने पर भी दिन दिन रोगोंका प्राबल्य बढ़ता ही जाता है। रोगोंकी अधिक वृद्धि पानेके कारण लोगोंके शरीर निर्बल होते जाते हैं, शारीरिक शक्तियाँ क्षीण होती जाती हैं, और देशमें निरंतर प्लेग, हैजा जैसी व्याधियोंका प्रकोप बने रहनेके कारण हजारों तथा लाखों आदमी अकालमें ही कालके ग्रास होते जाते हैं। आज सूखे हुए हाथ, पाँव, छाती और मुँहवाले तथा हरिणकी भाँति चपल आँखोंवाले बालक ढूँढनेपर भी मुश्किलसे मिलेंगे। दृढ़ और बलवान् भुजदंडवाले, चौड़ी छातीवाले, बड़ोंके सामने पृथ्वीको दहल देनेवाले, भरे हुए मुखवाले तथा जिनको देखकर

गर्भिणी स्त्रियोंके गर्भ गिर जायँ, ऐसे वीरत्ववाले युवा पुरुष लाखोंमें एक भी नज़र नहीं पड़ेंगे। जिनकी कमर न झुकी हो, आँख, कान तथा दाँत इत्यादि जिनके दुरुस्त हों, साठ या सत्तर वर्षकी उम्र तक पहुँच जाने पर भी जिनके बाल सफ़ेद न पड़े हों, जिनके शरीरमें सिकुड़न न पड़ी हो और जिन्हें चलते समय लकड़ी टेकनेकी आवश्यकता न पड़ती हो, ऐसे वृद्ध पुरुष अब कहाँ हैं? नखसे शिख तक नीरोग, जो पत्थरको भी पचा सकते हों, और पचीस या तीस कोस जो बड़ी सुगमताके साथ पैदल चल सकते हों ऐसे पुरुषोंकी बात आज वृद्ध लोगोंके मुखसे सुननेकी कहानी मात्र हो रही है।

डाँका पड़ने पर या महल्लेमें चोर आने पर लट्ठ लेकर सामना करनेवाले मनुष्य आज विरले ही दीख पड़ते हैं। आज कल सभीके शरीर और मन दुर्बल हो गये हैं। जिन रोगोंका कभी नाम न सुना था, और न जिन्हें किसीने कभी देखा था, ऐसे नये नये अनेक अभूतपूर्व रोग फूट फूट कर देशमें प्रजाजनोंके घर उजाड़ रहे हैं। लोगोंकी आरोग्यवृद्धिके लिए सरकारकी कृपासे देशमें जगह जगह अस्पताल खुल गये हैं, चिकित्सानिपुण डाक्टरोंकी संख्या प्रतिदिन बढ़ती ही जाती है, म्यूनिसिपालिटियाँ आरोग्यप्रदान करनेवाले तथा रोगोंका फैलना रोकनेवाले विविध प्रकारके उपाय किया करती हैं, नई नई दवाइयाँ नित्य प्रति ढूँढकर निकाली जा रही हैं और नई नई पेटेंट दवाइयोंका टिड्डीदल दिग्दिगन्तव्यापी होता जाता है, फिर भी प्रजाजनोंका आरोग्य बढ़नेके बदले उलटा घटता ही चला जाता है।

ऐसी स्थिति क्यों है? इतने अधिक उपायों और प्रतिकारोंके होते हुए भी रोगोंकी संख्या क्यों बढ़ती जाती है? मनुष्योंकी अधिकांश संख्या किस लिए नीरोग नहीं रहती? अथवा बीमार होनेपर दवा खाकर अच्छी तरह नीरोग होनेके पीछे कुछ महीने बाद ही फिर दोबारा पहिलेसे भी अधिक बीमार क्यों पड़ती है?

जो दो बेर, तीन तीन बेर और कभी कभी चार चार बार भी लोग भोजन करते हैं, तीज त्योहारके अवसरोंपर, अथवा दावतोंमें पहुँचकर घीमें बने हुए तर माल उड़ाते हैं, जाड़ेके दिनोंमें मेथी-मूँगके लड्डू, सालम पाक, बदाम पाक, सुपारी पाक आदि पौष्टिक पदार्थ सामर्थ्यानुकूल खाते हैं। इतने पर भी शरीरमें बल क्यों नहीं बढ़ता? दवाओंके खानेसे रोगोंकी जड़ क्यों

नहीं जाती? इन बातोंपर आरोग्य चाहनेवाले प्रत्येक विचारवान् व्यक्तिको विचार करना चाहिए।

इन बातोंपर आज इस स्थलपर हम ही विचार करते हों सो बात नहीं है। बल्कि हमारी अपेक्षा जो देश आजकल कई प्रकारसे गुणोंमें चढे बढे हैं, जिन देशोंके निवासी हमारी अपेक्षा शारीरबल, मनोबल, विद्याबल, धनबल, तथा बुद्धिबलमें कहीं श्रेष्ठ हैं, ऐसे इंग्लैंड, जर्मनी, फ्रांस आदि यूरोपीय देशोंमें तथा उन्नतिके शिखरपर पहुँचे हुए अमेरिका प्रदेशमें भी उपर्युक्त बातोंपर विचार हो रहे हैं। इन देशोंकी प्रजा भी धीरे धीरे शारीरिक बलमें हीन होती चली जा रही है। रोगोंकी दिनोंदिन वृद्धि हो रही है। क्षयरोगसे होनेवाली मृत्युसंख्याका नम्बर बढा हुआ है। विस्फोट और गठिया भी अनेक लोगोंको होने लगा है और उन्माद तथा पागलपनका परिमाण इतना अधिक बढ गया है कि प्रजाजनोंकी आरोग्यरक्षाका प्रबंध करनेवाले अधिकारीगण गहरी चिंतामें पडे हुए हैं। आश्चर्य इस बातका है कि इन देशोंमें एकसे एक बढकर धुरंधर डाक्टर, आरोग्यरक्षाकी मुख्य मुख्य संस्थायें और भाँति भाँतिकी दवाइयोंके आविष्कार प्रतिदिन होते रहते हैं, परन्तु फिर भी लोगोंका स्वास्थ्य जैसा रहना चाहिए वैसा नहीं रहता। आरोग्य नष्ट होने और अभूतपूर्व रोगोंके भयंकर प्रकोप हो चलनेके कारणोंकी जाँच करके विचारवान् और विद्वान् डाक्टरोंने यही निष्कर्ष निकाला है कि आजकल जितनी दवाइयाँ चली हैं उनको खाकर जितने व्यक्ति अच्छे होते हैं उनसे दुगने या तिगुने अथवा उससे भी अधिक व्यक्ति मृत्युको प्राप्त हो जाते हैं। आजकलकी चली हुई जहरीली दवाइयोंसे रोग उस समय तो दब जाता है, परन्तु उनके खानेसे शरीरकी शक्ति बहुत कुछ नष्ट हो जाती है जिससे कि शरीरमें नये नये रोग घर कर लेते हैं। सत्यमें आजतक जितनी भी मुख्य मुख्य लडाइयाँ हुई हैं उन सबमें जितने मनुष्य मारे गये हैं उनसे कहीं अधिक व्यक्ति इन नई दवाइयोंके कारण मरे हैं। इसलिए उचित यही है कि जब कोई रोग आकर लगे तब दवा से नहीं उस रोगकी दवा करनेके बदले उन कारणोंको दूर करना चाहिए जिनसे वह उत्पन्न हुआ हो; और ऐसा कोई कुदरती उपाय करना चाहिए जिससे किसी प्रकारकी हानि न पहुँचे। रोगोंके मूल कारणका नाश न करके रोगोंको दवा देनेके लिये औषधि देनेकी आजकलकी प्रणाली कुछ इस तरहकी है, जैसे

किसी स्थानमें यदी बुरी दुर्गंधि आती हो और वहाँ दुर्गंधि पैदा करनेवाले कारणोंको दूर न करके उस दुर्गंधिको दबानेके लिये लोबान और अगर आदिकी खुशबूदार धूप दी जाय । इसमें संदेह नहीं कि लोबान और अगर आदिकी धूपसे थोडे समयके लिये दुर्गंधि दब सकती है, परंतु उस दुर्गंधिका मूल कारण दूर नहीं होता, और लोबान तथा अगरकी धूप न रहनेपर दुर्गंधि फिर जोरके साथ उठने लगती है । बुखार आनेपर 'एन्टीफेब्रीन' अथवा 'एन्टीपायरीन' नामक दवाओंके लाभसे बुखार तुरत उतर आता है. पर आप क्या यह समझते हैं कि यह बुखार बिल्कुल चला गया ? नहीं केवल उसी समयके लिये दब गया । जिस कारणसे यह बुखार आया था कारण अभीतक बना हुआ है, उसका नाश नहीं हुआ । इसलिये शरीरकी पीडा भी बिल्कुल नष्ट नहीं हुई । समय पर फिर उठ आयेगी । ऐसी दशामें रोगोंको केवल थोडे समयके लिये दबा देनेकी अपेक्षा उनका मूल कारण नष्ट करना कहीं श्रेष्ट है ।

जब यह बात स्थिर हुई कि रोगोंका मूल कारण ही नष्ट करना उचित है, तब सुविज्ञ पुरुषोंने इस बातपर विचार आरंभ किया कि रोगोंके मूल कारण क्या हैं । इस प्रश्नका समाधान करनेमें उन्हें यह मालूम हुआ कि अधिकांश लोग इन्द्रियोंके वशमें होकर स्वास्थ्यसंबंधी अनेक प्राकृतिक नियमोंका उल्लंघन कर जाते हैं । जो पदार्थ खाने चाहिये और जिस रीतिसे खाने चाहिये उन्हें उस रीतिसे न खाकर लोग अपनी जीभके स्वादके निमित्त खाने और न खानेके अनेक पदार्थ खाने लग गये हैं । अंतिनमें या तो कोयला जलाया जा सकता है और या लकडी । परंतु इसके साथ ही साथ यदि कूडा, कर्कट, धूल, मिट्टी, पत्थर, कंकड आदि अलाय बलाय भी अंतिनमें झोंक दी जायगी, तो उससे व्यर्थका तो धुआँ निकलेगा ... भी ठीक ही ...
मनुष्यके शरीरके भीतर पेट भी ... अंतिनमें ...
पच सकनेवाला और शरीरको बल ... भोजन न ...
मिले तो अन्य बुरा पदार्थ ... यह है कि ...
बिगड जाता है और शरीरको ... और
दूसरा ... पुरुषोंने ...
... नहीं है ।
... उदर ... कि

निकालनेका प्रयत्न जब प्रकृति करती है तभी शरीरमें रोग प्रकट होते हैं। अतएव रोग अहित करनेवाला शत्रु नहीं है, बल्कि हित करनेवाला मित्र है। इसलिए रोगोंको दबा देनेके लिये दवा खानेका प्रयत्न ऐसा है जैसे शरीरके भीतरसे निकलनेवाले जहरको रोककर शरीरहीमें जमा रखना। घरमें यदि फन फैलाए हुए भयंकर साँप बैठा हो तो बुद्धिमानी यही है कि उस साँपको पकड़कर घरसे बाहर निकालकर कहीं छोड़ दिया जाय। साँपको बाहर न निकालकर उसके ऊपर ढला ढक देनेसे अथवा उसके बिलको मिट्टी आदिसे बन्द कर देनेसे सर्पका भय बिल्कुल नहीं मिट सकता। साँप जब घरहीमें है तो वह किसी न किसी दूसरे रास्तेसे बाहर निकल सकता है और प्राणोंका भय उपस्थित कर सकता है। इसी प्रकार आजकल जितनी दवाइयाँ चल पड़ी हैं वे शरीरके अन्दर रोगरूपी साँपको केवल दाब देने मात्रका ही काम करती हैं। साँपको घरमेंसे बिल्कुल निकाल देनेकी उनमें शक्ति नहीं है। इसलिए इन दवाइयोंका खाना रोग मेटनेका उत्तम उपाय नहीं है। उत्तम उपाय तो यह है कि कोई ऐसी दवा खाई जाय जो प्रकृतिको शरीरके भीतरसे जहर निकालनेके काममें सहायता पहुँचावे।

शरीरके भीतर जो मैल या जहर संचित हो जाता है उसे प्रकृति चार मुख्य रास्तोंसे शरीरके बाहर निकल देती है। पहला रास्ता है फेफड़े। इस रास्तेसे खून आदिके साथ मिला हुआ मैल 'कार्योनिक गैस' अथवा भाफ आदिके रूपमें बाहर निकल जाता है। दूसरा रास्ता है खाल। खालके छोटे छोटे छिद्रोंमेंसे होकर शरीरके भीतरसे जो पसीना निकलता है वह भी एक प्रकारसे शरीरके भीतर संचित हुए मैलकी सफाई है। तीसरा रास्ता है गुदा, जिसके द्वारा पाखानेके स्वरूपमें शरीरके भीतरका मलिन पदार्थ बाहर होजाता है। चौथा रास्ता मूत्रेन्द्रिय है, जो कि मूत्रके रूपमें शरीरके भीतर संचित हुए मैलको बाहर निकालती रहती है। अतएव जब कभी शरीरमें अधिक मैल संचित हो जाय और प्रकृति इन चारों रास्तोंसे उस मैलको बाहर निकालनेकी चेष्टा करे, तो कुछ ऐसा उपाय करना चाहिए जिससे कि प्रकृतिको इस मल निकालनेके काममें सहायता पहुँचे। यही रोगोंके दूर करनेका असली उपाय भी है। किंतु शरीरके भीतरका मैल निकालनेमें जो औषधियाँ सहायता पहुँचानेके साथ साथ शरीरकी शक्तिको भी कम करती हों व दवाइयाँ निकम्मी हैं। इन दवाइयोंकी चेष्टा तो प्रकृतिके बिल्कुल विरुद्ध असर करती

है। उदाहरणके लिए जमालगोटा खानेसे अथवा एरण्डका तेल पीनेसे दस्त बहुत आजायेंगे और पेटका मल निकल जायगा सही, परन्तु बादको शरीर शिथिल बहुत अधिक हो जायगा। इसलिए यह उपाय मलको बाहर निकालनेवाला होने पर भी प्रकृतिविरुद्ध है। इसी तरह 'डायाफोरेटिक मिक्चर' पीनेसे शरीरमें पसीना आकर देहके भीतरकी गन्दगी निकल अवश्य जाती है; मगर इस 'मिक्चर' में कुछ ऐसे विषैले पदार्थोंका मेल रहता है कि जिनसे हृदयकी गति मंद पड़ जाती है। इस लिए पसीना निकलनेके कारण होनेवाले लाभोंके बदले हृदयकी क्रिया मंद पड़ जानेसे और कई तरहकी हानियाँ हो जाती हैं। मूत्रको अधिक लानेवाली औषधियोंके सेवनसे भी मूत्र बहुत आता है, परन्तु हानिकारक परिणामके साथ। प्राकृतिक अर्थात् कुदरती नियमोंके विरुद्ध शरीरके अवयवोंको जो कार्य करना पड़ता है उसके करनेसे उनपर जोर बहुत पड़ता है और इसी लिए उनका स्वाभाविक बल क्षीण हो जाता है। इसलिए फेफड़ों, त्वचा, गुदा और मूत्रेन्द्रियकी क्रियाको खूब तेज करनेके लिए उन्होंने कई निर्दोष उपाय ढूँढ़ निकाले हैं और ये उपाय इतने सरल हैं, उनके द्वारा रोग इतनी जल्दी मिट जाते हैं, रोगहीन मनुष्यके समय समय पर इन उपायोंको काममें लाते रहने पर ऐसा उत्तम स्वास्थ्य कायम रहता है, दवाओंका रगड़ा गलेमें डालनेसे होनेवाली हानियाँ इन उपायोंके अवलम्बनसे इतनी न्यूनताके साथ होती हैं तथा डाक्टरोंकी बड़ी बड़ी फीसों और दवाइयोंके डरके ढेर दामोंकी ऐसी किफायत होती है कि आज सारे यूरोपीय देशोंमें, खास कर जर्मनी, इंग्लैंड तथा फ्रांस जैसे अग्रगण्य देशोंमें और अमेरिकाकी बड़ी बड़ी अस्पतालों और 'स्वास्थ्य-संरक्षक-स्थानों' (Sanitariums) में भी इस समय इन्हीं उपायोंसे काम लिया जा रहा है। अमेरिकाके नामी डाक्टर केलोग, डाक्टर होल्ब्रुक, डाक्टर ट्राल, प्रोफेसर पार्कर, प्रोफेसर फासेन, प्रोफेसर हार्के आदि अनेक वैद्यविद्याधुरंधर सज्जन, जर्मनीके डाक्टर लुई कुहने, फादर नीप आदि चिकित्साशास्त्री और इंग्लैंडके डाक्टर निकोल्स, डाक्टर मेकर, डाक्टर बेट्ली, सर जान फायर, आदि विद्वान् भी इन्हीं उपायोंसे अपने रोगियोंके रोग दूर किया करते हैं।

ऊपर कहे हुए बिन सरल, निर्दोष और बे कौड़ी पैसेके उपायोंसे यूरोप और अमेरिकाके डाक्टर लोग अपने अपने देशके रोगियोंको चंगा करते हैं वे उपाय पहले अपने भारतवर्षमें भी प्रचलित थे और आज भी कहीं कहीं लोग

उन उपायोंको काममें लाते हैं। इसलिए यह कभी न समझना चाहिए कि ये उपाय बिलकुल नये हैं, अथवा भारतवासियोंके द्वारा कभी काममें नहीं लाये गये हैं। बात यह है कि आज कल अँगरेजी दवाओंकी मायामें लोग ऐसे बेतरह फँस गये हैं कि वे अधिकतर इन उपायोंको उपयोगमें लाते ही नहीं। स्वयं यूरोपीय देशोंके डाक्टर ही इस बातको अपने मुँहसे कबूल कर चुके हैं कि अँगरेजी दवाओंमेंसे कितनी ही ऐसी हैं जिनके साथ विषका मेल रहता है और इसलिए वे शरीरको हानि पहुँचानेवाली हैं। उधर अँगरेजी दवाइयोंका तो यह हाल है, अब इधर अपने देशकी बनी हुई देशी औषधियोंको देखिए तो बहुधा ऐसी ही मिलेंगी जो केवल पैसा कमानेके उद्देश्यसे मूर्ख वैद्योंके द्वारा तैयार होती हैं। अतएव सबसे घर बैठ ह सकनेवाले इन निर्दोष उपायोंका हमारे भाइयोंको यथाविधि ज्ञान हो जाय, और उनके द्वारा वे अपने सामनेके रोगोंको मेटें, भविष्यत्में आनेवाले रोगोंको रोकें, और रोगहीन व्यक्ति अपने स्वास्थ्यकी दिन दूनी तरकी कर सकें, इस उद्देश्यसे पाश्चात्य विद्वानोंके द्वारा खूब जाँच पड़तालके अनंतर निश्चित किये हुए रोगोंके कारणों तथा उनके दूर करनेके उपायोंका दिग्दर्शन करानेके लिए यह छोटीसी पुस्तक लिखी जाती है। इसके लिखनेका यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि बस डाक्टरों और वैद्योंकी अब कुछ जरूरत ही नहीं है, अथवा किसीको भी दवा खानेकी आवश्यकता ही नहीं है। कुशल डाक्टर और निपुण वैद्योंका सर्वत्र आदर और प्रतिष्ठा होनी चाहिए। वैद्य और डाक्टर यदि अपने कर्तव्य और धर्मका ठीक ठीक पालन करें, तो प्रजाका रोगोंके द्वारा नष्ट होना बहुत कुछ घट जाय। वैद्यों और डाक्टरोंके द्वारा प्रजाको आरोग्यसंबंधी नियमोंका ज्ञान मिलना चाहिए और यह बात मालूम होनी चाहिए कि किस अवसरपर कौनसा उपाय रोगीके लिए लाभ पहुँचावेगा। इसी प्रकार विषविहीन अनेक निर्दोष दवाइयाँ भी संसारमें हैं, और वे रोगोंको दूर भी करती हैं। इसलिए संसारमें उन दवाओंका उपयोग भी होता ही है। कहनेका तात्पर्य यह कि डाक्टरों, वैद्यों और दवाइयोंकी सर्वथा निन्दा करके उनका महत्त्व और उपयोग नष्ट कर देनेके लिए यह प्रयत्न नहीं किया जा रहा है। बल्कि जो महाजन अनाड़ी वैद्यों और डाक्टरोंके पाले पड़नेसे अपने रोगोंको समूल नष्ट न कर सके हों, जो अस्पतालोंकी अथवा बाजारोंमें बिकनेवाली अनेक पेटेंट जहरीली दवाइयोंको खाकर हानि उठा चुके हों, जो रोगोंका इस

हैं। उदाहरणके लिए जमालगोटा खानेसे अथवा परण्डका तेल पीनेसे दस्त बहुत आजायेंगे और पेटका मल निकल जायगा सही, परन्तु आदमी शरीर शिथिल बहुत अधिक हो जायगा। इसलिए यह उपाय मलको बाहर निकालनेवाला होने पर भी प्रकृतिविरुद्ध है। इसी तरह 'डायाफोरेटिक मिक्श्चर' पीनेसे शरीरमें पसीना आकर देहके भीतरकी गदगी निकल जरूर आती है; मगर इस 'मिक्श्चर' में कुछ ऐसे विषैले पदार्थोंका मेल रहता है कि जिससे हृदयकी गति मंद पड़ जाती है। इस लिए पसीना निकलनेके कारण होनेवाले लाभोंके बदले हृदयकी क्रिया मंद पड़ जानसे और कई तरहकी हानियाँ हो जाती हैं। मूत्रको अधिक लानेवाली ओषधियोंके सेवनसे भी मूत्र बहुत आता है, परंतु हानिकारक परिणामके साथ। प्राकृतिक अर्थात् कुदरती नियमोंके विरुद्ध शरीरके अवयवोंको जो कार्य करना पड़ता है उसके करनेमें उनपर जोर बहुत पड़ता है और इसी लिए उनका स्वाभाविक बल क्षीण हो जाता है। इसलिए फेंफड़ों, त्वचा, गुदा और मूत्रेन्द्रियकी क्रियाको खूब तेज करनेके लिए उन्होंने कई निर्दोष उपाय ढूँढ निकाले हैं और ये उपाय इतने सरल हैं, उनके द्वारा रोग इतनी जल्दी मिट जाते हैं, रोगहीन मनुष्यके समय समय पर इन उपायोंको काममें लाते रहने पर ऐसा उत्तम स्वास्थ्य कायम रहता है, दवाओंका रगड़ा गलेमें डालनेसे होनेवाली हानियाँ इन उपायोंके अवलम्बनसे इतनी न्यूनताके साथ होती हैं तथा डाक्टरोंकी बड़ी बड़ी फीसों और दवाइयोंके ढेरके ढेर दामोंकी ऐसी किफायत होती है कि आज सारे यूरोपीय देशोंमें, खास कर जर्मनी, इंग्लैंड तथा फ्रान्स जैसे अग्रगण्य देशोंमें और अमेरिकाकी बड़ी बड़ी अस्पतालों और 'स्वास्थ्य-संरक्षक-स्थानों' (Sanitariums) में भी इस समय इन्हीं उपायोंसे काम लिया जा रहा है। अमेरिकाके लब्धनामा डाक्टर कलोग, डाक्टर होल्मुक, डाक्टर ट्राल, प्रोफेसर बाकर, प्रोफेसर कामेन, प्रोफेसर शार्के आदि अनेक वैद्यविद्याधुरंधर सज्जन, जर्मनीके डाक्टर लुइ कुहने, फादर नीप आदि चिकित्साचार्य और इंग्लैंडके डाक्टर मिडोम्स, डाक्टर पका, डाक्टर वेट्‌ली, सर ग्राम फावन, आदि विद्वान् भी इन्हीं उपायोंसे अपने रोगियोंके रोग दूर किया करते हैं।

ऊपर कहे हुए बिन खर्च, निर्दोष और बे-कौड़ी पैसेके उपायोंसे यूरोप और अमेरिकाके डाक्टर लोग अपने अपने देशके रोगियोंको चंगा करते हैं वे उपाय पहले अपने भारतवर्षमें भी चलते थे और आज भी कहीं कहीं लोग

इन उपायोंको काममें लाते हैं। इसलिए यह कभी न समझना चाहिए कि वे उपाय बिलकुल नये हैं, अथवा भारतवासियों के द्वारा कभी काममें नहीं लाये गये हैं। बात यह है कि आज कल अँगरेजी दवाओंकी मायामें लोग ऐसे बेतरह फँस गये हैं कि वे अधिकतर इन उपायोंको उपयोगमें लाते ही नहीं। स्वयं यूरोपीय देशोंके डाक्टर ही इस बातको अपने मुँहसे कबूल कर चुके हैं कि अँगरेजी दवाओंमेंसे कितनी ही ऐसी हैं जिनके साथ विषका मेल रहता है और इसलिए वे शरीरको हानि पहुँचानेवाली हैं। उधर अँगरेजी दवाइयोंका तो यह हाल है, अब इधर अपने देशकी बनी हुई देशी ओषधियोंको देखिए तो बहुधा ऐसी ही मिलेंगी जो केवल पैसा कमानेके उद्देश्यसे मूर्ख वैद्योंके द्वारा तैयार होती हैं। अतएव सबसे घर बैठे हो सकनेवाले इन निर्दोष उपायोंका हमारे भाइयोंको यथाविधि ज्ञान हो जाय, और उनके द्वारा वे अपने सामनेके रोगोंको मेटें, भविष्यत्‌में आनेवाले रोगोंको रोकें, और रोगहीन व्यक्ति अपने स्वास्थ्यकी दिन दूनी तरक्की कर सकें, इस उद्देश्यसे पाश्चात्य विद्वानोंके द्वारा खूब जाँच पड़तालके अनंतर निश्चित किये हुए रोगोंके कारण तथा उनके दूर करनेके उपायोंका दिग्दर्शन करानेके लिए यह छोटीसी पुस्तक लिखी जाती है। इसके लिखनेका यह अभिप्राय कदापि नहीं है कि बस डाक्टरों और वैद्योंकी अब कुछ जरूरत ही नहीं है, अथवा किसीको भी दवा खानेकी आवश्यकता ही नहीं है। कुशल डाक्टर और निपुण वैद्योंका सर्वत्र आदर और प्रतिष्ठा होनी चाहिए। वैद्य और डाक्टर यदि अपने कर्तव्य और धर्मका ठीक ठीक पालन करें, तो प्रजाका रोगोंके द्वारा नष्ट होना बहुत कुछ घट जाय। वैद्यों और डाक्टरोंके द्वारा प्रजाको आरोग्यसंबंधी नियमोंका ज्ञान मिलना चाहिए और यह बात मालूम होनी चाहिए कि किस अवसरपर कौनसा उपाय रोगीके लिए लाभ पहुँचावेगा। इसी प्रकार विषविहीन अनेक निर्दोष दवाइयाँ भी संसारमें हैं, और वे रोगोंको दूर भी करती हैं। इसलिए संसारमें उन दवाओंका उपयोग भी होता ही है। कहनेका तात्पर्य यह कि डाक्टरों, वैद्यों और दवाइयोंकी सर्वथा निन्दा करके उनका महत्त्व और उपयोग नष्ट कर देनेके लिए यह प्रयत्न नहीं किया जा रहा है। किन्तु जो प्रजाजन अनाड़ी वैद्यों और डाक्टरोंके पल्ले पड़नेसे अपने रोगोंको समूल नष्ट न कर सके हों, जो अस्पतालोंकी अथवा बाजारोंमें बिकनेवाली अनेक पेटेंट जहरीली दवाइयोंको खाकर हानि उठा चुके हों, जो रोगोंका दुख

करनेमें पैसा खर्च करते करते अकिंचन बन बैठे हों, जो इतने धनहीन हों कि डाक्टरोंकी भारी भारी फीसें न दे सकते हों और आठ आने रोजकी दवा न ले सकते हों, जो बाल्यावस्थासे सदा निरोग रहते हुए भी अब इस समय अज्ञानवश इस प्रकारसे रहते हों, कि उन्हें सालभर बाद या छ महीने बाद दो एक महीनेको खाटका सेवन करना पड़ता हो और वे अपनी इस शोचनीय अवस्थाका कारण अपने मिथ्या आहार विहारको नहीं बल्कि ग्रहोंको या भाग्यको मान बैठे हों, जो निरोग रहना और पूर्ण आरोग्यलाभ करना चाहते हों, जो अपने तथा अपने कुटुम्बियोंके रोग बिना दूसरोंकी सहायताके आप ही आप मेटना चाहते हों और जो कम परिश्रम और कम खर्चके साथ सहज उपायोंसे इस विपदासे छूटनेकी इच्छा रखते हों उन सबके निमित्त यह छोटीसी पुस्तक लिखी जाती है। अमेरिका, जर्मनी और इंग्लैंड आदि देशोंके ऊपर बड़े गये प्रसिद्ध प्रसिद्ध डाक्टरोंके ग्रन्थोंमेंसे रोगोंके उत्पन्न होनेके कारण, उनको दूर करनेके उपाय तथा किस प्रकारका भोजन आदि करनेसे रोगोंका उत्पन्न होना रुक सकता है, आदि बातें संक्षेपके साथ इस पुस्तकमें लिखनेकी चेष्टा की गई है। जिन्हें अधिक जाननेकी इच्छा हो वे, उपर्युक्त डाक्टर विद्वानोंके बनाये हुए बड़े ग्रन्थ पढ़ें।

रोगोंके कारण।

अगर तुम्हारे पास घड़ी है तो तुमने यह बात देखी होगी कि जब उसमें मैल भर जाता है अथवा उसके चक्रों तथा दूसरे अवयवों पर जंग चढ़ जाती है तो फिर वह बिगड़ जाती है, ठीक ठीक वक्त नहीं बतलाती और बारबार चलते चलते रुक जाती है। शरीररूपी घड़ीके कल पुर्जोंकी भी यही दशा है। जब तक शरीरमें मैल नहीं भरता, तब तक वह ठीक ठीक काम करता है, खाया हुआ अन्न अच्छी तरह पचनेसे रक्त साफ होकर आता है और खून भी सारे शरीरमें वेगके साथ दौड़कर प्रत्येक अवयवको पुष्ट और नीरोग बनाये रखता है। इसके अतिरिक्त शरीरकी त्वचा पसीना निकालनेका काम अच्छी तरह करती है, फेफड़े बहुतसी शुद्ध वायु श्वासके साथ भीतर खींचकर खूनको शुद्ध बनाये रखते हैं, मस्तिष्कके ज्ञान रहनेसे चित्त प्रफुल्लित और मदद बना रहता है, आलस्य या प्रमाद पास नहीं फटकने पाता, चिड़चिड़ापन, ग्लानि, अकारण शोक तथा अन्यान्य प्रकारके

मनोविकार नहीं होते तथा जन्म-मरणकी झंझटवाले संसारमें रहते हुए भी कभी यह नहीं जान पड़ता कि शरीर दुःख देनेवाला है। किन्तु जब शरीरके कलपुर्जोंमें मैल भर जाता है तब सबसे पहली बात यह होती है कि भोजनमें रुचि नहीं रहती। इसके उपरांत बद्धकोष्ठ होनेके कारण पेट नगारेके समान हो जाता है, खट्टी डकारें आती हैं, गलेमें और छातीमें जलन पड़ती है, सारे शरीरमें ठीक ठीक खून न दौड़नेके कारण भिन्न भिन्न अवयव दुर्बल पड़ जाते हैं, खालपर फुड़ियाँ फुन्सियाँ आदि निकल आती हैं, श्वास पूरा नहीं लिया जाता, मस्तक तप्त रहता है, हाथ और पैर ठंढे रहते हैं, जहाँ पड़े कि फिर वहाँसे उठनेको मन नहीं चाहता, काम करनेके लिए चित्तमें उत्साह नहीं पैदा होता, साधारणसी बातमें भी तबीयत चिढ़ उठती है, बिना किसी कारणके ही चित्त खिन्न रहता है, अच्छा नहीं मालूम होता, तरह तरहके मनोविकार बढ़ते हैं और यह मालूम होने लगता है कि शरीर कैदखाना है, अथवा चलती हुई भट्टी है। शरीरके भीतर मैल यदि थोड़ा होगा तो उपर्युक्त विकार कम जोरके साथ प्रकट होंगे। इसके बाद ज्यों ज्यों मैल बढ़ता जायगा त्यों त्यों इन विकारोंका जोर भी अधिक होता जायगा।

जिस तरह घड़ीको गर्द धूलवाली जगहमें रख देनेसे उसमें मैल भर जाता है और काममें लाते रहने पर भी धातुके स्वभावके कारण उसके पुर्जोंपर जंग पड़ जाती है, उसी तरह हमारे शरीरमें भी बाहरसे मैल भरता है और शारीरिक अवयवोंके निरन्तर घिसते रहनेसे कितना ही मैल शरीरके अन्दर स्वयं उसीमेंसे उत्पन्न हुआ करता है। सुलगाई हुई लकड़ियाँ जैसे खूब तेज आँच देकर पीछेसे थोड़ीसी राख छोड़ देती हैं, उसी तरह शरीर-पोषणके लिए जो पदार्थ नित्य प्रति खाये जाते हैं वे शरीरको यथोचित पोषण पहुँचानेके उपरांत थोड़ासा मल बाकी छोड़ देते हैं। अतएव शरीरके भीतर तीन प्रकारसे मैल उत्पन्न होता है। एक तो बाहरसे जाकर गर्द खाक आदि भीतर इकट्ठी हो जाती है, दूसरे शरीरपुष्टिके लिए खाए गए भोजनमेंसे शरीरको पुष्ट करनेवाले तत्त्वोंके निकल जानेके उपरांत व्यर्थका फोकस रह जाता है और तीसरे शरीरके भीतरी अवयवोंके घिसनेसे भी मैल उत्पन्न होता रहता है। बाहरसे शरीरके भीतर मैल पहुँचनेके मुख्य दो रास्ते हैं—नाक और मुँह। जिस तरह ये दो द्वार शरीरमें मैल आनेके हैं उसीप्रकार इन्हीं द्वारोंसे शरीरको पुष्ट करनेवाले पदार्थ भी प्रवेश करते हैं। परन्तु शरीरको

हुए करनेवाले पदार्थोंके साथ साथ इन दो मार्गोंमें शरीरके अंदर कहीं हानिकारक पदार्थ न पहुँच जायँ, इसलिए प्रकृतिने नाक और मुँहमें दो पहरेदार बिठा दिये हैं। नाकमें जो अच्छी और बुरी बास सूँघ लेनेकी शक्ति रखनेवाले ज्ञानतन्तु हैं वे नाकके मार्गसे हानिकारक पदार्थोंका शरीरके भीतर पहुँचना तुरत बता देते हैं और मुँहके भीतर जो भला और बुरा स्वाद पहचाननेवाले ज्ञानतन्तु हैं वे मुँहके मार्गसे भीतर जानेवाले हानिकारक पदार्थोंकी खबर दे देते हैं। ज्यों ही वायुमें मिला हुआ कोई हानिकारक पदार्थ श्वासके साथ नाकके भीतर जाने लगा कि नाकके ज्ञानतन्तुओंने दुर्गंधि सूँघके तुरत तुम्हें होशियार कर दिया कि 'देखो, शरीरके भीतर हानिकारक पदार्थ प्रवेश कर रहे हैं, हाथसे नाक बंद कर लो अथवा पैरोंको हुकुम दो कि वे इस दुर्गंधि दूषित स्थानसे तुम्हें शीघ्र ही किसी सुगन्धिवाले स्थानमें पहुँचावें।' इस पहरेदारकी चेतावनी पर यदि तुम ध्यान दोगे, तो जब जब शरीरको हानि पहुँचानेवाली दुर्गंधि शरीरमें प्रवेश करेगी तब तब यह तुम्हें सावधान कर दिया करेगा। किंतु यदि तुम उसकी सामयिक चेतावनीपर ध्यान न दोगे तो धीरे धीरे यह अपना काम करना इस तरह छोड़ देगा जैसे बड़ी सावधानीके साथ काम करनेवाला पहरेदार अपने मेहनतसे किए गए कामकी कदर न होती देख मदोत्साह होकर ढीला पड़ जाता है। सड़कें साफ करनेवाले भंगियोंकी, झाड़ू देनेवालोंकी, हुलास सूँघनेवालोंकी, तमाखू खानेवालोंकी, गन्दी गलियोंमें नित्य रहनेवालोंकी, इत्यादि जहाँ बिल्कुल आना जाना न होता हो ऐसी जगहोंमें रहनेवालोंकी, भारी भीड़वाली जगहोंकी जहरीली हवामें नित्य श्वास लेनेवाले पुरुषोंकी, जैसे कि नाटक-समाजोंमें जानेवालोंकी, कचहरियोंमें बैठनेवालोंकी, स्कूल कालेजों और शिवालयोंकी मंदिरों और सभाओंमें एकत्र होनेवालोंकी, तथा ऐसे ही अन्यान्य दूसरे व्यक्तियोंकी भी नाकके पहरेदार काम करनेमें मंद पड़ जाते हैं। क्यों कि पहले जब वे खूब खुशीके साथ काम करके शरीरके भीतर प्रवेश करनेवाली दूषित वायुकी तुरत खबर दिया करते थे तब उनकी इस सेवाकी पूरी पूरी कदर नहीं की गई। अतएव अब वे उतनी तेजीके साथ काम नहीं करते। इसलिए यद्यपि उपर्युक्त व्यक्तियोंकी नाकमें अब भी दूषित वायु बराबर प्रवेश करती है, तथापि उन्हें मालूम ही नहीं होता। रास्तेमें कहीं मैलेकी गाड़ी जाती हुई मिल जाय तो हम दुर्गंधिसे कैसे व्याकुल हो उठते हैं, तथा किंत

प्रकार नाक मुँह दाबकर उस जगहसे हट जानेके लिए लपकते हैं । परंतु उस गाड़ीको हाँकनेवाला जो भंगी होता है वह बड़ी मौजसे धीरे धीरे गाड़ी हाँकता चला जाता है । इसका कारण यह है कि उसकी नाकका पहरेदार बिलकुल निकम्मा हो गया है । अगर तुम हुलास नहीं सूँघते हो या तम्बाकू नहीं पीते हो, तो हुलासकी धाँस चढ़ जानेसे तुम्हें छींकें आने लगेंगी और आँखोंमें पानी भर आवेगा । इसी तरह तम्बाकूकी गंध सूँघकर भी तुम्हारा माथा घूम जायगा और नाक दबाकर तुम उस जगहसे हट जानेकी चेष्टा करोगे । परंतु जो हुलास सूँघनेवाले हैं वे भर भर चुटकी हुलास नाकके सूराखों द्वारा भीतरको खींच कर ऐसे प्रसन्न होते हैं जैसे होलीके अवसर पर भर भर मुट्ठी अबीर-गुलाल उड़ाकर लोग सुखी होते हैं । इसी तरह तम्बाकू पीनेवाले व्यक्ति भी बीड़ीपर बीड़ी अथवा चिलमपर चिलम उड़ाकर उस महा हानिकारक धुएँसे इतने प्रसन्न होते हैं जैसे कोई व्यक्ति इत्रकी सुगंधिसे महकते हुए स्थानमें जाकर । इसका कारण यह है कि उनकी नाकके पहरेदार बराबर नाकदरीका बर्ताव पानेसे आलसी हो गये हैं । रात्रिको खुले मकानमें सोनेवाला व्यक्ति यदि एक दिन सब तरफसे मकानके खिड़की दरवाजे बन्द करके और कपड़ेसे सिर ढकके सो जाय तो उसे मालूम होगा मानों उसका दम घुटा जा रहा हो । जब तक वह अपना सिर उघाड़ न लेगा और मकानके खिड़की दरवाजे खोल न देगा तब तक उसे चैन ही नहीं पड़ेगा। मकानके खिड़की दरवाजे बंद करके और कपड़ेसे चारों तरफसे मुँहको लपेट-कर सोनसे मकानकी तथा कपड़ेके भीतरकी हवा बाहर नहीं निकलने पाती और बाहरकी स्वच्छ निर्मल हवा भीतर नहीं आने पाती । इस लिए सिर ढककर सोनेवाले बारम्बार उसी हवाको श्वासके साथ भीतर खींचते और निकालते हैं । शरीरके भीतरसे जो हवा श्वासके साथ एक बार बाहर आगई वह साफ नहीं है, बल्कि उसमें दूषित विष मिला हुआ है । इसलिए उसी हवाको जब हम श्वासके साथ फिर भीतर खींच ले जायँगे तो वह हमारे शरीरके भीतर प्रवेश करके हमारे स्वास्थ्य और शारीरिक बलको इस तरहपर हानि पहुँचावेगा कि हम जान भी न सकेंगे । यह दूषित वायु जो बारम्बार हमारी नाकमें प्रविष्ट होती और बाहर आती है, तथा हमें मालूम बिलकुल नहीं होती, इसका भी कारण यही है कि हमारी नाकके पहरेदार कुम्भकर्ण-कीसी गहरी और गंभीर निद्रामें पड़े सो रहे हैं ।

इसी रीतिपर शरीर-पुष्टिके लिए जो पदार्थ ज़रा भी उपयोगी नहीं हैं; बल्कि जो शरीरके होनेवाले पोषणमें बाधा डालकर भिन्न भिन्न रोग उत्पन्न करते हैं, वे जब मुँहके रास्ते शरीरके भीतर जाने लगते हैं तो जीभके ऊपर बैठे हुए पहरेदार तुरत हमें सावधान कर देते हैं, और अच्छी तरह हमें यह बात जता देते हैं कि यह पदार्थ पेटके भीतर मत ले जाओ। इन पहरेदारोंकी चेतावनी पर ध्यान देकर यदि यह पदार्थ पेटमें पहुँचनेसे रोक दिया जाता है तब तो शरीरका स्वास्थ्य ठीक बना रहता है और ये पहरेदार प्रत्येक अवसर पर हानि पहुँचानेवाले पदार्थोंके मुखमार्गसे शरीरमें प्रवेश करते समय हमें अच्छी तरह सावधान करते रहते हैं। परंतु जब अज्ञान, मूर्खता या अन्य किसी कारणसे शरीरको हानि पहुँचानेवाले शत्रु-पदार्थोंको मित्र पदार्थ समझ कर जिह्वाके पहरेदारोंकी दी हुई चेतावनी पर ध्यान नहीं दिया जाता है, तो परिणाम फिर यह होता है कि नाकके पहरेदारोंकी नाईं य मुखके पहरेदार भी ऊँघने लगते हैं। फिर तो यों समझो कि यह पहरेदार बुरे पदार्थरूपी शत्रुओंकी सेनाकी सेनाको मुखमार्गसे भीतर शरीरमें चला जाने देते हैं और चूँ तक नहीं करते। कभी तुमने दो तीन वर्षके एक छोटे बालकको मिर्च मिली हुई दाल या तरकारी खिलाई है? यदि खिलाई होगी तो तुमने देखा होगा कि मिर्च मिली तरकारी या दालके मुँहमें पहुँचते ही बालक रोने चिल्लाने लगता है; और जब तक पानीसे उसकी जीभ परकी मिर्च बिल्कुल धोकर साफ न कर दी जाय तब तक वह बराबर 'सी-सी' करता और मुँह पीटता रहता है। बात यह है कि बालककी जीभपर बैठे हुए पहरेदार उसे बतला देते हैं कि मिर्च बड़ी तेज़ चीज़ है। इसके खानेसे दाह उत्पन्न होता है और पेटमें जाकर यह पेटकी कोमल खाल पर सूजन और घाव कर देती है, इस लिए उसे मुँहमें नहीं जाने देना चाहिए। जब तक बालक छोटा रहता है तब तक तो वह जिह्वाके इन पहरेदारोंकी बातपर ध्यान देता है, किंतु ज्यों ज्यों मातापिता उसे समझाते हैं कि यह तरकारी कैसी स्वादिष्ट बनी है, यह दाल, यह भाजी, यह चटनी, यह कढ़ी तथा यह चावल मिर्च डालनेसे कैसा मज़ेदार बना है, त्यों त्यों मिर्च पर उसकी रुचि बढ़ती जाती है। यद्यपि मिर्चकी तेज़ीसे बालकका मुँह जलने लगता है तथापि धीरे धीरे मिर्च-जैसे पदार्थोंके खानेका अभ्यास उसे इतना अधिक हो जाता है कि बरसातके कारण चाहे उसके सिर घूम, जाय, ज्वरमें पसीना आने लगे,

छातीमें मिर्चकी गर्मीसे चाहे आग बलने लगे और दस्त आते समय मलद्वारमें चाहे दाह हो, तब भी मिर्च-मिले चटपटे पदार्थोंको वह नित्य नए नए चावसे खाता है। दैवयोगसे दाल तरकारीमें किसी समय मिर्च यदि कम हो जाय तो बडे आग्रहके साथ माँगकर वह ऊपरसे मिला लेता है। फिर तो उसे मिर्चोंनी दाल तरकारीसे इतना अनुराग बढ जाता है कि उसके बिना उसे अच्छेसे अच्छा भोजन स्वादहीन मालूम होता है।

क्या कारण है जो बालक आरम्भमें मिर्चोंसे इतनी अधिक घृणा करता हुआ भी अंतमें इतना अधिक मिर्च मसालेका शौकीन हो जाता है? यही कि उसके मुखके पहरेदार अब पहिलेकीसी सावधानीके साथ पहरेदारीका काम नहीं करते। अफीम जहरकी नाई कडवी होने पर, तम्बाकू उल्टी करा देनेवाला पदार्थ होने पर और शराब मुँह और छातीमें दाह उत्पन्न करनेवाली और बिल्कुल स्वादहीन होने पर भी जो अफीमचियों, तम्बाकूखोरों और शराबियोंको प्रिय है उसका कारण भी यही है कि उनके मुँहके पहरेदार बेकदरीमें पडनेके कारण अपना अपना काम चौकसीके साथ पूरा करना छोड बैठे हैं।

नाक और मुँहके मार्गसे शरीरको हानि पहुँचानेवाला मैल भीतर न जाय, इसी लिए प्रकृतिने हमें गंध और स्वाद पहिचाननेवाले ज्ञान-तंतु नाक और मुँहमें दिये हैं। किंतु हम अपनी ही अज्ञानता तथा मूर्खतासे इन ज्ञान-तंतुओंका पूरा पूरा उपयोग न करके शरीरके भीतर बहुतसा मैल प्रवेश होने देते हैं और उसके परिणाममें नानाप्रकारके रोगोंसे पीडित होते हैं। सब कोई यह जानते हैं कि बागों, खेतों और मैदानोंकी स्वच्छ हवाके लगनेसे दिमाग, मन और शरीरको घना लाभ पहुँचता है, किंतु फिर भी ऐसे बहुत ही कम व्यक्ति मिलेंगे जो नित्य प्रति थोडे समयके लिए खुली जगहमें जाकर स्वच्छ वायुका सेवन करते हों। खूनके बिगड जाने पर अथवा शारीरिक कमजोरी होने पर खून शुद्ध करनेवाली दवा 'सासापारिला' अथवा शक्ति बढानेवाली दवा 'काड लिवर आयल' मँगाकर दो रुपये खर्च करनेका भार तो लोग स्वीकार कर लेंगे, लेकिन इनसे सौगुना अधिक लाभ पहुँचानेवाली जो स्वच्छ वायु है, जो कि फेफडोंमें पहुँचकर तत्काल फायदा पहुँचाती और चित्त प्रफुल्लित करती है, उसके सेवनके लिए यदि कोई खुले मैदानमें जानेको कहे तो वे बीस बहाने निकाल कर कह देते हैं कि हमें फुरसत ही नहीं।

जिस वायुके पाँच मिनिट भी न मिलनेसे हमारा श्वास घुटकर प्राणांत हो सकता है उसी वायु और बलको बढानेवाली वायुके सेवनके विषयमें मनुष्य जब इतने अधिक उदासीन रहते और चौबीसों घंटे गंदी हवामें घूमते फिरते हैं, तब यदि वे अल्पायु और रोगी हों तो आश्चर्य ही क्या है ? गर्मियोंमें गरम लू, जाड़ोंमें ठंढी हवा और बरसातमें मर्तूब हवाके डरसे जो लोग घरके खिड़की दरवाजे बंद करके और कभी कभी ऊपरसे और पर्दे लटकाकर पर्दा नशीन औरतोंकी तरह दबक कर रहते हैं, वे यदि अबला स्त्रियोंकी भाँति अशक्त बनेहुए घूमें तो इसमें आश्चर्य किस बातका ? आकाशकी स्वच्छ हवामें उड़नेवाले पक्षियों और जंगलके खुले मैदानोंमें घूमनेवाले जंगली पशुओंके आरोग्य, बल, चापल्य और जीवनशक्तिको सदैव अपनी आँखों प्रत्यक्ष देखनेवाला और अपनेको बुद्धिजीवी समझनेवाला मनुष्य यदि चौबीसों घंटे गंदी हवामें रहकर अपनेको पशु पक्षियोंकी अपेक्षा भी कमसमझ सिद्ध करे, तो यह कुछ कम खेदकी बात नहीं है ।

यदि तुम्हें अपने शरीरके रक्तको अधिक समयसे बहबचोंमें भरे हुए गंदे पानीके समान मैला और दुर्गंधियुक्त बनाना हो, यदि तुम्हें दुर्बल और रूखे चमड़ेवाला शरीर करना हो, यदि तुम पीले चेहरेवाले, मंद पचनशक्तिवाले, अल्प आयुवाले और धीरे धीरे विविध रोगोंके निधान बननेके इच्छुक हो, यदि तुम उत्साहविहीन मनवाले और किसी विषयका पूरा निश्चय तत्काल न कर सकने योग्य मस्तिष्कवाले होना पसन्द करते हो, यदि साल भरमें दो चार बार वैद्य और डाक्टरोंसे अपना गृह पवित्र कराये बिना तुमसे न रहा जाता हो, यदि तुम्हें तरह तरहके कड़वे कसैले द्रवोंसे जिह्वाकी स्वाद लेनेकी शक्ति शिथिल करनी हो और शरीरको हजारों प्रकारकी जहरीली दवाइयोंका संग्रहस्थान बनाना हो, तो घरकी खिड़कियों और दरवाजे बंद करके सोया करो, हर समय घरमें ही बैठे रहकर मकानकी बंधी हुई जहरीली वायुमें ही हर समय श्वास लिया करो, जाड़ोंमें रात्रिको रजाईसे मुँह नाक सब खूब बंद करके लेटा करो, जहाँ हवाका आना जाना बिलकुल न होता हो ऐसी नाटक शालाओंमें जाकर नित्य नए नए नाटकोंका अभिनय देखा करो और वहाँ पर सैकड़ों मनुष्योंके मुखसे निकली हुई दूषित वायुमें मिलकर घंटों तक बैठकर श्वास लिया करो और तम्बाकू गाँजा आदि पदार्थोंके धुँएका दम लगानेवाले आदमियोंके धुँएके समान दम लिया करो ।

प्राणियोंके श्वास प्रश्वासके द्वारा बिगड़ी हुई वायुस जिस प्रकार मनुष्योंका स्वास्थ्य बिगड़ता है, उसी प्रकार घरमें झाड़ने बुहारनेस उड़ी हुई रजके नाकमें घुस जानेसे, मार्गमें चलते हुए रास्तेकी गर्दके नाकके भीतर प्रवेश करनेसे, रसोई बनाते समय चूल्हेमें जलनेवाले लकड़ी-कण्डाके धुएँसे तथा शुद्ध वायुके अतिरिक्त ऐसे ही अन्यान्य दूषित पदार्थोंके नाकमें होकर शरीरक भीतर पहुँचनेसे मनुष्योंका स्वास्थ्य बिगड़ जाता है। दम, खाँसी, क्षयरोग अथवा अन्यान्य ऐसे ही रोगवाले पुरुषोंके मार्गमें जाते हुए थूक देनेसे, और तम्बाकू आदि खाने पीनेवाले व्यक्तिओंके मार्गमें थूक देनसे भी मार्गे चलनेवाल स्वस्थ पुरुषोंके शरीरमें प्रवेश करनेवाले जहरीले कण उत्पन्न हो जाते हैं। क्यों कि उपयुक्त व्याधियोंवाले व्यक्तियोंका थूक और कफ मार्गमें पड़ा पड़ा सूख जाता है और सूखकर मार्गमें पड़ी हुई खाकमें मिल जाता है। यही खाक मार्गमें झाड़ू लगानेके समय उड़ उड़कर राह चलने वाले निरोग पुरुषोंक शरीरमें नाक और मुँहके मार्गसे घुस जाती है और भले चंगे व्यक्तियोंको रोगी बना देनका कारण होती है। कण्डे और लकड़ियोंके धुएँस भी शरीरका खून बिगड़ जाता ह और तरह तरहके रोगोंके उत्पन्न होनेकी आशंका हो जाती है। इसलिए आरोग्य चाहनेवाल पुरुषोंको इस बातकी सदैव सावधानी रखनी चाहिए कि नाकमें होकर कोई भी दूषित पदार्थ शरीरके भीतर न पहुँचने पाये।

नाकमें होकर धूल अथवा खाकके दूषित कण शरीरक भीतर न जाने पावें, इसका प्रबंध प्रकृतिने स्वयं कर दिया है। मनुष्योंकी नाकमें जो बाल उग आते हैं वे मानों दूषित कणोंको भीतर जानेसे रोकनेवाली रहा है। परन्तु बहुतसे मनुष्य ऐसे 'देढ़ अक्कल' होते हैं कि प्रकृतिक इस सुप्रबंधमें भी हस्तक्षेप किये बिना उनसे नहीं रहा जाता। वे हजामत बनवाने समय या तो नाईसे इन बालोंको कैंचीसे कटवा डालते हैं अथवा स्वयं अपने ही हाथसे उन्हें चीमटीसे उखाड़ डालते हैं। परिणाम इसका यह होता है कि खाकके कण कुछ रुकावट न होनेके कारण नाकके छिद्रोंमें सासके साथ गुजरते हुए सीधे फेफड़ों तक आ पहुँचते हैं और नानाप्रकारकी हानि पहुँचाते हैं।

इस प्रकार अशुद्ध वायुके रूपमें, धूलके कणके रूपमें और लकड़ी कण्डोंके धुएँके रूपमें शरीरके भीतर जानेवाले मैलको रोकनेमें जो व्यक्ति सावधान रहते हैं, व मानों इसवेमें आठ आने भर रोगोंके होनेकी सम्भावनाको नष्ट करते हैं।

अब मुँहके मार्गसे शरीरके भीतर प्रवेश करनेवाली दूषित वस्तुओंके विषयमें विचार करना चाहिए।

मुँहके मार्गसे दो प्रकारके पदार्थ शरीरके भीतर पहुँचते हैं; एक तो खाये जानेवाले और दूसरे पिये जानेवाले। इन दोनों प्रकारके पदार्थोंमेंसे जो पदार्थ शरीरमें पहुँचकर उसे पुष्ट करते हैं वे ही शरीरको उपयोगी होनेके कारण आरोग्य प्रदान करनेवाले हैं। जो पदार्थ शरीरके भीतर पहुँचकर उसे पुष्ट नहीं करते, वे निरे निकम्मे होनेके कारण शरीरको आरोग्य प्रदान नहीं करते। सिर्फ इतना ही नहीं, बल्कि वे आरोग्य न देकर नाना प्रकारके रोग उत्पन्न करनेका कारण होते हैं। खाते समय कोई भी व्यक्ति धूल या मिट्टी कभी नहीं फाँकता है, क्योंकि धूल या मिट्टी शरीरका पोषण नहीं करती, इस लिए उसकी गिनती खानेकी चीजोंमें नहीं है। यदि किसी बालकको हम मिट्टी, पेंसिलके टुकड़े, राख अथवा कोयला खाते देखते हैं तो हम उसे इन चीजोंके खानेसे रोकते हैं। इसी लिए कि ये वस्तुएँ शरीरको जरा भी पुष्ट नहीं करतीं, बल्कि शरीरमें पहुँचकर बहु तरहकी हानि ही पहुँचाती हैं। अतएव शरीरको पुष्ट न करनेवाली जितनी भी चीजें खाई जाती हैं—चाहे वे स्वादिष्ट भी हों—वे सबकी सब केवल वही लाभ पहुँचाती हैं जो मिट्टी या गर्देके खानेसे पहुँच सकता है। इसमें कुछ भी संदेह नहीं। विलायती बना हुआ 'विनोलियम' साबुन यद्यपि देखनेमें बड़ा सुंदर होता है और उसकी सुगंधि भी परम मनोहर होती है; किंतु बर्फी पेड़ेकी भाँति वह खानेकी चीज कभी नहीं हो सकता। 'विनोलियम' साबुन पेटमें जाकर यदि पच जाय और उसका खून बन सके तो अलबत्ता वह खानेका पदार्थ हो सकता है। नहीं तो वह ऐसा ही निकम्मा है जैसी धूल या मिट्टी।

अब इस बातका विचार करना चाहिए कि हम जो पदार्थ नित्य खाते हैं उनमेंसे कितने पदार्थ ऐसे हैं जो शरीरको पुष्ट करते हैं और कितने ऐसे हैं जो पुष्ट नहीं करते।

सब प्रकारके अन्न, सब प्रकारके फल और सब प्रकारके मेवे शरीरको पुष्ट करते हैं। इस लिए ये सब खाने योग्य पदार्थोंमें गिने जाते हैं, और इनको खानेवाले कभी रोगी नहीं होते। परंतु तुम कहोगे कि यही पदार्थ तो सब लोग खाते हैं, पत्थर, ईंट या कोयला कौन खाता है? दाल, भात रोटी और साकभाजी सभी मनुष्य खाते हैं, इस लिए किसीको भी कभी बीमार

न होना चाहिए। यह कहना बिल्कुल ठीक है कि सब लोग अन्नादिक खानेके पदार्थ ही खाते हैं। परन्तु अकेले अन्नादि खाकर बैठे रहनेसे ही लोग संतुष्ट रहते, तो इतना लिखनेकी नौबत ही नहीं आती। जंगलमें रहनेवाले पशु पक्षी अपना अपना प्राकृतिक भोजन ही खाते हैं, और उस प्राकृतिक भोजनसे वे कभी बीमार नहीं पड़ते। उन्हें यह बतानेकी जरूरत ही नहीं कि यह चीज खाना और यह न खाना। परन्तु बुद्धिमान् कहे जानेवाले मनुष्यने अपने प्राकृतिक भोजनको छोड़ दिया है। इस लिए पशु पक्षियोंकी अपेक्षा वह अधिक बीमार हुआ करता है और असंख्य रोग आकर उसे दबा लेते हैं। इसी लिए मनुष्योंके लाभार्थ यह सब लिखनेकी आवश्यकता हुई। प्रकृतिने मनुष्योंकी जिह्वामें जो पहरेदार बैठाल रक्खे हैं उनकी चेतावनीकी पर्वाह न करके वे खटाई, मिर्चें, हींग, हल्दी, राई आदि तरह तरहके मसाले खाने लगे हैं। प्रकृतिने प्रत्येक प्रकारके अन्नमें और फलमें स्वाभाविक, कोमल और सात्विक स्वाद पैदा कर रक्खा है। किंतु उससे संतुष्ट न होनेवाले मनुष्योंने प्रत्येक खानेके पदार्थका स्वाद मिर्च मसालेके मेलसे तेज करनेकी चेष्टा की है। मनुष्य यदि अमरूद खाते हैं तो प्रायः उसमें काली मिर्च मिलाकर उसका स्वाद बिगाड़कर खाते हैं। यदि वे अनन्नास, जामुन अथवा अँगूर खाते हैं तब भी उनमें नमक या मिर्च मिलाये बिना उन्हें स्वाद नहीं आता। दाल या तरकारी खाते हैं तब भी नमक, मिर्च और तरह तरहके मसाले मिलाये बिना उन्हें भोजनका यथेष्ट आनंद नहीं मिलता। इस शाकमें अजवायन पड़नी चाहिए, इसमें जीरा, मथी या राई चाहिए, तथा इसमें मक्खी आदि मसाले चाहिए। इस तरह उसने हर बातमें चतुराई खर्च करनेमें जरा भी कसर नहीं रक्खी है। कद्दू बादी होता है, इसलिए उसमें मेथी बिनाबाले खानेसे बादी हो जायगी। बादी हटानेके लिए सेमके बीजोंमें अजवायन और आमके रसमें सोंठ चाहिए। इत्यादि पाक विपाक विविध प्रकारके रहस्योंको बतलाने और समझानेमें मनुष्य अपनी पाकशास्त्रकी प्रवीणताका परिचय देते हैं। मानों प्रकृतिने पदार्थ ऐसा उत्पन्न किया है जो बादी करे और अच्छी तरह न पच सके। चौरासी लाख योनियोंके प्राणी अपना अपना प्राकृतिक भोजन लिया करते हुए पूर्णतया निरोग और हृष्ट रहते हैं। बादी अथवा दर्द क्या बला होती है यह वे जानते भी नहीं। किंतु मनुष्य अपने प्राकृतिक भोजनके त्यागसे बादी और दर्द आदि व्याधियोंका शिकार बन जाता है। पनेरा दवा

अब मुँहके मार्गसे शरीरके भीतर प्रवेश करनेवाली दूषित वस्तुओंके विषयमें विचार करना चाहिए।

मुँहके मार्गसे दो प्रकारके पदार्थ शरीरके भीतर पहुँचते हैं, एक तो खाये खानेवाले और दूसरे पिये जानेवाले। इन दोनों प्रकारके पदार्थोंमेंसे जो पदार्थ शरीरमें पहुँचकर उसे पुष्ट करते हैं वे ही शरीरको उपयोगी होनेके कारण आरोग्य प्रदान करनेवाले हैं। जो पदार्थ शरीरके भीतर पहुँचकर उसे पुष्ट नहीं करते, वे निरे निकम्मे होनेके कारण शरीरको आरोग्य प्रदान नहीं करते। सिर्फ इतना ही नहीं, बल्कि वे आरोग्य न देकर नाना प्रकारके रोग उत्पन्न करनेका कारण होते हैं। खाते समय कोई भी व्यक्ति धूल या मिट्टी कभी नहीं फाँकता है, क्योंकि धूल या मिट्टी शरीरका पोषण नहीं कर इस लिए उसकी गिनती खानेकी चीजोंमें नहीं है। यदि किसी बालक हम मिट्टी, लीपनके पपडे, राख अथवा कोयला खाते देखते हैं तो हम उ उन चीजोंके खानेसे रोकते हैं। इसी लिए कि ये वस्तुएँ शरीरको जरा भ पुष्ट नहीं करतीं, बल्कि शरीरमें पहुँचकर कई तरहकी हानि ही पहुँचाती हैं अतएव शरीरको पुष्ट न करनेवाली जितनी भी चीजें खाई जाती हैं—चाहे स्वादिष्ट भी हों—वे सबकी सब केवल वही लाभ पहुँचाती हैं जो मिट्टी य गर्दके खानेसे पहुँच सकता है। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। विलायती ब हुआ 'विनोलियन' साबुन यद्यपि देखनेमें बड़ा सुंदर होता है और उसक सुगंधि भी परम मनोहर होती है, किंतु वर्फी पेड़ेकी नाई वह खानेकी चीज कभी नहीं हो सकता। 'विनोलियन' साबुन पेटमें जाकर यदि पच जा और उसका खून बन सके तो अलबत्ता वह खानेका पदार्थ हो सकता है नहीं तो वह ऐसा ही निकम्मा है जैसी धूल या मिट्टी।

अब इस बातका विचार करना चाहिए कि हम जो पदार्थ नित्य खाते हैं उनमेंसे कितने पदार्थ ऐसे हैं जो शरीरको पुष्ट करते हैं और कितने ऐसे हैं जो पुष्ट नहीं करते।

सब प्रकारके अन्न, सब प्रकारके फल और सब प्रकारके मेवे शरीरको पु करते हैं। इस लिए ये सब खाने योग्य पदार्थोंमें गिने जाते हैं; और इनके खानेवाले कभी रोगी नहीं होते। परंतु तुम कहोगे कि यही पदार्थ तो सब लोग खाते हैं, पत्थर, ईंट या कोयला कौन खाता है? दाल, भात रोटी और शाकभाजी सभी मनुष्य खाते हैं, इस लिए किसीको भी कभी बीमा

न होना चाहिए। यह कहना बिल्कुल ठीक है कि सब लोग अन्नादिक खानेके पदार्थ ही खाते हैं। परंतु अकेले अन्नादि खाकर बैठे रहनेसे ही लोग संतुष्ट रहते, तो इतना लिखनेकी नौबत ही नहीं आती। जंगलमें रहनेवाले पशु-पक्षी अपना अपना प्राकृतिक भोजन ही खाते हैं, और उस प्राकृतिक भोजनसे वे कभी बीमार नहीं पड़ते। उन्हें यह बतानेकी जरूरत ही नहीं कि यह चीज खाना और यह न खाना। परन्तु बुद्धिमान् कहे जानेवाले मनुष्यने अपने प्राकृतिक भोजनको छोड़ दिया है। इस लिए पशु पक्षियोंकी अपेक्षा वह अधिक बीमार हुआ करता है और असंख्य रोग आकर उसे दबा लेते हैं। इसी लिए मनुष्योंके लाभार्थ यह सब लिखनेकी आवश्यकता हुई। प्रकृतिने मनुष्योंकी जिह्वामें जो पहरेदार बैठाल रक्खे हैं उनकी चेतावनीकी परवाह न करके वे खटाई, मिर्चे, हींग, हल्दी, राई आदि तरह तरहके मसाले खाने लगे हैं। प्रकृतिने प्रत्येक प्रकारके अन्नमें और फलमें स्वाभाविक, कोमल और सात्विक स्वाद पैदा कर रक्खा है। किंतु उससे संतुष्ट न होनेवाले मनुष्योंने प्रत्येक खानेके पदार्थका स्वाद मिर्च-मसालेके मेलसे तेज करनेकी चेष्टा की है। मनुष्य यदि अमरूद खाते हैं तो प्राय उसमें काली मिर्च मिलाकर उसका स्वाद बिगाड़कर खाते हैं। यदि वे अनन्नास, जामुन अथवा आँडू खाते हैं तब भी उनमें नमक या मिर्च मिलाये बिना उन्हें स्वाद नहीं आता। दाल या तरकारी खाते हैं तब भी नमक, मिर्च और तरह तरहके मसाले मिलाये बिना उन्हें भोजनका यथेष्ट आनंद नहीं मिलता। इस शाकमें अजवायन पड़नी चाहिए, इसमें जीरा, मेथी या राई चाहिए, तथा इसमें सब्जी आदि मसाले चाहिए। इस तरह उसने हर बातमें चतुराई खर्च करनेमें जरा भी कसर नहीं रक्खी है। यह बादी होता है, इसलिए उसमें मेथी मिलाकर खानेसे बादी हो जायगी। बादी हटानेके लिए सेमके बीजोंमें अजवायन और आमके रसमें सोंठ चाहिए। इत्यादि पाक-विपाक विविध प्रकारके रहस्योंको समझाने और समाधानमें मनुष्य अपनी पाकशास्त्रकी प्रवीणताका परिचय देते हैं। मानों प्रकृतिने पदार्थ ऐसा उत्पन्न किया है जो बादी करे और अच्छी तरह न पच सके। चौरासी लाख योनियोंके प्राणी अपना अपना प्राकृतिक भोजन नित्य खाते हुए पूर्णतया निरोग और हृष्ट रहते हैं। बादी अथवा दर्द क्या बला होती है यह वे जानते भी नहीं। किंतु मनुष्य अपने प्राकृतिक भोजनके त्यागसे बादी और दर्द आदि व्याधियोंका शिकार बन जाता है। अनेक दवा

खाकर घोड़ा तो खूब बलिष्ट और हृष्टपुष्ट होता है, किंतु मनुष्य यदि घोड़ेकी तरह बिना मिर्च मसाला मिलाये हुए चनेका दाना खाय तो उसका पेट फूल जाय और अजीर्ण हो जावे! है आश्चर्य या नहीं?

दाल तरकारी आदिके साथ जो नमक मिर्च, मसाला आदि खाया जाता है वह कुछ खानेका पदार्थ नहीं है। उसमें शरीरका पोषण करनेवाले कोई भी तत्त्व नहीं है। जिस तरह मिट्टी या पत्थरके खानेसे शरीरमें एक भी बूंद खून नहीं बढ़ता, उसी तरह मिर्च मसालेसे भी शरीरमें बिल्कुल खून नहीं बढ़ता। भूख लगने पर यदि गेहूँ बाजरा आदि खाया जाय तो भूख मिट जाय और शरीर भी पुष्ट हो। किंतु गेहूँ बाजरा आदि अन्न न खाकर भूख लगने पर पावभर मिर्चें अथवा दूसरे मसाले खा लिये जायँ तो क्या पेट भर जायगा? और क्या उस मिर्च मसालेसे शरीर पुष्ट हो सकेगा? कभी नहीं। अदरख, मिर्च, और लहसुनका पावभरका एक लड्डू बनाकर कोई सुबहको खाले तो सन्ध्या तक निश्चिंत होकर नहीं रह सकता। उस लड्डूके खानेसे पेट नहीं भरेगा। क्यों नहीं भरेगा? इसी लिए कि इन पदार्थोंमें शरीरका पोषण करनेवाले कोई भी तत्त्व नहीं है।

इसी तरह पीनेके पदार्थोंमें भी केवल पानी ही शरीरका पोषण करनेमें उपयोगी है। पानीके सिवाय चाय, कहवा, कोको, शराब आदि पदार्थोंको जो व्यक्ति शरीरपुष्ट करनेवाले पदार्थ समझ कर पीते हैं, वे भारी भूल करते हैं, और इन पदार्थोंको पीकर शरीर पुष्ट करनेवाले तत्त्वोंको शरीरके भीतर पहुँचानेके बदले उलटा उन जहरोंको अपने पेटमें पहुँचा लेते हैं जो कि चाय कहवा आदि पदार्थोंके साथ मिले रहते हैं। यदि चाय कहवा आदि पदार्थोंमें शरीरको पुष्ट करनेवाले तत्त्व मौजूद होते, तो उनके पीनेसे उसी तरह पेट भर जाता जैसे अन्नकी बनी हुई रोटी या पूरी खानेसे, और सब मनुष्य उन्हें पीकर उसी तरह महीनोंतक रह सकते जैसे रोटी पूरी खाकर रहते हैं। किंतु ऐसा कहीं भी देखनेमें नहीं आता कि केवल चाय कहवा आदि पदार्थ खाकर लोग महीनोंतक रह जाते हों। कोई यदि यह कहे कि चाय कहवा आदि पदार्थोंके साथ जो दूध और शक्कर आदि द्रव्य मिलाये जाते हैं वे शरीरको पुष्ट करनेवाले हैं, तब भी चाय और कहवा आदि पीनेकी उपयोगिता सिद्ध नहीं हुई। क्योंकि आजकलकी वैज्ञानिक खोजोंके द्वारा यह बात भली भाँति सिद्ध हो चुकी है कि चाय कहवा आदि पदार्थोंमें शरीरको हानि पहुँचाने

वाले विषैले तत्त्व मिले रहते हैं। तब भला दूध शक्कर आदि पौष्टिक पदार्थोंका मेल होने पर भी चाय और कहवा अपने जहरीले तत्त्वोंका असर कहीं छोड़ सकते हैं? अफीम मिले हुए दूधमें भी तो दूधका पौष्टिक गुण रहता ही है। किंतु इस विचारसे क्या कोई भी समझदार व्यक्ति अफीममिला दूध पीनेको तैयार होगा?

मांसके विषयमें भी यही बात है। मांसमें पौष्टिक तत्त्व जरूर हैं, परंतु उन पौष्टिक तत्त्वोंके साथ साथ शरीरमें रोग पैदा करनेवाले परमाणु और 'यूरिक एसिड' नामक अत्यंत हानिकारक पदार्थ भी मांसमें पाया जाता है। 'यूरिक एसिड' एक प्रकारका विषैला पदार्थ है। इस लिए इस विषैले पदार्थका मेल होनेके कारण मांस आहारके योग्य पदार्थ नहीं माना जा सकता। मनुष्य जिन जीवोंको मांसाहारके लिए पालता है उनमेंसे अधिकांश जीव नानाप्रकारके रोगवाले होते हैं। अतएव उनके मांसमें रोगोंके विकृत परमाणु होते हैं। चाहे जितनी देर तक आगपर धर कर यह मांस रांधा जाय, परंतु फिर भी इन रोगके परमाणुओंका नाश नहीं होता। जिससे कि उस मांसको खानेवाले मनुष्य भी अंतमें उन्हीं रोगोंसे पीड़ित होते हैं जिन रोगोंसे कि वे जीव पीड़ित रहते थे। यहाँ पर कोई यह तर्क कर सकता है कि जंगलमें रहनेवाले जीव जन्तु तो बिल्कुल निरोग और हृष्टपुष्ट होते हैं, अतएव उनका मांस खाना तो हानिकारक नहीं है। परंतु यह तर्क भी बिल्कुल व्यर्थ है। यह मान कि जंगली जीवोंके निरोग और हृष्ट पुष्ट रहनेके कारण उनका मांस रोग पैदा करनेवाले परमाणुओंसे रहित होता है, परंतु 'यूरिक एसिड' नामका जहरीला पदार्थ तो जंगली जीवोंके मांसमें भी होता ही है। यह भी आज कलके विविध अनुसंधानों द्वारा सिद्ध हो चुका है कि यह 'यूरिक एसिड' नामका जहरीला पदार्थ मांससे किसी प्रकार दूर नहीं किया जा सकता। इस लिए यह कभी सिद्ध नहीं हो सकता कि मांस एक उपयोगी भोजन है। प्रायः देखा गया है कि मांसभोजी व्यक्तियोंमें गठिया, दर्द गुर्दा, रक्तपित्त, विस्फोट, यकृतके रोग, भगंदर आदि व्याधियाँ जितनी अधिकताके साथ होती हैं उतनी अधिकताके साथ अन्नाहारियोंमें नहीं होतीं। यह बात आजकलकी खोज पड़तालके द्वारा अच्छी तरह सिद्ध हो चुकी है। 'मांस शुद्ध आहार नहीं है' यह सिद्धांत अहिंसा धर्मका पालन करनेवाले भारतवर्षके ऋषि मुनियोंकी कोरी कल्पना नहीं है,

बल्कि संसारके भिन्न भिन्न देशोंमें प्रत्यक्ष प्रयोगोंके आधार पर निश्चित किया गया सिद्धांत है। मांसभोजी लोग जो बारम्बार यह तर्क किया करते हैं कि अन्नभोजनकी अपेक्षा मांसभोजन विशेषरूपसे शरीरको बलिष्ठ और हृष्ट पुष्ट बनाता है, सो निरी कपोल-कल्पना है। हमारे देशके सिक्ख लोग मांसाहारी बिल्कुल नहीं हैं, बल्कि अन्नका आहार करनेवाले हैं। फिर भी इन्हीं सिक्खोंने मांसभोजन करनेवाले अँगरेज सैनिकोंके मुकाबिलेमें युद्ध करके आजसे बहुत पहले कैसी प्रचण्ड शूरवीरता दिखाई थी, यह बात इतिहास जाननेवालोंसे छिपी नहीं है। यूरोपमें परम शूरवीर तथा बलवान् तुर्क लोगोंने मांसाहारी रूसी प्रजाजनोंको बड़े पराक्रमके साथ परास्त किया था, यह बात सबको मालूम है। स्काटलैंड देशके परम प्रसिद्ध एडाके अपनी शूरवीरता और युद्ध निपुणताके लिए सारे संसारमें मख्यात हैं। उनका भोजन भी अन्न ही है। अति प्राचीन कालमें यूनानके स्पार्टा-नगर निवासी योद्धा मुख्यतः जौका बना हुआ भोजन खाकर रहते थे। इस जौके भोजनके प्रतापसे ही नौ हजार स्पार्टानिवासी योद्धाओंने ईरानके बादशाह जर्कसीजके नेतृत्वमें बढ़नेवाले करोड़ों मांसाहारी सैनिकोंके आक्रमणको रोका था। यह बात भी इतिहासप्रसिद्ध है। दूर क्यों जाय, हम प्रत्यक्ष ही देखते हैं कि हाथी मांस खानेवाला जीव नहीं है। परंतु फिर भी उसका शारीरिक बल सभी पशुओंसे कितना बढ़ा चढ़ा होता है, इस बातका प्रमाण देनेकी जरूरत नहीं। ऐसी ऐसी अनेक मिसालोंसे यह सिद्ध किया जासकता है कि मांसभोजन बलदायक और अन्नभोजन दुर्बलता देनेवाला प्रमाणित करनेकी चेष्टा करना निरा पक्षपात और बेजा तरफदारी है। आजकलके प्रयोगोंसे और उल्टा यह सिद्ध हो चुका है कि एक सेर गेहूँमें अथवा एक सेर अरहरकी दालमें शरीरपोषण करनेवाला जितना सत्व पदार्थ होता है, उतना सत्व पदार्थ यदि मांससे प्राप्त करना हो तो एक सेर मांस नहीं बल्कि तीन सेर मांस लेना होगा। जब रोग और जहरके परमाणुओंसे भरे हुए तीन सेर मांसके खानेसे केवल एक सेर अन्नके आहारके बराबर ही शरीरको पोषण मिलता है और अन्नाहारकी अपेक्षा रोगोंके उत्पन्न होनेकी संभावना भी अधिक रहती है, तो बुद्धिविवेकवाले मनुष्यको मांसभोजन त्याग देना ही उचित है। जिस अन्नाहारमें रोग तथा जहरके परमाणु बिल्कुल भी नहीं होते, जो केवल शुद्ध ही शुद्ध है, जिसके प्राप्त करनेमें किसी भी प्राणीकी हिंसाका घोर पाप

नहीं करना पड़ता, जिसको देखकर बिल्कुल भी घृणा अथवा रोमांच नहीं होता, जो अपना प्राकृतिक भोजन है, जिसके खानेसे बल, पुष्टि, आरोग्य तथा बुद्धि बढ़ती है, जो शरीरमें और मनमें असत्य विकारोंके पैदा करनेका कारण नहीं है, तथा जिससे उन जीवोंके शरीरका भी मांस बनता है जिनका मांस मांसभोजी लोग बड़ी स्पृहासे खाते हैं, उस प्रकारका आहार ही मनुष्योंको ग्रहण करना चाहिए। इस विषयमें इससे अधिक लिखनेकी आवश्यकता नहीं।

जो लोग दुराग्रही अथवा हठी प्रकृतिके नहीं हैं तथा जो विचारवान् हैं, वे ऊपरके संक्षिप्त विवेचनसे ही यह बात समझ लेंगे कि नमक, मिर्च, हींग आदि मसाले चाय, कहवा, कोको आदि पीनेके पदार्थ और भांग, गांजा, तम्बाकू, अफीम, आदि व्यसनकी चीजें तथा मत्स्य आदि जीवोंका मांस, ये आहारकी वस्तुएँ नहीं हैं। बहुतसे व्यक्ति जो अधिक परिमाणमें इन पदार्थोंको काममें लाते हैं सो मानों शरीरको हानि पहुँचानेवाले तत्वोंसे मिले हुए इन पदार्थोंको शरीरके भीतर पहुँचा कर शरीरमें मैल इकट्ठा करनेकी चेष्टा करते हैं।

मिर्च, मसाला और चाय, कहवा आदि पदार्थोंका उपयोग करनेवाले व्यक्ति कहेंगे कि यदि ये वस्तुएँ खानेके कामकी नहीं हैं, तो परमेश्वरने इन्हें उत्पन्न ही क्यों किया? दाल, तरकारी आदि नमक मिर्च मसालेके मिलानेसे कैसी स्वादिष्ट हो जाती हैं! बिना नमक मिर्च मसालेके मिलाये फीका और स्वाद हीन भोजन मुँहमें कैसे दिया जायगा! इसका उत्तर यह है कि परमेश्वरने जितनी वस्तुएँ संसारमें पैदा की हैं, वे एक मात्र मनुष्यके ही खानेके लिए नहीं की हैं। इस दृष्टिसे यदि देखा जाय तो अफीम भी परमेश्वरने उत्पन्न की है। इस लिए अफीम भी सब मनुष्योंको खानी चाहिए। गांजा तम्बाकू आदि नशीली चीजोंका उपयोग करनेवाले कहेंगे कि सब मनुष्योंको गांजे और तम्बाकूका उपयोग करना चाहिए। कीड़े-मकोड़े और चूहे खानेवाले चीन देशके लोग कहेंगे कि मनुष्यमात्रको कीड़े-मकोड़े खाने चाहिए, नहीं तो परमेश्वरने कीड़े मकोड़े बनाये किस लिए हैं? भारत देशमें कुछ लोग ऐसे भी हैं जो मिट्टीका तेल अथवा जानवरोंका रक्त पीते हैं। वे भी इस बहानेसे अपनी महापूणित आदतोंको उत्तम सिद्ध करनेकी चेष्टा करेंगे। छोटे बालक जो मिट्टी और कोयला खाते हैं वे यदि मना किये जाने या या रोक जाने पर

यह कहें कि परमेश्वरने जो मिट्टी और कोयला पैदा किया है उसे हम खाते हैं तो क्या बुरा करते हैं, तो क्या हम उनकी इस बातको मानकर उन्हें मिट्टी और कोयला खाने देंगे? परमेश्वरने कौंच, इन्द्रायण, एलुआ, बच्छनाग, दीकामाली आदि अभक्ष्य चीजें बनाई हैं। भला फिर नींबूके बदले इन्द्रायणका फल दाल तरकारीमें क्यों न निचोड लिया जाय? दालमें हींगका बघार देनेके बदले बच्छनाग या दीकामालीका बघार क्यों न दे दिया जाय? रायतेमें राईकी जगह एलुआ क्यों न डाल दिया जाय? भाँगके बदले नीमके पत्ते घोंटकर और प्याला भरकर किस लिए नहीं पी लिये जाते? तम्बाकूके बदले कौंचका व्यवहार क्यों नहीं किया जाता? धतूरेके फलको कच्चे आमकी तरह काटकाट कर रोटीके साथ क्यों नहीं खाते? परमेश्वरने जो ऐसी ऐसी हजारों और लाखों चीजें पैदा की हैं। उन्होंने क्या अपराध किया है जो हम उनका आदर सत्कार नहीं करते?

मिर्चे परमेश्वरने पैदा की है और इसलिए वह मनुष्यके खानेके लिए ही बनाई है यह कोई युक्ति नहीं, केवल उपहास है। आफ्रिका प्रदेशकी मनुष्यको मारकर खाजानेवाली जंगली जातिका कोई मनुष्य यदि यहाँ आकर हमारे बालकको मारकर खा जाय और इस अपराधमें पकड़ा जाकर वह यदि यह कहे कि परमेश्वरने बालकोंको हमारे खानेके लिए ही उत्पन्न किया है, तो क्या वह दंड पानेसे बच सकता है? इसी तरह परमेश्वरने मिर्च, मसाला, चाय, कहवा, शराब, पशु, पक्षी, आदि मनुष्यके खानेके लिए ही उत्पन्न किये हैं, यह कह कर जो लोग उन्हें खाने पीनेके काममें लाते हैं वे दंड पानेकी भाँति उन पदार्थोंसे होनेवाली शारीरिक हानिसे नहीं बच सकते। परमेश्वरने अमुक वस्तु बनाई है, इसलिए वह मनुष्यको खाना ही चाहिए यह कहना भारी मूर्खता है। बुद्धिमान व्यक्ति वह गिना जायगा जो यह निश्चय करे कि जिन पदार्थोंके खानेसे शरीर पुष्ट हो, बलकी वृद्धि हो, आयुका क्षय न हो, रोग आकर न सतावें और निरन्तर आरोग्य बना रहे, वे ही पदार्थ परमेश्वरने मनुष्यके खानेके लिए बनाये हैं। मिर्च, मसाला, चाय, कहवा, मांस, शराब आदि पदार्थोंके सेवनसे तत्काल हानि होती हुई हमें नहीं मालूम होती, किंतु अधिक समयतक उनका सेवन जारी रखनेसे जब उन पदार्थोंका असर थोडा थोडा करके शरीरमें संचित हो जाता है, तब हानि अवश्य होती है, और अकालमें ही मृत्यु आकर गला पकड़ लेती है।

इसीसे यह सहजरीतिसे सिद्ध है कि परमेश्वरने इन पदार्थोंको मनुष्यके खानेके लिए नहीं बनाया है। शरीरशास्त्र सम्बन्धिनी विविध प्रकारकी खोजोंसे यह बात सिद्ध हो चुकी है कि ऊपर कहे हुए पदार्थोंके खानेसे शरीरको हानि पहुँचती है। अतएव इस विषयमें और अधिक तर्क वितर्क करनेकी आवश्यकता नहीं जान पड़ती।

ऊपर जो पदार्थ खानेके अयोग्य बताये जा चुके हैं उनके खानेसे जैसे शरीरमें मल संचित होकर रोग उत्पन्न होते हैं, उसी तरह अन्न, फल तथा मेवा आदि खाने योग्य पदार्थोंको भी आवश्यकतासे अधिक खा लेनेसे नाना प्रकारके रोगोंकी उत्पत्ति होती है। बहुतसे लोगोंकी यह धारणा रहती है कि जितना आहार खाया जायगा उतना ही शारीरिक बल बढ़ेगा। वास्तवमें बात यह है कि जितना अन्न खाया जाय वह सबका सब पच जाय तो निस्सन्देह वह शरीरको पुष्ट और बलिष्ट बनावेगा। किंतु भोजनके उपरांत पेट यदि नगाड़ेकी तरह तन जाय, तीन या चार घण्टे बाद खट्टी खट्टी डकारें आने लगें, सन्ध्यातक अथवा दूसरे दिन सवेरे तक भी भूख न लगे, भोजनके पीछे आँखोंमें खुमारी आ जाय और सोनेको जी चाहे अथवा शरीर इतना भारी पड़ जाय कि किसी भी कामके लिए स्फूर्ति न रहे, तो समझ लेना चाहिए कि जितना भोजन करना चाहिए था उससे अधिक भोजन कर लिया गया है। यह आवश्यकतासे अधिक खाया हुआ भोजन स्वयं भी नहीं पचता और अपने साथ साथ बाकी सारे अन्नको भी अच्छी तरह नहीं पचने देता। जिससे होता यह है कि उस भोजनका जितना खून शरीरमें बनना चाहिए उतना नहीं बनता। बहुतसे लोग भरपेट भोजन करते हुए भी पुष्ट नहीं होते। जाति-बिरादरीके जेवनारोंमें वे चार चार छह छह लड्डू उड़ा जाते हैं और सर सर आध आध सेर घीका थाल्ह का डालते हैं; मगर फिर भी उनका शरीर सरकीके टाटकी भांड़ रहता है। इसका कारण यही है कि खाये हुए अन्नमेंसे उनके शरीरमें बहुत कम खून तैयार होता है और जितना तैयार होता है वह भी शुद्ध तैयार नहीं होता। उनका खाया हुआ अधिकांश भोजन मलके रूपमें या तो बाहर निकल जाता है और या शरीरमें इकट्ठा होता रहता है। प्रायः भारतकी माताएँ अपने बच्चोंको एक या दो रोटी अथवा चमचा दो चमचा भात यह समझ कर जिद करके अधिक खिला देती हैं कि उससे शरीरमें अधिक खून बनेगा। इसका परि

णाम यह होता है कि बालकोंका पेट इस अधिक खाये हुए अन्नको पचा ही नहीं सकता। इस लिए उन बालकोंका खाया हुआ भोजन आधा पचता है और आधा नहीं। अतएव उस अन्नसे बालकोंके शरीरमें जितना खून बनना चाहिए उतना नहीं बनता। जितने कोयलेकी आँच पर दो सेर पदार्थ ही अच्छी तरह राँधा जा सकता हो उस पर यदि तुम पाँच सेर राँधना चाहो तो कैसे रँधे? जो पेट केवल आध सेर अन्न पचा सकता है उसमें यदि डेढ़ सेर अन्न ठूँस दिया जाय तो भला फिर उस डेढ़ सेर बोझका ठीक ठीक पाचन होकर उत्तम खून कैसे तैयार हो? जब कभी कहीं जेवनारमें अथवा दावतमें लोग जाते हैं तब एक तो योंही वहाँ नित्यकी अपेक्षा अधिक भोजन किया जाता है, दूसरे फिर परोसनेवाले कोई इष्ट मित्र आग्रहपूर्वक और अधिक लड्डू या कचौरी परोस जाते हैं, और यह परोसा हुआ पदार्थ उन इष्ट मित्रोंके अनुरोधसे खाना भी पड़ता है। इसका फल क्या होता है? यही कि जेवनारमें खाया हुआ समूचा अन्न अधूरा पचनेके कारण जहर हो जाता है। यह जहर शरीरके खूनमें मिल जाता है। जहर मिला हुआ यह खून जब मस्तिष्कमें पहुँचता है तब सिरका दर्द पैदा करता है, सारी रात सुखसे सोने नहीं देता, बुरे भले स्वप्न दिखलाता और पेटको कमजोर बनाता है। इस तरह शरीरमें जब थोड़ा थोड़ा जहर इकट्ठा होकर अधिक हो जाता है तब बुखार, हैजा, आँव, दस्त, आदि नाना प्रकारके रोगोंके रूपमें प्रकट होता है।

आवश्यकतासे अधिक खाया हुआ भोजन जैसे विष हो जाता है उसी तरह एक बेर खाये हुए अन्नके अच्छी तरह पचनेसे पहले ही बीचमें और खा लेनेसे भी पाचन ठीक ठीक नहीं होता। चूल्हे पर पतीलीमें चढ़ी हुई दाल जब अधूरी ही पकी हो उस अवस्थामें कोई फूहड़ स्त्री यदि उस पतीलीमें और कच्ची दाल डाल दे तो यह सबकी सब दाल बिगड़ जायगी। ऐसे ही जबतक एक बार खाया हुआ अन्न अच्छी तरह नहीं पचे तबतक कोई दूसरी चीज यदि खा ली जायगी तो न तो पहली ही खाई हुई वस्तु अच्छी तरह पचेगी और न पिछली। नौ या दस बजे भोजन करके पढ़नेको गये हुए स्कूल या पाठशालाओंके विद्यार्थी बालक दो बजेके समय जो जीमें आता है झट मोल लेकर खा लेते हैं। बड़े आदमी भी सन्ध्याके समय जब देखते हैं कि भोजन तैयार होनेमें अभी थोड़ी देर है तब बिना विचार किये ही भोजन तैयार होनेतक ऐसी वैसी चीजें खा लेते हैं। बहुतसे बालकोंकी माताएँ तो

अपने बच्चोंको दिनभरमें पाँच पाँच और छः छः बार अनियमितरूपसे खिलाया करती हैं। रातको लौट कर घर आते समय बहुतसे लोग सतति प्रेममें प्रेरित होकर कुछ न कुछ खानेकी वस्तु लेते आते हैं, और चाहे बालक उसी समय भोजनसे निवृत्त हुआ हो अथवा थोड़ी देरमें भोजन करनेवाला हो तो भी वे बिना संकोच वह लाई हुई चीज उसे खानेको दे देते हैं। मनुष्य पशुओंको घास दाना और पानी इत्यादि ठीक समय पर देते हैं और जानते हैं कि एक बार खिलाकर थोड़ी देर पीछे यदि उन्हें फिर दुसरा कर घास आदि खिला दी जाय तो वे बीमार हो जायँ। इसलिए जिसके यहाँ पशु पले होते हैं, वह नियत समय पर ही उन्हें दाना और घास इत्यादि खानेको देता है। परंतु पशुसे कहीं सैकड़ों गुणा बहुमूल्य जिन बालकोंका जीवन है उन्हें अनियमित रीतिपर जब चाहे तब इस तरह खिला देना मानों उनका पेट एमे मजबूत लोहेका बना हुआ है जो सब कुछ अट्ट सट्ट हजम करता चला जायगा, बड़े खेदका विषय है।

बहुतसे बालक भोजन कर चुकनेके घंटे दो घंटे उपरांत ही फिर खानेको माँगने लगते हैं, और उनकी माँ भी बालकको भूखा जानकर घरमें रक्खी हुई कुछ न कुछ वस्तु खानेको दे देती है। मा यह समझती है कि बालकको सचमुच ही भूख लगी है पर वास्तवमें बालक सचमुच भूखा नहीं होता। भूख लगनेपर ही बालक खानेको माँगता है यह नहीं समझना चाहिए, बल्कि बालकोंको तरह तरहके स्वादवाले पदार्थोंके खानेकी आदत जो माता पिताके लाड़ प्यारके कारण पड़ जाती है उस आदतके कारण ही तरह तरहके स्वादिष्ट पदार्थोंको खानेके लिए उनकी जीभ चटाके भरती है, और वे बार बार खानेको माँगते हैं। चटपटे मसालेवाली अथवा खट्टी मीठी चीज खानेके लिए ही वे जल्दी जल्दी खाना माँगनेकी पुकार मचाते हैं। जिस समय वे भूख भूख कहकर खानेको माँगें उस समय उन्हें रोटी पूरी खानेको दे दी जाय। यदि वे सचमुच ही भूखे होंगे तो चुप चाप वह रोटी या पूरी खा लेंगे, परंतु यदि वे रोटी पूरी न खाकर और कुछ खानेकी चीज पानेके लिए मचलें और जिद करें या मुँह बिगाड़ें तो निश्चय यही समझ लेना चाहिए कि वे वास्तवमें भूखे नहीं हैं, बल्कि उनकी जीभ चटाके ले रही है। केवल बालक ही नहीं बल्कि बड़े आदमी (स्त्री और पुरुष दोनों) इसी जीभके चटोरेपनके कारण एक बार खाये हुए अन्नके अच्छी तरह पचनेसे पहले ही

बार बार तरह तरहकी चीजें खा लेते हैं । इसका परिणाम यह होता है कि उनका शरीर, मन और बुद्धि सदा मलीन और दुबल ही बने रहते हैं । संसारमें प्रतिवर्ष लाखों बालक पाँच वर्षकी अवस्थासे पहले ही मृत्युको प्राप्त हो जाते हैं । इसका कारण अन्यान्य बातोंके साथ मुख्य रूपसे एक यह भी है कि जीभके चटोरेपनके कारण वे बिल्कुल बेकायदे खाया पिया करते हैं । संसारमें अनेक रोगोंके बढ़ने और असंख्य लोगोंकी अकाल-मृत्यु होनेका मुख्य हेतु जीभका चटोरापन ही है । आजकल जो सौ वर्षके अथवा इससे अधिक उमरके व्यक्ति इतने कम देखनेमें आते हैं, उसका भी कारण यही है कि लोगोंमें जीभका चटोरापन बेहद बढ़ा हुआ है । जिन जिन लोगोंने लम्बी आयु भोगी है वे सब बिना मिर्च मसालेका भोजन किया करते थे, और वह भी नियत समय पर, केवल उतना जितना कि आवश्यक होता था । कदमूलकी नाईं सामान्य और सादा भोजन दिनरातमें केवल एक ही बार करके (अथवा कभी कभी वह भी न करके) हमारे प्राचीन ऋषि महर्षिगण बड़ी लम्बी लम्बी आयु भोगते थे, और वे अद्भुत आरोग्य, शरीरबल, मनोबल, बुद्धिबल, और अध्यात्मबल प्राप्त करके जीवनका यथेष्ट आनंद पाते थे । इन सब बातोंको जानते हुए भी हमलोग वास्तवमें सुखी होनेका प्रयत्न नहीं करते । उल्टा करते हैं यह कि प्रति दिन नियम और संयमको तोड़कर और इन्द्रियोंको लाड़ लड़ानेमें लगे रहकर अपना मनुष्य-जीवन सार्थक समझते हैं । बुद्धि रखनेवाले बुद्धिजीवी प्राणी होकर हमारे लिए यह कैसी घोर निर्लज्जताकी बात है ।

अब हम साररूपसे और संक्षेपके साथ अबतक कहे हुए रोगोत्पत्तिके कारणोंका निरूपण किये देते हैं । शरीरमें जिस मैलका जाना उचित नहीं है उसी मैल अथवा जहरके शरीरके भीतर पहुँचनेके कारण रोग उत्पन्न होते हैं । नमक, मिर्च और मसालेका खाना शरीरको पुष्ट करनेके लिए जरा भी उपयोगी नहीं है । उसका खाना ऐसा ही निरर्थक और हानिकारक है जैसे गढ़ मिट्टीका फाँकना । नमक मिर्च मसालेके खानेसे पेट दुर्बल हो जाता है और गढ़ा गरम पैदा होता है । जो पदार्थ अच्छी तरह शरीरको पुष्ट करनेवाले हैं, वे भी यदि आवश्यकतासे अधिक परिमाणमें खा लिये जायँ तो जहरकी नाईं हानिकारक होते हैं । भोजन करते समय यदि एक ग्रास भी बासी खा लिया जायगा तो वह अच्छी तरह न पचकर पेटमें विष उत्पन्न करेगा और अपने साथ बाकीके भोजनको भी जहरीला बना देगा । एक बेर खाये हुए भोजनके अच्छी तरह

पचनेसे पहले ही यदि थोड़ी देर बाद और भी कोई वस्तु खाली जायगी तो यह शरीरको कभी पुष्ट न करेगी, बल्कि वह ऐसी ही निकम्मी सिद्ध होगी जैसा शरीरके भीतर गया हुआ कूड़ा करकट आदि। चाय, कहवा, तम्बाकू, शराब, मांस आदि पदार्थ भी जहरीले होनेके कारण शरीरमें पहुँचकर मैल ही बढ़ाते हैं। इस लिए आरोग्य चाहनेवालोंको मुखकी राहसे इन पदार्थोंको पेटमें नहीं जाने देना चाहिए। इसी तरह अशुद्ध हवा, धूलके परमाणु और लकड़ी कंडोंके धुएँको भी नाकके रास्तेसे शरीरके भीतर प्रवेश करनेसे रोकना चाहिए। आरोग्य प्राप्त करनेके इच्छुक व्यक्तियोंको सदैव शुद्ध वायुमें श्वास लेना चाहिए। बाहरसे आनेवाली शुद्ध हवाको रोकनेके लिए घरके खिड़की दरवाजे बंद नहीं करने चाहिए और सोते समय चारों ओरसे कपड़ेसे मुँह लपेट-लपाट कर नहीं सोना चाहिए। जिन स्थानोंमें हवा अच्छी तरह न आती जाती हो वहाँ तथा जिन स्थानोंमें अनेक लोग इकट्ठे हों ऐसी सभाओं अथवा नाटक-शालाओंमें जाना और अधिक समय तक वहाँ बैठकर सब मनुष्योंके मुँहसे निकली हुई दूषित वायुमें ही श्वास प्रश्वास लेना महा हानिकारक है।

शरीरमें मैल इकट्ठा होनेके चिह्न।

खूब भोजन करके पीछेसे मिर्चका, सोंफकी, पीपलामूलकी अथवा पीपलकी फँकी मारनेसे खाया हुआ भोजन पच जाता है, और तीन चार घंटे पीछे खूब कड़ाकेकी भूख लगती है। इससे बहुतसे लोगोंने यह सिद्धांत निकाल लिया है कि मिर्च मसाला आदि चीजें भोजनको पचानेके लिए अत्यन्त उपयोगी हैं। परन्तु यह उनका भ्रम है। एक गाड़ीमें पाँच या ८ लोगोंके सवार हो जानेपर अधिक बोझके कारण जब घोड़ा मुश्किलसे चलता हो तब बारंबार चाबुक लगानेसे वह तेज चलता और नियत स्थान पर शीघ्र ही पहुँचा जरूर देता है, किंतु यह समझकर कि चाबुक मारनेसे घोड़ा अधिक बोझ खींच सकता है यदि कोई गाड़ीवाला नित्य ही पाँच सात आदमियोंको बैठाकर चाबुककी मारसे घोड़ेको चलाया करे तो भला फिर घोड़ेका शरीर कै दिन चलेगा? किरायेकी गाड़ियोंके घोड़ोंकी उम्र जो बहुत थोड़ी होती है इसका कारण क्या है? इसका कारण यही है कि भाड़ा अधिक कमानेके

लालचसे गाडीवाला घोडेको चाबुक मार मारकर उससे सामर्थ्यसे अधिक काम कराता है। इसी लिए उन घोड़ोंका शरीर बहुत ही शीघ्र शिथिल हो जाता है। ठीक यही हिसाब पेटका भी है। बहुतसा अन्न खाकर मिर्च मसालेके चाबुकसे पेटको जो उस सब अन्नको हजम करनेके लिए लोग विवश करते हैं सो आरंभमें वह (पेट) हजम तो कुछ समय तक जरूर कर लेता है, परन्तु नित्य प्रति ही जब ऐसी जबर्दस्ती की जाती है तब वह अधिक काम करते करते थक जाता है और कमजोर भी बेहद हो जाता है। पीछे, जैसे कमजोर हुआ घोडा बारबार चाबुक मारने पर भी तेज नहीं दौड सकता उसी तरह कमजोर हुआ पेट भी यथेष्ट मिर्च मसाले तथा औषधियोंके खानेसे भोजन पचानेका काम अच्छी तरह नहीं कर सकता। बहुतसे मनुष्योंको खूब तेज पदार्थोंके खानेपर भी जो भूख नहीं लगती, उसका कारण यही है। यदि ऐसे लोग तेज पदार्थोंका खाना छोडकर अत्यंत सादा भोजन, और वह भी बहुत थोडे परिमाणमें किया करें, तो उनका पेट थोडे समयके उपरांत फिर बलवान् हो सकता है। लेकिन अगर वे अपनी पुरानी कुटेवके वश होकर मिर्च मसालेका या तेज औषधियोंका खाना नहीं छोडेंगे तो जैसे अधिक बोझ खींचनेके कारण थका हुआ घोडा थोडे कालमें मृत्युको प्राप्त हो जाता है उसी तरह वे भी थोडे समयके उपरांत शरीरमें मैल अधिक बढ जानेके कारण अकालमें मृत्युके पंजेमें फँस जायँगे।

अनुचित आहारसे जब इस तरह शरीरके भीतर मैल बढ जाता है, तब पहलेपहल उस मैलका अधिकांश मोटे मलमें या बडी आँतमें भरता है। उसमेंसे उसे बाहर निकालनेके लिए मल विसर्जन करनेवाले अवयव अपना अपना प्रयत्न करते हैं। लेकिन अच्छी तरह भोजन पच जानेके पीछे जो मल रह जाता है, उसे बाहर निकालनेकी अपेक्षा इस अनुचित आहारके कारण भरे हुए मैलको बाहर निकालनेमें मलविसर्जन करनेवाले अवयवोंको बहुत परिश्रम पडता है। शरीरमें जितना मैल साधारण रीतिसे इकट्ठा होना चाहिए उससे अधिक मैल जो इकट्ठा हो जाता है उसे नित्य बाहर निकालते अधिक परिश्रम पडनेके कारण मलोत्सर्ग करनेवाले अवयव थककर बहुत कमजोर पड़ जाते हैं। बहुतसे बालक अनुचित रीतिपर जब ज्यादे पीते हैं तब हम देखते हैं कि उन्हें पाखाना बहुत आता है। अधिक पाखाना आना और कुछ नहीं केवल शरीरके भीतरसे संचित हुए मैलका निकलना ही है। नित्य प्रति जब अधिक

मैल निकालनेका काम अवयवों पर पडता है तब वे परिश्रम करते करते थक जाते हैं, और थोडे समयके उपरांत शरीरमें सचित हुए मैलको नित्य प्रति बाहर नहीं निकाल सकते। इस लिए मैल शरीरके भीतर इकट्ठा होता रहता है। बडी आँतमें जहाँ जहाँ जगह मिलती है पहले यह मैल वहीं भरता है। जब उसमें कहीं जगह नहीं रहती, तब यह अन्य आदि स्थानोंमें व्याप्त होने लगता है। जैसे शराब और सिरका आदि पदार्थ उष्ण स्थानोंमें रहनेसे उबल कर ऊपर आ जाते और सडने गलने लगते हैं उसी तरह शरीरका यह मैल भी सडना तथा ताप या गर्मीसे उबलकर ऊपर उभर आता है। पेटमें अजीर्ण हो जानेका तो हम सभीको अनुभव हुआ होगा। यह अजीर्ण तब होता है जब पेटमें गया हुआ आहार अच्छी तरह न पचकर मैल या जहर होकर पेटमें रुक जाता है। बडे नलमें उतरकर दस्तके रूपमें निकल जाय ऐसा तो यह मैल होता नहीं। इस लिए यह सडने लगता है और फिर उबल कर ऊपरको चढने लगता है। जब ऐसी दशा होती है तब पहले खट्टी मट्टी डकारें और हिचकियाँ आने लगती हैं। धीरे धीरे जब यह मैल ऊपर चढता है तब सिर भारी होने लगता है। इस मैलको मस्तकमें जानेसे रोकनेवाले बीचमें कितने ही अवयव होते हैं। ये अवयव मैलको ऊपर चढ-नेसे रोकनेकी चेष्टा करते हैं और मैल ऊपर चढनेका उद्योग करता है। इसी कारण सिर गर्म हो उठता है और यदि मैल अधिक होता है तो बुखार भी हो आता है।

शरीरमें जितने भी रोग उत्पन्न होते हैं, उन सबमें सबसे पहले थोडा या बहुत बुखार तो जरूर ही आता है। बिना बुखार आये कोई भी रोग नहीं होता, और जबतक शरीरमें मैल इकट्ठा नहीं होता तब तक बुखार नहीं आता। क्योंकि, जैसा ऊपर कहा जा चुका है, बुखारका आना अथवा शरीरका तपना यह और कुछ नहीं केवल शरीरके अवयवोंका एक प्रयत्न मात्र है। मनुष्यमें अगर एक जरासी फाँस लग जाय तो सारे शरीरमें कितनी पीडा होती है यह सब कोई जानते हैं। फाँस लग जानेसे शरीरमें एक प्रकारकी हरारत हो आती है, और जब तक मनुष्यमें लगी हुई फाँस निकाल न ली जाय तब तक यह हरारत कम नहीं होती। शरीरमें फुडिया या फुंसीके सारने भी हरारतसा हो आना बहुतोंके अनुभवमें आया होगा। इस प्रकारसे हरारतका हो आना यह सूचित करता है कि शरीरके भीतर जो मैल इकट्ठा

हो गया है उसे बाहर निकालनेकी शरीरके अवयव चेष्टा कर रहे हैं। इसलिए हरारतका होना शरीरमें भर हुए मैलका चिह्न है।

आरम्भमें शरीरमें भरा हुआ मैल पसीनेके रूपमें अथवा पाखानेके रूपमें बाहर निकल आता है। किंतु जब शरीरमेंसे मैल निकलता कम और आता बहुत है—अर्थात् अनुचित खानपानके कारण जब बहुत अधिक मैल इकट्ठा करनेका लोग उपाय रचते हैं—तो शरीरके अवयव इस अत्यत अधिक परिमाणमें इकट्ठ होनेवाले शरीरके भीतरके मैलको बाहर निकालनेमें अच्छी तरह समर्थ नहीं होते। इस लिए यह मैल शरीरमें इकट्ठा होने लगता है। पहले तो यह मैल जहाँ उत्पन्न होता है वहीं इकट्ठा होता है। बादको फिर धीरे धीरे यह सार शरीरमें इकट्ठा होने लगता है। यह बात पहले बताई जा चुकी है। इस प्रकार जब सारे शरीरमें मैल भरने लगता है तो शरीरकी आकृति बेडौल होने लगती है। मुखाकृति बिगड जाती है और मस्तक बेडौल हो जाता है। गर्दन भी सुदर और सुडौल नहीं रहती। इधर उधर—दहिने बायें—मैल इकट्ठा हो जानेके कारण वह छोटी मालूम होने लगती है, अथवा जितनी लम्बी होनी चाहिए उसकी अपेक्षा कहीं ज्यादा लम्बी हो जाती है। मुँह इस तरहसे फूला हुआ मालूम होता है जैसे सूज आया हो। कपाल, गाल, ठुड्डी, उसके नीचेका भाग, और उसके आसपासके भाग पर रुईकी छोटी छोटी गद्दियाँ बिछा दी हों, ऐसा मालूम होता है। ऐसे शरीरको बहुतसे लोग हृष्ट पुष्ट शरीर मानते हैं, अथवा यह समझते हैं कि शरीरमें चर्बी बढ गई है। परंतु वास्तवमें यह न तो शरीरकी पुष्टिका लक्षण है और न चर्बी बढनेका चिह्न है। बल्कि यह शरीरके उन सब भागोंमें इकट्ठ हुए मैलकी पहचान है। छातीका भाग कमानदार होना चाहिए। परन्तु ऐसा न होकर वहाँ भी ऊँचे नीचे गढे छातीको बेडौल बना देते हैं। पेट मटककी तरह फूलकर बाहरको निकल आता है। पैर और टाँगें सब छोटी छोटी और थँबलेकी तरह स्थूल हो जाती हैं। बहुतसे रोगियोंके शरीरमें मैल इस तरह इकट्ठा नहीं होता कि वह बाहरी अवयवोंके देखनेसे जाना जा सके। बल्कि वह शरीरके अवयवोंके भीतर इकट्ठा होता है। ऐसे रोगियोंके शरीरमें मैलके ऊपर कहे हुए चिह्न प्रकट नहीं होते, बल्कि दूसरे प्रकारके ही चिह्नोंसे उनके शरीरमें इकट्ठ हुए मैलकी पहिचान की जाती है। अर्थात् आकृति तो उनकी भी बिगड जाती है, मगर आकृति बिगडनेके अतिरिक्त उनके

शरीरमें जहाँ तहाँ सिकुड़नें भी पड़ जाती हैं, अर्थात् खाल ढीली मालूम होती है। जिनके शरीरमें मैल नहीं होता उनके मुखपर अथवा मस्तकपर एक भी झुर्री नहीं होती। बल्कि उनका मुखमंडल शुद्ध और साफ मालूम होता है। उसपर चर्बीकी पतली गद्दी नहीं मालूम होती। उनकी आँखें स्वच्छ और निर्मल होती हैं, और उनमें नसोंकी रेखायें सी नहीं मालूम होतीं। इसके अतिरिक्त उनकी नाक मुखके ठीक बीचों बीच सीधी होती है और अत्यंत पतली या अत्यंत मोटी नहीं होती। उनका मुँह सदैव बंद रहता है। वे कभी मुँह फुलाकर नहीं हाँफते। इसी प्रकार जिनके शरीरमें मल संचित होता है नींदमें उनका मुँह जैसा फैला हुआ या खुला हुआ रहता है वैसा इनका नहीं रहता। और भी, मैलसे रहित शरीरवाले पुरुषोंके होठ सुंदर और सुडौल होते हैं, किंतु मैलसयुक्त शरीरवाले रोगियोंके या तो बहुत मोटे मोटे होंठ होते हैं और मुँहको ढाँकनेके सुन्दर ढक्कनकी भाई नहीं जान पड़ते। जिन व्यक्तियोंका शरीर मैलरहित होता है उनका मुख अंडेकी आकृतिके समान कुछ कुछ लम्बाई लिए हुए गोल आकारका होता है। उसमें गड्ढे नहीं होते और जबड़ा तथा गर्दन दोनों एकाकार नहीं मालूम पड़ते, बल्कि उन दोनोंको स्पष्ट रीतिपर अलग अलग बतलाती हुई एक रेखा ठीक कानके नीचे तक आती है। उनकी ठुड्डी गोल होती है। नीचेकी तरफ गड्ढा पड़े, इस तरह तिकोनी नहीं मालूम पड़ती। उनके सिरका पिछला भाग और गर्दन दोनों मिलकर एक होगई हुई नहीं दिखाई देनी चाहिए, बल्कि उन दोनोंको अलग अलग करनेवाली बीचमें एक स्पष्ट रेखा होनी चाहिए। जिस व्यक्तिके शरीरमें मैल इकट्ठा हो गया होगा वह अपनी गर्दनको दायें बायें सुगमताके साथ घुमा फिरा नहीं सकेगा। गर्दन घुमाते फिराते समय यदि गर्दनकी खाल तमतमाने लगे तो समझ लेना चाहिए कि शरीरमें मैल एकत्र हो गया है। ऊपर देखते समय और नीचे देखते समय गर्दनकी आगे पीछेकी खाल तनतमानी नहीं चाहिए। जिसके शरीरमें मैल एकत्र नहीं होगा उसके मुखका रंग फीका या पीला अथवा बहुत अधिक लाल नहीं होगा। जो रोगी है अर्थात् जिसके शरीरमें मैल इकट्ठा हो गया है उसके मुखका रंग फीका या पीला अथवा बहुत अधिक लाल होगा। किसी किसी समय मुखका रंग काला सरीखा भी पड़ जाता है। शरीरका रंग यदि बहुत चमकने लगे तो वह भी शरीरके

भीतर मैल इकट्ठे होनेका लक्षण है। रोगरहित मनुष्यका मुँह बुढ़ापे तक ताजा और प्रफुल्लित रहना चाहिए।

जिस व्यक्तिके शरीरमें बहुत मैल सञ्चित होगा उसके अंग प्रत्यंगमें फुर्ती नहीं होगी। उसे सदैव गीदड़की नांई पस्त पड़े रहनेकी ही इच्छा होगी। पानीका एक लोटा भरनेकी यदि आवश्यकता हो तो जहाँतक दूसरा कोई उस कामको कर देगा वहाँतक वह व्यक्ति स्वयं उस कामको नहीं करना चाहेगा। हाथ पैर हिलानेकी उसे इच्छा ही नहीं होगी। जबतक कहीं जाने आनेके लिए सवारी मिल सकेगी तबतक उसकी श्रद्धा चार कदम पैदल चलनेकी कभी नहीं होगी। हाथ पैर हिलाना तो मानों उसे मृत्युके समान दुखदाई मालूम होगा।

ऊपर जैसा कहा जा चुका है वैसा यदि शरीरका वर्ण और मुखाकृति किसी व्यक्तिकी बिगड़ी हुई हो और शरीरके अवयवोंमें फुरती तथा चञ्चलता न रही हो, तो यह निश्चय समझ लेना चाहिए कि उस व्यक्तिके शरीरमें मैल इकट्ठा हो गया है।

मातापिताके अनुचित आहार-विहारसे बहुतसे बालकोंके शरीरमें गर्भमें ही मैल सञ्चित होकर आता है। अत एव जन्म लेनेके समयसे ही वे बालक बीमार रहते हैं। ऐसे बालकोंमेंसे अधिकांशकी मृत्यु बालकपन अथवा युवावस्थामें हो जाती है।

अनुचित आहार विहारसे ही शरीरमें मैल इकट्ठा होता है। क्योंकि अनुचित रीतिपर किया हुआ आहार पेटमें जाकर ठीक ठीक पच नहीं सकता और इस लिए वह शरीरमें मैल उत्पन्न करनेका कारण हो जाता है। अत एव जो लोग शरीरमें मैल इकट्ठा न करना चाहते हों उन्हें आगे लिखी गई बातोंके अनुसार अनुचित आहार करना छोड़ देना चाहिए। जब एक बार शरीरमें मैल इकट्ठा हो जाता है तब पेट और मलोत्सर्ग करनेवाली इन्द्रियाँ दुर्बल पड़ जाती हैं। बादको यदि उचित रीतिपर आहार किया भी जाता है तो वह ठीक ठीक नहीं पचता, और जब वह ठीक ठीक नहीं पचता तो शरीरमें और अधिक मैल उत्पन्न करता है। इस प्रकार एक बार जब थोड़ासा भी मैल शरीरमें इकट्ठा हो जाता है तो फिर मैलके उत्पन्न होने और संचित होते रहनेका काम बड़ी शीघ्रताके साथ चलता है, जिसका परिणाम यह होता है कि नाना प्रकारके रोग शरीरमें बारबार उत्पन्न होने लगते हैं। बहुत

से बालक जो बारबार विविध रोगोंसे पीड़ित होते हैं, इसका कारण यही है कि उनके शरीरमें निरंतर मैल इकट्ठा होता रहता है।

शरीरके भीतर जो मैल इकट्ठा हो जाता है उसे बाहर निकालनेके लिए शरीरके भीतरके अवयव स्वयं कई बार चेष्टा करते हैं। मुँह पर मुँहासोंका निकलना, जगह जगह फोड़े फुंसियाँ निकल आना तथा खालपर खसखसी दानोंका जाहिर हो जाना, यह सब भीतरके मैलको बाहर निकालनेके लिए शरीरके अवयवोंका प्रयत्न समझना चाहिए। ऐसी अवस्थामें यदि अन्यान्य प्रकारसे शरीर स्वस्थ भी हो, तब भी यह निश्चय समझ लेना चाहिए कि शरीरके भीतर मैल इकट्ठा हो गया है। शरीरकी खाल जो इस तरह पर शरीरके भीतरसे मैलको बाहर निकालनेका प्रयत्न करती है उसे उसके इस प्रयत्नमें सहायता पहुँचानेके बदले जो लोग मैलको बाहर निकलने देनेसे रोक देते हैं वे मानों शरीरके भीतर मलको इकट्ठा रखना ही पसंद करते हैं। उनके इस उद्योगसे मैल वहाँसे हटकर कोई दूसरा रास्ता ढूँढता है और फेफड़ोंमें पहुँचकर या अन्य किसी जगहमें जाकर श्वास या अन्य कोई भयंकर बीमारी उत्पन्न करता है।

प्रकृति दस्तोंके रूपमें भी शरीरके भीतर इकट्ठे हुए मैलको बाहर निकालनेका प्रयत्न किया करती है। बहुतसे वैद्य और डाक्टर ऐसी दशामें अफीम मिली हुई या अन्य कोई ऐसी ही औषधि देकर दस्त बंद करनेकी चेष्टा किया करते हैं। इसमें संदेह नहीं कि उक्त प्रकारकी औषधिसे दस्त बंद तो अवश्य हो जाते हैं, परंतु शरीरसे बाहर निकलता हुआ मल पीछे हटकर थोड़े दिन या थोड़े महीनोंके बाद किसी दूसरे मार्गसे बाहर निकलनेकी चेष्टा करता है और दस्तोंसे भी भयंकर कोई व्याधि उत्पन्न करता है।

पैरों अथवा हाथोंका पसीजना इस बातका प्रमाण है कि शरीरके भीतर मल इकट्ठा हो गया है। इसी तरह हाथ पैरोंका ठंडा रहना भी शरीरके भीतर मैल संचय होनेका लक्षण है। ऐसी अवस्थामें इस शरीरके भीतर संचित हुए मैलको बाहर निकालनेकी चेष्टा करना ही रोग मेटनेका उत्तम प्रयत्न है, किन्तु यदि दवाके द्वारा हाथ पैरोंमें पसीनेका आना रोका जाय तो यों समझना चाहिए कि हाथ पैरोंके द्वारा जो शरीरका मैल पसीनेके रूपमें बाहर निकल रहा है वह रोका जाता है। यह मैल जब इस तरह बाहर निकलनेसे रोका जाता है तब वहाँसे हटकर गला सूज जानेकी व्याधि

उत्पन्न करता है, अथवा सिरमें कोई रोग उत्पन्न करता है। कभी कभी यह मैल फफड़ोंमें, हृदयमें अथवा दूसरे किसी भीतरी अवयवमें पहुँचकर उन अवयवोंमें कोई रोग उत्पन्न करता है।

खाँसीका होना अथवा बहुत अधिक कफका पड़ना भी शरीरमें इकट्ठे हुए मैलका सूचक है।

खाँसीवाले व्यक्तिके यदि कफ अच्छी तरह निकलता है, तो उसे बहुत कुछ लाभ पहुँचता है, क्योंकि इस रीतिसे शरीरके भीतरका मैल बाहर निकल जाता है। किंतु यदि कफको बाहर निकाले बिना ही किसी दवाके बलसे खाँसीको एकाएक बंद कर दिया जाय तो जाहिरमें खाँसी मिट गई मालूम होगी, लेकिन परिणाममें शरीरकी अवस्था और अधिक खराब हो जायगी। और यही कारण है जो पहले एक बार जिस औषधिसे लाभ पहुँचा था, उससे फिर दूसरी बार या तीसरी बार कुछ भी लाभ नहीं पहुँचता।

शरीरमें किसी भी प्रकारकी कोई बेचैनी हो अथवा आलस मालूम होता हो, तो समझ लो कि शरीरके भीतर मैल एकत्र हो गया है। शरीरमें जब जब कोई सामान्य अथवा भयकर व्याधि उत्पन्न हो जाय, तब तब यही समझना चाहिए कि शरीरके भीतर थोड़ा अथवा अधिक मैल इकट्ठा जरूर है। कई बार ऐसा देखनेमें आता है कि शरीरके भीतर सालहा सालतक मैल इकट्ठा होता रहता है और बीच बीचमें बहुत साधारणसे रोग हो होकर फिर दूर हो जाते हैं। इससे बहुतसे लोग यह समझ लेते हैं कि हम पूर्णरूपसे रोगरहित हैं। लेकिन यह बड़ा भारी भ्रम है। जो व्यक्ति समझदार हैं वे मुखकी, गर्दनकी, पेटकी और सारे शरीरकी कुरूपता और बेडौलपना देखकर यह समझे बिना कभी नहीं रह सकते कि शरीरके भीतर मैल इकट्ठा हो गया है। यदि यह बात अच्छी तरह समझमें न भी आए तब भी नीचे लिखे उपायोंको काममें लानेमें कोई हानि नहीं। रोगी और रोगहीन दोनों ही प्रकारके व्यक्ति इन उपायोंसे लाभ उठा सकते हैं। अतएव रोग भेदने और आरोग्यको बनाये रखनेकी इच्छा रखनेवालोंको उचित मालूम पड़े, तो इन निम्ननिर्दिष्ट उपायोंको निःशंक होकर आजमाना चाहिए।

सञ्चित हुए मैलको निकालनेके उपाय।

शुद्ध बात इससे पहले कही जा चुकी है कि शरीरके भीतर नित्य प्रति जो मैल इकट्ठा होता रहता है उसे प्रकृति चार रास्तोंसे शरीरके बाहर निकाल देती है। कितना ही मैल तो 'कार्बोनिक गैस' अथवा भाप आदिके रूपमें फेफड़े बाहर निकाल देते हैं। कितना ही पसीनेके रूपमें खालके छोटे छोटे छेदों द्वारा शरीरके बाहर निकल जाता है। मूत्रेन्द्रियके मार्गसे मूत्रमें मिले हुए 'यूरिक एसिड' नामक विषैले तत्वके रूपमें भी बहुतसा मैल शरीरके बाहर निकलता रहता है, और सबसे अंतिम गुदाके मार्गसे शरीरका मल पाखानेके रूपमें नित्य बाहर निकल जाया करता है। शरीरमें जो रोग मौजूद हों उन्हें मेटनेके लिए तथा होनेवाले रोगोंको रोकनेके लिए उत्तम उपाय यही है कि इन ऊपर कहे हुए चार रास्तोंसे मैलको शरीरसे बाहर निकालनेके काममें प्रकृतिको सहायता दी जाय। अंडीका तेल पीनेसे अथवा जमालगोटेकी गोली खा लेनेसे दस्त आ जाते हैं और भीतरका मैल पाखानेके रूपमें बाहर निकल जाता है। इसी तरह 'डायाफोरेटिक मिक्श्चर' 'एंटी पाइरीन' 'फिनसिटीन' अथवा इसी प्रकारकी कोई दूसरी दवाके खा लेनेसे पसीना आकर खालके छिद्रोंके मार्गसे शरीरके भीतरका मैल निकल जाता है। परतु ये सब दवाइयाँ विषैली होती हैं। इसलिए शरीरके भीतरसे मैल निकाल देनेके साथ ही साथ ये शरीरमें कमजोरी और शिथिलता भी उत्पन्न करती हैं, और शरीरके भीतर उनका विष पहुँचनेके कारण अन्यान्य प्रकारके रोगोंकी उत्पत्ति होती है। अतएव आधुनिक आरोग्यशास्त्रवेत्ता विद्वान् केवल उन्हीं उपायोंको प्रकृतिकी सहायता करनेवाले खरे उपाय मानते हैं जिनके काममें लानेसे शरीरके भीतरका मैल तो बाहर निकल जाय, परतु शरीरमें और दूसरे रोग उत्पन्न न होने पावें। इनके अतिरिक्त दूसरे उपाय आरम्भमें लाभ भी चाहे पहुँचाते हों, परतु इनकी रायमें वे उपाय उत्तम और श्रेष्ठ नहीं हैं। अच्छा, तो अब संक्षेपसे यह बताना आवश्यक है कि उपर्युक्त आरोग्यशास्त्रियोंके मतसे खरे उपाय कौन कौनसे हैं।

फेफड़ोंके द्वारा शरीरके भीतरका मैल रातदिन बाहर निकला करता है। परंतु बहुतसे लोग अपनी ही मूर्खताके कारण और अपनी ही कुटेवोंसे फेफड़ोंको कमजोर कर लेते हैं। शरीरका जो अवयव जिस प्रति काममें अपना

रहता है यह बलवान् बना रहता है। विपरीत इसके जिस अवयवका नित्य नित्य उपयोग नहीं किया जाता वह दुबल पड जाता है। जो लोग साधे हाथका ही अधिकतर उपयोग किया करते है उनका बायाँ हाथ सीधे हाथकी अपेक्षा कमजोर पड जाता है। इसी प्रकार जो लोग फेफडोंका बराबर उपयोग किया करते हैं उनके फेफडे बलवान् बने रहते हैं। लेकिन जो लोग फेफडोंका निरतर उपयोग नहीं करते उनके फेफडे कमजोर पड जाते है। यदि तलाश किया जाय तो सौमें नब्बे मनुष्य ऐसे निकलेंगे जो फेफडोंका ठीक ठीक उपयोग नहीं करते। कोइ पूछे कि फेफडोंका ठीक ठीक उपयोग होता किस तरह है ? इस तरह होता है कि श्वास लेते समय जो वायु बाहरसे भीतर जाती है उससे फेफडे पूरे पूरे भरे जायँ। हवासे जब फेफडे पूरे पूरे भरे जाते हैं, तब पहलेपहल पेट और फेफडेके नीचेका भाग फूलता है। उसके बाद फिर छाती फूलती है। छोटे छोटे बालकोंको साँस लेते और छोडते देख नेसे यह बात समझमें आसकती है। क्योंकि छोटी उम्रके बालक प्राय कुदरती तरीके पर साँस लेते है। लेकिन बडे होनेपर उन्हें स्कूलमें उठे झुककर बैठनेकी आदत पड जाती है, और वे कमर कसकर धोती बाँधने लगते हैं। इससे उनका पेट वगैरह दबा रहता है और इस कारण फेफडोंके नीचेका भाग भीतर गये हुए साँससे पूरा पूरा नहीं भर पाता। अतएव केवल छाती और फेफडोंका ऊपरी भाग ही श्वास लेने और निकालनेका काम करता है। फेफडोंके नीचेका भाग काममें न आनेके कारण दुर्बल पड जाता है। अतएव शरीरके आरोग्यके लिए जितनी हवाकी जरूरत है उतनी हवा फेफडोंमें नहीं आती, और परिणाम इसका फिर यह होता है कि शरीरके भीतरसे फेफडों द्वारा जितना मैल बाहर निकलना चाहिए उतना नहीं निकलता। इसलिए फेफडोंको पूरा पूरा हवासे भरनेकी और पूरा पूरा खाली करनेकी आदत प्रत्येक व्यक्तिको डालना बहुत जरूरी है। शास्त्रोंमें जो कहा गया है कि प्राणायाम-करनेवालोंका आरोग्य बढता है और उनके अनेक प्रकारके रोग मिट जाते हैं, उसका अभिप्राय यही है कि फेफडोंमें पूरी पूरी हवा भरनेसे और पूरी पूरी निकालनेसे उनके द्वारा शरीरके भीतरका बहुतसा मैल नित्यप्रति बाहर निकल जाता है। जिन लोगोंको श्वासकी बीमारी होती है वे न तो पूरा पूरा श्वास ले सकते हैं और न निकाल ही सकते हैं, अतएव वे सदैव दुःख भोगते रहते है। जो व्यक्ति प्रत्येक श्वासके साथ फेफडोंको पूरा पूरा भरते और खाली

करते हैं, उनका खाया हुआ आहार बड़ी अच्छी तरह पचता है; और उनके रोगी होनेकी सम्भावना बहुत कम रहती है। सुतरां लम्बा और गहरा साँस लेना प्रत्येक व्यक्तिके लिए परमोपयोगी और लाभदायक है। इस विचारसे लम्बा साँस खींचनेकी सबको आदत डालनी चाहिए। जो लोग खूब कसकर धोती या पायजामा पहनते हैं, उन्हें चाहिए कि कमरके ऊपरका वस्त्र और छातीके ऊपरका कपड़ा ढीला पहरनेका अभ्यास डालें। और भी, पूर्वोक्त तरह झुककर बैठनेकी आदत परम हानिकारक है। इसलिए उसे भी छोड़ देना चाहिए। *जो लोग लम्बा श्वास प्रश्वास लेनेकी आदत डालना चाहते हों* उन्हें नीचे लिखी रीतिपर आरम्भ करना चाहिए।

प्रातःकाल उठकर जो घरमें सुभीता हो तो घरमें और नहीं तो दूसरी किसी ऐसी जगहमें जहाँ स्वच्छ हवा आती हो, चित्त लेट जाओ। तकिया रखनेकी जरूरत नहीं है। कमरके ऊपरका कपड़ा ढीला कर दो, और शरीरके सभी अंग प्रत्यंगोंको ढीला छोड़ दो। हाथोंको दोनों तरफ लम्बा लम्बा फैला दो। इसके उपरांत प्रसन्न चित्तसे नाकके दोनों छेदोंकी राहसे धीरे धीरे भीतरको श्वास खींचो। पहले तो धीरे धीरे पेटको भीतर खींचे हुए श्वाससे भरो। पेट भर जानेके बाद फिर भी श्वास खींचते रहो, और तब तक खींचो जब तक कि छाती भी हवासे पूरी पूरी न भर जाय। छातीका ऊपरका भाग पूरा पूरा भर जाने तक श्वास बार बार खींचते रहो। इस रीतिसे फेफड़ोंमें जितनी हवा भरी जा सके उतनी भरो। इसके उपरांत फिर नाकके छेदोंसे धीरे धीरे फेफड़ोंमें भरी हुई वायुको पूरापूरा बाहर निकालो। यह श्वास लेने और निकालनेकी क्रिया पाँच मिनिटसे लेकर दस मिनिट तक करो। बहुतसे दुर्बल फेफड़ेवाले व्यक्ति एक ही दो बेर इस रीतिसे श्वास लेने और निकालनेमें हाँफ जायँगे और व्याकुल होकर श्वास प्रश्वास लेना बंद कर देंगे। परन्तु इस क्रियामें हाँफने लगना ही परम लाभदायक है। अभ्यास हो जानेपर इस तरह श्वास प्रश्वास लेना फिर परम सुगम हो जायगा। आरम्भमें बहुतसे लोगोंके फफड़े दो या तीन सेकिंडमें ही हवासे पूरे पूरे भर जायँगे, अर्थात् दो या तीन सेकिंडमें जितनी हवा श्वाससे साथ भीतर जा सकती है उससे अधिक फेफड़ोंमें नहीं समा सकती। मगर धीरे धीरे श्वासके द्वारा खींची गई हवासे फफड़ों भर नेका समय बढ़ता जायगा। पहले अभ्यासमें श्वास खींचकर फेफड़ोंको भरनेमें चार सेकिंड और खाली करनेमें भी चार ही सेकिंडका समय लगाना

चाहिए। दूसरे अठवाड़ेमें छ सेकिंड, तीसरेमें आठ सेकिंड, और फिर पांचवें दस, इसी तरह फेफड़ोंको हवासे भरने और खाली करनेका समय उत्तरोत्तर बढ़ाते जाना चाहिए। धीरे धीरे जब अभ्यास बढ़ जायगा तो आधे मिनिट तक खींची गई हवा फेफड़ोंमें भर सकेगी, और इतना ही समय फेफड़ोंको हवासे खाली करनेमें लगा करेगा। बहुतसे बढ़े हुए अभ्यासवाले व्यक्तियोंके फेफड़ोंमें दो मिनिट तक जितनी वायु खिंच सके उतनी भर जायगी। इस लिए धीरे धीरे अभ्यासको बढ़ाना ही मुख्य है। रात्रिको सोते समय भी यही क्रिया की जाय। और दिनमें जब अवकाश मिल सके तभी इसे कर लेना लाभदायक होगा। जितनी हो सके उतनी अधिक वायु फेफड़ोंमें जानेसे और फिर फेफड़ोंके पूरा पूरा खाली होनेसे खून बहुत अधिक शुद्ध होता है, आरोग्यकी वृद्धि होती है, बुद्धि विशुद्ध होती है, मन स्वस्थ और विचारशक्ति तीव्र होती है। इनके अतिरिक्त और भी बहुतसे लाभ होते हैं।

कसरत करनेसे भी फेफड़ोंमें अधिक वायु भरनेका कार्य होता है। दौड़ने, कूदने, तैरने और अन्यान्य प्रकारकी कसरतोंसे भी साँस आने जानेका काम खूब तेजीके साथ चलता है जिससे कि बहुतसी वायु फेफड़ोंमें भरती और बाहर निकलती है, और शरीरका मैल बहुत कुछ बाहर निकल जाता है। इसलिए शुद्ध हवामें कसरत करना भी परम लाभदायक है।

ऊपर कही हुई रीतिसे श्वास लेने और निकालनेकी तथा कसरतके द्वारा फेफड़ोंमें वायु भरने और निकालनेकी आदत डालनेसे शरीरके अनेक रोग मिट जाते हैं और नये रोग उत्पन्न होनेसे रुक जाते हैं।

अमेरिकामें श्वास खींचने और रोकनेका एक यन्त्र बन गया है। इस यंत्रका नाम है 'स्पाइरो मीटर'। इस यन्त्रके साहाय्यसे बहुत अधिक हवा श्वासके साथ भीतर खींचकर फेफड़ोंमें भरी जा सकती है और रोकी जा सकती है। इस लिए जो व्यक्ति समर्थ हों, उन्हें उक्त यन्त्रसे भी लाभ उठाना चाहिए।

शरीरमेंसे मैल निकालनेवाला दूसरा अवयव है 'मूत्रपिण्ड' अर्थात् Kidneys। अब इस 'मूत्रपिण्ड' नामक अवयवके द्वारा शरीरसे मैल निकालनेकी क्रियाके विषयमें विचार करना चाहिए। जितना बाहिर जाता अथवा उससे अधिक जल पीनेसे 'मूत्रपिण्ड' के द्वारा शरीरका भीतरी मैल निकलता है। युरोपमें कितने ही झरनोंका पानी उत्तम और गुणकारक कहा

जाता है। इस लिए बहुतसे रोगी उक्त झरनोंके स्थानोंमें जाकर हफ्तों अथवा महीनों रहते हैं। वहाँ रहकर इस धारणासे कि वहाँका पानी उत्तम और गुणकारी है तथा उसके पीनेसे रोग मिट जाते हैं वे रोगी जितना पीना चाहिए उसकी अपेक्षा अधिक पानी पीते हैं। अब बात असलमें यह है कि इन जगहोंका पानी दूसरी जगहोंके पानीके समान ही शुद्ध होगा, अथवा कुछ अधिक शुद्ध होगा, परन्तु रोगोंको दूर करनेवाला कोई खास गुण उसमें नहीं होता। लेकिन उस पानीको रोग मिटानेवाला समझकर रोगी लोग मामूलसे अधिक परिमाणमें पीते हैं। नतीजा इसका यह होता है अधिक परिमाणमें जल पीनेसे 'मूत्रपिण्ड' अर्थात् Kidneys की क्रिया बढ़ती है। यानी 'मूत्रपिण्ड' से बहुत अधिक परिमाणमें मूत्र निकलकर शरीरके मैलको बाहर निकालता है। मूत्रके साथ शरीरके भीतर इकट्ठा हुआ मैल जब अधिक परिमाणमें बाहर निकल जाता है तब रोग भी मिटने लगता है। यदि रोगी लोग इन स्थानोंमें न जाकर और किसी शुद्ध वायुवाले स्थानमें रहकर उतना ही जल पीवें, तो उन स्थानोंमें भी उनका रोग उसी तरह मिट जायगा। मतलब यह है कि चाहे जिस स्थानमें रोगी हो, यदि वह अधिक परिमाणमें जल पियेगा तो 'मूत्रपिण्ड' अधिक मूत्र बाहर निकालेगा, और मूत्रके साथ शरीरके भीतरका संचित विष बाहर निकल जानेसे रोग निस्सन्देह मिट जायगा। इस सारी विवेचनाका सार यह निकला कि अधिक परिमाणमें जलका पीना शरीरके भीतर इकट्ठे हुए मैलको बाहर निकालनेका दूसरा उपाय है।

अब विचारनेकी बात यह है कि जल किस तरह पीना चाहिए। बहुतसे व्यक्ति भोजनके समय एक आध लोटा जल पी लेते हैं और भोजनके पीछे फिर भी एक दो लोटा चढा जाते हैं। किन्तु इस रीतिपर जल कभी नहीं पीना चाहिए। भोजनके समय अधिक पानी पीनेसे और भोजनके उपरान्त भी तुरंत बहुतसा पानी पी लेनेसे पेटके भीतर भोजन ठीक ठीक नहीं पचता और इससे पेटकी पाचनशक्ति भी मन्द पड़ जाती है। जिन लोगोंकी पाचनशक्ति कमजोर हो वे यदि भोजनके समय बिल्कुल भी जल न पिवें तो बहुत उत्तम हो। भोजनके उपरान्त एक या दो घंटेके भीतर ही पानी पी लेना किसी भी व्यक्तिके लिए लाभदायक नहीं हो सकता। इस लिए अधिक जल पीनेका प्रयोग करनेवालोंको चाहिए कि भोजनके अच्छी

तरह पच जानेके उपरांत कड़ बेर करके थोड़ा थोड़ा पानी पिएँ। अपने यहाँके आचार्योंने भी कहा है—"जीर्णे वारि बलप्रदम्"। अर्थात् अन्नके पच जानेपर पिया गया जल शरीरमें बल लाता है। इस लिए भोजन करनेके तीन घंटे बाद जलका पीना अधिक उपयोगी है। तीन घंटे बाद भी जो जल पिया जाय वह एकदमसे बहुतसा न पिया जाय बल्कि आध आध घंटेमें एक एक प्याली जल पीना लाभ पहुँचानेवाला है। प्रातःकालके समय जब कुछ भी न खाया हो उस समय एक सेर अथवा दो सेर साफ जल पी लिया जाय तो पेट और मूत्राशय अच्छी तरह साफ हो जायँगे। किन्तु जिनकी पचनशक्ति दुर्बल है, उन्हें इस तरहसे निहार मुँह सेर या दो सेर जल एक दममें नहीं पी जाना चाहिए, बल्कि थोड़ा थोड़ा करके पीना चाहिए। और भी एक बातका ख्याल रखना चाहिए, वह यह कि इस प्रकारसे जो जल पिया जाय वह अत्यंत अधिक ठंढा न हो। अत्यंत अधिक ठंढा पानी पेटको कमज़ोर कर देता है। जितना ठंढा पानी कुएका होता है बस उतना ही ठंढा पीना चाहिए। कुएके ताजी पानीसे अधिक ठंढा पानी नुकसान करता है। इसी लिए जो लोग प्रातःकालको पानी पिया करते हैं वे रातको ढककर रक्खा हुआ पिया करते हैं। जो लोग बिल्कुल निरोग हैं उन्हें दिन भरमें सात आठ सेर पानी पी लेनेका अभ्यास करना चाहिए। दाल, कढ़ी, और रसेदार तरकारी आदि नरम भोज्य पदार्थोंमें जो जल होता है उसको शामिल करके सात आठ सेर जल पीना उचित है। लेकिन ऊपर कही हुई रीतिपर जल पीनेसे जितना लाभ होता है उससे कहीं अधिक लाभ, जब तक हम जागते रहें, तब तक बराबर दो दो मिनिट या चार चार मिनिटके बाद एक एक चमच पानी पीनेसे होगा। मगर जो लोग इस तरह पानी पीनेका नियम करना चाहें उन्हें फिर इसकी जरूरत नहीं कि भोजनके उपरांत तीन घंटे तक पानी पिएँ ही नहीं। बल्कि वे भोजन करनेके उपरांत तुरत ही एक एक चामच पानी दो दो या चार चार मिनिटके उपरांत पीना शुरू कर दें। इस तरह एक एक चम्मच करके पानी पीनेसे शरीरके भीतर जो विष इकट्ठा हो गया होगा वह पिघल जायगा, पेटमें जो मल बँध गया होगा उसके ढीले पड़ जानेसे कब्ज मिट जायगा, शरीरकी चमड़ी स्वच्छ हो जायगी, मुँहपर तेज आ जायगा, शरीरका वजन बढ़ेगा, खून शुद्ध होकर तेजीके साथ शरीरमें दौड़ेगा, नींद अच्छी तरह आवेगी, श्वास-प्रश्वासकी क्रिया खूब अच्छी तरहसे होने लगेगी,

हृदयकी गति तेज हो जायगी और चित्तमें प्रसन्नता आवेगी। अधिक समय तक यदि यह प्रयोग जारी रक्खा जायगा तो जिनके शरीरमें खून कम होगा उनका खून भी बढ़ेगा। पीनेका जल चूनेके परमाणुओंसे रहित जितना शुद्ध होगा उतना ही अधिक और जल्दी लाभ पहुंचावेगा। भापसे उडाया हुआ पानी सबसे अधिक शुद्ध होता है। इसलिए जिन्हें यह पानी मिल सके उन्हें उसका उपयोग करना चाहिए, नहीं तो फिर जैसा जल सुभीतेसे मिल सके वैसा काममें लाना चाहिए। कुएके मधुर अथवा खारे पानीकी अपेक्षा बरसातका मीठा पानी कहीं अधिक उत्तम और लाभदायक होता है। दिनमें अथवा रातमें ऐसा कोई भी समय नहीं है जब कि यह क्रिया न की जा सक्ती हो। इस रीतिपर जल पीनेकी विधिका जिन्हें पूरा पूरा लाभ प्राप्त करना हो वे एक दमसे एक या आधी कटोरी जल भी न पीवें। ऊपर कही गई रीतिसे यदि वे जल पीना जारी रक्खेंगे तो उन्हें लाभ हुए बिना कभी नहीं रहेगा। बल्कि जिन लोगोंको तम्बाकू अथवा अफीमका दुर्व्यसन होगा उनका यह व्यसन भी इस जल पीनेकी क्रियासे छूट जायगा।

शरीरमें रोग उत्पन्न करनेवाले मैलको बाहर निकालनेवाला तीसरा अवयव मोटी आंत अर्थात् मल विसर्जन करनेवाली इन्द्रिय है। इस इन्द्रियमें इकट्ठा हुआ मैल स्वभाविक रीतिपर जब बाहर नहीं निकलता है तो जहांका तहाँ इकट्ठा होता जाता है। इसके बाद सड़नेसे और अन्यान्य कारणोंसे उसमें जब उष्णता उत्पन्न हो जाती है तो उसमें जो जलका भाग रहता है वह सूख जाता है—सख्त पड़ जाता है, और इसलिए अपने आप बाहर नहीं निकल सकता। परिणाम यह होता है कि पेटमें कब्ज बढ़ता जाता है। मोटी आंतको धोनेवाले यन्त्रसे यह इकट्ठा हुआ मल बहुत अच्छी तरह धोकर साफ किया जा सकता है। लेकिन मोटी आंतको धोकर साफ करनेकी क्रिया जिन्हें सुगम न मालूम पड़ती हो वे नीचे लिखी हुई क्रियाका उपयोग करें जिससे मलाशयमें उत्पन्न हुई गर्मी शांत हो जायगी और मलका बाहर निकलना सुगम हो जायगा।

बाजारसे आगेके पृष्ठमें दिये हुए चित्रके आकारका एक जस्तेका बना हुआ टब खरीद लेना चाहिए। जो लोग टब न खरीद सकते हों वे बड़ी एक पतीली लेकर काम चला सकते हैं जिसमें वे अच्छी तरह बैठ सकें। टबमें जैसा कि चित्रमें बतलाया है उसकी एक बाजूसे टिककर और सब कपड़े

उतार कर (धोती भी खोलकर) बैठ जाना चाहिए । जिनके यहाँ टबके बदले बड़ी पतीली हो वे पतीलीको दीवारके पास रखकर उसमें बैठें, जिससे कि दीवारका तकिया लगानेको मिल जाय । लेकिन यह कुछ जरूरी ही नहीं समझना चाहिए कि सहारा लगाकर बैठा जाय । जिनकी इच्छा न हो वे सहारा न लगावें । टब या पतीलीमें पानी इतना भरना चाहिए कि टूँड़ीसे लेकर जाँघोंतकका भाग पानीमें डूब जाय । टूँड़ीसे ऊपर एक या दो अंगुल पानी हो तो कोई हर्ज नहीं । टब या पतीलीका पानी इतना ठंडा हो जितना कि ८५ डिग्री फारेनहाइटसे लेकर ६८ डिग्री फेरिनहाइट तक हो सकता है । जिनके यहाँ पानीकी गर्मी नापनेवाला थर्मामीटर न होवे वे ऐसा करें कि जितना ठंडा पानी उनके यहाँके मिट्टीके घड़ोंमें होता है, उतना ही पानी टबमें भर दें । बहुतसी जगहोंमें ठंडमें घड़ोंका पानी ६८ डिग्री फेरिनहाइटसे भी अधिक ठंडा हो जाता है । उस अवस्थामें धातुके बरतनमें रक्खा हुआ अथवा कुएँका ताजा जल काममें ले आना चाहिए । कमजोर अथवा वृद्ध आदमी बहुत ठंडा पानी बर्दाश्त नहीं कर सकते, इसलिए आरंभमें उन्हें कुएँके ताजे पानीके तुल्य पानीको काममें लाना उचित है । जैसे जैसे ठंडा पानी बर्दाश्त करनेकी ताकत बढ़ती जाय वैसे वैसे अधिक ठंडा पानी व्यवहारमें लाया जा सकता है । ठंडे पानीसे भरे हुए टबमें या पतीलीमें बैठकर एक मोटी तौलियासे टूँड़ीके नीचेका भाग और दोनों तरफके पेड़ू बिना रुके हुए पुट्ठोंके साथ खूब रगड़ना चाहिए । रगड़ते वक्त बहुत जोर लगानेकी जरूरत नहीं, सिर्फ जल्दी जल्दी और बिना रुके हाथ चलाते रहनेकी जरूरत है, जिससे कि रगड़े जानेवाले अंगमें साधारण सिहरन सी तेजीसे दौड़ने लगे । आरम्भमें पाँच मिनिटसे लेकर दस मिनिट तक इस तरह पेड़ू और टूँड़ीके नीचेके भागको रगड़कर स्नान करना चाहिए । धीरे धीरे फिर पन्द्रह बीस मिनिट अथवा और अधिक समय तक टबमें बैठे रहनेमें कुछ हानि नहीं । पानी यदि बहुत ठंडा न हो तो आध घंटे अथवा घंटे भर तक बैठे रहनेमें भी लाभ ही होगा । बहुतसे कमजोर व्यक्तियों अथवा बालकोंको सिर्फ दो या तीन मिनिट बैठना ही काफी है । पेटके ऊपरके भागमें अथवा जाँघोंमें नहीं

न घट जाय, इसलिए पैरोंपर कम्बल आदि कोई गर्म कपड़ा डाल लेना चाहिए, और इसी तरह ऊपरके अंगको भी किसी गर्म कपड़ेसे ढक लेना उचित है। स्नान कर चुकनेपर टबमेंसे उठकर भीगे हुए अंगमें गर्मी लानेकी जरूरत है। इसलिए जो लोग चल फिर सकते हों वे कहीं खुली जगहमें जाकर कुछ कसरत करें तो उत्तम। यदि बाहर जाकर कसरत करना न बन पड़े, तो घरमें ही बैठकर सारे शरीरको हाथसे खूब रगड़ना चाहिए। इससे शरीरमें यथेष्ट गर्मी आ जायगी। जो लोग इतना भी न कर सकते हों वे स्नान करनेके बाद कपड़ा ओढ़कर चुपचाप सो जायँ। कमजोर व्यक्ति यदि अपने हाथसे शरीरको इतने जोरसे न रगड़ सकें कि गर्मी आ जाय, तो किसी दूसरेसे रगड़वा लेना उचित है।

इस तरहसे पेड़ू और टूँडीके नीचेके अंगको रगड़कर दिनमें एक बेर, दो बेर या तीन बेर स्नान करना चाहिए। टबमें केवल उतनी ही देर बैठना चाहिए जितनी देर बैठा जा सके, तथा पानी भी उतना ही ठंढा होना चाहिए जितना ठंढा सहन हो सके। टबका पानी रोजका रोज बदल दिया जाय।

इस कटि स्नानसे पेड़ूमें और पेटमें जड़ जमाकर बैठा हुआ रक्तावष्टम्भ नामक रोग, तथा अतिसार, बवासीर, मरोड़, मधकोष, गर्भाशय, मूत्राशय और जननेन्द्रियके समस्त रोग एवं अन्यान्य व्याधियाँ भी मिट जाती हैं। गर्भाशयके बहुतसे रोगोंमें तथा विविधप्रकारके स्त्री-रोगोंमें इस स्नानसे बहुत लाभ पहुँचता है। ज्ञानतन्तु-सम्बधी रोगोंमें तथा मस्तिष्कसम्बन्धी व्याधियोंमें तो इस स्नानकी क्रियासे विशेषरूपेण लाभ होता है। रोगकी न्यूनाधिकताके अनुसार यह स्नानकी क्रिया भी थोड़े अथवा अधिक समय तक जारी रखनी चाहिए। केवल दो चार दिन करनेके उपरान्त ही अश्रद्धाके साथ छोड़कर नहीं बैठ रहना चाहिए।

ऊपर कही गई स्नानकी विधिसे कुछ भिन्न नीचेकी विधि है। यह विधि स्त्रीपुरुषोंके जननेन्द्रियसम्बन्धी रोगोंमें अत्यंत लाभ पहुँचानेवाली है।

ऊपरकी विधिमें जो टब या पतीली कही जा चुकी है उसमें लकड़ीकी एक छोटी पटली अथवा चौकी रख देनी चाहिए, या जरा ऊँचे पायोंवाली लकड़ीकी तिपाई, चौकी या ऐसा ही कोई दूसरा काठका आसन बिछा देना चाहिए। इसके उपरांत टबमें पानी भरना चाहिए। पानी इतना भरा जाय

कि वह टबमें बिछी हुए लकड़ीकी पटली अथवा चौकीके किनार तक ही पहुंचे, ऊपर न आवे। इसके बाद रोगी पटली या चौकीके ऊपर बैठ जाय। बैठनेके बाद एक मोटी तौलियाको, या गाढ़ेके गमछेको पानीमें भिगोकर उससे जननेन्द्रियको धीरे धीरे रगड़कर धोवे। तौलियामें जितना अधिक पानी आ सके, उतना भरना चाहिए। समूची जननेन्द्रियको अथवा उसके भीतरके भाग्र चर्मको न धोय। बल्कि मूत्रेन्द्रियके उस घूंघट भागको ही धोवे, जो भीतरके गीले चमड़ेको ढके रहता है। इसका खूब ध्यान रखने कि मूत्रेन्द्रियका केवल यह घूंघटवाला भाग ही धोया जाता है। दूसरे किसी भागको अथवा भीतर खोल कर कभी नहीं धोना चाहिए। घूंघटका भाग भी हलके हाथसे धीरे धीरे रगड़कर धोया जाय, कड़े हाथसे नहीं। तौलियाका पानी समाप्त हो जाय कि फिर उसे पानीमें डुबाकर धोना जारी रक्खा जाय। इस प्रकार बारबार मूत्रेन्द्रिय धोना चाहिए। इस स्नानकी क्रियामें पैर, जंघा, और इसी तरह शरीरका ऊपरी भाग भी सूखा ही रह जायगा। किन्तु भाग या चूतर यदि थोड़ेसे भीग जायँ तो कुछ हर्ज नहीं। स्त्रियोंको ऋतुकालमें यह स्नान नहीं करना चाहिए। इस स्नानके लिए पानी ५० से लेकर ६० डिग्री परम हाइट तकका ठंडवाला काममें लाना चाहिए। यदि इतना ठंडा पानी न मिले तो फिर जैसा मिले वैसा ही काममें ले आना चाहिये।

रोगीकी अवस्था और उम्रके अनुसार यह स्नान दस मिनिटसे लेकर एक घंटे तक किया जा सकता है। जाड़ोंकी ऋतुमें रोगीको ठंड न लग जाय इस बातका विशेष रूपसे ख्याल रखनेकी जरूरत है। अतएव ठंडसे बचानेके लिए उसके पैर और ऊपरी भग गर्म वस्त्रसे ढक देने चाहिए। इस स्नानमें जितने ठंडे पानीका उपयोग किया जायगा, उतना ही अधिक लाभ होगा। किंतु फिर भी इतना ठंडा पानी न होना चाहिए कि जो स्नान करनेवाले रोगीके हाथको सहन न हो सके। गर्मीकी ऋतुमें जैसा और जितना ठंडा जल मिल सके, उतना काममें ले आना चाहिए। उन दिनों यदि कम ठंडा पानी ही मिल सकता हो, तो यह शंका न करनी चाहिए कि लाभ कम होगा। क्योंकि गर्मीकी ऋतुमें पानीकी गर्मी बाहरकी गर्मीसे फिर भी कम रहती है, इस लिए लाभ यथेष्ट होता है।

इस स्नानकी क्रियामें टबके भीतर जो पटली या चौकी बिछाई जाय, वह इतनी मोटी न हो कि थोड़ासा ही पानी डालनेसे काम चल जाय। टबमें

सवा मन या डेढ मन पानी भरा जा सके, इतनी ऊँची वह होनी चाहिए। टबमें यदि बहुत थोड़ासा ही पानी भरा जायगा तो वह बहुत जल्द गर्म हो जायगा, और उस गर्म पानीको काममें लानेसे यथेष्ट लाभ नहीं होगा।

यह स्नान स्त्रियोंको जैसा लाभदायक है वैसा ही पुरुषोंको भी है। पुरुषोंको चाहिए कि स्नानके समय वे अपनी मूत्रेन्द्रियके सिरेकी खालको अँगूठे और उसके पासकी अंगुलीसे पकड़कर जरा आगेको खींच लें और फिर उसे धीरे धीरे रगड़कर धोवें। इस बातका ध्यान रहे कि यह स्नान ठीक उसी रीतिपर किया जाय जो कि यहाँ लिखकर बतलाई गई है। नहीं तो सारा समय और परिश्रम व्यर्थ जायगा, और सम्भव है कि लाभ होनेके बदले उल्टी हानि हो जाय।

शरीरके भीतरी अंगोंमें जिनके विकृति हो गई हो अथवा सूजन या दाह होती हो ऐसे रोगियोंकी, अथवा पुराने दबे हुए रोगोंके उभर आनेसे जिनके शरीरमें दाह अधिक होती हो ऐसे रोगियोंकी भी, पहली ही बारके स्नानमें वह सब भीतरी दाह प्राय नीचेको खिंच आवेगी, और ऐसा मालूम होगा कि जिस स्थानको धोया जाता है उसी स्थानमें अथवा उसके आसपासके स्थानमें ही कहीं पर वह दाह आगई है। ऐसी अवस्था हो जाय तो घबरानेकी कोई बात नहीं, क्योंकि यह बड़ा उत्तम लक्षण है। ऐसी अवस्थामें स्नानकी क्रिया बराबर जारी रक्खी जाय। केवल इतना परिवर्तन कर दिया जाय कि रगड़नेके लिए मोटी तौलियाके बदले जरा नरम और बारीक कपड़ा काममें लाया जाय। टबमें बिछी हुई पटलीके ऊपर तीन अंगुल पानी आ जाय इतना पानी टबमें भरकर यदि पटलीपर बैठकर यह उपयुक्त क्रिया की जाय तो बहुत जल्दी लाभ होना सम्भव है। इस रीतिसे क्रिया करनेवालोंको पानीकी गर्मी ६० डिग्री फेरिन हाइट से लेकर ७२ डिग्री फेरिन हाईट तक रखनी चाहिए। इतना पानी जब टबमें भरा जायगा कि पटलीसे ३ अंगुल ऊपर हो जाय तो टबमें बैठनेवाले रोगीके चूतर भी पानीमें डूबे रहेंगे।

बहुतसे पाठकोंकी समझमें यह रहस्य ही नहीं आया होगा कि शरीरके दूसरे किसी अवयवको रगड़कर धोनेकी बात न कहकर सिर्फ मूत्रेन्द्रियका धोना ही इस क्रियामें क्यों बताया गया है। इस प्रकारकी शंकाके उत्तरमें कहना यह है कि इस क्रियामें इस अवयवके अतिरिक्त शरीरका दूसरा कोई भी अवयव उपयोगी नहीं है। इस अवयवमें शरीरके मुख्य मुख्य

ज्ञानतन्तुओंके सिरे जितने अधिक आकर मिलते हैं उतने अधिक और दूसरे किसी भी अवयवमें नहीं मिलते। पीठकी रीढ़के ज्ञानतन्तुओंकी घनी शाखाएं तथा अन्यान्य अनेक ज्ञानतंतु भी जिनका मस्तिष्कके साथ सम्बंध है, इस अवयवमें आकर मिलते हैं। अतएव इसी अवयवको रगड़नेकी क्रियामें शरीरके अधिकांश ज्ञानतन्तुओंके ऊपर असर पड़ता है। शरीरके सम्पूर्ण ज्ञानतंतुओंपर असर पहुँचानेवाली यही जगह है। इस स्थलको यदि जीवनवृक्षका मूल कहा जाय तब भी असंगत न होगा। जिस तरह मूलमें जल सींचनेसे वृक्षके सभी अंग प्रायः पुष्ट होते हैं उसी तरह इस स्थलको रगड़कर धोनेसे सारे शरीरके अवयवोंको लाभ पहुँचता है। ठंडे पानीसे इस स्थलको धोनेसे यह लाभ होता है कि शरीरके भीतर इकट्ठे हुए विषकी जो गर्मी होती है वह शांत हो जाती है। सिर्फ गर्मी ही शांत नहीं होती, बल्कि शरीरके ज्ञानतंतु स्पष्ट रीतिपर बलवान् हो जाते हैं। सारांश यह कि शरीरके छोटेसे छोटे अवयवसे लेकर बड़ेसे बड़े अवयव तक इस प्रयोगसे पुष्ट हो जाते हैं। शस्त्रक्रियासे यदि ज्ञानतंतु छिन्न भिन्न हो गये हों, तो उस अवस्थामें ही केवल इस क्रियासे लाभ नहीं पहुँचेगा। नहीं तो कुछ ही क्यों न हो, लाभ बिना हुए रह नहीं सकता।

रोगी मनुष्योंको इस स्नानसे अगणित लाभ होते हैं। इस स्नानकी क्रियाका अब तक जिस प्रकार वर्णन किया गया है संभव है वह किन्हीं किन्हींको असभ्यता पूर्ण मालूम पड़े। परन्तु जिस प्रयोगमें हजारों रोगियोंके कल्याण तथा लाभकी बात वर्णन की गई हो, उस प्रयोगका सभ्यताके अनुरोधसे न लिखना सभ्यताका अनुचित उपयोग है और रोगियोंके हकमें परम अत्याचार है। अतएव इस प्रयोगका न लिखना घोर पाप है।

जो व्यक्ति रोगरहित है उसे इस क्रियासे कुछ लाभ नहीं होता, उससे उसे यह क्रिया अज्ञान मालूम पड़ेगी। किन्तु रोगियोंको तो यह क्रिया इतनी लाभप्रद सिद्ध होगी कि वे प्रसन्नतापूर्वक आवश्यकतासे अधिक समयतक इसे जारी रक्खें।

इस स्नानसे तथा इससे पहले कही गई स्नानकी क्रियासे अनेक प्रकारकी वीर्यसंबंधिनी व्याधियाँ दूर होती हैं। आज कल शायद बीस पीछे व्यक्ति ऐसे मिलेंगे जिन्हें कोई न कोई वीर्यसंबंधी व्याधि अवश्य निकलेगी। इस

स्नानको दिनमें दो या तीन बेर करनेसे तथा मिर्च मसालेसे रहित सादा भोजन करनेसे स्वप्नमें वीर्य गिरने आदिके दुर्बलताजन्य रोग शीघ्र ही दूर हो जाते हैं।

अब शरीरमेंसे मैलको बाहर निकालनेके पाँचवें उपायका वर्णन किया जाता है। यह बात पहले ही कही जाचुकी है कि प्रकृति पसीनेके रूपमें भी बहुतसा मैल शरीरके बाहर निकाल देती है। अतएव प्रकृतिको सहायता पहुँचानेका उत्तम उपाय यही है कि किसी जहरीली दवाके शरीरमें बिना दाखिल किए ही बहुतसा पसीना आवे। सबसे उत्तम उपाय तो यह है कि व्यायाम अर्थात् कसरतके द्वारा शरीरमे पसीना निकाला जाय। परन्तु जो रोगी हैं वे कसरत नहीं कर सकते और निरोग व्यक्ति भी धैर्यके साथ इतनी अधिक कसरत नहीं कर सकते कि शरीरमेंसे बहुतसा पसीना निकलने लगे। अतएव रोगियों और निरोग रहनेकी इच्छा करनेवाले व्यक्तियोंको नीचे लिखी हुई क्रियाको व्यवहारमें लाना चाहिए।

जो तैयार करा सकते हों वे बेतकी बुनी हुई एक ऐसी खाट तयार करायें जिसपर एक आदमी सो सके। इस खाटपर शरीरके वस्त्र खोलकर चित्त लेट जाय। जो लोग खाट तैयार न करा सकते हों व बैठ ही बैठे इस प्रयोगको कर सकते हैं। खाटपर चित्त लेट जानेके बाद खौलते हुए गरम पानीकी दो पतीलियाँ एक सिरहाने और दूसरी पाँयतेकी ओर खाटके नीचे रखवा दो। बादको एक ऐसा ऊनी वस्त्र ओढ लो जो सारे शरीरको ढकता हुआ चारों तरफ खाटके नीचे इतना लटकता रहे कि जमीनमे लग जाय। अर्थात् वस्त्रसे रोगीका समूचा शरीर और खाट इस तरहसे ढक जाना चाहिए कि जिसमें पतीलियोंके खौलते हुए पानीमेंसे उठी हुई भाप बाहर न निकल जाय। मुँह ढाँपकर भी रहनेमें भी कुछ हर्ज नहीं। पहले तो शायद इस तरह लेट रहनेमें कुछ जी घबड़ावेगा, परन्तु बादको चित्त बहुत हलका हो जायगा। पसीना आनेमें दो या चार मिनिट लगेंगे। यदि दो चार मिनिटमें पसीना न आवे और पतीलीमेंसे निकलनेवाली भाप कम हो चले, तो आगमें खूब तपाकर लालकी हुई एक ईंट चीमटेसे पकड़कर पतीलीमें डाल देनेसे भाप फिर अच्छी तरहसे निकलने लगेगी। इस तरहकी दो या तीन ईंटें पहलेसे ही तपी हुई तैयार रक्खी जायें। पाँच पाँच या चार चार मिनिटके बाद जब ही मालूम हो कि भापका निकलना कम हो चला है तभी झट एक तपी हुई ईंट पती-

सीमें इस तरह डाल देना चाहिए कि पतीलीमेंसे गरम पानीके छींटे उछल कर रोगीके शरीरपर न पड़ें । इस रीतिसे पतीलीमेंसे बहुतसी भाप निकलेगी और भापकी गर्मीसे पसीना भी खूब अच्छी तरह आएगा। शरीरके पिछले भागमें, जब पसीना खूब अच्छी तरहसे आजाय तब चित्तमें पट हो जाय। इससे पेट इत्यादि शरीरके अगले अंगोंमेंसे भी पसीना निकलेगा। इस रीतिसे पसीना निकालनेकी क्रिया पाव घंटे अथवा आध घंटे तक जारी रखनी चाहिए। जो लोग कुर्सीपर बैठकर यह क्रिया करना चाहें उन्हें केवल एक ही पतीली काममें लानी चाहिए। कुर्सीपर बैठकर भी कम्बल इस तरह ओढ़ना चाहिए कि अपना सारा शरीर और कुर्सी ढक जाय तथा वस्त्र चारों ओर जमीन तक लटकता रहे। खौलते पानीकी पतीली कुर्सीके नीचे रखकर आवश्यकतानुसार पाँच पाँच मिनिट बाद एक एक तपाई हुई ईंट ऊपर कहे गये प्रकारसे उसमें डालते रहना चाहिए, जिससे कि बहुतसी भाप बराबर पतीलीमेंसे निकलती रहे। कुर्सीपर बैठकर जो लोग यह प्रयोग करें वे यदि अपने पाँव एक दूसरी गर्म पानीकी पतीलीपर एक दो लकड़ीकी चिप्पियाँ रखकर टेक लें तो बड़ा लाभ हो। कुर्सीपर न बैठकर जो लोग जमीन पर बैठकर ही यह प्रयोग करें उन्हें दूसरी पतीली रखनेकी जरूरत नहीं। उन्हें तो केवल यही करना चाहिए कि कम्बल सब तरफसे सारे शरीरको ढककर (मुँह चाहे ढक लिया जाय और चाहे खुला रखा जाय) गर्म पानीकी पतीली अपने सामने रखकर ओढ़नेके भीतर कर ली जाय। शरीरमें जहाँ जहाँ रोग पैदा करनेवाला मैल बहुत अधिक इकट्ठा हो गया होगा वहाँ वहाँसे पसीना निकलनेमें बड़ी देर लगेगी, और रोगीकी इच्छा स्वयं यह होगी कि उन स्थलों पर खूब बहुतसी भाप आवे। अतएव इस इच्छाके अनुसार ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए कि उन अंगोंपर विशेष रूपसे भाप लगे। बालकोंको भी ऊपर कही गई रीति पर यह भापका स्नान कराया जा सकता है।

जो व्यक्ति बहुत अधिक दुर्बल हों, अथवा जो बहुत अधिक बीमार हों, या जिन्हें श्वासनलियोंसे सम्बन्ध रखनेवाला कोई रोग हो, उन्हें यह भाप स्नान या पसीना लानेकी क्रिया नहीं करनी चाहिए। बल्कि व पहले कहा गया कटिस्नान या ठंडे जलसे स्नान करनेवाला प्रयोग करें और या आगे चलकर बताई गई विधिसे धूपस्नान करें। इन दोनों प्रकारके

स्नानोंसे उन्हें परम लाभ होगा। जिन्हें परम सुगमताके साथ पसीना आ जाता हो वे भी यदि इस वाष्प स्नानकी क्रियाको न करें तो कुछ हर्ज नहीं। आठ दिनमें दो बारसे अधिक यह वाष्प-स्नानकी क्रिया नहीं करनी चाहिए।

वाष्प स्नानकी क्रियासे जब खूब अच्छी तरह पसीना निकल चुके, तब शरीरके ऊपरसे ओढ़ा हुआ ऊनी वस्त्र उतार डालना चाहिए। इस समय घरके खिड़की, दरवाजे सब अच्छी तरह बंद रखना चाहिए, नहीं तो नंगे शरीरको हवा लग जानेसे श्लेष्म आदि रोग हो जाना सम्भव है। वस्त्र उतारनेके बाद पहले कही हुई कटिप्रदेशको रगड़कर ठंडे जलसे स्नान करनेकी क्रियाका प्रयोग करना चाहिए। इस कटिस्नानकी क्रियासे पहले या पीछे ठंडे जलसे सारे शरीरको धोकर स्नान कर लेना चाहिए, जिससे हाथ, पैर, मस्तक और छाती आदि अंग प्रत्यंग सब धुलकर स्वच्छ हो जायँ। इस स्नानसे ठंड लग जानेकी आशंका नहीं करनी चाहिए। बल्कि यह ठंडे जलका स्नान उल्टा लाभदायक होगा। भट्टीमें बार बार तपाया जाकर ठंडे पानीमें बुझाए जानेसे जैसे फौलादका लोहा उत्तरोत्तर उत्तम और अच्छे पानीका होता जाता है, उसी तरह शरीर भी वाष्प-स्नानसे खूब दृढ़ और पुष्ट हो जाता है।

ठंडे जलसे स्नान कर चुकनेके बाद शरीरमें इतनी गरमी लानेकी जरूरत है कि जिससे साधारण रीतिपर पसीना आ जाय। जो लोग सशक्त हों वे तो कपड़े पहिन कर खुली हवामें थोड़ी कसरत कर लें और जो रोगी तथा कमजोर हों व अच्छी तरहसे ओढ़कर बिछौने पर सो जायें। इससे शरीरमें यथेष्ट गर्मी आ जायगी।

यह वाष्प-स्नानकी क्रिया शरीरके खास खास अंग प्रत्यंगों पर भी हो सकती है। केवल पेटके ऊपर, गर्दनके ऊपर अथवा मस्तकके ऊपर ही भाप लावे, इस रीतिसे यदि सेंक लाय तो केवल इन ही अंग प्रत्यंगोंसे पसीना निकलेगा। पेटके ऊपर भापका स्नान करानेसे पेटके सम्पूर्ण विकार तथा स्त्रियोंके आर्तवसम्बन्धी रोग मिट जाते हैं। कान, आँख और दाँतमें यदि दर्द होता हो तो उनपर भापका सेंक देकर पसीना निकालनेके लिए विशेष प्रकारके यन्त्र मिलते हैं, जिनसे कि यह प्रयोग सुगमताके साथ हो सकता है। जिनको यह यंत्र खरीदनेका सुभीता न हो उनके लिए सारे शरीरको वाष्प-स्नान कराना ही अधिक श्रेष्ठ है।

ऐंठन, ज्वर, गठिया, जोड़ोंकी सूजन, और यकृत तथा मूत्राशयके रोगोंमें यह वाष्प-स्नान अत्यन्त लाभकारी है। किंतु ध्यान रहे कि एक सप्ताहमें दो बारसे अधिक यह प्रयोग न किया जाय, क्योंकि इस प्रयोगके अधिक करनेसे शरीरमें कमजोरी आ जाना सम्भव है।

इस वाष्प स्नानके समान ही गर्म वायुके सेंकसे भी पसीना निकालनेकी क्रिया है। भेद केवल इतना ही है कि इस पिछले प्रयोगमें भापके बदले सुलगते हुए कोयलोंकी आँचसे अथवा 'आल्कोहल' जलाकर उसके सेंकसे पसीना निकाला जाता है। हम लोगोंके लिए सुलगते हुए कोयलोंका प्रयोग करना ही अधिक उत्तम है। रोगी एक पटलीपर बैठ जाय, और दहकते हुए कोयले एक पात्रमें भरकर अपने सामने रख ले। इसके उपरान्त एक कपड़ेसे अपने सारे शरीरको ढक ले और कोयलोंके बर्तनको भी कपड़ेके भीतर ले ले, परन्तु इतनी सावधानी रक्खे कि वस्त्र जल न जायँ। दीवारसे लगाकर एक पटली खड़ी करे और उस पटलीके आगे दहकते कोयलोंका पात्र रक्खे। पात्रके सामने पटली बिछाकर स्वयं बैठ जाय, और ओढ़नेके कपड़ेको दीवारसे सटाई हुई पटलीसे दबाकर ऊपर ओढ़ता हुआ अपने बैठनेकी पटलीसे पीछे दबा दे। इस प्रकार कपड़ा जलनेकी आशंका नहीं रहेगी। इसके बाद वाष्प स्नानकी भाँति इस क्रियामें भी दो एक ऊनी वस्त्र ऊपरसे ओढ़ ले। याद रहे कि इस क्रियामें मुँह हमेशा खुला रहेगा। यदि मुँह ढाँकनेकी जरूरत ही पड़े तो दो या चार सेकन्डसे अधिक मुँह न ढाँपा जाय। क्योंकि कोयलोंमेंसे कार्बन नामक एक जहरीला पदार्थ निकलता है। श्वासके साथ यह पदार्थ शरीरके भीतर पहुँचकर हानि पहुँचा सकता है। अतएव वस्त्र इस तरह ओढ़ा जाय कि कमसे कम नाक तो अवश्य ही बाहर खुली रहे। एक भीगी तौलियाके चार पाँच तहें करके सिरपर इस तरह बाँध लेना चाहिए कि जिससे समूचा सिर अच्छी तरह आगे पीछेसे ढँक जाय। अँगीठीमें आग यदि यथेष्ट हो तो पाँच या चार मिनिटमें ही पसीना आने लगेगा। बहुत बड़ी अँगीठीकी आँच बहुतोंको असह्य होगी, और बहुतोंको कभी कभी ऐसा भी मालूम पड़ेगा मानों उनके पाँवकी नसें खिंची जाती हों। यदि ऐसा मालूम पड़े तो उनपर धीरे धीरे भीतर ही भीतर हाथ फेरते रहना चाहिए। पसीना आना जब शुरू हो जाय तब पन्द्रह या बीस मिनिट तक पसीना आने देना चाहिए। सिरपर रक्खा हुआ वस्त्र यदि सूखकर गर्म हो गया हो

तो उसे फिर पानीमें भिगोकर और निचोड़कर सिरपर रख लेना चाहिए। इससे मस्तक गर्म नहीं होने पावेगा। पन्द्रह या बीस मिनिटके बाद खूब पसीना निकल आनेपर ऊपर ओढ़ा हुआ वस्त्र हटा देना चाहिए। मगर इस बातकी खूब सावधानी रक्खी जाय कि पसीना निकले हुए शरीरमें हवा न लगे। वस्त्र उतारकर एक कपड़ेके टुकड़ेसे शरीरका सब पसीना पोंछ डाले और फिर ठंडे जलसे भली भाँति स्नान करे। यदि इच्छा हो तो कटिप्रच्छालको रगड़कर ठंडे जलसे स्नान करे। नहीं तो ठंडे जलसे सामान्य रीतिपर किया गया स्नान ही काफी है। स्नानके पीछे ओढ़कर एक घंटे तक लेटे रहना अथवा नींद आजाय तो सो जाना अधिक उपयोगी है। यदि हो सके तो स्नानके पीछे सारा शरीर धीरे धीरे दबाया जाय। निरोग व्यक्ति यदि शरीरमेंसे विष निकालनेके लिए यह प्रयोग करें तो उन्हें स्वयं अपने ही हाथसे अपना शरीर दाबना चाहिए। इससे शरीरमें खून तेजीके साथ दौड़ेगा और शरीरमें गर्मी भी बढ़ेगी। जो व्यक्ति निरोग हैं वे स्नानोपरांत एक घंटा आराम किए बिना ही अपने काममें लग जावें तो कुछ हर्ज नहीं। बाष्पस्नान तथा यह स्नान भोजनसे पहले तो चाहे जब कर ले, परन्तु भोजनके पीछे कमसे कम तीन घंटेके बाद करना चाहिए। यह प्रयोग करके सोजानेसे रातको नींद भी खूब अच्छी तरह आती है।

यह प्रयोग करते समय पसीना खूब अच्छी तरह आवे तथा खूनमें पैदा हुई जलकी कमी पूरी हो जाय, इसलिए प्रयोग करनेसे पहले अथवा प्रयोगके चलते रहने पर भी एक एक प्याला अथवा प्यास होय तो इससे भी अधिक जल थोड़ी थोड़ी देरमें पी लेना लाभदायक है। प्रयोगके उपरान्त ठंडे जलसे स्नान करनेमें जिन्हें हिचक लगती हो वे थोड़े गुनगुने पानीसे स्नान करें। परन्तु ठंडे जलसे स्नान करना परम गुणकर मालूम हुआ।

इस प्रयोगके विषयमें डाक्टर स्टाकहाम कहते हैं कि निरोग मनुष्यको होनेवाले रोगोंको रोकनेके लिए यह गर्म वायुका स्नान अठवाड़ेमें कमसे कम एक बेर अवश्य करना चाहिए। जो व्यक्ति रोगी हों उन्हें अपने रोगकी न्यूनाधिक अवस्थाके अनुसार नित्य, दूसरे दिन या तीसरे दिन यह स्नान करना उचित है। इससे दुर्बलता नहीं आवेगी। बल्कि अशक्त रोगी भी इस स्नानसे बलवान् होते जायँगे। पहली ही बार मैल निकल जानेसे कदाचित् रोगीको यह मालूम पड़ता कि शरीरमें कमजोरी आगई है। परन्तु कुछ ही

घंटोंके उपरांत ऐसा मालूम होगा मानों शरीरमें अधिक शक्ति आगई हो। स्वस्थावस्थामें तथा निरोग अवस्थामें दोनों ही दशाओंमें यह प्रयोग लाभ दायक है।

१ इस प्रयोगसे शरीरकी चमडीका रंग निखरकर स्वच्छ हो जाता है और चमडीकी आरोग्य देनेवाली क्रिया इतनी अधिक बढती है कि दूसरे किसी भी स्नानसे उतनी नहीं बढती। इसके अतिरिक्त इस क्रियासे मल निकाल नेवाली शरीरकी दूसरी इन्द्रियोंका काम भी बहुत हलका हो जाता है।

२ इस स्नानसे शरीरमें रुधिरकी गति बराबर होने लगती है, और यदि किसी जगह रुधिरकी गाँठ पड गई हो तो वह खुल जाती है।

३ रुधिरको शुद्ध करनेका यह सबसे सरल और सबसे अधिक लाभ पहुँचानेवाला उपाय है। रुधिरके सम्पूर्ण मैलको साफ करनेके लिए यह स्नान रामबाणके समान अव्यर्थ है।

४ इस स्नानसे ज्ञानतंतु भी शान्त और स्वस्थ हो जाते हैं और मस्तिष्क ठंडा और ताजा हो जाता है।

शरीरका रुधिर बिगड जानेके कारण उत्पन्न हुए सम्पूर्ण रोगोंमें, शरीरके किसी अंगके सूज जानेकी अवस्थामें और शरीरकी त्वचाका व्यापार मन्द पड जानेकी दशामें भी यह गर्म वायुका स्नान अवश्य ही और बहुत अधिक लाभ पहुँचाता है। जब किसीके उदर चढ गया हो तब, चर्मरोगमें, राजयक्ष्मामें, त्वचाके रोगोंमें, विषम ज्वरमें, इकतरा बुखारमें, खाँसीमें, शुक्रमेहमें, कफकी बीमारियोंमें, टाकेके समान एक प्रकारकी व्याधि (croup) में, जोडोंके दर्दमें, सिरके दर्दमें, यकृत् और मूत्राशयके रोगोंमें, पुरानी खाँसीमें, पुराने अतिसारमें, और भी अनेक रोगोंमें यह स्नान परम लाभदायक है। ठंड देकर चढनेवाले बुखारमें भाफ स्नानसे पहले इस गर्मवायुके स्नानसे अच्छी तरह सारे शरीरसे पसीना निकाल देना चाहिए। तीन चार बेर यह प्रयोग किया जाय और दूसरा कोई उपाय न किया जाय तो भी बुखार अवश्य दूर हो जायगा। भयंकर गठिया रोगमें इस प्रयोगके समान लाभ पहुँचानेवाली कोई दूसरी औषधि सारे औषधि-शास्त्रमें नहीं है। इस रोगमें प्रतिदिन यह स्नान करना चाहिए। बहुतोंको दिनमें दो बेर स्नान करनेसे भी इस रोगमें लाभ पहुँचा है। गर्भिणी स्त्रियोंको भी यदि ऊपर कही गई व्याधियोंमेंसे कोई व्याधि हो तो इस स्नानकी क्रियासे अवश्य लाभ पहुँचेगा।

इस यातका विल्कुल भी भय न करना चाहिए कि गर्भिणी स्त्रीको इस क्रियासे कुछ हानि पहुँचेगी। सैकड़ों गर्भिणी स्त्रियोंने ठीक नवें महीने तक अठवाड़ेमें एक या दो येर यह प्रयोग करके लाभ उठाया है।

डाक्टर केलोग भी इस गर्मवायुके स्नानकी इतनी ही प्रशंसा करते हैं। उनका कहना है कि वाष्प स्नानसे जितने लाभ होते हैं उतने ही लाभ इस गर्म वायुके स्नानसे भी होते हैं, और प्रत्येक व्यक्ति विना विशेष खर्चके बड़ी सुगमताके साथ अपने घर पर इस प्रयोगकी व्यवस्था कर सकता है। पसीना लानेके लिए इससे बढ़कर अच्छा दूसरा कोई उपाय नहीं है। मैलेरिया बुखार, आतशक (Syphilis) और पागल कुत्तेका ज़हर शरीरमेंसे निकालनेके लिए यह प्रयोग परम उत्तम उपाय है।

जो व्यक्ति बेहद मोटे होकर बेडौल शरीरवाले होगए हों उनकी देहकी चर्बी भी इस प्रयोगसे कम हो जायगी और उनका शरीर सुडौल हो जायगा।

पसीनेके रूपमें शरीरके भीतरसे मल निकालनेके ऊपर जो दो उपाय बतलाए गए हैं उनके ही समान एक और भी तीसरा उपाय है। इस तीसरे उपायका नाम है 'धूप-स्नान'। जिस दिन खूब साफ धूप निकली हो ऐसे दिन, अथवा गर्मीकी ऋतुमें यह प्रयोग अच्छी तरह हो सकता है। इस प्रयोगकी विधि निम्न लिखित है —

गजीका एक अँगोछा या दूसरा कोई ओछा कपड़ा पहनकर जहाँ हवा बिलकुल न आती हो, ऐसी जगहमें एक दरी बिछाकर धूपमें लेट जाय। पैरोंमें अगर मोजे हों तो उतार देना चाहिए, और स्त्रियोंको अपनी चोटी खोलकर अलग कर देना चाहिए। मस्तक और मुखको धूपकी तेजीसे बचानेके लिए एक बड़ासा केलेका पत्ता मुँहपर डाल लेना चाहिए। यदि यह न मिले तो चाहे जिस वृक्षके छोटे छोटे हरे पत्तोंकी पत्तलसी बनाकर उससे मस्तक और मुँह ढक लेना चाहिए।

इसी तरह पेटको भी एक पत्तेसे पत्ते ढक लेना चाहिए। इस प्रकार आधे घंटेसे लेकर डेढ़ घंटे तक धूपमें लेटे रहना चाहिए। जिन रोगियोंको धूपमें लेटने पर सुगमताके साथ पसीना न आता हो, उन्हें यदि विशेष कष्ट न मालूम हो तो डेढ़ घंटेसे भी अधिक धूपमें लेटे रहना चाहिए। परन्तु बहुत तेज धूपमें अधिक समय तक यह प्रयोग करना उत्तम नहीं है।

इस प्रयोगके आरम्भमें धूपमें लेटनेके कारण जिनका सिर घूमने लगे अथवा जिन्हें चक्कर आने लगें, उन्हें चाहिए कि आरम्भमें थोड़े ही समय तक धूपमें लेटें। जिन्हें बड़ी कठिनाईके साथ पसीना आता हो अथवा जिन्हें बिल्कुल ही न आता हो, उन्हें यह बात खास तौरसे ध्यानमें रखनी चाहिए।

इस प्रयोगके उपरांत शरीरके भीतरसे छूटनेवाले मैलको बाहर निकालनेके लिए यदि हो सके तो कटिप्रदेशको रगड़कर ठंढे पानीवाला स्नान करना चाहिए। इस ठंढे पानीके स्नानके अनंतर जिन नाजुक प्रकृतिवाले रोगियोंके शरीरमें आसानीके साथ गर्मी न आए, उन्हें चाहिए कि वे सिरको किसी कपड़ेसे ढककर धूपमें बैठें अथवा टहलें। नाजुक प्रकृतिके लोगोंको यह प्रयोग कुछ दुष्कर अवश्य होगा, इस लिए आरम्भमें ही उन्हें यह प्रयोग नहीं करना चाहिए।

इस प्रयोगके करनेके लिए सबसे उत्तम समय सुबह दस बजेसे लेकर तीसरे पहर तीन बजे तक है। भोजन करनेके बाद तुरत भी यह प्रयोग किया जा सकता है, परन्तु यदि भोजन ठीक ठीक पचनेमें विघ्न न पड़े, इस लिए एक घंटा ठहरकर किया जाय तो उत्तम।

धूपमें बिल्कुल नंगे होकर लेट जानेसे कुछ लाभ नहीं होगा।—चद्दर कंबल अथवा हरे पत्तोंसे सारे शरीरको ढककर धूपमें लेटनेसे शरीरसे बहुत अधिक पसीना छूटने लगेगा। धूप-स्नानके उपरांत कटिप्रदेशको रगड़कर यदि ठंढे जलसे स्नान नहीं किया जायगा तब भी जितना लाभ होना चाहिए उतना नहीं होगा। क्यों कि सूर्यके तापसे जो मैल शरीरके भीतरसे छूटकर बहेगा उसे अच्छी तरह बाहर निकाल देनेके लिए ठंढे जलका स्नान परम आवश्यक है।

आरोग्य बनाए रखनेके लिए इस बातकी बड़ी भारी आवश्यकता है कि सूर्यके प्रकाशमें रहा जाए। जहाँ सूर्यका प्रकाश जरा भी नहीं पहुँचता है ऐसी पहाड़ी गुफाओंमें अथवा घाटियोंमें पेड़ पौधे उगते ही नहीं। मनुष्योंके सम्बन्धमें भी यही बात है। आल्प्स पहाड़की गहरी उपत्यकाओंमें सूर्यका प्रकाश दिनभरमें केवल कुछ ही घंटोंके लिए पड़ता है। इसका परिणाम यह होता है कि उन स्थलोंमें जो मनुष्य रहते हैं वे कनमाला आदि अनेक प्रकारके रोगोंसे पीड़ित रहते हैं। वहाँकी मावेंट ब्लांकी गहरमें घुमही दिखाई

देती है, और पुरुषोंका अधिक भाग पागल होता है। परन्तु वहाँसे पहाडके थोड़े ही ऊपर चढ़कर जो स्थान है वहाँके रहनेवाले तन और मन दोनों ही प्रकारसे स्वस्थ रहते हैं। नीचेके स्थानोंमें रहनेवाले लोग ज्यों ही ऊपरके स्थानोंमें चले जाते हैं त्यों ही उनके रोग दूर हो जाते हैं और स्वास्थ्य सुधर जाता है। इससे यह बात सिद्ध हुई कि आरोग्य पर सूर्यके प्रकाशका भी बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है।

पेटमें इकट्ठे हुए मलको बाहर निकालनेके लिए और इसतरह पेटमें इकट्ठी हुई गर्मीको कम करनेके लिए ऊपर कहे गये उपायोंके साथ साथ पेटमें पट्टी बाँधनेका उपाय भी परम लाभदायक है। जिस तरह राईका प्लास्टर होता है उसी तरह उत्तम मिट्टीको पानीमें सानकर उसे कपड़ेकी एक पट्टीपर फैला देना चाहिए और यह पट्टी पेटपर बाँध लेना चाहिए। घावपर अथवा सूजनपर भी यह पट्टी बाँध लेनी लाभदायक है।

शरीरमें इकट्ठे हुए मैलको बाहर निकालनेके और भी कितने ही उपाय हैं। परन्तु पुस्तकका विस्तार जितना सोचा था उससे कहीं अधिक बढ़ गया है, और ऊपर कहे गए उपाय भी रोगोंको टालनेके लिए काफी हैं। इस लिए अब यह प्रसंग यहीं समाप्त किया जाता है।

ये उपाय सब रोगोंको दूर करनेवाले हैं यह बात है तो सत्य अवश्य किंतु जिन रोगियोंकी दशा बहुत अधिक हीन हो गई है उन्हें भी इनसे लाभ पहुँचेगा यह बात निश्चयपूर्वक नहीं कही जा सकती। ऐसे रोगियोंको तो संभव है कि दूसरी ओषधियाँ भी लाभ न पहुँचायें। लेकिन यह तो निश्चयके साथ कहा जा सकता है कि दूसरी ओषधियाँ जब बिलकुल व्यर्थ सिद्ध हो चुकी हों तब ये ऊपर कहे गए उपाय रोगकी पीड़ा बहुत अंशोंमें कम कर देंगे।

इस पुस्तकमें यह उपयोगी विषय बहुत ही संक्षेपमें लिखा गया है। स्वतंत्र पुस्तकमें जिस तरह अनेक मुद्दाओंका विस्तार हो सकता है, वैसा विस्तार इसमें नहीं होसका। फिर भी यदि बुद्धिमान् व्यक्ति सावधानीके साथ इन प्रयोगोंको आजमाकर देखेंगे तो शरीरमें लगी हुई रोगबाधाको तथा आगे होनेवाली रोगपीडाको दूर करनेमें उन्हें अवश्यमेव सफलता प्राप्त होगी।

मैल शरीरमेंसे एक बार निकल जानेके उपरांत फिर भी इकट्ठा न हो इस लिए कैसा भोजन नित्य करना चाहिए यह बात भी इस संक्षिप्त निबंधमें सन्निविष्ट कर देनेका पहले विचार था। किंतु पुस्तिकाका विस्तार अधिक होजानेके कारण यह विषय छोड़ दिया गया है। सबपसे इस समय केवल इतना ही समझ लेना चाहिए कि जिस भोजनमें नमक, मिर्च और अन्यान्य मसाले बहुत कम परिमाणमें पड़े हों ऐसा सादा भोजन किया जाय।

जो लोग इन प्रयोगोंके सम्बन्धमें और अधिक विस्तारके साथ जाननेकी इच्छा रखते हों वे कृपापूर्वक डॉक्टर केलोग, डॉक्टर लुईकूहन, डॉक्टर नीर डॉक्टर निकासन, डॉक्टर ट्राल, आदि विद्वानोंके रचे हुए अँगरेजी ग्रन्थोंका अनुशीलन करें।
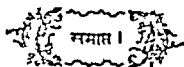
प्राकृतिक चिकित्सा-विज्ञानकी पुस्तकें ।

संसारमें दिनपर दिन सैकड़ों नइ नई दवाइयाँ ईजाद होती जाती हैं, डाक्टरों और वैद्योंकी संख्या बेतरह बढ़ती जाती है, फिर भी रोग कम नहीं होते, बल्कि रोगियोंकी संख्या भी बराबर बढ़ती जाती है। यह देखकर बहुतसे पाश्चात्य विद्वानोंको डाक्टरी और वैद्यकीय चिकित्सा-पद्धतिपर अश्रद्धा हो गइ है और वे रोगोंको प्राकृतिक उपायोंसे बिना किसी प्रकारकी दवा-दारूके आराम करनेके प्रयत्नमें लग गये हैं और इसके फलस्वरूप उन्होंने अनेक ग्रन्थ लिख डाले हैं। हिन्दीमें इस विषयके ग्रन्थोंका अभाव देखकर हमने उक्त ग्रन्थोंके आधारसे नीचे लिखी पुस्तकें लिखवाकर प्रकाशित की हैं। यदि हिन्दीभाषाभाषियोंने इनकी कदर की तो हम आगे इस विषयके और भी अनेक ग्रन्थ प्रकाशित करनेकी इच्छा रखते हैं।

१ उपवास चिकित्सा। यह भी प्राकृतिक चिकित्सा-सम्बन्धी ग्रन्थ है। इसमें बतलाया गया है कि उपवास नीरोग होनेकी सबसे अच्छी दवा है। भयंकरसे भयंकर और असाध्यसे असाध्य बीमारियाँ उपवास करनेसे आराम हो सकती हैं। क्यों हो सकती हैं और कैसे हो सकती हैं, इन प्रश्नोंका उत्तर खूब विस्तारसे दिया गया गया है। जिन प्रसिद्ध प्रसिद्ध लोगोंने उपवाससे रोग अच्छे किये हैं, उदाहरण भी दिये गय हैं। स्वास्थ्यसम्बन्धी और भी सैकड़ों आवश्यक बातोंपर इसमें विचार किया गया है। जो उपवास नहीं कर सकते हैं, उनके भोजन और स्नानोंकी भी इसमें सैकड़ों बातें हैं। प्रत्येक आरोग्याभिलाषीको यह ग्रन्थ पढ़ना चाहिए। थोड़े ही समयमें यह दूसरी बार छप गया है। मू० ।॥)

२ योग चिकित्सा। योगकी बहुत ही सरल क्रियाओंसे तमाम रोगोंको दूर करनेके उपाय इस पुस्तकमें बतलाये गये हैं। उत्तम पुस्तक है। मू० =)

३ दुग्ध चिकित्सा। केवल दूधके सेवनसे और सब प्रकारका भोजनपान बन्द कर देनेसे तरह तरहके रोग आराम हो जाते हैं और उत्तम स्वास्थ्य हो जाता है। इस पुस्तकमें वैज्ञानिक पद्धतिसे इसी बातको पुष्ट किया है और दूधका सेवन किस प्रकार करना चाहिए, वह कैसा, कितना, कब और किस रीतिसे पीना चाहिए यह अच्छी तरह समझाया है। मू० =)

४ सुगम चिकित्सा। एक पाश्चात्य विद्वानकी पुस्तकके आधारसे लिखी गई है। इसमें केवल खानपीनके नियमोंमें और दिनचर्यामें सावधानता तथा संयम रखनेसे अनेक बड़े बड़े रोग आराम हो जाते हैं। इस बातको अच्छी तरहसे समझाया और नीरोग रहनेके सहज उपाय बतलाये हैं। मू० =)

पता—मैनेजर, हिन्दी-ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, पो० गिरगांव-बम्बई।

प्रकीर्णक पुस्तकमाला २०।

दुग्ध-चिकित्सा।

लेखक—

रामनारायण शर्मा।

दुग्ध-चिकित्सा

अर्थात्

दूधके सेवनसे सब प्रकारके रोगोंको

दूर करनेके उपाय ।

स्वर्गीय अध्यात्मवेत्ता छोटालाल जीवनलालके

गुजराती निबन्धका अनुवाद ।
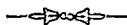
अनुवादकर्त्ता—

पण्डित रामनारायण शर्मा ।

प्रकाशक—

हिन्दी-ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय,

हीराबाग, बम्बई ।

कार्तिक, वि० सं० १९८४ ।

अक्टूबर, १९२७ ई०।

तृतीयावृत्ति] [मूल्य दो आने

प्रकाशक
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, पो० गिरगांव-बम्बई।

मुद्रक
मंगेश नारायण कुलकर्णी,
कर्नाटक प्रेस,
३१८ ए, ठाकुरद्वार, बंबई २

दुग्ध-चिकित्सा ।

दूधसे शरीरकी सब प्रकारकी व्याधियोंको दूर करनेकी विधिका नाम 'दुग्ध-चिकित्सा' है। पाश्चात्य देशोंमें इसी चिकित्साके द्वारा आज अनेक असाध्य रोगी चंगे किये जा रहे हैं। एक सुप्रसिद्ध विदुषी अँगरेज महिला श्रीमती एला ह्वीलर विल्कोक्स (Ella Wheeler Wilcox) का कथन है कि "हृदयसे सम्बन्ध रखनेवाले रोगोंको (organic heart trouble) छोड़कर कोई भी शारीरिक व्याधि ऐसी नहीं हैं जो आग्रहपूर्वक दूधके सेवनसे न मिट जाय। यहाँ तककी राजयक्ष्मा और विद्रधि (Cancer) जैसे भयकर रोग भी दूधकी चिकित्सासे चले जाते हैं।"

दूध व्याधि मात्रको दूर करनेवाला है। अब हम यह बतलाना चाहते हैं कि व्याधियोंको मेटनेके लिए दूधका सेवन किस प्रकार किया जाना चाहिए।

यदि तुम्हारा शरीर दुर्बल हो गया हो, यदि तुम्हें अन्न न पचता हो और शरीरमें शुद्ध खून न बनता हो, यदि विविध प्रकारके रोगोंकी वजहसे तुम्हारा शरीर दुखी रहता हो, तो शरीरको पुनः रोगरहित और बलवान् बनानेके लिये तुम्हें चाहिए कि ऐसा सादा और सहजमें पचजानेवाला भोजन करो जिसमें मिर्च मसाला आदि तेज चीजें न पड़ी हों।

अति सुगमताके साथ पचनेवाला और शरीरमें शीघ्र पुष्टि लानेवाला दूधको छोड़कर दूसरा कोई भोजन नहीं है। जिन बालकोंकी पाचन-

शक्ति यथेष्ट बलवती नहीं होती है उन्हें दूधका ही भोजन दिया जा है। क्योंकि शरीरको पुष्ट बनानेवाले सभी मुख्य मुख्य तत्व दूधमें रहते हैं। माताके स्तनसे दूध पीनेवाले जितने भी प्राणी हैं वे दूधको भोजनकी रीतिपर काममें लानेसे अत्यंत आश्चर्यमें डालनेवाली वृद्धिको प्राप्त होते हैं।

बहुतसे लोगोंका खयाल है कि बड़ी उम्रके लोगोंके लिए दूध खुराक नहीं हो सकता, बल्कि बालकोंके लिए ही यह उपयोगी खुराक है। अपने इस खयालको ठीक बतलानेके लिए वे यह कहावत सुना करते हैं कि " Milk for babies, whisky for fools, and water for men " अर्थात दूध बच्चोंके लिए, शराब मूर्खोंके लिए और जल मनुष्योंके लिए है। परंतु उनकी यह कहावत सर्वथा असम्पूर्ण सिद्ध की जा सकती है। क्योंकि अनुभवसे यही सिद्ध हुआ है कि जिन लोगोंके भोजनमें अधिकांश दूधका रहता है उनका शरीर ऐसा बलसम्पन्न और रोगरहित होता है कि देखनेवाले आश्चर्यसे चकित रह जाते हैं। उनकी आयु भी अधिक होती है। यह बात अच्छी तरह प्रसिद्ध है कि ऊँटनी तथा बकरीके दूधका भोजन पाकर रहनेवाले और निरोगी शरीरके होते हैं। युरोपमें बल्गारिया नामका एक प्रदेश है। इस प्रदेशके निवासियोंका मुख्य भोजन दूध ही होता है। युरोपके सभी देशोंके निवासियोंकी अपेक्षा बल्गारिया देशके निवासी अधिक आयुवाले होते हैं। हिसाब लगानेसे मालूम हुआ है कि हजार पीछे एक व्यक्तिकी आयु १०० वर्षके लगभग होती है।

बहुतसे लोग यह भी बार बार कहा करते हैं कि दूध हमें मुआफिक ही नहीं आता। दूध यदि मुआफिक न आवे, तो इसमें दूधका दोष कुछ भी नहीं। बल्कि जिन्हें दूध मुआफिक न आता हो, उन्हें

समझ लेना चाहिए कि हमसे स्वास्थ्य तथा आरोग्यके नियमोंका ठीक ठीक पालन नहीं हुआ है। एक मनुष्यने एकबार कहा था कि मैं अपने ४० वर्षके अनुभवसे यह बतलाता हूँ कि दूध पेटमें जाकर वायु पैदा करता है और इस कारण यह बड़ी उमरके मनुष्योंकी खुराक नहीं है। दूधकी उपयोगिताके विरुद्ध यह कोई माननेयोग्य प्रमाण नहीं है। जाँच करनेपर मालूम हुआ कि यह ४० वर्षके अनुभवकी बात कहनेवाला मनुष्य रोटीका ग्रास मुँहमें देकर उसे अच्छी तरह चबाये बिना ही दूधके साथ घोटींके तले उतार लिया करता था। मुखमें दिया हुआ ग्रास यदि दाँतोंसे खूब अच्छी तरह न चबाया जाय और उसमें मुँहकी लाळ न मिलाई जाय तो वह पेटमें पहुँचकर पचेगा भी नहीं और वायु भी उत्पन्न करेगा। दूधके सेवनसे दस्त आने लगनेका भी ऐसा ही कोई कारण हुआ करता है। नहीं तो उचित नियमके साथ यदि दूधका सेवन किया जाय तो दुर्बलसे दुर्बल पेटवाला भी उसे हजम कर सकेगा और उसके हजम हो जानेपर शरीरमें नया खून तैयार हो सकेगा।

दूधको उत्तम प्रकारका भोजन समझनेका और भी एक सबल कारण है। वह यह कि उसमें 'यूरिक एसिड' (Unc acid) नामका विषैला तत्त्व बिलकुल नहीं होता। बहुतसे लोगोंके मूत्रमें अत्यंत अधिक दुर्गंध आती है। इसका कारण यही है, कि उनके शरीरमें 'यूरिक एसिड' बहुत अधिक सचित रहता है। यही 'यूरिक एसिड' उनके मूत्रमें मिलकर बाहर निकलता है और मूत्रको अत्यधिक दुर्गंधवाला बना देता है। दूध पीनेवाले बालकोंके मूत्रमें दुर्गंध नहीं होती है, क्योंकि दूधमें 'यूरिक एसिड' बिलकुल ही नहीं होता। अतएव दूध 'यूरिक एसिड' नामक विषैले पदार्थसे रहित भोजन है। जिनके शरीरमें 'यूरिक एसिड'

बहुत अधिक इकट्ठा हो गया हो, व यदि दीर्घ काल तक दूधका सेवन करें तो उनका यह सारा संचित विष शरीरसे निकल जाय, तब गठिया और दूसरे प्रकारकी उनकी बीमारियाँ भी दूर हो जायँ।

दूधके सेवन करनेवालोंको दूधके सेवनसे सम्बन्ध रखनेवाली सब बातोंको अच्छी तरह समझकर उसका सेवन शुरू करना चाहिए। बहुतसे व्यक्ति जल्दीमें आकर सेवनके नियमोंको अच्छी तरह ध्यानमें नहीं रखते और कौनसी बात लाभदायक है और कौनसी नहीं, यह भी अच्छी तरह नहीं देखते। पीछेसे जब अपनी मूर्खतासे हानि उठाते हैं तो गुण करनेवाले पदार्थका ही दोष बताते हैं। इसलिए इस पुस्तिकामें जो जो नियम लिखे गये हैं उनको अच्छी तरह समझकर दूधका सेवन करना चाहिए ऐसा करनेसे उन्हें बहुत लाभ होगा।

इन नियमोंमेंसे कितने ही नियम ऐसे मिलेंगे जो परम विचित्र मालूम पड़ेंगे, तथा बुद्धिमान व्यक्ति उनकी उपयोगितामें भी संदेह करेंगे। परन्तु अनुभवके द्वारा जो बातें उपयोगी और लाभदायक सिद्ध हो चुकी हैं उनके विषयमें अनुमानके द्वारा कही गई किसी भी बातका कुछ मूल्य नहीं। दूधके सेवनके जो नियम हैं वे सैकड़ों और हजारों मनुष्योंके अनुभवसे उपयोगी और लाभदायक सिद्ध हो चुके हैं। अमेरिकामें दूधका सेवन कराके रोगोंको मिटानेवाली अनेक संस्थाएँ हैं। उनमें [illegible] दूध पिला पिलाकर ही आराम किया जाता है। इन [illegible] और हजारों रोगियोंके [illegible] गये हैं, किन्तु [illegible] दूधका ही इलाज होता है। जब तक रोगी बिलकुल अच्छा नहीं हो जाता तब तक [illegible] पीने [illegible] दूध [illegible] जाता है। [illegible] नहीं हो, उसके [illegible] 'गुड़-गुड़' [illegible]

निकल जाय, किन्तु फिर भी रोगीके पूर्ण निरोग हो जाने तक इन संस्थाओंमें दूध—केवल दूध—ही दिया जाता है। इसी चिकित्सासे अनेक रोगी इन संस्थाओंमें नित्य चंगे किये जाते हैं। अतएव बड़े बड़े शक्की-मिजाज (शंकाशील) विद्वानोंको भी इस बातका निश्चय हो चुका है कि दूधकी चिकित्सा रोगोंके दूर करनेके लिए 'हुक्मी इलाज' है।

परन्तु दूधके सेवन करनेमें ऊपर कहे हुए आरोग्यसम्बंधी नियमोंमेंसे कोई भी नियम भंग नहीं करना चाहिए। दूधके ऊपर रोगीकी अरुचि उत्पन्न हो जाय, या पेटमें गया हुआ दूध उल्टी द्वारा बाहर हो जाय, इस दशातक तो पहुँचना ही नहीं चाहिए। जब ऐसे लक्षण प्रगट होने लगें तो समझ लेना चाहिये कि रोगीके पेटमें अम्ल तत्त्व (Acid) नहीं है। अतएव सबसे पहले रोगीके पेटमें अम्ल तत्त्व उत्पन्न करना होगा और तब फिर दूधका इलाज आरंभ करना होगा। अम्ल तत्त्व किसतरह उत्पन्न किया जाता है, यह बात आगे लिखी जायगी।

जो लोग दूधका सेवन शुरू करें उन्हें ध्यानमें रखना चाहिए कि दूधके अतिरिक्त और कुछ भी भोजन उन्हें नहीं करना होगा। यह बात अच्छी तरह समझ लेनेकी है कि दूध पूरा भोजन है और उसमें शरीरको पुष्ट करनेवाले सभी आवश्यक तत्त्व मौजूद हैं। अतएव दूसरी खुराकके साथसाथ जो बहुतसा दूध पिया जायगा तो दूधमें मिले हुए पोषक तत्त्व परिमाणमें घट बढ़ जायँगे—बराबर नहीं रहेंगे। दूधके अतिरिक्त दूसरी खुराकमें यदि नाइट्रोजन और कार्बन अधिक होंगे तो वे शरीरकी नसोंमें भर जायँगे, जिससे शरीरके अन्यान्य अवयवोंपर आवश्यकतासे अधिक बोझ हो जायगा। अतएव रोगको जल्दी मिटानेके लिए और आरोग्य लाभ करनेके लिए उचित यही है कि जितने

गमीरता छोड़ देनी चाहिए। साराश यह कि बलवान् और निरोग बालक जिस तरह अपना बालोचित आचरण रखते हैं, उसी प्रकार जहाँतक बने स्वास्थ्य और आरोग्यकी कामना करनेवालोंको अपना भी आचरण रखना चाहिए।

दूधका सेवन जिन दिनोंमें चल रहा हो, उन दिनोंमें यदि हो सके तो पूरा पूरा विश्राम किया जाय। क्योंकि विश्राम करनेसे अति शीघ्र लाभ होता है। परन्तु यदि रोग अत्यन्त अधिक न हो, तो यह न समझ लेना चाहिए कि इस दूधके इलाजमें आराम करना जरूरी और अनिवार्य ही है। यदि नित्यका कामकाज किया जाय तो कुछ भी हर्ज नहा है। अनेक वार ऐसा भी देखनेमें आवेगा कि इस चिकित्साके चलते हुए अधिक काम करनेकी सामर्थ्य हो जायगी। मुख्य बात ध्यानमें रखनेकी यही है कि मन सदा प्रसन्न रक्खा जाय। दो एक अठवाड़े तक बालकोंकी नाई यदि शय्यापर लेट कर रहा जासके तो लेटे रहना चाहिए। दूधका सेवन करनेके दिनोंमें दो एक अठवाड़े तक कोई काम न किया जाय और केवल चारपाईपर लेटे हुए विश्राम किया जाय, तो शरीर बहुत अधिक पुष्ट होगा और उसमें खून भी खूब अधिक बढ़ेगा। विश्रामके साथ एक या दो अठवाड़ेमें ही जितनी शरीरपुष्टि और खूनकी वृद्धि होगी उतनी काम काज करते रहनेकी दशामें चार या छ अठवाड़ोंमें भी होना दुर्लभ है।

दूधकी चिकित्साके पहले एक, दो या तीन निराहार उपवास कर लेने चाहिए। उपवासके दिनोंमें पाँच सेरसे लेकर सात सेर तक पानी नित्य पी लेना उचित है। उपवास करनेके पीछे दूधकी चिकित्सा आरंभ करनेसे शीघ्र लाभ होता है। परन्तु उपवास करनेमें यदि कष्ट होता हो, तो कष्टपूर्वक उपवास नहीं करना चाहिए। फलके साथ भी उप-

दिनों तक दूधका सेवन रहे उतने दिनों तक दूसरा कोई भी भोजन न दिया जाय।

यदि दूधका सेवन विधिपूर्वक किया जायगा, तो उससे उत्तम लाभ जरूर होगा—बिना हुए रह नहीं सकता। इस लाभको प्राप्त करनेके लिए बालकोंकी नाईं प्रहृष्टचित्त होकर रहना चाहिए। गभीरता और उदासीनता ये दोनों बुढ़ापेके चिह्न हैं। यह बुढ़ापा और कुछ नहीं, केवल एक प्रकारका रोग विशेष है। इसलिये जो कोई आरोग्य और सुखका इच्छुक हो, उसे चाहिए कि बालकोंकी तरह प्रफुल्लचित्त रहकर हँसे, बोले और सदैव अपनी प्रकृति आनन्दित और प्रसन्न रहनेवाली बनावे। बालकोंको जैसे सभी संसार सारयुक्त मालूम होता है—वे जिस तरह सभी वस्तुओंको आशा और श्रद्धाकी दृष्टिसे देखते हैं उसी तरह सुख और आरोग्य चाहनेवाले पुरुषोंको भी देखना चाहिए। सब बातमें शंका और अविश्वास करना छोड़ देना चाहिए और अपनी आत्मापर विश्वास करना चाहिए। सबसे बढ़कर व्यर्थकी बात एक यह होती है कि बहुतसे लोग दुनियाकी फिक्रमें दीवाने बनेहुए फिरा करते हैं। मानों संसारकी व्यवस्था उन्हींके सिरपर है। यों दीवाने होकर कभी परेशान न होना चाहिए। बल्कि निश्चिन्त और निर्द्वंद्व रहना चाहिए। माताकी गोदीमें छोटे छोटे बालक जिसतरह निर्भय और निश्शंक होकर सोते हैं उसी प्रकार हमें भी सकलभुवननायक परमात्माके आश्रयमें निश्शंक और निर्भय होकर रहना चाहिए। भगवान् हमारे दाहिने बाँये सर्वत्र मौजूद हैं। प्रतिक्षण वे हमें अपनी असीम कृपासे रोगरहित करते रहते हैं। इस प्रकारका दृढविश्वास करके सभी दुश्चिन्ताओंको दूर कर देना चाहिए। बालककासा हँसने, खेलने और कूदनेका स्वभाव रखना सीखना चाहिए। जहाँतक बने स्वभावसे

गंभीरता छोड़ देनी चाहिए। साराश यह कि बलवान् और निरोग बालक जिस तरह अपना बालोचित आचरण रखते हैं, उसी प्रकार जहाँतक बने स्वास्थ्य और आरोग्यकी कामना करनेवालोंको अपना भी आचरण रखना चाहिए।

दूधका सेवन जिन दिनोंमें चल रहा हो, उन दिनोंमें यदि हो सके तो पूरा पूरा विश्राम किया जाय। क्योंकि विश्राम करनेसे अति शीघ्र लाभ होता है। परन्तु यदि रोग अत्यन्त अधिक न हो, तो यह न समझ लेना चाहिए कि इस दूधके इलाजमें आराम करना जरूरी और अनिवार्य ही है। यदि नित्यका कामकाज किया जाय तो कुछ भी हर्ज नहीं है। अनेक वार ऐसा भी देखनेमें आवेगा कि इस चिकित्साके चलते हुए अधिक काम करनेकी सामर्थ्य हो जायगी। मुख्य बात ध्यानमें रखनेकी यही है कि मन सदा प्रसन्न रक्खा जाय। दो एक अठवाड़े तक बालकोंकी नाईं यदि शय्यापर लेट कर रहा जासके तो लेटे रहना चाहिए। दूधका सेवन करनेके दिनोंमें दो एक अठवाड़े तक कोई काम न किया जाय और केवल चारपाईपर लेटे हुए विश्राम किया जाय, तो शरीर बहुत अधिक पुष्ट होगा और उसमें रक्त भी खूब अधिक बढ़ेगा। विश्रामके साथ एक या दो अठवाड़ेमें ही जितनी शरीरपुष्टि और रक्तकी वृद्धि होगी उतनी काम काज करते रहनेकी दशामें चार या छ अठवाड़ोंमें भी होना दुर्लभ है।

दूधकी चिकित्साके पहले एक, दो या तीन निराहार उपवास कर लेने चाहिए। उपवासके दिनोंमें पाँच सेरसे लेकर सात सेर तक पानी नित्य पी लेना उचित है। उपवास करनेके पीछे दूधकी चिकित्सा आरंभ करनेसे शीघ्र लाभ होता है। परन्तु उपवास करनेसे यदि कष्ट होता हो, तो कष्टपूर्वक उपवास नहीं करना चाहिए। कष्टके साथ जो उप-

वास किया जायगा उससे लाभ नहीं होगा। उपवाससे शरीरका सारा मल निकल जाता है। अतएव जो अच्छा लगे वह करना चाहिए। 'उपवास करनेसे मुझे नुकसान पहुँचेगा तथा मैं अत्यंत दुर्बल हो जाऊँगा' ऐसी जिनकी धारणा हो उन्हें उपवास न करना ही लाभदायक होगा। मनके निश्चयके साथ आरोग्यका बहुत घनिष्ठ संबंध है, यह बात कभी नहीं भूलना चाहिए। इसलिए बन सके तो अधिकसे अधिक तीन और कमसे कम एक उपवास कर लिया जाय और यदि न बनसके तो बिना उपवासके ही दूधका इलाज शुरू कर दिया जाय।

नियम।

प्रत्येक मनुष्यको प्रतिदिन कितना दूध पीना चाहिए, यह ठीक ठीक निश्चय करना तनिक कठिन काम है। क्योंकि भिन्न भिन्न प्रकृतिके मनुष्य होते हैं। कई व्यक्ति ऐसे मिलेंगे जो एक सेर भोजन सुगमताके साथ कर जायँगे, परन्तु अनेक व्यक्तियोंको पाव सेर भोजन भी अधिक माल्म होता है। यही नियम दूधके संबंधमें भी समझना चाहिए। पुष्ट और दृढ शरीरवालोंको अधिक दूध देना चाहिए और दुर्बल शरीरवालोंको कम। और सबसे अच्छा तो यह है कि अपनी अपनी आवश्यकताको स्वय समझ कर अपने लिए दूधका परिमाण लोग आप ही निश्चित कर लिया करें। अमेरिकामें कितने ही रोगियोंको नित्य २० सेरसे लेकर २५ सेर तक दूध दिया जाता है। एक रोगी ऐसा था जो ३० सेर दूध नित्य पी लिया करता था। एक और दूसरा व्यक्ति ३२॥ सेर दूध तक पहुँच गया था। इससे अधिक दूध पीनेके उदाहरण और नहीं मिले हैं, परन्तु भारतमें इतना अधिक दूध पीनेकी आवश्यकता नहीं है। यहाँ मात्राओं थोड़े परिमाणमें पिया गया दूध जितना लाभदायक होगा उतना अधिक परिमाणमें पिया हुआ नहीं होगा।

दूधका सेवन आरंभ करनेसे पहले यदि उपवास किया गया हो, तो पहले दिन तीन सेरसे अधिक दूध नहीं पीना चाहिए। दूसरे दिन एक सेर और बढ़ाकर चार सेर कर देना चाहिए। इसके उपरान्त जितना हजम हो सके उतना ही दूध बढ़ाया जाय, तो कोई हर्ज न होगा।

यदि सेवन करनेसे पहले उपवास न किये हों, तब भी पहले दि· तीन सेर दूधसे ही शुरू करना चाहिए। बिना पानीका खालिस और शुद्ध दूध लेना चाहिए। भैंसका दूध यदि भारी जान पड़ता हो—पेटमें जाकर हजम न हो सकता हो—तो गायका शुद्ध दूध काममें लाना उचित है। पीनेके लिए जो दूध लिया जाय वह पहले हिला लिया जाय, पीछे चम्मचसे थोड़ा थोड़ा करके आधा सेर दूध एक बेरमें पीना चाहिए। आध सेर दूध पीनेमें ३ मिनिट या ५ मिनिट समय लगाना चाहिए। चम्मचसे डाला हुआ दूध जब मुँहमें पहुँचे तब उसे थोड़ी देर तक मुँहमें रोककर उसमें मुँहकी लार मिलने देना चाहिए। जब थोड़ी लार मिल जाय तब उसे घोंटीमें उतारकर पी जाना चाहिए। जब आधा घंटा बीत जाय तब फिर आध सेर दूध लेकर इसी तरह पीना चाहिए। इसके उपरांत यदि दूधमें रुचि कम न हुई हो, तो आधे घंटे बाद फिर आधसेर दूध पी लिया जाय। इस रीतिपर सबेरे ५ बजेसे ९॥ बजे तक २ सेर दूध पी लिया जा सकता है।

इसके अनंतर एक या दो घंटे तक ठहर कर फिर ऊपर कही हुई रीतिसे दूध पीना शुरू करना चाहिए। यदि मिल सके तो ताजा दूध लेकर काममें लाना चाहिए। नहीं तो फिर सबेरेका लिया हुआ दूध ही काममें लाया जाय। सबेरेका लिया हुआ दूध दो पहर तक कहीं बिगड़ न जाय, इस लिए यदि हो सके तो दूधके लोटेको बर्फमें दबा कर रखना चाहिए। यदि बर्फ न मिल सके तो लोटेके चारों ओर ठंडे

वास किया जायगा उससे लाभ नहीं होगा। उपवाससे शरीरका सारा मल निकल जाता है। अतएव जो अच्छा लगे वह करना चाहिए। 'उपवास करनेसे मुझे नुकसान पहुँचेगा तथा मैं अत्यंत दुर्बल हो जाऊँगा' ऐसी जिनकी धारणा हो उन्हें उपवास न करना ही लाभदायक होगा। मनके निश्चयके साथ आरोग्यका बहुत घनिष्ठ संबंध है, यह बात कभी नहीं भूलना चाहिए। इसलिए बन सके तो अधिकसे अधिक तीन और कमसे कम एक उपवास कर लिया जाय और यदि न बनसके तो बिना उपवासके ही दूधका इलाज शुरू कर दिया जाय।

नियम।

प्रत्येक मनुष्यको प्रतिदिन कितना दूध पीना चाहिए, यह ठीक ठीक निश्चय करना तनिक कठिन काम है। क्योंकि भिन्न भिन्न प्रकृतिके मनुष्य होते हैं। कई व्यक्ति ऐसे मिलेंगे जो एक सेर भोजन सुगमताके साथ कर जायँगे, परन्तु अनेक व्यक्तियोंको पाव सेर भोजन भी अधिक मालूम होता है। यही नियम दूधके संबंधमें भी समझना चाहिए। पुष्ट और दृढ़ शरीरवालोंको अधिक दूध देना चाहिए और दुर्बल शरीरवालोंको कम। और सबसे अच्छा तो यह है कि अपनी अपनी आवश्यकताको स्वयं समझ कर अपने लिए दूधका परिमाण लोग आप ही निश्चित कर लिया करें। अमेरिकामें कितने ही रोगियोंको नित्य २० सेरसे लेकर २५ सेर तक दूध दिया जाता है। एक रोगी ऐसा था जो ३० सेर दूध नित्य पी लिया करता था। एक और दूसरा व्यक्ति ३२॥ सेर दूध तक पहुँच गया था। इससे अधिक दूध पीनेके उदाहरण और नहीं मिले हैं, परन्तु भारतमें इतना अधिक दूध पीनेकी आवश्यकता नहीं है। यहाँ वालोंको थोड़े परिमाणमें पिया गया दूध जितना लाभदायक होगा उतना अधिक परिमाणमें पिया हुआ नहीं होगा।

दूधका सेवन आरंभ करनेसे पहले यदि उपवास किया गया हो, तो पहले दिन तीन सेरसे अधिक दूध नहीं पीना चाहिए। दूसरे दिन एक सेर और बढ़ाकर चार सेर कर देना चाहिए। इसके उपरान्त जितना हजम हो सके उतना ही दूध बढ़ाया जाय, तो कोई हर्ज न होगा।

यदि सेवन करनेसे पहले उपवास न किये हों, तब भी पहले दि॰ तीन सेर दूधसे ही शुरू करना चाहिए। बिना पानीका ख्वालिस और शुद्ध दूध लेना चाहिए। भैंसका दूध यदि भारी जान पड़ता हो—पेटमें जाकर हजम न हो सकता हो—तो गायका शुद्ध दूध काममें लाना उचित है। पीनेके लिए जो दूध लिया जाय वह पहले हिला लिया जाय, पीछे चम्मचसे थोड़ा थोड़ा करके आधा सेर दूध एक बेरमें पीना चाहिए। आध सेर दूध पीनेमें ३ मिनिट या ५ मिनिट समय लगाना चाहिए। चम्मचसे डाला हुआ दूध जब मुँहमें पहुँचे तब उसे थोड़ी देर तक मुँहमें रोककर उसमें मुँहकी लार मिलने देना चाहिए। जब थोड़ी लार मिल जाय तब उसे घोंटीमें उतारकर पी जाना चाहिए। जब आधा घंटा बीत जाय तब फिर आध सेर दूध लेकर इसी तरह पीना चाहिए। इसके उपरात यदि दूधमें रुचि कम न हुई हो, तो आधे घंटे बाद फिर आधसेर दूध पी लिया जाय। इस रीतिपर सबेरे ५ बजेसे ९॥ बजे तक २ सेर दूध पी लिया जा सकता है।

इसके अनतर एक या दो घंटे तक ठहर कर फिर ऊपर कही हुई रीतिसे दूध पीना शुरू करना चाहिए। यदि मिल सके तो ताजा दूध लेकर काममें लाना चाहिए। नहीं तो फिर सबेरेका लिया हुआ दूध ही काममें लाया जाय। सबेरेका लिया हुआ दूध दो पहर तक कहीं बिगड़ न जाय, इस लिए यदि हो सके तो दूधके लोटेको बर्फमें दबा कर रखना चाहिए। यदि बर्फ न मिल सके तो लोटेके चारों ओर ठंडे

वास किया जायगा उससे लाभ नहीं होगा। उपवाससे शरीरका सा
मल निकल जाता है। अतएव जो अच्छा लगे वह करना चाहिए
'उपवास करनेसे मुझे नुकसान पहुँचेगा तथा मैं अत्यंत दुर्बल
जाऊँगा' ऐसी जिनकी धारणा हो उन्हें उपवास न करना ही लाभद
यक होगा। मनके निश्चयके साथ आरोग्यका बहुत घनिष्ट संबंध है
यह बात कभी नहीं भूलना चाहिए। इसलिए बन सके तो अधिक
अधिक तीन और कमसे कम एक उपवास कर लिया जाय और यदि
न बनसके तो बिना उपवासके ही दूधका इलाज शुरू कर दिया जाय

नियम।

प्रत्येक मनुष्यको प्रतिदिन कितना दूध पीना चाहिए, यह ठीक ठी
निश्चय करना तनिक कठिन काम है। क्योंकि भिन्न भिन्न प्रकृतिके
मनुष्य होते हैं। कई व्यक्ति ऐसे मिलेंगे जो एक सेर भोजन सुगमताके
साथ कर जायँगे, परन्तु अनेक व्यक्तियोंको पाव सेर भोजन भी अधि
मालूम होता है। यही नियम दूधके संबंधमें भी समझना चाहिए। पु
और दृढ़ शरीरवालोंको अधिक दूध देना चाहिए और दुर्बल शरीर
लोंको कम। और सबसे अच्छा तो यह है कि अपनी अपनी आवश्य
कताको स्वय समझ कर अपने लिए दूधका परिमाण लोग आप
निश्चित कर लिया करें। अमेरिकामें कितने ही रोगियोंको नित्य २
सेरसे लेकर २५ सेर तक दूध दिया जाता है। एक रोगी ऐसा था जो
३० सेर दूध नित्य पी लिया करता था। एक और दूसरा व्यक्ति ३२
सेर दूध तक पहुँच गया था। इससे अधिक दूध पीनेके उदाहरण भी
नहीं मिले हैं, परन्तु भारतमें इतना अधिक दूध पीनेकी आवश्यकता
नहीं है। यहाँ वालोंको थोड़े परिमाणमें पिया गया दूध जितना लाभ
दायक होगा उतना अधिक परिमाणमें पिया हुआ नहीं होगा।

यहाँपर यह बात बता देना आवश्यक है कि दूध पीनेके लिए ऊपर जो समयका प्रोग्राम दिया गया है, ठीक उसी प्रोग्रामके अनुसार कार्य करना कुछ जरूरी नहीं है। अपने सुभीतेके अनुसार उक्त प्रोग्राममें जो चाहे वे फेरफार भी कर सकते हैं। मुख्य बात केवल यही ध्यानमें रखनेकी है कि आधे आधे घंटेके उपरांत आधा आधा सेर दूध पिया जाय, और एक दममें गट गट करके नहीं बल्कि थोड़ा थोड़ा घूँट घूँट करके पिया जाय।

तीन या चार दिन तक छ सेर या सात सेर दूध पिया जाय। इसके उपरांत यदि शरीरमें शक्ति हो और बढ़ानेकी जरूरत मालूम पड़े तो एक एक सेर करके दस सेर तक दूध बढ़ा लिया जाय। इस देशमें अनेक व्यक्तियोंके लिए सात सेर अथवा आठ सेर दूध काफी होता है और इतने दूधमें शरीरका पोषण खूब अच्छी तरह होता है। अतएव जितना दूध सुगमतापूर्वक नित्य बढ़ाया जासके उतना बढ़ाया जाय, यही उत्तम है। कितने ही व्यक्तियोंको पन्द्रह सेर नित्य पीनेसे परम आश्चर्यजनक लाभ मालूम हुआ है।

जो दस सेर अथवा इससे भी अधिक दूध पीकर हजम कर सकते हों, उन्हें बीचमें खाली समय देनेकी कुछ भी जरूरत नहीं है। उन्हें तो प्रातःकालसे लेकर रात्रिको सोनेके समय तक आधे आधे घंटेके बाद आध आध सेर दूध पीते ही रहना चाहिए। परंतु इस अवस्थामें फिर एक बातका बंदोबस्त जरूरी हो पड़ेगा। अर्थात् यह कि जब दूध इतने अधिक परिमाणमें पिया जाय और आधे आधे घंटेके बाद पिया जाय तब किसी दूधवालेसे दो पहरको ताजा दूध मिलनेका प्रबंध कर लेना चाहिए। अथवा घरपर गाय या भैंस पाल लेनी चाहिए। यदि दोनोंमेंसे कोईसा भी प्रबंध न हो सके और प्रातःकालका रखा हुआ दूध

पानीमें भीगा हुआ कपड़ा लपेट देना चाहिए। इस प्रकार दूध सहजसे दो पहरके बारह या एक बजे तक रक्खा रहेगा और बिगड़ेगा नहीं।

साढ़े नौ बजे तक दो सेर दूध पीनेके उपरात एक या दो घंटा ठहरकर १०॥ या ११॥ बजेसे फिर दूध पीना शुरू किया जाय और आधे आधे घंटे बाद आधा आधासेर करके सेर या डेढ़सेर दूध पी लिया जाय। इसके बाद सध्या तक और कुछ न खाया जाय। संध्याके समय जब ताजा दूध आवे तब फिर ऊपर कही हुई रीतिसे बाकीका सेरभर दूध भी पी लिया जाय।

दूध हमेशा कच्चा पीना चाहिए, औंटा कर नहीं। औंटानेसे दूधमें जो पौष्टिक पदार्थ मिले रहते हैं वे नष्ट हो जाते हैं। यदि कच्चा दूध पीनेमें किसीको कुछ वहम हो तो फिर लाचारी समझ कर औंटा लिया जाय। किंतु यह समझ लेना चाहिए कि औंटाये हुए दूधसे शरीरका पोषण नहीं होगा, क्योंकि उसके पोषक तत्त्व औंटानेसे नष्ट हो जाते हैं। औंटानेके अतिरिक्त दूधमें शक्कर या खाँड आदि बिल्कुल नहीं मिलानी चाहिए, बे-मीठेका दूध ही यथेष्ट लाभ पहुँचता है।

दो दिन तक इस रीतिपर दूधका सेवन करनेके पश्चात् दूधका परीमाण बढ़ाकर पाँच सेर, छ सेर, या सात सेर कर देना चाहिए। एक दम सात सेर दूधपर नहीं आजाना चाहिए, बल्कि एक एक सेर दूध नित्य बढ़ाना चाहिए। प्रात काल साढ़े सात बजेसे यदि दूध पीना शुरू किया जाय, तो दस बजने तक तीन सेर दूध पी लिया जायगा। पीछे ग्यारह या साढ़े ग्यारहसे फिर शुरू कर दे। दो पहरके साढ़े बारह या एक बजे तक और दो सेर दूध पी लिया जायगा। तत्पश्चात् संध्याके सात बजेसे लेकर आठ बजे तक बाकीका दो सेर दूध भी पेटमें पहुँच जायगा। इस रीतिपर ७ सेर दूध नित्य पिया जा सकेगा।

क्योंकि संबंधमें ऐसा देखनेमें आवेगा कि यदि वे आरोग्यके नियमोंका ठीक ठीक पालन करें तो यह बढ़ा हुआ वजन उनका ज्योंका त्यों बना रहेगा और शरीरके स्नायु दृढ़ हो जायँगे। यह बात तो सत्य ही है कि अधिक दूधके सेवनद्वारा शीघ्रताके साथ पुष्ट किये गये शरीरके स्नायु एक दमसे दृढ़ हो जाना संभव नहीं है और इसीसे केवल दूध पीकर ही रहनेवाले मनुष्य शारीरिक श्रमका काम करने पर जल्दी थक जाते हैं, बहुत दूरतक दौड़ नहीं सकते हैं तथा कसरत करनेमें हाँफने लगते हैं। सुतरां दूधकी चिकित्साके अंतमें जो भारी खुराक योग्य नियमके साथ खाई जाय, तो थोड़े ही समयमें शरीरमें परिश्रम सहन करनेकी शक्ति आ जायगी और शरीरका जितना वजन बढ़ा होगा, वह भी बना रहेगा।

आरंभमें यदि दूधके सेवनका गुण कम मालूम हो, तो निराश नहीं होना चाहिए। आरोग्यके नियमोंका यथेष्ट पालन न करनेके कारण वर्षोंसे जो शरीर बिगड़ गया है वह थोड़े दिनमें एकदम कैसे सुधर जायगा? यदि दूधका सेवन श्रद्धा और आग्रहके साथ जारी रखा जायगा तो शरीर चंगा हुए बिना कभी रह ही नहीं सकता। शरीर चाहे कितना ही दुर्बल हो गया हो, भले ही चाहे हड्डी हड्डी दीखने लगी हों, फिर भी यदि आग्रहपूर्वक दूधका सेवन छोड़ा नहीं जायगा तो अंतमें आरोग्य तथा सुख अवश्य ही मिलेगा।

अमेरिकामें दूधकी चिकित्सावाले चिकित्सालयोंमें रोगियोंको दूधका सेवन करते हुए जो लोग एक बार भी अपनी आँखोंसे देख लेते हैं उन्हें फिर इस विषयमें कुछ भी संदेह बाकी नहीं रहता कि दूधके सेवनसे असाधारण लाभ होता है। जिन रोगियोंको डाक्टरोंने निराश होकर जबाब दे दिया है तथा जो रोगी भाँति भाँतिकी चिकित्सा कराके

दोपहर तक बिगड़ जाय, तो फिर लाचार सबेरेके दूधको थोड़ा गर्म करके रखना चाहिए। यद्यपि गर्म किया हुआ दूध पूरा पूरा लाभ नहीं पहुँचाएगा, परंतु फिर भी कुछ न कुछ गुण तो करेगा ही।

इस प्रकार दूधका सेवन प्रत्येक मनुष्यको कमसे कम दो महीने तक तो करना ही चाहिए। अनेक मनुष्योंको तीन या चार महीनें तक उसके जारी रखनेकी जरूरत होती है। जब तक पेटकी सब प्रकारकी गड़बड़ न मिट जाय, शरीरका दुबला पतलापन दूर होकर जब तक सभी अंग प्रत्यंग मांसल और पुष्ट न हो जायँ, शरीरमें खूनके बढ़नेसे मुखमण्डलपर खूनकी सुर्खी जब तक न आजाय और देहका वर्ण जबतक गोरा होकर बालककी नाईं स्वच्छ और तेजयुक्त न हो जाय, तबतक दूधका सेवन जारी रखना परम आवश्यक है। दीर्घ कालसे चली आती हुई मन्दाग्नि नामक व्याधिके कारण शरीरमें जो कई प्रकारके बुरे लक्षण प्रकट हो चुके हों, उनको मिटाकर पाचनशक्तिको बलवती बनाना दुग्ध सेवनका सबसे मुख्य प्रयोजन होना चाहिए। इसके बाद शरीरकी पुष्टि तो बड़ी शीघ्रताके साथ हो जायगी। बहुतसे लोगोंके संबंधमें तो यह भी देखनेमें आया है कि पाचनशक्ति आदिके ठीक हो जानेपर पीछेसे शरीरका वजन एकसेर नित्य बढ़ा है और कितनोंहीका आधसेर नित्य। एक स्त्रीके शरीरका वजन तो छ सेर नित्य बढ़ता था। तीन सेर वजन नित्य बढ़नेके भी कई उदाहरण देखनेमें आये हैं। एक मनुष्यका वजन नौ दिनमें ढाई सेर बढ़ा था। वजन बढ़नेका कारण यह होता है कि शरीरमें नित्य शुद्ध खून बढ़ता है।

कई लोग ऐसी शंका भी करने लगते हैं कि इस प्रकार बढ़ा हुआ शरीरका वजन किसी कामका भी होगा या नहीं? किन्हीं किन्हीं मनु-ष्योंके विषयमें यह शंका सचमुच ठीक होती है। परंतु सौमें नब्बे मनु-

गया है। नीबूका रस पी लेनेसे अथवा एकाध नारंगी खा लेनेसे अम्लत-त्वकी कमीका दोष दूर हो जाता है। जब दूधपर अरुचि उत्पन्न न हो, तब बिना जरूरत नीबूका रस नहीं पीना चाहिए और जब अरुचि उत्पन्न हो जाय तब फिर जब तक वह जाती न रहे तब तक नीबूका रस बराबर पीते रहना चाहिए। बहुत अधिक दूध पीनेवाले कितने ही मनुष्योंको भी सबेरे दूधका नाम लेते ही उबकाई आने लगती है। ऐसे मनुष्य ज्यों ही नीबूका रस पियेंगे त्यों ही उन्हें थोड़ी देर पीछे दूधपर रुचि उत्पन्न हो जायगी।

दूध और नीबूका संयोग हानिकारक है, ऐसा बहुतसे लोग कहेंगे। परंतु उनके कहने पर ध्यान नहीं देना चाहिए। क्योंकि उन्हें इस विषयका बिल्कुल ज्ञान नहीं है। कितने ही विद्वानोंकी तो यहाँ तक राय है कि जब तक दूध पेटमें पहुँच कर वायु उत्पन्न करता रहे, तब तक नीबूका रस दूधमें मिलाकर उस दूधको आधे आधे घंटे बाद पीते रहना चाहिए। पर हाँ, दूधमें नीबूका रस इतना अधिक न मिलाना चाहिए कि वह फट जाय। पाँच या सात बूँद नीबूका रस मिला देनेसे दूध गाढ़ा हो जायगा और पीनेमें वह ऐसा लगेगा जैसे पतला पतला खट्टा दही हो। कितने ही मनुष्योंको यह खट्टा दूध पीनेमें भी अच्छा स्वादिष्ट मालूम होगा और अकेले दूधकी अपेक्षा अधिक मुआफिक पड़ेगा। यदि नीबूका रस किसीको मुआफिक न आवे, तो वह दो पहरके समय दूधके बदले थोड़ी थोड़ी करके उत्तम छाँछ (मट्ठा) पिये। इससे यदि शरीरमें मल संचित होगा तो वह भी निकल जायगा।

इतने पर भी यदि दूध पेटमें पहुँचकर खलबलाहट पैदा करे, तो पहले कही हुई रीतिपर एक, दो या तीन उपवास करके तब दूधका

विफलप्रयास हो वैठे हैं और अपनी मृत्युका होना निश्चित कर चुके हैं, वे भी इन दूधका इलाज करनेवाली संस्थाओंमें केवल दूधके विधिपूर्वक सेवनसे पूरे निरोग हो गये हैं और उनके शरीरका वजन वहुत कुछ बढ़ गया है।

दूधके सेवनसे आरोग्य प्राप्त हो जानेके वाद और नित्यप्रति साधारण रीति पर अन्न भोजन करने लगनेके वाद भी सुयोग पाने पर वर्षमें एक या दो वेर समय समय पर ऊपर कही रीति पर दूधका सेवन करते रहनेसे आरोग्य पूर्ण रीतिसे प्राप्त होता रहता है। विदुषी एला ह्वीलर विल्कोक्सका कथन है कि मैं सुयोग मिलने पर दो महीने तक केवल दूध और थोड़ेसे 'प्रून' (एक प्रकारका फल) अथवा अमरूद खाकर रहती हूँ, और इससे मेरा स्वास्थ्य तथा शारीरिक बल यथेष्ट अच्छी दशामें वना रहता है।

कुछ उपयोगी सूचनायें।

जिनके पेटमें दूध वायु उत्पन्न करता या 'गुड़-गुड़' बोलता मालूम पड़े, उन्हें चाहिए कि वे प्रात काल दूधका सेवन शुरू करनेसे कोई एक घंटा पहले एक या आधे खट्टे नीबूका रस निकालकर उसमें एक अथवा दो चम्मच ठंडा पानी मिला कर पी जायँ। जिनको दूध पीनेके पीछे फिर दूधपर अरुचि हो जाय, उन्हें भी ऊपर कही हुई रीतिसे नीबूका रस पी लेना चाहिए और दूधका पीना थोड़ी देरके लिए रोक देना चाहिए। डेढ़ या दो घंटेके वाद उन्हें मालूम होगा कि नीबूके पी लेनेसे दूधपर रुचि उत्पन्न हो गई है।

जिनके पेटमें अम्लतत्त्व (Acid) कम परिमाणमें होता है उन्हींको दूधपर रुचि नहीं होती है, अथवा दूध पेटमें पहुँचकर वायु उत्पन्न करता या 'गुड़-गुड़' बोलता है। इसी लिए नीबूका रस बतलाया

गुंजायश नहीं है। प्राय संध्याके समय बहुतोंको ऐसी अवस्थाका अनुभव होता है। ऐसी अवस्था होने पर भयभीत बिल्कुल नहीं होना चाहिए। ऐसी अवस्था हो जानका कारण यह है कि दूधमें जो जलका भाग रहता है उसके कारण पेट अफरासा जान पड़ता है। यह जलका भाग जैसे जैसे शरीरके भीतर बहनेवाले खूनमें मिलता जायगा वैसे वैसे पेटका अफरापन दूर होता जायगा। दूधका अभ्यास हो जाने पर यह अवस्था धीरे धीरे आप ही आप मिट जायगी। बहुतोंको तो दूध पीनेका अभ्यास पड़नेमें सात दिनसे लेकर चौदह दिन तक लगते हैं, और बहुतोंको इससे पहले ही यथेष्ट अभ्यास हो जाता है।

जिन मनुष्योंको मीठा या मिर्च मसालेदार चटपटा भोजन खानेकी आदत पड़ी होती है, अथवा जिन्हें दूसरे तीसरे दिन पकान्न मिठाई खानेकी लत होती है, या जो लोग चाय, कहवा, मास और शराब आदिका उपयोग किया करते हैं, उन्हें केवल दूध पीकर रहना पहले पहल महा कठिन माळूम होगा। उन्हें पहले यही माळूम होगा कि मानों उनका पेट भरता ही नहीं, उनका शरीर पुष्ट होता ही नहीं। ऐसी भावना जो उन लोगोंकी हो जाती है वह चटपटे भोजनकी लालसाके कारण ही हो जाती है। परन्तु जो लोग शरीरका आरोग्य चाहते हैं, उन्हें ऐसी खोटी लालसाकी ओर ध्यान देनेकी जरा भी जरूरत नहीं।

बहुतोंको दूधके सेवनसे आरभमें कब्ज होता हुआ माळूम पड़ेगा। इसके दो तीन उपाय हैं। सबसे उत्तम यह है कि जब पेटमें कब्ज माळूम होने लगे, तब दूधका परिमाण बढा देना चाहिए। इससे मोटी आँत धुल जायगी और थोड़े समयके उपरात कब्ज जाता रहेगा। जो दूधका परिमाण नहीं बढा सकते हों वे अंजीर खायँ अथवा भुने हुए गेहूँ खायँ। परंतु यह बात ध्यानमें रखनेकी है कि इन पदार्थोके खानेके

सेवन किया जाय। उपवाससे शरीरकी शुद्धि हो जाती है, पेटको विश्राम मिलता है और अपना काम प्रबलताके साथ करनेकी उसमें शक्ति आजाती है।

नीबूके रसके अतिरिक्त और कोई भी खुराक दूध सेवनके दिनोंमें नहीं लेनी चाहिए। यदि और कोई खुराक ली जायगी तो दूधसेवनका जो लाभ होना चाहिए वह नहीं होगा।

दूधका सेवन आरभ करने पर शुरूमें कुछ दिनों तक बहुतोंको एक प्रकारकी बेचैनीसी मालूम होगी। उन्हें एक प्रकारके ऐसे दु खका अनुभव होगा जिसे वे समझ न सकेंगे और साथ ही शरीरसंबंधी भिन्न भिन्न व्यापारोंमें भी उन्हें कुछ क्षोभ या चंचलता मालूम होगी। संभव है ऐसे लक्षणोंसे लोग डर जायँ और दूधके सेवनका परिणाम कुछ भयंकर होता हुआ जानें। परंतु वास्तवमें ऐसे लक्षणोंके प्रकट होनेपर डरनेकी कुछ जरूरत नहीं। आरोग्य-संबंधी ज्ञानका प्रचार करनेमें अतिशय परिश्रम करनेवाले मि० मेकफेडनका कथन है कि "शुद्ध मनसे और आग्रहके साथ दूधका सेवन करनेसे सदा लाभ ही होगा। इसके सेवनसे मैंने कभी हानि होनी हुई नहीं देखी। बहुतोंको यह कथन अतिशयोक्ति पूर्ण मालूम होगा, परंतु है यह बिल्कुल सत्य। मुझे स्वयं पहले दूधके सेवनसे होनेवाले लाभोंमें संदेह था। परंतु जब सैकड़ों रोगियोंको इससे लाभ उठाते हुए मैंने अपनी आँखोंसे देखा तो मुझे भी दूधकी चिकित्सा पर श्रद्धा हो गई। दूध पूरा भोजन है और इससे शरीरका प्रत्येक भाग पुष्ट होता है। वस्तुतमें बालक जैसे दूध पी पी कर हृष्टपुष्ट शरीरवाले हो जाते हैं, उसी तरह जवान आदमी भी दूध पीनेसे मोटे ताजे हो सकते हैं।"

दूधका सेवन करनेवालोंको कई बार ऐसा भी मालूम होगा कि दूधसे उनका पेट अत्यंत तर गया है और एक घूँट भी और दूध पीनेकी

गुंजायश नहीं है। प्राय संध्याके समय बहुतोंको ऐसी अवस्थाका अनुभव होता है। ऐसी अवस्था होने पर भयभीत बिल्कुल नहीं होना चाहिए। ऐसी अवस्था हो जानेका कारण यह है कि दूधमें जो जलका भाग रहता है उसके कारण पेट अफरासा जान पड़ता है। यह जलका भाग जैसे जैसे शरीरके भीतर बहनेवाले खूनमें मिलता जायगा वैसे वैसे पेटका अफरापन दूर होता जायगा। दूधका अभ्यास हो जाने पर यह अवस्था धीरे धीरे आप ही आप मिट जायगी। बहुतोंको तो दूध पीनेका अभ्यास पड़नेमें सात दिनसे लेकर चौदह दिन तक लगते हैं, और बहुतोंको इससे पहले ही यथेष्ट अभ्यास हो जाता है।

जिन मनुष्योंको मीठा या मिर्च मसालेदार चटपटा भोजन खानेकी आदत पड़ी होती है, अथवा जिन्हें दूसरे तीसरे दिन पक्वान्न मिठाई खानेकी लत होती है, या जो लोग चाय, कहवा, मांस और शराब आदिका उपयोग किया करते हैं, उन्हें केवल दूध पीकर रहना पहले पहल महा कठिन मालूम होगा। उन्हें पहले यही मालूम होगा कि मानों उनका पेट भरता ही नहीं, उनका शरीर पुष्ट होता ही नहीं। ऐसी भावना जो उन लोगोंकी हो जाती है वह चटपटे भोजनकी लालसाके कारण ही हो जाती है। परन्तु जो लोग शरीरका आरोग्य चाहते हैं, उन्हें ऐसी खोटी लालसाकी ओर ध्यान देनेकी जरा भी जरूरत नहीं।

बहुतोंको दूधके सेवनसे आरंभमें कब्ज होता हुआ मालूम पडेगा। इसके दो तीन उपाय हैं। सबसे उत्तम यह है कि जब पेटमें कब्ज मालूम होने लगे, तब दूधका परिमाण बढ़ा देना चाहिए। इससे मोटी आँत धुल जायगी और थोड़े समयके उपरांत कब्ज जाता रहेगा। जो दूधका परिमाण नहीं बढ़ा सकते हों वे अजीर खायँ अथवा भुने हुए गेहूँ खायँ। परंतु यह बात ध्यानमें रखनेकी है कि इन पदार्थोंके खानेके

पीछे फिर दूधका परिमाण बढ़ाया नहीं जा सकेगा। दूधका परिमाण बढ़ानेमें कब्ज एक वेर जब दूर हो जाय और पीछेसे फिर बराबर आरोग्यसबंधी नियमोंका पालन रहे, तो फिर कब्ज कभी नहीं होगा। यदि दूधका परिमाण बढ़ाने पर भी कब्ज नहीं मिटे तो बीजसमेत काली द्राक्षा (मुनक्का) खाई जाय। अथवा जो अपनेको अनुकूल पड़ वे फल खाये जायँ।

यदि इतनेपर भी कब्ज न मिटे तो दूधके साथ कभी कभी थोड़े सनके बीज खा लिये जायँ। दिनभरमें एक चमचेसे अधिक सनके बीज कभी न खाये जायँ।

यदि कब्ज दूर करनेके यत्र (एनीमा) के द्वारा पानी भीतर पहुँचानेकी जरूरत पड़े तो दो या तीन सेरसे अधिक पानी न लिया जाय। जुलाबकी कोई दवा नहीं खानी चाहिए। यदि खानेकी जरूरत ही हो, तो एक भाग सोनामक्खी (सनाय) और दो भाग मुलहठी लेकर दोनों मिलाकर खूब बारीक पीस ली जायँ और उसमेंसे दो आनेभर या चार आनेभरकी मात्रा सोते समय रात्रिको कभी खा ली जाय। इसमे प्रकृत रीतिसे होनेवाला मलोत्सर्ग अपने आप ही हो जायगा। इस लिए यह विधि परमोत्तम है। जब कोई उपाय कारगर न होता हो, केवल उसी समय यह बाह्य उपचार करना उचित है। चिन्ता त्यागकर मन सुस्थिर रखना चाहिए और शरीरके भीतरके सामर्थ्यपर विश्वास करना चाहिए। दूधका भोजन अतमें स्वयं ही ऐसा खोलकर साफ दस्त लायेगा जैसा कि एक निरोग बालकको होता है।

बहुतोंको दूधके सेवनसे आरंभमें दस्त होने लगते हैं। ऐसी अवस्थामें पाँच सेर, या छः सेर अथवा अपनी शक्तिके अनुकूल गरम जल लेकर कब्ज दूर करनेवाले यंत्रके (एनीमाके)सहारेसे भीतर

पहुँचानेपर मोटी आँतमें भरा हुआ मल धो डालना चाहिए। यदि इस यत्नके उपयोग करनेपर भी दस्त न रुकें तो दूधका सेवन दस्त रुकने तक बंद रक्खा जाय।

जो लोग कसरत कर सकते हों उन्हें प्रातःकाल कसरत करके तब दूधका सेवन करना चाहिए।

अधिक समय तक दूधके सेवन करनेसे जठर, आँतें, और पचनेन्द्रियाँ पुष्ट हो जाती हैं और पचनशक्ति बहुत अधिक बढ़ जाती है।

दूध सेवन करनेवालोंको क्या नहीं करना चाहिए?

१ अत्यंत ठंडा दूध कभी नहीं पीना चाहिए। दूध कहीं बिगड़ न जाय इस लिए उसे ठंडी जगहमें रखना तो अवश्य चाहिए, पर बर्फके सदृश ठंडा दूध कभी नहीं पीना चाहिए। यदि दूधका पात्र बर्फमें दबा कर रखा गया हो, तो उसे इतना गुनगुना करके पीना चाहिए जितना गुनगुना कि खून होता है।

२ औंटा कर दूध कभी नहीं पीना चाहिए। दूधको औंटानेसे उसमेंके कितने ही पौष्टिक तत्त्व जल जाते हैं और औंटाया हुआ दूध कब्ज भी करता है।

३ एक दम सपाटेके साथ दूधके तीन चार प्याले कभी नहीं पीना चाहिए। ऐसा करनेसे पेट रबरकी थैलीकी नाई फूल जाता है। आध सेर दूधमें जितना जल होता है वह सब जल पेट अच्छी तरह चूस ले तब आध सेरका दूसरा प्याला पीना चाहिए।

४ आध सेर दूध एक साँसमें कभी नहीं पीना चाहिए। बल्कि छोटे छोटे घूँट करके धीरे धीरे पीना चाहिए। इसके साथ ही साथ प्रत्येक घूँटको जैसे बने तैसे थोड़ी देर मुँहमें रोक कर स्वाद लेना चाहिए।

दूधके सेवनके सम्बन्धमें यहाँ तक जो कुछ भी लिखा गया है दीर्घ कालतकके अनुभवके आधार पर ही लिखा गया है।
कितने ही डाक्टरलोग इससे भी कम बातें बतलाकर रोगियोंसे फीस सो डालर अर्थात् ३००से भी अधिक रुपया ले लेते हैं। लेखकका पूरा विश्वास है कि जो लोग रुग्णग्रस्त होंगे वे ऊपर कहे गये नियमोंका आग्रहपूर्वक पालन करनेसे अवश्य ही रोगसे अपना पिंड छुड़ा सकेंगे और जो रोगी नहीं होंगे वे अपने स्वास्थ्यकी दशा और भी अधिक सुधार लेंगे। बहुतसे दुबले शरीरवाले पुरुष मोटे होनेकी लालसासे व्यर्थ लपाते फिरते हैं और अनेक कीमती दवाओंके खरीदनेमें पैसा फेंकते हैं। ऐसे पुरुषोंको उचित है कि दूसरी ठगनेवाली दवाइयोंके लिए पैसा बिगाड़नेसे पहले इस दुग्ध चिकित्साको आजमा कर देखें। अमेरिकाके लॉस एंजेलिस नामक नगरकी निवासिनी मिसेस फील्डे नामकी एक अँगरेज महिलाने तीन महीनेतक ७॥ सेर दूध नित्य पीकर अपने शरीरका वजन ३३ सेर बढ़ा लिया था और उनका शरीर इतना स्वस्थ हुआ था कि जितना पहले कभी नहीं हुआ।

दूधका सेवन करनेसे आरोग्य लाभ कर लेनेके अनंतर जो पुरुष फल तथा मेवे खाकर ही रहते हैं, वे फिर कभी बीमार नहीं होते।

समाप्त

प्रकीर्णक-पुस्तकमाला ४२ ।

मधु-चिकित्सा ।

[मधु या शहदके सेवनसे अनेक रोगोंको दूर करने और आरोग्य रहनेके सुगम उपाय ।]

प्रा कालसम्पादक पं० जगन्नाथ प्रभाशंकरकी गुजराती पुस्तिकाके आधारसे

लेखक—

श्रीयुत बाबू रामचन्द्र वर्मा ।

कार्तिक, वि० सं० १९८४ ।

नवम्बर, १९२७ ई० ।

मूल्य साढ़े तीन आने ।

मधु-चिकित्सा।

[१]

यों तो संसारमें स्वाभाविक रूपसे अनेक प्रकारके खाद्य पदार्थ उत्पन्न होते हैं पर उनमेंसे दूध और मधु या शहदकी सर्वोत्तमता प्रायः सभी बुद्धिमानोंने स्वीकृत की है। संसारमें यही दो पदार्थ ऐसे हैं जो सर्वांशमें पच जाते हैं और सदा उत्तरोत्तर अधिक गुण दिखलाते रहते हैं। इन दोनों पदार्थोंका जितना ही अधिक उपयोग किया जाय उतना ही अधिक लाभ देखनेमें आता है। दूधकी उपयोगिता तथा सर्वश्रेष्ठता तो केवल एक इसी बातसे प्रमाणित है कि प्रकृतिने उसे माताके स्तनोंमें ही उत्पन्न कर दिया है जिससे वह जन्मकालसे ही अधिकांश जीवोंका स्वाभाविक भोजन हो जाता है। प्रकृतिकी इस योजनासे यह भी सिद्ध होता है कि दूध सब अवस्थाओंमें सदा गुणकारी और बलवर्धक ही प्रमाणित होता है *। यदि अभी हालके जनमे हुए या महीने दो महीनेके बच्चोंको दूधके सिवा और कोई खाद्य पदार्थ दिया जाय तो बहुधा वह हानिकारक ही प्रतीत होगा, परन्तु दूधके सम्बन्धमें यह बात नहीं कही जा सकती। ठीक यही बात मधुके सम्बन्धमें भी है। बड़े बड़े चिकित्सकों और वैज्ञानिकोंने परीक्षा करके यह सिद्ध किया है कि यदि संसारमें कोई पदार्थ दूधकी बराबरी कर सकता है तो वह मधु ही कर सकता है। दो चार दिनके जनमे हुए बालकसे लेकर सौ वर्ष तकके बुड्ढेको

---

* दूधके गुणोंके सम्बन्धमें विशेष जाननेके लिए हमारी 'दुग्ध चिकित्सा' नामक पुस्तक पढ़िए।

चाहे जिस अवस्थामें मधु दिया जाय वह कभी हानिकारक नहीं हो सकता, सदा कुछ न कुछ गुण ही करता है। प्रकृतिने माताके स्तनमें दूधके स्थानमें मधु नहीं उत्पन्न किया इससे चाहे भले ही कोई यह बात सिद्ध कर ले कि दूधकी अपेक्षा मधु कम गुणकारी है, परन्तु यदि वास्तविक दृष्टिसे देखा जाय तो कई बातोंमें यह दूधसे भी कहीं बढ़कर है। और यही कारण है कि चाहे माताके स्तनोंमेंसे मधु न निकलकर दूध ही निकलता हो, परन्तु उस दूधमें भी मधुका एक अच्छा अंश अवश्य वर्तमान रहता है।

यदि मधुका आश्चर्यजनक गुण देखना हो तो किसी गर्भिणी स्त्रीको उसकी गर्भावस्थासे ही नित्य थोड़ा थोड़ा मधु देना आरम्भ कीजिए और यह क्रिया प्रसवकाल तक बराबर जारी रखिए। इसके उपरान्त जब उसे सन्तान उत्पन्न हो तब उस सन्तानको भी बराबर दूधके साथ थोड़ा थोड़ा मधु देते रहिए। फिर देखिए कि साल दो सालका होने पर वह बच्चा कितना अधिक हृष्ट पुष्ट और स्वस्थ रहता है। परीक्षा करने पर यह विधि बहुत ही गुणकारी प्रमाणित हुई है। बालकोंको मीठी चीजें बहुत पसन्द होती हैं और अधिकांश बालक मीठे पदार्थ बहुत चावसे खाया करते हैं। माता पिता प्राय उन्हें चीनी अथवा उससे बनी हुई और चीजें खानेके लिए दिया करते हैं। परन्तु अनेक अवस्थाओंमें बालकोंके लिए चीनी बहुत ही हानिकारक प्रमाणित होती है और उससे उन्हें प्राय अनेक प्रकारके रोग हो जाया करते हैं। यह ठीक है कि बालकोंको उनके शरीरके पोषण और वर्धनके लिए चीनी या किसी और मीठे पदार्थकी बहुत अधिक आवश्यकता रहती है और इसी लिए उनकी प्रकृति भी उसीकी ओर रहती है, परन्तु जब चीनी अधिक परिमाणमें दी जाती है तो उससे लाभ

बदले प्राय हानि ही अधिक हुआ करती है। और फिर सबसे अधिक हानि इसलिए होती है कि आजकल बाजारोंमें जो चीनी अथवा जिस चीनीकी बनी हुई चीजें मिलती हैं वह चीनी या तो खालिस विदेशी ही होती है या उसमें बहुत कुछ अंश विदेशी चीनीका हुआ करता है। कदाचित् यहाँ यह बतलानेकी आवश्यकता न होगी कि विदेशी चीनीमें बहुतसे ऐसे पदार्थ मिले रहते है जो अनेक दृष्टियोंसे बहुत अधिक हानिकारक होते है और जिनका विशेषत छोटे बचोंके स्वास्थ्यपर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। इस लिए यदि बालकोंको चीनीके स्थान पर थोड़ा थोड़ा मधु दिया जाया करे, तो उससे हानिकी कोई सम्भावना नहीं रह जाती और लाभ ही लाभ होता है। यह बात केवल छोटे बचोंके लिए ही नहीं है, वयस्क स्त्रियाँ और पुरुष भी इसके सेवनसे बहुत अधिक लाभ उठा सकते हैं।

हमारे देशमें तो प्राय ईखसे ही चीनी बनाई जाती है, पर विदेशोंसे यहाँ जो चीनी आती है वह प्राय गाजर चुकन्दर या इसी प्रकारके और अनेक पदार्थोंसे बनी हुई होती है। इसके अतिरिक्त उसे साफ करनेमें भी हड्डियों और रक्त आदि अनेक ऐसे पदार्थोंका व्यवहार होता है जो स्वास्थ्यकी दृष्टिसे हानिकारक और धर्मकी दृष्टिसे आपत्तिजनक होती हैं। इसलिए विदेशी चीनी व्यवहारमें लाने योग्य नहीं होती। हमारे यहाँके चिकित्सा-ग्रन्थोंमें खाड या शक्कर चीनी और मिस्री आदिके बहुतसे गुण कहे गए हैं। पर वे गुण उसी चीनी या मिस्री आदिके कहे गए हैं जो ईखसे बनी हुई हो। गाजर चुकन्दर या इसी प्रकारके और पदार्थोंसे बनी हुई चीनी आदिमें वे गुण कदापि नहीं हो सकते। इसलिए विदेशी चीनीसे वास्तविक चीनीके लाभोंकी आशा रखना ठीक नहीं और जँहा तक हो सके विदेशी चीनीके व्यवहारसे सदा बचना चाहिए।

देशी चीनीकी अपेक्षा विदेशी चीनी प्राय सस्ती पड़ती है और इसी लिए लोग उसीका व्यवहार करते हैं। लोग चाहे उसका इतना अधिक व्यवहार न भी करें, पर प्राय दूकानदार लोग सस्ती बेचनेके लिए देशी चीनीमें विदेशी चीनी मिलाकर अथवा विदेशी चीनीमें कुछ लाली लानेके लिए उसमें गुड़ या शक्कर आदि मिलाकर बेचते हैं। विदेशी चीनीके बहुत अधिक व्यवहारका बुरा परिणाम भी प्राय देखनेमें आता है। आजकल बहुतसे लोग प्रमेह और अजीर्ण आदि रोगोंसे पीड़ित देखे जाते हैं। इन तथा और बहुतसे रोगोंका मूल इसी विदेशी चीनीमें समझना चाहिए। इसलिए जो लोग चीनीका व्यवहार करना चाहते हों उन्हें जहाँ तक हो सके देशी चीनीका ही व्यवहार करना चाहिए। परन्तु आजकल बाजारकी जो परिस्थिति है उसके कारण शुद्ध देशी चीनी सब लोगोंको और सहजमें प्राप्त नहीं हो सकती। इसलिए यदि चीनीके स्थानमें मधुका व्यवहार किया जाय, तो लोग केवल बहुतसी हानियोंसे ही नहीं बच जाने बल्कि बहुतसे लाभ भी उठा सकते हैं। यह ठीक है कि चीनीकी अपेक्षा शहदका भाव कुछ अधिक होता है, पर चीनीकी अपेक्षा शहदमें मिठास कहीं अधिक होती है इसलिए पड़ता दोनोंका प्राय बराबर बैठ जाता है। और यदि देशमें शहद या मधुका व्यवहार बढ़ जाय तो एक नये उद्योग और नये व्यापारका भी अच्छा मार्ग निकल आता है। हमारे देशमें तो व्यावसायिक दृष्टिसे शहदकी मक्खियोंका पालन बहुत कम होता है, पर पाश्चात्य देशोंमें बहुतसे लोग और विशेषत देहातोंमें किसानोंकी स्त्रियाँ यह काम व्यावसायिक दृष्टिसे करती हैं और इससे अच्छा लाभ उठाती हैं। यदि हमारे देशमें मधुका व्यवहार बढ़ जाय और कुछ लोग शहदकी मक्खियाँ पालकर शुद्ध मधु तैयार करने लग जायँ तो उन्हें

अच्छा आर्थिक लाभ हो सकता है और कुछ लोग बेकारीसे छुट्टी पा सकते हैं।

आजकल प्राय सारे भारतमें और विशेषत दक्षिण भारतमें पाश्चात्य जातियोंकी देखा देखी चायका रवाज बहुत बढ़ गया है। यह एक बहुत बड़ा दुर्व्यसन है और इससे अनेक प्रकारकी हानियाँ होती हैं। ये हानियाँ इसलिए और भी बढ़ जाती हैं कि चायके अच्छे शौकीन उसमें प्राय विदेशी चीनी ही डाला करते हैं। हमने अपने कई चाय-प्रेमी मित्रोंको यह कहते हुए सुना है कि चायके लिए विदेशी चीनी ही सबसे अच्छी होती है और इसी लिए वे ढूँढ़कर विदेशी चीनी खरीदते है। एक तो चाय स्वयं ही अनेक प्रकारकी हानियाँ करती है दूसरे जब उसमें विदेशी चीनी मिलाई जाती है और नित्य तीन तीन और चार चार बार दोनोंका सेवन किया जाता है तो उससे होनेवाली हानियोंका वर्णन सुननेकी अपेक्षा अनुमान कर लेना ही बहुत अच्छा है *। हर्षका विषय है कि अब इस देशके कुछ लोगोंकी समझमें यह बात धीरे धीरे आने लग गई है कि चायसे अनेक प्रकारकी हानियाँ होती है और इसलिए उन्होने चायके स्थानपर तुलसीकी पत्तियोंका व्यवहार आरम्भ किया है। तुलसीकी पत्तियोंमें कितने अधिक गुण होते हैं यह यहाँ बतलानेकी आवश्यकता नहीं। जिस तुलसीका एक छोटासा पौधा घरमें रहनेसे अनेक प्रकारके रोगोंसे रक्षा होती है यदि उसकी पत्तियोंका बराबर सेवन किया जाय तो अवश्य ही उससे अपरिमित लाभ हो सकते हैं। और यदि उस तुलसीमें चीनीकी जगह मधुका व्यवहार किया जाय तो फिर पूछना ही क्या है—सोना और सुगन्ध दोनों उपस्थित हैं।

* चाय और तमाखूके दुर्गुणोंको भली भाँति समझनेके लिए हमारा प्रकाशित किया हुआ 'विद्यार्थियोंका सच्चा मित्र' पढिए।

जरा एक वार कल्पना कीजिए कि विदेशी चीनी कितनी अपवित्र और हानिकारक होती है और मधु कितना अधिक पवित्र तथा लाभदायक होता है। हमारे यहाँ मधुकी गणना बहुत ही पवित्र पदार्थोंमें की गई है, यहाँतक कि देवताओंको स्नान करानेके लिए पचामृत तकमें उसका व्यवहार होता है और उसकी गणना अमृतमें की जाती है। हमारे देशके कई चिकित्सकोंने परीक्षा करके इस बातका अनुभव किया है कि औषध रूपमें पंचामृतका सेवन करनेसे क्षय आदि विकट रोगोंके रोगी भी अच्छे हो जाते हैं। और यों तो प्राय बहुतसे रोगोंमें और बहुतसे औषधोंके साथ अनुपान रूपमें वैद्य लोग मधुका व्यवहार कराते हैं। अनुपान रूपमें मधुका बहुत अधिक व्यवहार यह बात सिद्ध करता है कि मधुमें अनेक प्रकारके रोगोंको दूर करनेकी बहुत अधिक स्वाभाविक शक्ति वर्तमान है। इसलिए हम कह सकते हैं कि शुद्ध मधुका निरन्तर थोड़ा बहुत व्यवहार करते रहनेसे मनुष्य सदा बहुत स्वस्थ रह सकता है और अनेक प्रकारके रोगोंसे सहजमें अपनी रक्षा कर सकता है। और यदि इस मधुका व्यवहार दूधमें मिलाकर किया जाय, तो इससे बढ़कर और कोई बात ही नहीं हो सकती। क्योंकि इस संसारमें यदि अमृत कोई चीज है तो वह या तो दूध है और या मधु, और जहाँ इन दोनोंका सयोंग हो वहाँ समझ लेना चाहिए कि दो दो अमृत एक साथ हैं।

[२]

हमारे यहा पुराणों आदिमें जिन सात सागरोंकी कल्पना की गई है उनमेंसे एक सागर दूधका और एक मधुका है। इसीमे इन दोनों पदार्थोंकी महत्ता भली भाँति सिद्ध हो सकती है। केवल हमारे ही यहाँ नहीं बल्कि सभी प्राचीन देशों और जातियोंमें इन दोनों पदार्थोंकी गणना अमृतमें होती आई है और ये दोनों पदार्थ मनुष्योंके लिए परम

अभीष्ट कहे गए हैं। बाइबिलमें जिस स्वर्गकी कल्पना की गई है और जहाँ धार्मिक लोगोंको पहुँचानेका वादा किया गया है वह दूध और शहदसे भरा हुआ है। बाइबिलमें लिखा हुआ है कि प्राय पैंतीस सौ वर्ष पहले इसराइलके लोग एक ऐसे प्रदेशके अनुसन्धानमें लगे थे जिसमें मनुष्योंको सब प्रकारके सुख अनायास ही प्राप्त होते थे और जो दूध और शहदसे भरा हुआ था। यही ईसाइयोंका अभीष्ट प्रदेश और स्वर्ग है और यहीं पहुँचनेकी वे कामना रखते हैं। मुसलमानोंको भी बिहिश्तमें पानीकी जगह शहद ही मिलेगा। अनेक प्राचीन जातियोंका यह विश्वास था कि मधु इस लोकका पदार्थ नहीं है बल्कि वह स्वर्गसे गिरकर यहाँ आ गया है। तात्पर्य यह कि अधिकांश प्राचीन जातियाँ इसे अलौकिक और स्वर्गीय पदार्थ समझती थीं और अमृतके समान इसका आदर करती थीं। हमारे यहाँ तो यह पचामृतमेंसे एक अमृत है ही। और यदि वास्तविक दृष्टिसे देखा जाय तो दूध और मधु ये दोनों ही अमृत हैं। स्वाद और गुणोंमें संसारका और कोई पदार्थ इनकी बराबरी नहीं कर सकता।

बहुत प्राचीन कालमें जब कि मानव जातिको शरीरका पोषण करनेवाले और बल बढ़ानेवाले बहुत ही थोड़े पदार्थोंका ज्ञान था, यही मधु सबसे अधिक पौष्टिक समझा जाता था और इसीका सबसे अधिक व्यवहार होता था। साथ ही यह भी कहा जाता है कि उन दिनों लोग बहुत अधिक बलवान्, हृष्ट पुष्ट और नीरोगी हुआ करते थे। चीनी आदि बनानेकी क्रिया तो बहुत बादमें निकली थी, पर मधुका व्यवहार बहुत प्राचीन कालसे होता आया है। सुप्रसिद्ध महात्मा सुलैमान सब लोगोंको शहद खानेका उपदेश दिया करते थे, क्योंकि वे समझते थे कि यह सर्वश्रेष्ठ पदार्थ है। कहते हैं कि एक आदमी मुहम्मद साहबके पास जाकर

कहने लगा कि मेरे भाईके पेटमें बहुत सख्त दर्द है। आप कृपाकर कोई ऐसा उपाय बतलावें जिससे उसका वह दर्द दूर हो जाय। मुहम्मद साहबने कहा कि तुम जाकर उसे शहद दो, इससे उसके पेटका दर्द दूर हो जायगा। वह गया और थोड़ी देर बाद लौटकर फिर आया और कहने लगा कि मैंने उसे शहद तो दिया पर उसका दर्द कम नहीं हुआ। मुहम्मद साहबने कहा कि शहदसे दर्द क्या नहीं अच्छा होगा? जाओ और उसे फिर शहद दो और इस बार कुछ अधिक मात्रामें देना। उसका दर्द जरूर दूर हो जायगा। उसने फिर जाकर अपने भाईको और अधिक शहद दिया और कहते हैं कि शहद देते ही उसके भाईके पेटका दर्द अच्छा हो गया।

वैद्यकका कोई ग्रन्थ उठाकर देखिए, उसमें मधु रोगनाशक और आरोग्यवर्द्धक बतलाया गया है। अधिकांश ग्रन्थोंमें शुद्ध मधु अमृतके समान गुणकारी और समस्त आयुर्वेदिक औषधोंका एक मात्र और सर्वश्रेष्ठ अनुपान कहा गया है। मधु योगवाही कहा गया है। इसका अर्थ यह है कि यह जिस योगके साथ मिलाया जाता है उसीके अनुसार गुण करने लगता है। यह सभी अवस्थाओं और सभी प्रकृतियोंके लोगोंके लिए समान रूपसे गुणकारी होता है। यह सब लोगोंको बिना किसी प्रकारकी हानिकी सम्भावनाके दिया जा सकता है। यहाँ तक कि गर्भवती स्त्रियोंको भी यह निस्संकोच होकर दिया जा सकता है। यह मत केवल हमारे वैद्यक शास्त्रका ही नहीं है बल्कि डाक्टरी और हिकमतका भी है। सभी प्रकारके लोग यह बात मानते हैं कि मधुके नित्य प्रतिके सेवनसे सब प्रकारके रोग नष्ट होते हैं और आरोग्य प्राप्त होता है। ग्रीनेने अपने एक ग्रन्थमें लिखा है कि गलेके सब प्रकारके रोगों, कंठमाला, छातीके सब प्रकारके रोगों और ज्वर आदिमें मधुके सेवनसे

बहुत अधिक लाभ होता है और इससे पित्त रसकी विशेष प्रकारसे वृद्धि होती है। एरिस्टोनने एक स्थानपर लिखा है कि ओलम्पियन लोगोंके भोजमें एक प्रकारका अमृत परोसा जाता था जो मधुसे बनाया जाता था। इसी प्रकारके और भी अनेक प्रकारके उल्लेख मिलते हैं। प्राचीन कालमें जब कि लोगोंको चीनी आदिका ज्ञान नहीं हुआ था प्राय मधुका ही व्यवहार किया जाता था। पर आजकलके लोग मधुके गुण बिलकुल भूल गये हैं और चीनी आदिका ही व्यवहार करते हैं। परन्तु चीनी और मधुमें अंतर यह है कि चीनीसे अनेक प्रकारकी हानियाँ होती हैं और अनेक रोग उत्पन्न होते हैं। पर मधुसे अनेक प्रकारके लाभ होते हैं और अनेक रोग दूर होते हैं। वैज्ञानिकोंने परीक्षा करके देखा है कि यदि चीनी आदिमें हमारे मुँहकी लार न मिले और यह किसी प्रकार यों ही पेटके अन्दर उतार दी जाय तो वह विषका काम करती है। परन्तु मधुमें यह बात नहीं है। उसके लिए यह आवश्यक नहीं है कि उसमें हमारे मुँहकी लार भी अवश्य ही मिले। इसका कारण यह है कि जब मधुमक्खियाँ मधु बनानेके लिए फूलोंसे पराग एकत्र करती हैं तभी उनके मुँहकी लार उसमें मिल जाती है। मधुमक्खियोंके मुँहकी लार मिल जानेके कारण उसमें अनेक प्रकारके गुण उत्पन्न हो जाते हैं। उन गुणोंमेंसे एक गुण यह भी है कि मधु चाहे जितने दिनोंतक रखा जाय पर वह कभी खराब नहीं होता। उसमें किसी प्रकारका विकार उत्पन्न नहीं होता। यह गुण उसमें फार्मिक एसिड उत्पन्न होनेके कारण होता। यह फार्मिक एसिड मधुको तो बिगड़नेसे बचाता ही है साथ ही यह अनेक प्रकारक रोगोंको दूर करनेमें भी सहायक होता है। अनुभव करके यहाँतक देखा गया है कि गठिया आदि रोगोंमें पीड़ित अंग यदि मधुमक्खीसे कटाया जाय तो इसी फार्मिक एसिडके योगके कारण वह

अंग नीरोग हो जाता है। मधुके इस प्रकारके गुणोंका विवेचन करनेसे पहले हम संक्षेपमें यह बतला देना चाहते हैं कि मधु किस प्रकार उत्पन्न होता है और तब हम यह बतलावेंगे कि यह किन किन रोगोंमें और किस प्रकार गुणकारी होता है।

[२]

फूलोंमें जो पुष्परस या पराग उत्पन्न होता है उसे मधुमक्खियाँ पान करती हैं और कुछ समय तक अपने उदरमें रखनेके उपरान्त अपने छत्तेमें ले जाकर उसे उगलकर संग्रह करने लगती हैं। मधुमक्खियोंके सिवा बर्रे, भौंरे और पतंग आदि और भी अनेक प्रकारके जन्तु मधु एकत्र करते हैं। फूलोंके रसके अभावमें गुड़, खाँड़, ईख आदिसे भी मधु एकत्र किया जाता है। हिसाब लगाकर देखा गया है कि सेरभर मधु एकत्र करनेमें मधुमक्खियोंको प्रायः ७५ लाख फूलोंका मकरंद पान करना पड़ता है। यों तो सभी प्रकारके फूलोंसे मधु एकत्र किया जाता है पर उनमें महुए, अड़ूसे, अंगूर, नासपाती, सेब, सतरे, आम, नीबू, नीम, कमल, मौलसिरी, सेवती, गुलाब, भिंडी, शलजम, कपास, तिल और शतावर आदिके फूल मुख्य हैं। फूलोंका रस पहले तो जलके समान पतला रहता है पर मधुमक्खियोंके पेटमें शहदवाली थैलीमें जाने पर उसमें कई प्रकारकी रासायनिक क्रियाएँ होती हैं। वह गाढ़ा तथा बहुत अधिक मीठा हो जाता है। इन्हीं रासायनिक क्रियाओंमेंसे एक क्रियाके द्वारा उसमें फार्मिक एसिड उत्पन्न होता है जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है।

फूलोंके जिस अंशसे सुगन्धि फैलती है वही अंश मधुमें भी प्रधान होता है। वही अंश लेकर मधुमक्खियाँ अपनी शहदवाली थैलीमें भर लेती हैं और लाकर अपने छत्तेमें जमा करके फिर और रस लानेके

लिए चली जाती हैं। यहाँ दूसरी मक्खियाँ उस मधुको अपने परोंसे सुखाकर कुछ और गाढ़ा कर देता हैं और तब उसे मोमसे सुरक्षित करके छोड़ देती हैं। किसी पदार्थको पचानेके लिए उदरकी जिन क्रियाओंकी आवश्यकता होती हैं उनमेंसे अधिकाँश क्रियाएँ तो स्वयं मधुमक्खियाँ ही कर चुकती हैं जिसके कारण वह हमारे लिए सुपाच्य हो जाता है और इसके अतिरिक्त उसमें फार्मिक एसिड उत्पन्न होनेके कारण और भी अनेक प्रकारक गुण आ जाते हैं जिनके कारण वह रोगनाशक और योगवाही हो जाता है।

कुछ तो मक्खियोंके जातिभेदके कारण और कुछ फूलोंके भेदके कारण मधु भी अनेक प्रकारका होता है। देशी, पहाड़ी, पूर्वी, छोटी मक्खीका, बड़ी मक्खीका आदि अनेक भेद हैं जो इस देशमें पाए जाते हैं। इनमेंसे पहाड़ी और छोटी मक्खीका मधु उत्तम समझा जाता है। एक प्रकारका मधु राजपूतानेसे भी बिकनेके लिए आता है, पर वह प्राय शुद्ध तथा असली नहीं होता। और यदि शुद्ध तथा असली हो तो भी वह अच्छा नहीं होता। वह या तो शक्कर और गुड़ आदिसे बना हुआ होता है और या। उसमें इन सब पदार्थोंकी मिलावट होती है। इसके अतिरिक्त मैदा मिट्टी आदि और भी अनेक पदार्थ उसमें मिले हुए होते हैं। शक्करका बना हुआ मधु जाड़ेमें जम जाता है और उसका स्वाद भी शक्करका सा ही रह जाता है। अच्छा मधु वही समझा जाता है जिसका रग गौके घीके रंगके समान हो और जिसमेंसे अच्छी गन्ध आती हो। ऐसा मधु ज्यों ज्यों पुराना होता जाता है त्यों त्यों अधिक उत्तम और गुणकारी होता जाता है। असली मधुकी कई प्रकारसे परीक्षा की जाती है। रूईकी बत्ती बनाकर शहदमें डुबाकर जलानी चाहिए। यदि ठीक तरहसे बराबर जलती रहे और उसमेंसे

चटचट शब्द न निकले तो समझना चाहिए कि मधु असली तथा उत्तम है। कुछ लोग साधारण मक्खीको पकड़कर शहदमें छोड़ देते हैं। यदि वह मक्खी उसमेंसे निकलकर उड़ जाय तो समझ लेते हैं कि यह शहद असली और बढ़िया है। यह भी कहा जाता है कि शुद्ध मधु कुत्ता नहीं खा सकता। यदि शहद कुत्तेके सामने रख दिया जाय और वह उसे न खाय तो समझना चाहिए कि शहद असली और बढ़िया है। सूक्ष्मदर्शक यन्त्रके द्वारा उसके सूक्ष्म रजकणोंकी परीक्षा करके भी जाना जा सकता है कि शहद असली है या नहीं। परन्तु साधारणतः अपने उत्तम स्वाद रंग और गंधसे ही शहद पहचान लिया जाता है।

वनानटी मधुके अतिरिक्त कुछ मधु ऐसे भी होते हैं जिनमें अनेक प्रकारके विष होते हैं। जो मधु जहरीली मक्खियोंके द्वारा संचित किया जाता है वह विशेष रूपसे जहरीला होता है। यदि साधारण मक्खियाँ भी विषाक्त फूलोंसे रस सचित करके मधु बनावें तो वह मधु भी जहरीला होता है पर उसमें उतना अधिक विष नहीं होता जितना जहरीली मक्खियों द्वारा संचित किए हुए मधुमें होता है। कुछ मूर्ख और लालची जंगली लोग शहद निकालनेके समय मक्खीका सारा छत्ता ही बहुत बुरी तरहसे निचोड़ते हैं जिसके कारण उन जहरीली मक्खियोंके अंडे-बच्चों तकका सारा रस निकलकर उसी मधुमें आ मिलता है और वह मधु और भी अधिक विषाक्त हो जाता है। ऐसा मधुका रंग कुछ काला होता है और उसमें जलका अंश भी अपेक्षाकृत कुछ अधिक होता है। यह जलका अंश सुखानेके लिए लोग उसे आग पर चढ़ा देते हैं जिससे वह और भी अधिक विषाक्त होता है। इस बातका सदा ध्यान रखना चाहिए कि मधु कभी आग-

पर न चढ़ाया जाय। आग पर चढ़ाने और पकानेसे मधु विषके समान हो जाता है और उसके सेवनसे शरीरमें बहुत अधिक दाह उत्पन्न होता है। जो मधु काला, बहुत पतला या दुर्गंधयुक्त हो उसका भी कभी सेवन नहीं करना चाहिए।

हमारे यहाँ वैद्यकमें मधु शीतल, कसैला, मधुर, हलका, स्वादिष्ट, रूखा, ग्राही, अग्निदीपक, वर्णकारक, कान्तिवर्धक, व्रणशोधक, मेधाजनक, विशद, वृष्य, रुचिकारक, आनन्ददायक, संशोधक, बलकारक, त्रिदोषनाशक, स्वरशोधक, हृदयके लिए हितकारी और घावको भरनेवाला कहा गया है। इसके अतिरिक्त वह कोढ़, बवासीर, खाँसी, पित्त, रुधिरविकार, कफ, प्रमेह, कृमि, मद, ग्लानि, तृषा, वमन, अतिसार, दाह, हिचकी, वायु, विष, भ्रम, शोथ, पीनस, श्वास, रक्तप्रमेह, रक्तातिसार, रक्तपित्त मोह, पार्श्वशूल, नेत्ररोग, संग्रहणी और कोष्ठबद्धता आदिमें भी बहुत अधिक हितकारी तथा गुणकारी माना गया है। नया मधु दस्तावर, बलवर्धक और कफनाशक कहा गया है। और एक वर्ष या इससे अधिकका पुराना मधु उक्त समस्त गुणोंसे युक्त बतलाया गया है। हिकमतमें भी इसके जो गुण कहे गए हैं वे बहुत कुछ वैद्यकमें कहे हुए गुणोंसे मिलते जुलते हैं। डाक्टर लोग गले और छातीके रोगमें इसका बहुत व्यवहार करते हैं और इसे बहुत बलवर्धक मानते हैं। सभी देशोंमें औषधोंमें इसका बहुत अधिक व्यवहार होता है। बहुतसे लोग इसे यों ही रोटीके साथ और बहुत से लोग दूधके साथ मिलाकर पीते हैं। इसे घीके साथ मिलाकर खाना मना है। इसके अतिरिक्त इसके और भी कई उपयोग होते हैं। जिन स्थानोंमें यह अधिकतासे होता है और चीनी कम मिलती है उन स्थानोंमें लोग मिठाइयाँ आदि इसीकी बनाते हैं। विलायतवाले मुरब्बे आदि बनानेमें इसका बहुत अधिक

व्यवहार करते हैं। यह स्वयं तो कभी सड़ता या खराब होता ही नहीं, साथ ही इसमें जो चीज़ डाल दी जाती है उसें भी यह जल्दी सड़ने गलने या खराब होने नहीं देता। यहाँ तक कि फूल भी जो बहुत ही कोमल होते हैं यदि शहदमें छोड़ दिए जायँ तो जल्दी खराब नहीं होते।

[४]

यह तो हम कह ही चुके हैं कि मधु अनेक प्रकारके रोगोंके लिए बहुत अधिक लाभदायक होता है। अब हम संक्षेपमें यह बतलाना चाहते हैं कि किन किन रोगोंमें मधु कैसे सेवन कराना चाहिए और उसका क्या फल होता है।

यदि कोई यह जानना चाहे कि जठरसम्बन्धी रोगोंमें मधु किस प्रकार और क्या लाभ पहुँचाता है तो उसे इसकी परीक्षा इस प्रकार करनी चाहिए। सबसे पहले उसे अपना भोजन जहाँ तक हो सके सादा करते चलना चाहिए और साथ ही साथ भोजनकी मात्रा कम भी करते जाना चाहिए। जब भोजन बहुत सादा और बहुत कम हो जाय तब कुछ दिनों तक सवेरे खाली पेट गरम पानीमें थोड़ा सा शहद मिलाकर पीना चाहिए। पहले पाव भर ताजा पानी लेकर गरम करना चाहिए और तब उसमें एक चम्मच शुद्ध तथा बढ़िया शहद डालना चाहिए। पानी बहुत अधिक गरम नहीं होना चाहिए, साधारण कुनकुना और पीने योग्य होना चाहिए। यह शहद मिला हुआ पानी एक दमसे और जल्दी जल्दी नहीं पी जाना चाहिए बल्कि धीरे धीरे और घूँट घूँट करके उसी तरह पीना चाहिए जिस तरह गरम दूध या चाय पीते हैं। अर्थात् यह गरम भी चायकी तरह ही होना चाहिए और पी भी उसी तरह जाना

चाहिए। एक बार सुबह पी लेनेके उपरान्त फिर दिनमें और भी तीन चार बार इसी तरह गरम पानीमें शहद मिलाकर पीना चाहिए। परन्तु भोजनके उपरान्त नहीं पीना चाहिए, बल्कि सदा भोजन करनेसे घंटे आध घंटे पहले पीना चाहिए। इस बातका अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि शहद मिला हुआ जल उतना ही गरम हो जितना गरम साधारणत शरीरमेंका रक्त होता है। यदि पानीकी गरमी शरीरके रक्तकी गरमीसे अधिक होगी तो उससे लाभकी अपेक्षा हानि ही अधिक होगी। यदि पानी कुछ अधिक गरम हो तो उसे थोड़ी देर तक यों ही रखकर ठढा कर लेना चाहिए। बहुतसे लोग प्राय भोजनके साथ चाय या कहवा पीया करते हैं। यदि वे इन चीजोंके स्थानपर गरम पानीमें शहद मिला कर पीया करें, तो थोड़े ही समयमें उन्हें आश्चर्यजनक लाभ प्रतीत होने लगेगा।

प्राय ज्वर आदि रोगोंमें किसी प्रकारके खाद्य पदार्थके प्रति रुचि नहीं रह जाती। यदि ऐसी अवस्थामें डूशकी सहायतासे अथवा इसी प्रकारकी और किसी क्रियासे पेटमेंका मल निकालकर कोष्ठशुद्धि कर ली जाय और तब इसी प्रकार गरम जलमें शहद मिलाकर घंटे घंटे भर पर पीया जाय तो भी बहुत अधिक लाभ देखनेमें आता है। इससे भोजनकी ओर रुचि बढ़ती है, भूख लगती है शरीरके बलका नाश नहीं होने पाता और शरीर शीघ्र ही नीरोग हो जाता है। ऐसे अवसरोंपर शहदके आरोग्यवर्धक गुणोंका बहुत शीघ्र और अच्छा पता चल जाता है। बहुतसे लोगोंकी अजीर्ण अथवा इसी प्रकारके और अनेक रोगोंके कारण भोजन परसे रुचि बिलकुल हट जाती है और उन्हें कुछ भी भूख नहीं लगती। यदि ऐसे लोग डूशके द्वारा अथवा और किसी प्रकार पहले अपना पेट साफ कर लें और तब दो चार उपवास करके इसी प्रकार

गरम पानीमें शहद मिलाकर पीया करें, तो उन्हें बहुत अधिक लाभ हो सकता है। बहुतसे लोग ऐसे अवसरोंपर अनेक प्रकारके चूर्णों और नमकों आदिका व्यवहार करते हैं। परन्तु चूर्ण या नमक आदिके व्यवहारसे अनेक प्रकारकी हानियाँ होती हुई देखी गई हैं। यदि वे लोग ऐसी चीजोंके स्थानपर शहदका व्यवहार करें, तो उन्हें बहुत अधिक लाभ हो सकता है। यदि शरीरमें किसी प्रकारका विशेष रोग न भी हो तो भी सवेरे सन्ध्या जिस प्रकार चाय आदिका व्यवहार किया जाता है उसी प्रकार यदि गरम पानीमें शहद मिलाकर पीया जाय तो शरीरका स्वास्थ्य बराबर और भी सुधरता जाता है और जल्दी किसी प्रकारका रोग नहीं होने पाता।

यदि किसीका पित्ताशय ठीक तरहसे काम न करता हो तो उसके लिए भी शहदका व्यवहार करना बहुत अधिक लाभदायक होता है। कदाचित् ऐसा कोई रोग न होगा जिसमें वैद्य हकीम या डाक्टर शहद देनेकी मनाही करें। हाँ, पित्ताशयसम्बन्धी तथा और भी दूसरे अनेक ऐसे रोग होते हैं जिनमें हकीम वैद्य या डाक्टर लोग चीनी शक्कर या बताशा आदि देनेकी मनाही करते हैं। परन्तु ऐसे रोगोंमें भी शहद बिना किसी प्रकारकी हानिकी आशंकाके दिया जा सकता है। जब रोगी किसी कारणसे बहुत अधिक दुर्बल और अशक्त हो जाता है, तब प्रायः डाक्टर लोग उसे काडलीवर आयल, वायरिल या इसी प्रकारकी और अनेक पेटेण्ट दवाएँ पीनेकी सलाह दिया करते हैं। परन्तु ये पेटेण्ट दवाएँ भी कभी कभी तो कोई लाभ ही नहीं करतीं और कभी कभी बहुत अधिक हानि पहुँचाती हैं। यदि ऐसे रोगोंमें हानिकारक विलायती पेटेण्ट दवाएँ पिलानेके बदले शहदका व्यवहार कराया जाय तो अपेक्षाकृत बहुत शीघ्र और बहुत अधिक लाभ होता है।

जब लोग काम करते करते या और किसी प्रकारका शारीरिक परिश्रम करते करते बहुत थक जाते हैं, तब वे सोडा वाटर, चाय या कहवा आदि पीकर थकावट दूर करनेका प्रयत्न करते हैं। परन्तु अधिकांश अच्छे अच्छे चिकित्सकोंकी अब यही सम्मति होती जा रही है कि इन सब पदार्थोंसे लाभकी अपेक्षा हानि ही अधिक होती है। यदि इन सबके बदलेमें थकावट आदि दूर करनेके लिए उक्त रीतिसे गरम पानीमें शहद मिलाकर पीया जाय तो शरीरकी थकावट दूर होनेके अतिरिक्त और भी अनेक प्रकारके लाभ होते हैं। जिस प्रकार नित्य दिनमें तीन तीन ओर चार बार चाय, कहवा, या कोको आदि पीया जाता है, उसी प्रकार उनके बदलेमें शहदकी चाय पी जाय तो उससे स्वास्थ्यको बहुत अधिक लाभ पहुँच सकता है और चाय आदिसे स्वास्थ्यकी जो हानि होती है मनुष्य उस हानिसे बहुत सहजमें बच जाता है।

जिस समय बालकका जन्म होता है उस समय भिन्न भिन्न देशोंमें उसे भिन्न भिन्न प्रकारकी घुट्टियाँ दी जाती हैं। इन घुट्टियोंसे उसकी अँतड़ियाँ और पेट साफ हो जाता है। माताके पहले दिनके दूधमें भी यही गुण होता है। यदि बालकोंको इस प्रकारकी घुट्टी देनेके बदले इसी प्रकार थोड़े कुनकुने पानीमें शहद मिला कर दिया जाय तो उससे भी बहुत लाभ होता है। छोटे बच्चोंको प्राय दूध ही दिया जाता है। बहुत छोटी अवस्थाके बालकोंका हाजमा ऐसा नहीं होता कि वे खालिस दूध पचा सकें, इसलिए लोग प्राय उसमें आधा पानी मिलाकर उसे गरमकर बालकोंको पिलाते हैं। इस प्रकार पतला किया हुआ दूध जल्दी पच जाता है। यदि ऐसे दूधमें थोड़ा शहद भी मिला दिया जाय तो उससे बहुत लाभ होता है। बालकोंको दूधमें जो चीनी मिलाकर दी जाती है वह अनेक अंशोंमें हानिकारक होती है। यदि उन्हें चीनीके बदलेमें शहद

दिया जाय तो उन्हें बहुत लाभ होता है और उनका स्वास्थ्य बहुत अच्छा रहता है। अनुभव करके यह देखा गया है कि जिन बालकोंको बहुत ही छोटी अवस्थासे चीनीके बदलेमें शहद दिया जाता है वे बालक चीनी खानेवाले बालकोंकी अपेक्षा अधिक हृष्ट पुष्ट तथा स्वस्थ होते हैं और उन्हें जल्दी कोई रोग नहीं होता।

नौ महीनेका एक छोटा बच्चा था जिसे बहुत अधिक कै और दस्त आते थे। उस बालककी दशा इतनी बिगड़ गई थी कि मृत्यु मुखमें पहुँच रहा था और उसके बचनेकी कोई आशा नहीं थी। उसे दवाकी जगह तो पानीमें मिला हुआ शहद दिया जाने लगा और खुराककी जगह बकरीका दूध रखा गया। बस इन्हीं दोनों चीजोंसे थोड़े ही दिनोंमें वह बिलकुल अच्छा हो गया और उसे किसी तरहकी शिकायत न रह गई। यदि बालकोंको अजीर्ण, कै, या कब्जियत हो अथवा उनका शरीर सूखने लगे तो उन्हें उक्त रीतिसे पानी और शहद देनेसे बहुत अधिक लाभ होता है। प्राय बालकोंको गुड़ चीनी या मिस्री आदि खानेकी इतनी अधिक आदत पड़ जाती है कि उनका स्वास्थ्य बहुत बिगड़ जाता है। ऐसे बालकोंको यदि शहद दिया जाय तो उनकी चीनी आदि खानेकी आदत भी छूट जाती है और उनके स्वास्थ्यको किसी प्रकारकी हानि भी नहीं पहुँचने पाती।

यदि बालकोंको कै दस्त बदहजमी या इसी प्रकारका और कोई छोटा मोटा रोग हो तो उसके लिए डाक्टर, हकीम या वैद्यके यहाँ दौड़े हुए जानेकी कोई आवश्यकता नहीं है। उन्हें खानेकी जगह गौ या बकरीका दूध देना चाहिए और दवाकी जगह गरम पानीमें मिला हुआ शहद। बस फिर उसके लिए किसी चिकित्सककी आवश्यकता नहीं रह जायगी।

ादि कुछ सयाने बालकोंको भी किसी प्रकारका साधारण रोग हो तो ानके लिए भी यही इलाज करना चाहिए।

बालकोंमें अजीर्ण या जठराग्निके मन्द होनेके लक्षण दिखलाई दें तब ान्हें शहदकी चाय देनी चाहिए। उस समय भोजन सादा और कम ार देना चाहिए और दिनमें तीन चार बार शहदकी चाय पीनी चाहिए। ायस्क लोग भी इससे यथेष्ट लाभ उठा सकते हैं। इससे अजीर्ण दूर ा जाता है और जठराग्नि प्रबल हो जाती है।

पहले यह समझ लेना चाहिए कि जठराग्नि किस प्रकार मन्द पड़ती ै। जठरमें सदा कई प्रकारके रस उत्पन्न होते रहते हैं जिनकी सहाय-ासे भोजन पचता है। जब ये रस आवश्यकतासे कम मात्रामें उत्पन्न ाते हैं तब पाचन क्रिया शिथिल पड़ जाती है। इसीको अग्निमाद्य ाहते हैं। यदि आदमी बहुत देर तक जमकर कोई शारीरिक या मान सिक परिश्रम करता है तो उसकी जठराग्नि मन्द पड़ जाती है। बार ार और बहुत अधिक क्रोध करनेसे भी जठराग्नि मन्द हो जाती है। बहुत अधिक चिन्ता दुःख या शोक करनेवालोंकी भी यही दशा होती है। यदि भोजन बहुत अच्छी तरह चबाकर न किया जाय, बार बार और अधिक किया जाय, बहुत गरिष्ठ किया जाय अथवा उसके साथ बहुत अधिक या तेज मसाले आदि खाए जायँ तो भी जठराग्नि मन्द पड़ जाती है, और जठराग्निके मन्द पड़नेसे ही अजीर्ण या बदहजमी हो जाती है। इसी अजीर्णके कारण कोष्ठबद्धता या कब्जियत होती है, कै आती है, दस्त आते हैं, ज्वर हो आता है, रक्तमें विकार उत्पन्न होता है तथा इसी प्रकारके और अनेक रोग हो जाते हैं। जो लोग दिन-रात चुपचाप बैठे रहते हैं या पड़े रहते हैं और किसी प्रकारका शारी रिक श्रम नहीं करते उनकी भी प्राय यही दशा होती है। अत

अजीर्ण आदि दूर करनेके लिए सबसे पहले इन मुख्य कारणोंको दूर करना चाहिए, क्योंकि इन्हीं कारणोंसे जठराग्नि मन्द होती है तथा और अनेक प्रकारके रोग होते हैं। जो लोग इन रोगोंसे बचना चाहते हों उन्हें सबसे पहले रोगोंके इन कारणोंसे बचनेका प्रयत्न करना चाहिए, और तब यदि इसके साथ भोजनसे एक घंटे पहले शहदकी चाय पी ली जाय तो उससे बहुत अधिक लाभ होता है। बहुत से लोग जब दुर्बल और अशक्त हो जाते हैं तब बल तथा शक्ति प्राप्त करनेके लिए तरह तरहकी पौष्टिक औषधोंका सेवन करने लगते हैं, परन्तु इन औषधोंसे बहुत कम लाभ होता है। वे लोग और भी अनेक प्रकारके उपचार करते हैं, पर किसीका कुछ भी फल नहीं होता। फल हो कहाँसे? उनके रोगके जो वास्तविक कारण होते हैं वे तो ज्योंके त्यों बने रहते हैं। उन कारणोंको तो वे दूर करते ही नहीं, केवल औषधोंके बलपर बलवान् बनना चाहते हैं। परन्तु यदि वास्तविक दृष्टिसे देखा जाय तो दुर्बलता आदि रोगोंका मुख्य कारण जठराग्निकी मन्दता ही है। शरीरके अंगोंका ठीक तरहसे पोषण तो होता ही नहीं, फिर यदि दुर्बलता न हो तो और क्या हो? जिस आदमीकी जठराग्नि मन्द पड़ जाती है वह सहजमें ही बहुत से रोगोंका शिकार बन जाता है। ऐसे लोग प्राय युवावस्थामें ही वृद्ध, बल्कि वृद्धोंसे भी गए बीते हो जाते हैं। ऐसे लोगोंको सबसे पहले अपनी जठराग्निको ठीक दशामें रखनेका प्रयत्न करना चाहिए। उन्हें खुली हवामें रहना चाहिए, कुछ व्यायाम करना चाहिए, हल्का सादा और परिमित भोजन करना चाहिए, खूब चबा चबाकर भोजन करना चाहिए, चाय कहवे और कोको आदिका सेवन छोड़ देना चाहिए, क्रोध दु ख और चिन्ता आदिका परित्याग कर देना चाहिए और या तो दिनमें तीन चार बार शहदकी चाय पीनी

चाहिए और या और किसी प्रकार शहदका सेवन करना चाहिए। शहदके सेवनसे शरीर सदा स्वस्थ बना रहता है और युवावस्था अधिक समय तक स्थिर रहती है।

जिन लोगोंको बवासीर हो वे यदि भोजनसे एक घंटे पहले शहदकी चाय पिया करें तो उन्हें भी इससे बहुत लाभ हो सकता है।

भगन्दर या इसी प्रकारके और रोगोंमें रोगियोंको सब प्रकारका भोजन छोड़ देना चाहिए और केवल दूधपर निर्वाह करना चाहिए, और उस दूधमें चीनी आदिकी जगह सदा शहद डालना चाहिए। यदि थोड़े दिनों तक केवल इसी प्रकार रहा जाय तो शीघ्र ही बिना और किसी प्रकारके औषधोपचारके आरोग्य लाभ किया जा सकता है।

जिन लोगोंको कब्जियत हो उन्हें शहदसे बहुत अधिक लाभ होता है। कब्जियत एक ऐसा रोग है जिसका बुरा प्रभाव सारे शरीरपर पड़ता है। कारण यह है कि जिन लोगोंको कब्जियत होती है वे न तो अच्छी तरह भोजन पचा सकते हैं और न यथेष्ट मात्रामें भोजन ही कर सकते हैं। ऐसी अवस्थामें शरीरके अवयवोंका पूरा पूरा भोजन नहीं मिलता जिससे उनका ठीक तरहसे पोषण नहीं होता, और जब अवयवोंका भली भाँति पोषण ही न हो तब वे नीरोग और सबल कैसे रह सकते हैं? इसलिए कब्जको शुरूमें ही दूर करनेका प्रयत्न करना चाहिए। नहीं तो आगे चलकर जब यह रोग पुराना हो जाता है तब इससे पीछा छुड़ाना बहुत कठिन हो जाता है। कब्जियतका एक बुरा परिणाम यह भी होता है कि शरीरका रक्त दूषित हो जाता है और उसमें अनेक प्रकारके विकार आ जाते हैं। सबेरे और सन्ध्या दोनों समय भोजन करनेसे कुछ पहले यदि थोड़े गरम पानीमें मधु मिलाकर पी लिया जाया करे तो इससे कब्जि-

यत अवश्य दूर हो जाती है। मैदेसे कब्जियत बहुत बढ़ती है, इसलिए उसका व्यवहार बिलकुल छोड़ देना चाहिए। पुरानी कब्जियतमें प्राय डाक्टर लोग कैस्करा सैगरेडा (Cascara Sagrada) का व्यवहार करनेका परामर्श देते हैं। परन्तु इससे बादमें अनेक प्रकारकी हानियाँ होती हैं, इसलिए इससे भी बहुत बचना चाहिए। कैस्करा सेगरेडासे पित्ताशय बहुत खराब हो जाता है और उसके परिणाम स्वरूप सारे शरीरको बहुत हानि पहुँचती है। यद्यपि एनिमासे भी कुछ छोटी हानियाँ होती हैं परन्तु उसकी अपेक्षा एनिमाका व्यवहार कहीं अच्छा है। जो लोग एनिमाका व्यवहार करते हों, उन्हें यदि कब्जियत बहुत अधिक हो तो उचित है कि वे पानीमें कुछ ग्लिसरिन भी मिला लिया करें।

यदि सरदी या जुकाम हो जाय तो भी शहदके व्यवहारसे बहुत लाभ होता है। सरदी होनेका कारण यह होता है कि त्वचा और पृष्ठदंडमें तथा छाती और फेफड़ोंमें सम्बन्ध करानेवाले जो ज्ञानतन्तु होते हैं उनमें किसी प्रकारकी अव्यवस्था या विकार उत्पन्न हो जाता है। जिस समय हमारी त्वचा और ज्ञानतन्तु अपना काम ठीक तरहसे नहीं करते उस समय हमें सरदी हो जाती है। जिन लोगोंको जरा जरा सी बातमें सरदी हो जाया करती है वे प्राय सरदीके डरके मारे प्रात काल ठंढकके समय बाहर घूमने नहीं निकलते, बरसातमें घरसे बाहर पैर नहीं रखते, ठंढे पानीसे स्नान नहीं करते, बदनपर प्राय गरम कपड़े पहने या लपेटे रहते हैं और गलेके चारों तरफ कोई गरम कपड़ा बाँधे रहते हैं। इस प्रकार ऐसे लोग सदा सरदीसे डरते रहते हैं और यदि कभी किसी अवसरपर उन्हें जरा सी भी हवा लग जाती है अथवा इसी प्रकारकी और कोई बात हो

जाती है तो उन्हें तुरन्त जुकाम हो जाता है जो बहुत कुछ प्रयत्न करनेपर भी महीनों अच्छा नहीं होता। कुछ लोग तो ऐसे नाजुक होते हैं कि यदि तेज गरमीके दिनोंमें भी बरफ या मलाईकी कुल्फी आदि खा लें तो उन्हें जुकाम हो जाता है। ये सब बातें प्रकृतिकी निर्बलताके कारण ही होती हैं। ऐसे लोगोंके लिए सबसे पहले यह उचित है कि वे व्यायाम करके अपनी प्रकृतिको ठीक मार्गपर लावें। जब प्रकृति सुदृढ़ और स्वस्थ रहती है तब सरदी होनेकी बहुत कम सम्भावना रहती है। उस समय शरीरके खुले रहने या रातके समय खुली हवामें सोनेसे किसी प्रकारकी हानि नहीं होती और न ठंढे पानीसे स्नान करने अथवा अधिक ठंढा पानी पीनेसे सरदी ही होती है। बल्कि जब व्यायाम आदि करनेके कारण प्रकृति दृढ़ और सबल रहती है तब उलटे आरोग्य और सुधरता है, शरीर बलवान् होता है।

हमेशा गरम कपड़े पहने रहने और कान तथा गला आदि लपेटे रहनेकी आदत अच्छी नहीं है। जो लोग ऐसा करते हैं वे जरा सी ठंढी हवा लगते ही बीमार हो जाते हैं। कारण यह है कि शरीरका जो भाग सदा गरम कपड़ेसे ढका रहता है उसमें प्राय पसीना हुआ करता है। ऐसा भाग यदि कभी थोड़ी देरके लिए खुल जाता है तो वह ठंढी हवा सहन नहीं कर सकता, क्योंकि उसे ठंढी हवा खानेका अभ्यास तो होता ही नहीं और इसी लिए तुरन्त सरदी हो जाती है। ऐसे लोगोंको यह बात अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि एक तो हवा साधारणत शरीरके लिए बहुत अधिक उपयोगी है ही, दूसरे हमारा देश गरम है। हमारे यहाँ शरीरमें ठंढी हवा लगनेकी और भी आवश्यकता होती है। गरम देशोंमें रहनेवाले लोगोंके शरीरमें जितनी ही अधिकसे अधिक साधारण ठंढी हवा लगे उतना ही अच्छा है। ठंढी और खुली हवा

बहुत अधिक उपकारी तथा गुणकारी होती है और उससे डरनेकी कोई वजह नहीं है। यह तो उलटे और अधिक आरोग्यवर्धक है। केवल ठंढी हवासे कभी किसीको सरदी नहीं होती। सरदी तो तब होती है जब हम अपने शरीरको गरम कपड़ोंसे ढक ढककर इतना अधिक कोमल बना लेते हैं कि फिर हम ठंढी हवासे लाभ उठानेके योग्य ही नहीं रह जाते। उत्तरी ध्रुवमें जहाँ कि बहुत अधिक बरफ पड़ता है और बहुत ही ठंढी हवा चला करती है कभी किसीको सरदी होती ही नहीं, क्योंकि वहाँके लोग सरदी से कभी डरते नहीं। सरदी तो केवल उन्हीं, लोगोंको होती है जो ठंढकसे बहुत डरा और बचा करते हैं।

ठीक यही बात ठंढे पानीकी भी है। नीरोग रहनेके आकांक्षियोंको जिस प्रकार ठंढी हवासे नहीं डरना चाहिए उसी प्रकार उन्हें ठंढे पानीसे भी नहीं डरना चाहिए। बहुत से लोग ठंढे पानीमे इतना डरते हैं कि कड़ीमे कड़ी गरमीके दिनोंमे भी वे सदा गरम पानीसे स्नान करते हैं, ठंढे पानीसे स्नान कर ही नहीं सकते। ऐसे लोग यदि संयोगवश किसी ऐसे स्थानपर पहुँच जाते हैं जहाँ ठंढा पानी ही मिलता हो और उसे गरम करनेका कोई साधन न हो, तो फिर वहाँ वे ठंढे पानीसे स्नान करनेकी अपेक्षा बिलकुल स्नान न करना ही पसन्द करते हैं। क्योंकि उन्हें डर रहता है कि ठण्डे पानीसे स्नान करते ही हमें सरदी हो जायगी या बुखार चढ़ आवेगा अथवा और किसी न किसी प्रकार तबीयत खराब हो जायगी। भला तबीयतकी ऐसी नजाकत किस कामकी? ऐसे लोगोंको अपनी यह आदत धीरे धीरे छोड़ देनी चाहिए और खुली हवामें रहने तथा ठण्डे पानीसे स्नान करनेका अभ्यास डालना चाहिए। परन्तु उन्हें आरम्भमें ही एकदमसे खुली हवामें या बिलकुल ठण्डे

पानीसे स्नान करना आरम्भ नहीं कर देना चाहिए, बल्कि पहले बन्द स्थानमें साधारण ठंढे पानीसे स्नान करनेका अभ्यास डालना चाहिए और तब धीरे धीरे अपना शरीर इस योग्य बना लेना चाहिए कि बिल्कुल ठंढी हवामें और बिल्कुल ठंढे पानीसे भी स्नान करनेपर शरीरको किसी प्रकारकी हानि न पहुँचे और किसी प्रकारका रोग न उत्पन्न हो। यदि आरम्भमें ही ठंढे पानीसे स्नान करनेमें कुछ कष्ट जान पड़े तो कुछ दिनों तक गरम पानीसे ही स्नान करना चाहिए और पानीकी गरमी धीरे धीरे कम करते जाना चाहिए। स्नान करनेके समय किसी साफ तौलिए या और मोटे कपड़ेसे बदन अच्छी तरह रगड़ना चाहिए। इस क्रियासे शरीरमें गरमी आती है और ऊपरकी ओर चमड़ेके पास तक रक्त आ जाता है जिससे चमड़ा अधिक मजबूत हो जाता है। अन्दर बहुत गरम कपड़ा नहीं पहनना चाहिए। यदि पहननेकी आवश्यकता ही पड़े तो जहाँ तक हो सके कम समयके लिए पहनना चाहिए। जहाँ तक हो सके शरीरके कुछ अंग कुछ समय तक खुले रहने देना चाहिए और उनमें शुद्ध हवा अबाधित रूपसे लगने देनी चाहिए। आजकल लोग शरीरको खुला रखना असभ्यता समझते हैं और अँगरेजोंका अनुकरण करते हुए सारा शरीर मोटे और भारी कपड़ोंसे ढके रहते हैं। बहुत ठंढे देशोंके लिए ऐसा पहनावा उपयुक्त हो सकता है, पर हमारे भारत सरीखे गरम देशके लिए इससे स्वास्थ्यको बहुत हानि पहुँचती है। हमारे पूर्वज प्रायः बहुत ही थोड़े कपड़ोंका व्यवहार करते थे और शरीरका बहुत सा भाग प्रायः खुला ही रखते थे। हाँ, जब कभी उन्हें कहीं बाहर जाना पड़ता था तब वे दो एक कपड़े पहन लेते थे। शरीर और स्वास्थ्यकी दृष्टिसे ऐसा करना बहुत ही उपयोगी होता है। एक बार संयुक्त प्रान्तके एक सज्जन साँचीका स्तूप

देखनेके लिए गए थे। वहाँ उन्हें तीन चार दिन तक रहना पड़ा था। इन तीन चार दिनोंतक उन्होंने केवल इसी भयसे शरीरके कपड़े नहीं उतारे थे कि लोग कहीं मुझे असभ्य न समझ लें और इसी लिए उन्होंने स्नान तक नहीं किया था। भला ऐसी सभ्यता किस काम की? स्वास्थ्य भले ही बिगड़ जाय पर सभ्यता हाथसे न जाने पावे। हमारे पूर्वजोंके बहुत अधिक स्वस्थ और नीरोग रहनेका एक बहुत बड़ा कारण यह भी था कि वे अपना अधिकांश शरीर प्राय खुला रखते थे और उसमें शुद्ध हवा लगने देते थे। आजकलके गाँव देहातके लोग भी कपड़ोंका बहुत ही कम व्यवहार करते हैं और यही कारण है कि उनका स्वास्थ्य प्राय बहुत ठीक रहता है और उन्हें बहुत ही कम बीमारियाँ होती हैं। वे उन लोगोंकी अपेक्षा कहीं अधिक हृष्ट पुष्ट और बलवान् होते हैं जो दिन रात भारी भारी कपड़ोंसे अपना शरीर ढके रहते हैं। हम यह नहीं कहते कि सब लोगोंको सदा केवल एक धोती या अँगोछा पहने ही रहना चाहिए। जिस समय बाजार, दफ्तर या किसी सभा समाज आदिमें जाना हो उस समय अवश्य ही आवश्यकतानुसार कपड़े पहन लेने चाहिए। पर घरके अन्दर भी सदा गरम और भारी कपड़ोंसे सारा शरीर ढके रहना स्वास्थ्यकी दृष्टिसे बहुत ही हानिकारक है।

छोटे बच्चोंको प्राय लोग सरदीसे बचानेके लिए सिरसे पैर तक भारी भारी कपड़े पहनाए रखते हैं। वे लोग समझते हैं कि यदि बच्चे खुली हवामें रहेंगे तो उन्हें सरदी हो जायगी। इसी लिए वे उन्हें जल्दी खुली हवामें घूमनेके लिए जाने नहीं देते। यदि कभी सयोगसे बाहर खुली हवामें भेजते भी हैं तो आवश्यकतासे बहुत अधिक कपड़े पहनाकर भेजते हैं और जाड़ेमें तो उन्हें इतने अधिक कपड़े पहनाते हैं कि

वे प्राय पसीनेसे तर रहते हैं। यही कारण है कि बच्चोंका स्वास्थ्य बहुत जल्दी बिगड़ जाता है और वे जरा भी गरमी या सरदी बरदाश्त नहीं कर सकते। बड़े होनेपर ऐसे बालक बहुत ही कोमल प्रकृतिके हो जाते हैं और जरा जरा सी बातोंमें बीमार पड़ने लगते हैं। जब उनमें जरा भी सरदीके लक्षण दिखाई देने लगते हैं तब वे दौड़े हुए डाक्टरके पास जाते हैं और अनेक प्रकारकी जहरीली दवाएँ खिला कर उनका शरीर बहुत ही निर्बल कर देते हैं। वस्त्र सदा ढीले ढाले और ऐसे होने चाहिए कि शरीरमें भली भाँति हवा लग सके और अन्दर जो पसीना हो वह सूख सके। अन्दरकी गरमी बाहर निकल जानी चाहिए और बाहरकी ठंढक अन्दर पहुँच सकनी चाहिए।

यद्यपि साधारण अवस्थामें ठंढे पानीसे ही स्नान करना ठीक होता है, पर जिस समय सरदी हुई हो उस समय किंचित् गरम पानीसे स्नान करना चाहिए और यदि हो सके तो एनिमाके द्वारा अथवा और किसी प्रकार कोठा साफ कर लेना चाहिए। प्रात काल कुनकुने पानीसे स्नान करके ऊपर लिखी हुई रीतिसे तैयार की हुई शहदकी चाय पीनी चाहिए और तब कुछ गरम कपड़ा पहनकर थोड़ी देरके लिए लेट जाना चाहिए। उस समय शरीरसे पसीना निकलने लगेगा और ज्यों ज्यों पसीना निकलता जायगा त्यों त्यों सरदीका जोर कम होता जायगा। छ भाग पानीमें एक भाग शुद्ध और बढ़िया एसेटिक एसिड मिलाकर उससे नाक धोनी चाहिए और वही पानी सूँघना चाहिए। यदि सरदीका असर छाती और फेफड़ों तक पर पहुँच गया हो तो उस दशामें उसी पानीसे छाती और पीठ भी अच्छी तरह धोनी चाहिए और जब तक छातीका दरद कम न हो तब तक बराबर शहदकी चाय पीनी चाहिए।

[५]

खाँसी—यदि खाँसी आती हो तो शहदकी गरम चाय पीनेसे बहुत लाभ होता है। यदि रातको सोनेके समय उसी गरम चायमें नींबूका थोड़ा—रस मिला लिया जाय तो और भी अधिक लाभ होता है।

गलेकी सूजन—यदि गला सूज गया हो तो गरम दूधमें थोड़ा शहद और थोड़ा ग्लिसरिन डालकर पीना चाहिए। दूध जहाँ तक हो सके गरम पीना चाहिए।

कफ—यदि शरीरमें कफ बहुत बढ़ गया हो तो गरम दूध या पानीमें मिलाकर शहद पीना चाहिए। प्राय सभी मीठे पदार्थ कफकी, वृद्धि करते हैं, परन्तु शहदसे कफका बहुत शीघ्र और बहुत अधिक शमन होता है।

काली खाँसी—बालकोंको प्राय काली खाँसी हो जाया करती है। उस समय अतीसके साथ दाखके दो दाने पीसकर और शहदमें मिला कर देनेसे बहुत लाभ होता है।

क्षय—आजकल क्षयका रोग प्राय, असाध्य समझा जाता है, पर वास्तवमें यह बात नहीं है। यदि चिकित्सक अच्छा हो और रोगी परहेजसे रहे तो यह रोग अवश्य दूर हो जाता है। आजकलके वैद्य हकीम और डाक्टर आदि सहजमें अच्छा नहीं कर सकते, इसी लिए उसे असाध्य बतलाते हैं। पर शीघ्र ही वह समय आवेगा जब कि यह रोग असाध्य नहीं समझा जायगा। यदि वास्तविक दृष्टिसे देखा जाय तो न तो कोई रोग साध्य होता है और न कोई रोग असाध्य। जो रोग साध्य और बहुत ही साधारण समझे जाते हैं वे भी कभी कभी असाध्य हो जाते हैं और जो रोग प्राय असाध्य समझे जाते हैं वे भी कभी कभी साध्य हो जाते हैं। मधुके आरोग्यवर्धक और पुष्टिकारक होनेमें तो किसी प्रका-

का सन्देह किया ही नहीं जा सकता। यदि मछलीके तेल और इसी
कारकी दूसरी अनेक दवाओंकी जगह रोगीको मधुका सेवन कराया
जाय तो इससे बहुत अधिक लाभ हो सकता है। क्षयके रोगीके शरी-
का मधुसे बहुत अधिक पोषण होता है। यदि उसे बराबर शहदकी
चाय दी जाया करे तो उसका बल भी बढ़ता है और उसे भूख भी
लगने लगती है। यदि क्षयके आरम्भसे ही मधुका सेवन आरम्भ कर
दिया जाय, तो रोग बढ़ने नहीं पाता और बहुत शीघ्र दूर हो जाता है।
क्षयके रोगीको गरम पानीसे स्नान करना चाहिए और जहाँ तक हो
सके खुली हवामें रहना और टहलना; तथा सदा कोई न कोई छोटा
मोटा काम करते रहना चाहिए।

श्वास—प्राय यह समझा जाता है कि जठरकी अव्यवस्थासे श्वास
या दमा होता है। यदि इस रोगमें अधिक मात्रामें अथवा गरिष्ठ भोजन
किया जाय तो इस रोगके बहुत अधिक बढ़ जानेकी सम्भावना रहती
है। इसलिए श्वासके रोगीको बहुत ही हल्का और सादा भोजन करना
चाहिए और जितनी आवश्यकता हो उतना ही भोजन करना चाहिए।
आवश्यकतासे अधिक या बहुत पेट भरकर कभी भोजन न करना
चाहिए। ऐसे रोगीको बराबर शहदकी चायका व्यवहार करना चाहिए।

कठनालिकाकी सूजन—जिन लोगोंको यह व्याधि होती है
उन्हें साथ ही साथ प्राय सरदी भी हो जाया करती है। यदि इस
रोगकी शीघ्र चिकित्सा न की जाय तो यह बहुत भयंकर रूप धारण
कर लेता है। यह रोग प्राय उन्हीं कारणोंसे होता है जिन कारणोंसे
सरदी या जुकाम होता है। इसमें भी शहदकी चाय बहुत अधिक गुण
दिखलाती है।

मानसिक दुर्बलता—इस रोगमें मधुके सेवनसे बहुत अधिक लाभ

होता है । मानसिक शक्तिकी पुष्टि और वृद्धिके लिए मधु बहुत ही गुण-
कारी है। गरम दूध या पानीमें शहद मिलाकर पीनेसे बहुत लाभ होता है।

रक्तकी कमी—बहुतसे लोगोंके शरीरका रक्त बिल्कुल सूख जाता है और उनका रंग बिलकुल पीला पड़ जाता है। साथ ही शरीर बहुत सूख जाता है और शक्तिका बहुत अधिक ह्रास हो जाता है। ऐसे लोग अनेक प्रकारकी पौष्टिक औषधोंका सेवन करते हैं पर उनसे कुछ भी लाभ नहीं होता। यदि ऐसे लोग गरम दूधमें थोड़ा पानी और थोड़ा शहद मिलाकर दिनमें आठ सात बार पीया करें तो उनको बहुत अधिक लाभ हो सकता है। भोजन खूब चबाकर करना चाहिए और साँस खूब खींचकर लेना चाहिए। शरीरमें रक्तकी कमी हो जानेके कारण कोष्ठबद्धता भी हो जाती है। ऐसे लोगोंको खुली हवामें घूमना और व्यायाम करना चाहिए और भोजन जहाँ तक हो सके सादा और कम करना चाहिए।

मूत्राशयके रोग—जिन लोगोंको मूत्राशयका किसी प्रकारका रोग हो उन्हें भी मधुकी चायका सेवन करना चाहिए। इससे मूत्राशय सम्बन्धी सभी रोग दूर होते हैं और मूत्राशय नीरोग हो जाता है।

सन्निपात—जिन लोगोंको सन्निपातका रोग हो उन्हें गरिष्ठ भोजन नहीं करना चाहिए और उतना ही भोजन करना चाहिए जितना सहजमें पच सके। ऐसे लोगोंको प्रातःकाल और रातको सोनेके समय मधुकी चायका बराबर सेवन करना चाहिए। यदि दोपहरको भोजनके समय वे इसका सेवन करें तो और भी अच्छा है। ऐसे स्थानोंमें नहीं रहना चाहिए जहाँ बहुत अधिक सीद या सरदी हो। सदा सूखे और खुले स्थानमें रहना चाहिए।

मद्य और तमाखू आदिका व्यसन—प्रोफेसर स्टर्लिंग कहते हैं कि

एक मनुष्य ही ऐसा प्राणी है जो बिना प्यास लगे ही शराब, चाय आदि अनेक प्रकारके पेय पदार्थ पीता है। सर फ्रेडरिक ट्रेवेसका कथन है कि शराब तमाखू आदि मादक पदार्थोंमें विष रहता है और लोग समझते हैं कि विषका उतार विष ही है। इसी लिए वे लोग शराबपर शराब और तमाखूपर तमाखू पीते हैं। और समझते यह हैं कि कि हमारा स्वास्थ्य सुधर रहा है पर वास्तविक बात यह है कि प्रत्येक प्रकारके मादक पदार्थके सेवनसे शरीरका बल बराबर कम होता है और इसी लिए शरीरमें कृत्रिम बल उत्पन्न करनेके लिए लोग उत्तरोत्तर अधिक मादक द्रव्योंका सेवन करते हैं। प्राय मद्य पीनेवाले लोग और अधिक नशेमें होनेके लिए तमाखू या सिगरेट पीते हैं, पान और सुरती खाते हैं तथा इसी प्रकारके और अनेक मादक द्रव्योंका सेवन करते हैं। इस प्रकार एक व्यसनके द्वारा और भी अनेक व्यसन लग जाते हैं। और इन्हीं सब बातोंसे प्रमाणित होता है कि दिनपर दिन उनकी निर्बलता और भी बढ़ती जाती है। एक बार मद्य या तमाखू आदि पीनेके उपरान्त फिर दोबारा मद्य या तमाखू पीनेकी जो आवश्यकता पड़ती है उसका कारण केवल यही है कि पहले बारके सेवनसे शरीरमें एक प्रकारका विष उत्पन्न हो जाता है और तब उस विषका शमन करनेके लिए अथवा उसके द्वारा आनेवाली दुर्बलता दूर करनेके लिए दोबारा उस मादक पदार्थके सेवनकी आवश्यकता पड़ती है। परन्तु परिणाम यह होता है कि वह विष पहलेकी अपेक्षा दूना तिगुना हो जाता है और निर्बलता भी बहुत अधिक बढ़ जाती है। जो आदमी पहले दिनमें एक या दो बीड़ियाँ पीता है वही कुछ दिनोंमें दिन भरमें दस दस और बीस बीस बीड़ियाँ पीने लग जाता है। मादक द्रव्यके सेवनसे स्नायु बहुत दुर्बल हो जाते हैं और मस्तिष्कके ज्ञानतन्तुओंमें आलस्य तथा रोगका

प्रवेश हो जाता है। तमाखूके सेवनसे अजीर्ण तो प्राय अवश्य हो जाया करता है और अजीर्ण हो जानेपर कोष्ठवद्धता तथा कोष्ठवद्धता हो जानेपर अनेक प्रकारके रोग हो जाते हैं। तात्पर्य यह कि एक तमाखूके सेवनसे ही शरीरमें नाना प्रकारके रोग उत्पन्न हो सकते और होते हैं। आप किसी व्यसनी आदमीसे उसका व्यसन छोड़ देनेके लिए कहिए और तब ध्यानपूर्वक देखिए कि आपके कह चुकनेपर उसकी क्या दशा होती है। उसकी उस दशासे ही यह बात स्पष्ट प्रकट होती है कि जिस मादक पदार्थका उसे व्यसन है उसमें विषका अंश अवश्य मिला है और उसपर उस विषयका बहुत बड़ा प्रभाव पड़ चुका है यह उस विषका इतना अभ्यस्त हो चुका है कि अब बिना उसके काम ही नहीं चल सकता। जो लोग शराब, तमाखू या अफीम आदि मादक द्रव्योंका सेवन करते हैं वे यदि कभी अपना व्यसन एक दमसे छोड़ देते हैं तब उनके शरीर और मस्तिष्कमें एक विशेष प्रकारकी गड़बड़ी और अव्यवस्था उत्पन्न हो जाती है। उन्हें ऐसी दुर्बलता जान पड़ती है जिसका पहले उन्होंने कभी अनुभव नहीं किया था। यह दुर्बलता उनकी व्याधिके ही परिणामस्वरूप होती है और यही दुर्बलता दूर करनेके लिए उन्हें फिरसे अपना व्यसन आरम्भ करनेकी आवश्यकता पड़ती है। वे उस व्यसनसे अपना पीछा छुड़ानेका लाख प्रयत्न करते हैं, पर बिना उस व्यसनके उनका काम ही नहीं चलता। जब वे अपना व्यसन छोड़ देते हैं तब तो उन्हें अपना शरीर बहुत ही दुर्बल और अस्वस्थ जान पड़ता है, पर जब वे फिरसे वह व्यसन आरम्भ कर देते हैं तब मानो उन्हें शान्ति और स्वस्थताका अनुभव होने लगता है। मादक द्रव्योंका सेवन करनेवाला जब कुछ देर या कुछ दिनोंके लिए उस द्रव्यका सेवन छोड़ देता है तभी इस बातका पूरा पूरा पता लगता

है कि उस व्यक्तिपर उस मादक द्रव्यका कितना अधिक अधिकार हो गया है और उसमें उसके प्रति कितनी अधिक परतन्त्रता आगई है। व्यसन छोड़ देनेपर थोड़े ही समयमें वे समझने लगते हैं कि यह व्यसन हमारी जीवनयात्राके लिए बहुत लाभदायक है और इसे छोड़ देनेसे हमारी बहुत बड़ी हानि होती है। परन्तु उनका ऐसा समझना बड़ी भारी भूल है। पहले उन्हें कुछ अधिक समय तक अपना व्यसन बिल्कुल छोड़ देना चाहिए और तब यह देखना चाहिए कि यह व्यसन जारी रखनेमें हमारी हानि होती है या इसे छोड़ देनेमें। वास्तवमें सदा व्यसन ही हानिकारक होता है, उसका छोड़ देना कभी हानिकारक नहीं हो सकता।

जो लोग तमाखू या शराब आदि व्यसनोंसे अपना पीछा छुड़ाना चाहते हों उन्हें नीचे लिखा काम करना चाहिए। सबसे पहले तो उनमें उस व्यसनको पूर्ण रूपसे और सदाके लिए छोड़ देनेकी वास्तविक इच्छा होनी चाहिए। तब उन्हें अपने मनमें इस बातका दृढ़ निश्चय करना चाहिए कि चाहे जो होगा हम यह व्यसन अवश्य छोड़ देंगे। जब कभी कोई अवसर आवे तब उन्हें उससे बचनेके लिए दृढ़ निश्चय और पूरा आग्रह दिखलाना चाहिए। जो लोग यह व्यसन करते हों उनका साथ बिल्कुल छोड़ देना चाहिए या बहुत कम कर देना चाहिए। जिस समय और जिस स्थानपर लोग यह व्यसन करते हों, उस समय और उस स्थानपर व्यसन छोड़नेकी इच्छा रखनेवालेको कभी नहीं जाना चाहिए क्योंकि वहाँ जाने पर लोगोंकी देखादेखी या उनके आग्रह करने पर अवश्य ही यह व्यसन करनेकी इच्छा और प्रवृत्ति होगी और व्यसन छोड़नेका संकल्प टूट जायगा। जब कभी स्वय वह व्यसन करनेकी इच्छा हो तब एक प्याला शहदकी चाय पी लेनी चाहिए। आरम्भमें तो कुछ दिनों तक अवश्य कुछ कठिनता जान पड़ेगी परन्तु कुछ दिनों बाद यह शहदकी चाय ही अच्छी जान पड़ने लगेगी। इस प्रकार वह

व्यसन छूट जायगा और शरीर दिनपर दिन स्वस्थ तथा नीरोग होने लगेगा। व्यसन छोड़नेके लिए मनमें दृढ़ सकल्प और आग्रह तो अवश्य ही रखना पड़ेगा। यदि दृढ़ सकल्प और आग्रह नहीं होगा और व्यसन करनेकी प्रबल कामना होने पर यह सोचा जायगा कि चलो आज यह व्यसन कर लें, कलसे न करेंगे तो फिर वह व्यसन कभी न छूटेगा। नित्य वैसी ही प्रबल कामना होती रहेगी और नित्य यही कहा जायगा कि आज यह काम कर लें, कलसे न करेंगे। ऐसी दशामें वह कल कभी न आवेगा और न वह व्यसन ही छूटेगा। आरम्भमें कुछ व्यसन छोड़नेके कारण कुछ विकलता, कुछ अस्वस्थता और उद्विग्नता अवश्य होगी। उस समय अपने मनका वेग दबाना होगा। जहाँ दो चार दस बार वह वेग दबाया गया तहाँ धीरे धीरे वह व्यसन आप ही छूट जायगा और जब एक बार वह व्यसन छूट जायगा तब कुछ दिनों बाद उससे घृणा होगी और उसके सामने आने पर उसकी ओर देखनेकी इच्छा भी न होगी। यदि कभी किसी अवसरपर बहुत विकलता होनेके कारण अथवा लोगोंके बहुत अधिक आग्रह करनेके कारण वह व्यसन हो जाय तो दोबारा वैसा अवसर आने पर पूरी पूरी दृढ़ता और आग्रह दिखलाना चाहिए। उस समय अपने मनमें सोचना चाहिए कि हमने यह काम बहुत बुरा किया और भविष्यमें हमें कदापि ऐसा न करना चाहिए। सदा इस बातका स्मरण रखना चाहिए कि पूरा पूरा प्रयत्न करनेसे और मनमें दृढ़ सकल्प करनेसे हर एक काम हो सकता है और कभी यह नहीं सोचना चाहिए कि अमुक व्यसन छोड़ देना हमारे लिए असम्भव है, नहीं तो फिर हम कभी वह व्यसन न छोड़ सकेंगे और उसे छोड़ना हमारे लिए सचमुच असम्भव हो जायगा।

प्रसिद्ध वैज्ञानिक लैकास्टरका मत है कि तमाखूमें निकोटाइन नामका विष रहता है। यह विष इतना अधिक घातक होता है कि यदि उसकी

क बूँद भी किसी कुत्तेको दी जाय तो वह थोड़ी ही देरमें मर जायगा। जो लोग बार बार बहुत अधिक तमाखू या सिगरेट पीते हों उन्हें अपने मनमें यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि हर बार धूआँ खींचने पर उस धूएँके साथ वह विष फेफड़ोंमें पहुँचता रहता है और वहाँसे वह रक्तके साथ सारे शरीरमें फैलता रहता है। यही बात शराबके सम्बन्धमें भी है। पहले तो शराबका विष पेटमें पहुँचता है और तब वहाँसे रक्तके साथ सारे शरीरमें फैलता है। तात्पर्य यह कि किसी प्रकारके मादक द्रव्यका व्यसन लग जाने पर उस मादक द्रव्यका विष सारे शरीरमें फैल जाता है। वह विष किसी प्रकार निकल तो सकता ही नहीं, उलटे दिनपर दिन बढ़ता ही जाता है और उसके परिणामस्वरूप शरीरमें अनेक प्रकारके रोग और व्याधियाँ होती हैं। शरीरसे वह विष निकाल देनेका सबसे उत्तम उपाय यही है कि वह व्यसन बिलकुल छोड़ दिया जाय और उसके बदलेमें शहदकी चायका सेवन आरम्भ किया जाय। जब वह व्यसन छोड़ दिया जायगा तब उसका विष शरीरमें न पहुँच सकेगा और पहलेसे जो विष शरीरमें पहुँचा हुआ होगा वह शहदके रक्त-शोधक गुणके कारण धीरे धीरे नष्ट हो जायगा और शरीर नीरोग तथा स्वस्थ होने लगेगा।

उन्निद्र रोग—प्राय अनेक प्रकारकी चिन्ताएँ करने, बहुत अधिक पढ़ने लिखने या मानसिक परिश्रम करने और मस्तिष्कके बहुत अधिक दुर्बल हो जानेके कारण लोगोंको यह रोग हुआ करता है। कभी कभी अधिक भोजन करने या किसी प्रकारके दुर्व्यसनके कारण भी यह रोग हो जाया करता है। इसमें मनुष्यको या तो बिलकुल ही निद्रा नहीं आती और या शान्तिपूर्ण निद्रा नहीं आती। उसे बराबर अनेक प्रकारके स्वप्न आया करते हैं। ऐसे लोगोंको जहाँ तक हो सके रातके समय बिना भोजन अथवा थोड़ा सा दूध पीकर सो रहना चाहिए।

अथवा यदि अधिक भूख हो तो बहुत ही सादा और हलका भोजन करके सोना चाहिए। अधिक भोजन या गरिष्ठ भोजन करनेका परिणाम यह होता है कि उसे पचानेके लिए शरीरका अधिकाश रक्त जठरकी ओर चला जाता है और मस्तिष्कको जितने रक्तकी आवश्यकता होती है उतना रक्त उसे नहीं मिलता। और मस्तिष्कमें यथेष्ट रक्त न पहुँचनेके कारण पूरी और ठीक निद्रा नहीं आती और अनेक प्रकारके स्वप्न आन लगते हैं। इसी लिए इसमें बिलकुल भोजन न करना या बहुत ही कम भोजन करना बहुत ही लाभदायक होता है। साथ ही, इस रोगके रोगियोंको सन्ध्याके समय छ सात बजे ही भोजन कर लेना चाहिए, बहुत रात गए भोजन नहीं करना चाहिए। जल्दी भोजन करनेसे यह लाभ होता है कि वह भोजन सोनेके समय तक बहुत कुछ पच जाता है और जब भोजन पचा रहता है तब निद्रा आनेमें सहूलियत होती है। जैनियोंमें जो सन्ध्या समय ही भोजन कर लेनेकी प्रथा है वह इस दृष्टिसे बहुत अच्छी और उपयोगी है। इस रोगके रोगियोंको बहुत अधिक चिन्ता नहीं करनी चाहिए और न किसी विषयपर बहुत अधिक सोचना विचारना चाहिए। पूरी और गहरी नींद न आनेका शरीरपर बहुत ही बुरा परिणाम होता है। यदि चार घंटे भी पूरी और अच्छी नींद आ जाय तो वह बारह घंटेकी उस नींदसे कहीं अच्छी है जिसमें अनेक प्रकारके स्वप्न आते हों और दिमागमें बेचैनी रहती हो। ऐसे लोगोंको तमाखू, शराब, अफीम आदि सभी प्रकारके दुर्व्यसनोंसे सदा बहुत बचना चाहिए और प्रति सप्ताहमें कमसे कम एक दिन उपवास करना चाहिए जिसमें जठराग्नि प्रबल होती रहे। ऐसे लोगोंके लिए दिन और रातमें कई बार शहदकी चाय पीते रहना बहुत लाभदायक होता है। यदि हो सके तो इस रोगके रोगियोंका डूश आदिकी सहायतासे समय समयपर अपनी आँतें बराबर साफ करते

हना चाहिए और इसी प्रकारके दूसरे ऐसे उपचार करने चाहिए जिनसे नींद आवे ।

कोष्टबद्धता—हम पहले ही कह चुके हैं कि कोष्टबद्धता मरोड़ और अतिसार आदि रोग प्राय चीनी अधिक खानेसे होते हैं । ऐसे लोगोंको चीनीकी जगह सदा शहदका व्यवहार करना चाहिए । क्योंकि यह एक निश्चित सिद्धान्त है कि शहदसे किसी प्रकारका रोग उत्पन्न नहीं होता, बल्कि सभी प्रकारके रोग किसी न किसी सीमा तक नष्ट होते हैं ।

इसक अतिरिक्त मधुके और भी अनेक उपयोग तथा लाभ होते हैं। इससे कठका स्वर मधुर और सुरीला होता है, शरीरका रंग निखरता है, सौन्दर्यकी वृद्धि होती है, भोजन शीघ्र पचता है, खुजली खसरा आदि रोग दूर होते हैं, शरीरकी बढ़ी हुई चरबी कम होती है, तथा इसी प्रकारके असंख्य लाभ होते हैं। यदि रोटी बनाते समय आटेके पेड़ेमें थोड़ा शहद लगा दिया जाय तो वह रोटी जल्दी पच जाती ह और अपेक्षाकृत अधिक समय तक रखी रह सकती है। यदि आँवले, हर्रे, बेल, आम, या सेब आदिका मुरब्बा शहदमें डाला जाय तो उसकी गुणकारिता बहुत अधिक बढ़ जाती है । तात्पर्य यह कि जितने अधिक रूपमें और जितना अधिक हो सके शहदका व्यवहार करना चाहिए। इससे सदा लाभ ही लाभ होगा, कभी किसी दशामें कोई हानि नहीं होगी।

[६]

अब यहाँ कुछ ऐसे प्रयोग बतलाए जाते हैं जिनमें शहदका व्यवहार क्षार और औषधियोंके साथ होता है ।

शहदमें सुहागा पीसकर और माता या गौके दूधमें मिलाकर छोटे बालकोंको देनेसे उनकी खाँसी और अपच दूर होता है और वे दूध डालकर कै नहीं करते ।

यदि शहदमें सुहागा पीसकर बालकोंके मसूड़ोंपर धीरे धीरे घिसा